उपन्यासकार चतुरसेन के नारी-पात्र

उपन्यासकार चतुरसेन के नारी-पात्र

(कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० सूतदेव 'हस' (पी० ई० एस०),

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,

गवर्नमेंट कालेज, मालेरकोटला

भारतीय ग्रन्थ निकेतन

१३३, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली-११०००६

प्रकाशक : भारतीय ग्रन्थ निकेतन,
१३३, लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली-११०००६

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

प्रथम संस्करण : १९७४

मूल्य : ४२.००

मुद्रक : नटराज आर्ट प्रेस,
लाजपतराय मार्केट,
दिल्ली-११०००६

UPANYASKAR CHATURSEN KE NARI-PATRA

by Sootdev 'Hans'

समर्पण

दिवंगत पूज्य माता-पिता

तथा

पूर्व-संगिनी तारावन्ती की

पुण्य स्मृति मे

सूतदेव 'हंस'
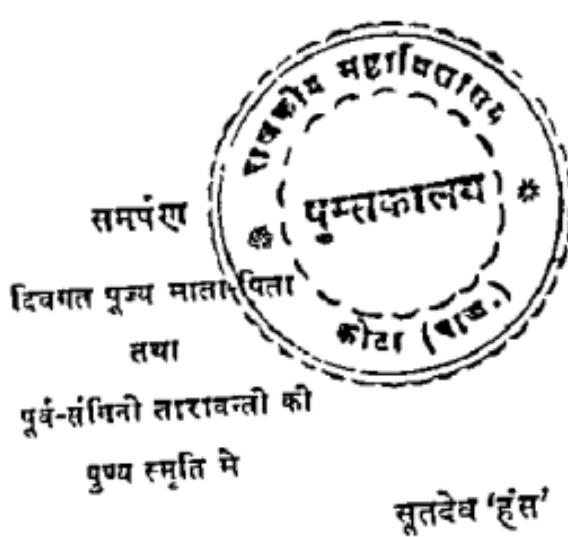
डॉ० मूलदेव हंस, जागरूक शिक्षक और लगनशील विद्वान् हैं। भारतीय नारी-जागरण में उनकी सहज रुचि रही है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों का नारी-जागृति का ओज-युक्त सन्देश उन्हें इधर खींच लाया है। शोधकाल में मैं उनकी अध्ययन-तत्परता और विषय के प्रति निश्छल निष्ठा से प्रभावित हुआ हूँ।

प्रस्तुत पुस्तक 'उपन्यासकार चतुरसेन के नारी-पात्र' में डॉ० हंस ने चतुरसेन की कला को स्फुरित करने वाली प्रेरणा—नारी—के स्वरूप और उनकी रचना-प्रक्रिया में उसकी भूमिका पर विचार किया है।—शोध-कार्य रचना के तंत्र (मेकॅनिज़्म) का उद्घाटन होता है। 'तंत्र' के उद्घाटन-क्रम में डॉ० हंस उपन्यासकार की मनोभूमि, उसके युग और उसके कला तत्त्वों की गहराई में गये हैं। उन्होंने चतुरसेन के प्रतिनिधि नारी पात्रों का विश्लेषण करके स्पष्ट किया है कि ये बहुरंगे होते हुए भी रचयिता की मूल धारणा से उद्भूत हैं। उन्होंने यह भी दर्शाया है कि उपन्यास के विविध तत्त्वों के प्रकरण में चतुरसेन की नारी-विषयक मान्यता कौन-सा रूप किस प्रकार धारण करती है।

पुस्तक डॉ० हंस के आलोचनात्मक अध्ययन, परिपक्व निर्णय क्षमता तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति की परिचायक है। आशा है, हिन्दी-जगत् में इसका समुचित स्वागत होगा।

रीडर, हिन्दी विभाग,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र

डॉ० शशिभूषण सिंहल
(एम्० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०)

दिनांक ४ जनवरी, १९७४

भूमिका

आचार्य चतुरसेन का सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोली' साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिल्ली में धारावाहिक प्रकाशित हुआ था। उपन्यास की हर किस्त में नारी के व्यक्तित्व का कोई न कोई पक्ष उद्घाटित होता चलता था। असहाय नारी, विषम परिस्थितियों में, किन पीडाओं को झेलने के लिए विवश होती है, उपन्यास इस तथ्य का मार्मिक उदाहरण था। शोध-कर्ता के हृदय में चतुरसेन के अन्य उपन्यासों को पढ़ने की इच्छा जगी। वह उनके साहित्य से ज्यों-ज्यों परिचित होता गया, उसे जान कर हर्ष हुआ कि चतुरसेन जैसे समर्थ कलाकार की मूलदृष्टि नारी पर रही है।

मानव-जीवन-परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में नर-नारी, दोनों प्राणियों का सहयोग रहता है। किन्तु पुरुष अपनी विशेष शक्ति और संघर्ष क्षमता के कारण जीवन-व्यापार में अग्रणी दृष्टिगोचर होता है और नारी पृष्ठभूमि में रहकर, उसके सहायक की गौण भूमिका का निर्वाह करती जान पड़ती है। इतिहास और वर्तमान जीवन का अवलोकन करने पर भी यही अनुभव होता है कि नारी पुरुष पर निर्भर है। उसका अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह पुरुष की बनाई समाज-व्यवस्था में प्राय पीड़ित और प्रताड़ित होती रही है। आधुनिक युग में समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति विचारकों और साहित्यकारों में विशेष सहृदयता जगी है। चतुरसेन में यह चेतना द्रष्टव्य है।

चतुरसेन हिन्दी के लब्ध प्रतिष्ठ ऐतिहासिक तथा सामाजिक उपन्यासकारों में गिने जाते हैं। उनकी रचनाओं पर निरन्तर विचार होता रहा है। अनेक छोटे-बड़े ग्रन्थ तथा लेख उनके कृतित्व पर प्रकाश डालते रहे हैं। डॉ० शुभकार कपूर का शोध-प्रबन्ध 'आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य' (प्रकाशित सन् १९६५) इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य है। उन्होंने चतुरसेन के कथा-साहित्य का विवेचन विश्लेषण करते हुए उनके व्यक्तित्व के प्रकाश में उनकी

विशेषताओं को स्पष्ट किया है। चतुरसेन के विशद कथा-साहित्य के अध्ययन में यह ग्रंथ सहायक है, किन्तु चतुरसेन की कला को स्फुरित करने वाली उनकी मूलप्रेरणा—नारी के स्वरूप तथा उनकी रचना-प्रक्रिया में उसकी भूमिका के विषय में विचार एवं विवेचन का अभाव यथावत् बना हुआ है। इस अभाव को दृष्टि में रखते हुए शोध-कर्ता को प्रस्तुत शोध-कार्य में प्रवृत्त होने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

अपने अध्ययन-मनन के फलस्वरूप लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि चतुरसेन की धारणा है कि नारी पुरुष की आश्रिता और भोग्या नहीं है—वह वास्तव में उसकी पूरक है, सहचरी है, और मूलतः उसकी प्रेरणा है। चतुरसेन के बत्तीस—छोटे, बड़े, और बहुत बड़े उपन्यासों में, सौ से ऊपर बिखरे हुए उनके प्रतिनिधि नारी-पात्रों का, अनेक दृष्टियों से अनेकानेक बार अध्ययन करने पर लेखक इसी निष्कर्ष पर पहुँचा है कि ये नारी-रूप विविध और बहुरंगे होते हुए भी रचयिता की मूल धारणा से कहीं न कहीं जुड़े अवश्य हैं। चतुरसेन की मूल धारणा के स्पष्टीकरण तथा उस धारणा के, विभिन्न उपन्यासों के संदर्भ में क्रमशः नारी-रूप में परिणत होने की प्रक्रिया के प्रत्यक्षीकरण पर लेखक का निरन्तर ध्यान रहा है। उसने जानने का प्रयत्न किया है कि कथा, सामाजिक परिस्थितियों, पुरुष पात्रों तथा उपन्यास के जीवन दर्शन के प्रकरण में चतुरसेन की नारी विषयक मान्यता कौन-सा रूप किस प्रकार धारण करती चलती है।

एक विद्वान ने ठीक ही कहा है कि शोध कार्य रचना के तन्त्र (मैकेनिज़म) का उद्घाटन है। तन्त्र के उद्घाटन से रचना का रहस्य प्रकाश में आता है। रूप-रचना रचयिता की गूढ़, दुर्गम मानसिक प्रक्रिया के संयोजन की देन है। इस पर विचार करते समय शोधार्थी मानव-मनोभूमि, उसकी मूल युग धारा तथा कला-तत्वों की सूक्ष्म गहराइयों में उतरता है।[1] इसी प्रकार, लेखक का प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में लक्ष्य, रचयिता चतुरसेन की नारी-सम्बन्धी धारणा का विधिवत् उद्घाटन रहा है। इस क्रम में उनका युग, उनका व्यक्तित्व तथा उनकी उपन्यास-कला स्वतः स्पष्ट हुए हैं। लेखक का यह कार्य सर्वथा मौलिक है।

चतुरसेन के उपन्यासों में चित्रित नारी पात्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन इस प्रबन्ध की दूसरी मौलिकता है। अब तक प्राय कतिपय उद्घोषित

---

१. लेख—'साहित्यिक शोध : क्या और क्यों ?'
लेखक—डॉ० शशिभूषण सिंहल, Kurukshetra University Research Journal (Arts and Humanities), Vol V, Part No 2, Page 26

मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों—जैनेन्द्र, जोशी, अज्ञेय आदि की कथा-कृतियों का ही अध्ययन इस दृष्टि से होता रहा है। इन सबसे सर्वथा अलग रहने के उपन्यासकार चतुरसेन के उपन्यासों में भी नारी चरित्रों का स्वरूप किस प्रकार विभिन्न मनोवैज्ञानिक सूत्रों से रचा गया है, इस तथ्य का उद्घाटन प्रबन्ध में हुआ है।

प्रस्तुत प्रबन्ध आठ अध्यायों में विभक्त है। इसके प्रारम्भिक दो अध्याय मूल विषय की भूमिका स्वरूप हैं। प्रथम अध्याय 'साहित्य में नारी चित्रण की परम्परा' के अन्तर्गत पहले हिन्दी-पूर्व साहित्य में, फिर आदि एवं मध्यकालीन हिन्दी-साहित्य में व्यक्त नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण का विवेचन किया गया है। दूसरे अध्याय 'आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में नारी चित्रण की पृष्ठभूमि' के अन्तर्गत उनसे पूर्व और समकालीन उपन्यासों में नारी-चित्रण के प्रमुख पक्षों का विवेचन किया गया है।

तीसरे अध्याय 'आचार्य चतुरसेन तथा उनका कथा-साहित्य' के 'क' खण्ड में चतुरसेन के रचयिता व्यक्तित्व का विश्लेषण है। इस अध्याय के 'ख' खण्ड में उनके उपन्यासों के कथा-तन्तुओं के प्रकाश में विवेच्य नारी पात्रों की उद्भव प्रक्रिया को दर्शाया गया है।

चौथे अध्याय 'आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारीपात्रों का वर्गीकरण' में आचार्य जी के औपन्यासिक नारी-पात्रों के वर्गीकरण के आधार-स्वरूप विविध बहिरंग और अंतरंग पक्षों को ग्रहण किया गया है। बहिरंग वर्गीकरण के अन्तर्गत पात्रों के कथा में महत्त्व, उनके पारिवारिक सम्बन्ध, सामाजिक स्थिति, इतिहास क्रम और परम्परागत काव्यशास्त्रीय नायिका-भेद के आधार को दृष्टि रखा गया है। अन्तरंग वर्गीकरण के अन्तर्गत पात्र की व्यक्तित्व-क्षमता, चारित्रिक विशेषता तथा युग परिवेश के प्रति जागरूकता को आधार रूप में ग्रहण किया गया है।

पाँचवें अध्याय 'आचार्य चतुरसेन के पौराणिक, ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण' में उनके सभी पौराणिक तथा ऐतिहासिक उपन्यासों के नारी पात्रों का चरित्र विश्लेषण किया गया है। ये उपन्यास अपेक्षाकृत प्राचीन काल का प्रतिनिधित्व करते हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तथा अध्याय के आकार को सीमित रखने के लिए ऐसा करना उचित समझा गया है।

छठे अध्याय 'आचार्य चतुरसेन के सामाजिक उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों का चारित्रिक विश्लेषण' में सभी सामाजिक उपन्यासों में आये प्रमुख नारी पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है।

सातवाँ अध्याय 'आचार्य चतुरसेन की नारी चित्रण कला' से सम्बन्धित है। इसके 'क' खण्ड में आचार्य जी के उपन्यासों में प्रयुक्त नारी चित्रण शैलियों का विवेचन किया गया है। ये शैलियाँ हैं—(१) वर्णनात्मक (प्रत्यक्ष), (२) नाटकीय (परोक्ष) तथा आत्मकथात्मक। आचार्य जी के उपन्यासों के प्रमुख नारी पात्रों के बहिरंग स्वरूप के अन्तर्गत उनके व्यक्तित्व, रूप एवं वेश विन्यास के चित्रण को सोदाहरण स्पष्ट किया गया है। इस अध्याय के 'ख' खंड में नारी पात्रों के अंतरंग स्वरूप के चित्रण की विवेचना मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में की गई है।

आठवें अध्याय 'आचार्य चतुरसेन की नारी विषयक मान्यताएँ' में उपन्यासकार की नारी-दृष्टि का अध्ययन के निष्कर्ष रूप में विश्लेषण किया गया है। तत्पश्चात् 'उपसंहार' में सम्पूर्ण शोध प्रबन्ध के अध्ययन का सार प्रस्तुत किया गया है।

× × ×

अन्त में लेखक अपने शोध निर्देशक, उपन्यास तत्त्व-वेत्ता श्रद्धेय डॉ० शशि-भूषण सिंहल, एम० ए०, पी एच० डी०, डी० लिट्, महोदय का अन्तरात्मना आभारी है। उन्होंने सदैव समुचित पथ प्रदर्शन कर इस महान् कार्य को सिरे चढ़ाने में अपूर्व सहायता की है। लेखक के कई बार हतोत्साह हो जाने पर श्रद्धेय डॉक्टर साहब की वरद प्रेरणा सदा ही इस दुर्गम पारावार को पार करने के लिए सम्बल बनती रही है।

हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्रद्धेय डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल जी का भी लेखक हृदय से धन्यवाद करता है। उन्होंने सदैव आशामय वचनों से सत्साहित्य के निर्माण कार्य की महिमा बताकर लेखक के हृदय में नवचेतना का संचार किया है।

स्वर्गीय आचार्य चतुरसेन के अनुज श्री चन्द्रसेन भी धन्यवाद के पात्र हैं। उन्हें लेखक दिल्ली जाकर मिला और उन्होंने लेखक को समय-समय पर आचार्य चतुरसेन के उपन्यास-साहित्य तथा तत्सम्बन्धी अमूल्य सुझाव देकर कृतार्थ किया है।

—सुतदेव 'हंस'

अध्यक्ष—हिन्दी विभाग,
गवर्नमेंट कालेज,
मालेरकोटला

विषय-सूची

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

पंचम अध्याय

षष्ठ अध्याय

सप्तम अध्याय

दासियो की वेशभूषा (५) सतियो की वेशभूषा (६) आधुनिक नारियो की वेशभूषा (७) अन्य विशिष्ट वर्गीय नारियो की वेशभूषा

(अ) सामान्य ग्राम्य नववधू का वेश विन्यास (आ) वेश्याओ की वेशभूषा (इ) विधवा नारियो की वेशभूषा

(८) विदेशी नारियों की वेशभूषा

(घ) बौद्धिक एव (ङ) चारित्रिक गुणो का चित्रण

'ख' भाग

४. आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो मे नारी पात्रो के अन्तरग स्वरूप का (मनोवैज्ञानिक) चित्रण

(क) साहित्य और मनोविज्ञान (ख) मनोविज्ञान और उपन्यास (ग) उपन्यासो के पात्र चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिकता (घ) मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय और उनके सिद्धान्त

(१) मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय

मनोविज्ञान चिन्तन की चार महत्त्वपूर्ण बातें—(१) लिबिडो, इडिप्स, इलेक्ट्रा (२) मानसिक व्यापार-स्तर—अचेतन, अवचेतन, चेतन (३) मनोवृत्तियो के जीवन तथा मरण वृत्ति वर्ग (४) चेतन अचेतन की मध्यवर्ती अवस्था के सोपान केवल स्वत्व, स्वत्व, उपरिस्वत्व, मनोव्यापार-उदात्तीकरण आदि असाधारण चित्त वृत्तियाँ।

असाधारण व्यक्तित्व—क्रान्तिकारी और विद्रोही

(२) सम्पूर्णतावादी सम्प्रदाय

(३) आचरणवादी सम्प्रदाय

(ङ) आचार्य चतुरसेन के नारी चरित्रो मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो की अवतारणा

(१) मन के अचेतन और चेतन स्तर (२) चित्तवृत्तियो का निरोध एव दमन (३) लिबिडो (काम-मूलक ग्रन्थि) (४) विषम प्रवृत्तियो का ध्रुवीकरण (५) मन के तीन स्तर—प्रकृत स्वत्व (इद), स्वत्व (ईगो), उपरिस्वत्व (सुपर ईगो) (६) उदात्तीकरण (७) सम्मोहन (८) असाधारण चित्त-वृत्तियाँ (९) अहम् भावना (१०) अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

अष्टम अध्याय

प्रथम अध्याय

साहित्य में नारी-चित्रण की परम्परा

१. नारी : परिभाषा एवं स्वरूप-विकास

प्राणि-जगत् मे 'नारी' शब्द 'नर' के समानान्तर है। इसका प्रयोग स्त्रीलिंग-वाची 'मादा' प्राणियो के प्रतीक रूप म होता है। किन्तु मानव-समाज मे 'नारी' शब्द इस सामान्य अर्थ मे गृहीत नही है, क्योकि उसका स्थान नर से कही बढकर है।[1] कोमलता, दृढता, स्पृहा आदि गुण नर की अपेक्षा नारी मे विशेष पाये जाते हैं। यही नही, रूप-आकार, शरीर सगठन, कार्य व्यापार एव जीवन-यापन की विविध स्थितियो मे नारी विधाता की उच्चतम परिकल्पना सिद्ध हुई है। पार्वती, गार्गी, सीता, सावित्री, महारानी लक्ष्मीबाई आदि नारिया इन्ही आदर्शों की प्रमाण हैं।

भारतीय वाङमय मे नारी के लिए अनेक नाम प्रचलित हैं। उनसे उसके समग्र स्वरूप के विभिन्न पक्षो का बोध होता है। नर अथवा नर धर्म से सम्बन्धित होने के कारण उसे नारी कहा गया है। नारी नाम ही के कारण अनायास नर अर्थात् पुरुष से उसका सापेक्ष सम्बन्ध जुड जाता है। इस तरह नारी शब्द स्वत सम्पूर्ण अथवा सर्वथा निरपेक्ष अर्थ का बोधक नही, वरन् उसमे शक्ति, सौन्दर्य और शालीनता आदि वे सब तत्त्व समाहित हैं, जो पुरुष स सम्बन्धित हैं। इसके अतिरिक्त अपने दैहिक एव मानसिक विशिष्ट तत्त्वो के कारण उसमे अर्थाधिक्य भी विद्यमान है। ऋग्वेद मे नारी को 'मेना' कहा गया है, क्योकि उसे पुरुष सम्मान देते हैं।[2] इसमे लज्जा-भाव का विशेष उद्रेक होने के

---

१. 'एक नही दो-दो मात्राए, नर से बढ कर नारी।'—गुप्त, द्वापर, पृ० ३१।

२ 'मानयन्ति एना पुरुषा।'—निरुक्त, ३, २१, २।

कारण यह स्त्री कहलाई है।[1] जब नारी स्वयं को पुरुष के प्रति समर्पित कर देती है, तब योषा नाम की अधिकारिणी हो जाती है।[2] एक ओर वह पुरुष को मत्त, पुलकित और हर्षित करने में समर्थ होने के कारण प्रमदा कहलाती है[3] दूसरी ओर स्वयं लालनामयी होने के साथ-साथ पुरुषों में लालसा जागृत करने के कारण 'ललना' नाम ग्रहण करती है।[4] नारी मानप्रिय होने के कारण 'मानिनी' है और कामना जगाने वाली होने से 'कामिनी' भी है।

ये सभी नाम नारी के मुग्धकारी आकर्षण तत्त्व की ओर इंगित करते हैं। इनका मानव-मन की रागात्मक चेतना से सीधा सम्बन्ध है। मानव के राग-जगत् में नारी सर्वत्र उच्चतम स्थान की अधिष्ठात्री है। किन्तु उसके ये नाम उसे पुरुष के आलम्बन तत्त्व तक सीमित रखते हैं, मन उसकी समग्रता के सूचक नहीं हैं।

उसके अन्य अभिधानों का स्वरूप-विश्लेषण भी आवश्यक है। नारी, जीवन के हर क्षेत्र में, समान रूप से कार्य सक्षम होने के कारण सर्वत्र पुरुष के तुल्य रहने की अधिकारिणी है। वह पुरुष की अनुगामिनी-मात्र न होकर सहधर्मिणी और 'सहचरी' भी है। पुरुष के साथ रहते और चलते समय उसे सदा उसके साथ रहना होता है। पुरुष का दाहिना हाथ कर्म और पुरुषार्थ का प्रतीक है तथा बायां हाथ विजय और सफलता का।[5] नारी पुरुष की शक्ति, ज्योति और सिद्धि की प्रतीक है।[6] अतः उसका स्थान पुरुष के वाम पार्श्व में है। इसीलिए उसे 'वामा' कहा गया है। नारी गृह-क्षेत्र में पुरुष की अपेक्षा अधिक दायित्व का निर्वाह करती है, इस कारण उसका नाम 'गृहिणी' भी है। वह माता, पत्नी, पुत्री—सभी रूपों में पुरुष के लिए सम्माननीय है, अतः वह 'महिला' कहलाती है।[7]

---

१. 'स्त्रियः स्त्यायतेः अपत्रपणकर्मणः।'—निरुक्त, ३, २१, २।

२. 'योषा यौते मिश्रणार्थस्य, यौति मिश्रीभवति,
योषति पुमांसम्, सा हि मिश्रयति आत्मानं पुरुषेण साकम्।'
—संस्कृत-हिन्दी-कोश, वामन शिवराम आप्टे, पृ० ८४१।

३. प्र उपसर्ग, मद् हर्षग्लेपनयोः, सिद्धान्तकौमुदी, पृ० ३७७।

४ लल् ईप्सायाम्, सिद्धान्तकौमुदी, पृ० ४६०।

५. 'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः।'—अथर्ववेद, ७, ५२, ८।

६ 'यों देख रहे थे राम अटल अनुरागी।
योगी के आगे अलख ज्योति ज्यों जागी।'—गुप्त, साकेत, अष्टम सर्ग, पृ० २१६।

७ 'मह्+इलच्+टाप्', वामन सदाशिव आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० ७८८।

नारी के इन भिन्न भिन्न नाम रूपो के आधार पर, उसके स्वरूप की परिकल्पना की जा सकती है। वह प्रहर्षकारिणी मानवी, जिसमे लज्जा, रागात्मक चेतना, कमनीयता एव मातार्ह व्यवहार दक्षता है, 'पूर्ण नारी' कहलाने की अधिकारिणी है। इसके अतिरिक्त पुरुष-सापेक्ष पूर्णत्व की अनिवार्यता उसके साथ *निसर्गत सम्बद्ध है। नारी का यह स्वरूप कविवर प्रसाद की इन पक्तियो मे पूर्णत साकार हो उठता है—*

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो, विश्वास-रजत नग-पगतल मे।
पीयूष-स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल मे॥'[1]

मानव जीवन का सच्चा सौन्दर्य इसी 'नारी' नाम मे निहित है। स्त्री तो अपने नाम से ही कोमल और मजुल है इसीलिए महाप्राण निराला ने कहा है—'साहित्य के एक पृष्ठ मे एक विकच नारी मूर्ति, तम के अतल प्रदेश मे मृणाल दण्ड की तरह अपने शत-शत दलो को सकुचित-सपुटित लेकर, बाहर *आलोक के देश मे, अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पडती है। जडो मे प्राण* सचित हो जाते हैं अरूप मे भुवनमोहिनी ज्योति स्वरूपा नारी।'[2]

२ भारतीय जीवन-पद्धति मे नारी का स्थान

भारतीय जीवन पद्धति की समग्र गरिमा और अर्थवत्ता की आधार भित्ति परिवार परिकल्पना है। उसकी सार्थकता नारी के बिना सन्दिग्ध है। जननी, *जाया और जीवन सगिनी जैसे रूपो मे वह परिवार की सचालिका है। भारतीय विधान-सहिता के नियामको मे प्रसिद्ध महर्षि मनु ने घोषणा की थी* कि 'जहा नारियो की पूजा होती है, वहा देवता रमण करते हैं।'[3] वैदिक वाड्मय मे कहा गया है कि स्त्री ही घर है।[4] ऐतरेय ब्राह्मण मे नारी को सखा के पद पर प्रतिष्ठित करके उसकी महिमा पुरुष के समकक्ष स्वीकार की गई है।[5] शतपथ ब्राह्मण के अन्तर्गत जीवन के हर क्षेत्र मे नारी और पुरुष की समकक्षता का आख्यान करते हुए कहा गया है—'स्त्री और पुरुष दाल के दो दलो की

---

१. जयशकर प्रसाद, कामायनी, लज्जा सर्ग, पृ० ८४।
२ निराला, प्रबन्ध पद्म (रूप और नारी शीर्षक लेख), पृ० ७३।
३. 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।'—मनुस्मृति, ३, ५६-५७।
४ 'जायेदस्त मघवन् त्सेदु योनि स्तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।'
—ऋग्वेद, ३, ५३, ४।
५ ऐतरेय ब्राह्मण, ३, ३, १।

भाँति हैं।[१] उपनिषदों में इससे भी एक पग आगे बढ़कर, सृष्टि की सम्पूर्ण रिक्तता की पूर्ति स्त्री से मानी गई है।[२]

भारतीय जीवन-पद्धति का भौतिक ढाँचा अनेकधा आध्यात्मिक चेतना के आवर्त से अधिष्ठित है। भारतीय दर्शन प्रकृति और पुरुष के संयोग से सृष्टि की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार नारी प्रकृति-रूपा है। गीता में इसी सत्य का पुनराख्यान अनेक रूपों में हुआ है।[३] मानव-जीवन की श्रेष्ठतम गरिमा के विधायक तत्त्व विद्या, वैभव, तेज और पराक्रम आदि को भारतीय मनीषा ने विभिन्न देवियों के रूप में अर्थात् नारी-नाम से अभिहित किया है। सरस्वती, लक्ष्मी और दुर्गा नाम इन्हीं विभूतियों के प्रतीक और पर्याय हैं। भारतीय मनीषियों की दृष्टि में जीवन का कोई भी पुण्यकर्म नारी के बिना सार्थक नहीं माना गया है। इसीलिए श्रीराम को अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर सीता की अनुपस्थिति में उसकी स्वर्ण मूर्ति को सहभागिनी बनाना पड़ा।[४] भारतीय काव्य-शास्त्रकारों ने काव्य के विभिन्न प्रयोजनों पर विचार करते समय उसे 'कान्ता-सम्मत उपदेश-युक्त' बना कर[५] स्पष्ट कर दिया है कि काव्य की लोकोत्तर आनन्द-विधायिनी शक्ति का मूल आधार भी कान्ताभाव अर्थात् नारी-भाव है।

इस प्रकार भारतीय जीवन-पद्धति के सभी पक्षों में नारी का वर्चस्व असन्दिग्ध रूप से स्वीकृत है। किन्तु क्या प्रत्येक युग में नारी को जीवन और समाज में उसका उपयुक्त स्थान मिलता रहा है ? इस प्रश्न के उत्तर की खोज में हमें विभिन्न युगों में रचित साहित्य का अवलोकन करना होगा, क्योंकि साहित्य को जिस जीवन का दर्पण कहा गया है, नारी उसका अभिन्न अंग है।

---

१. शतपथ ब्राह्मण, १४, ४२, ४५।

२. 'अयमाकाश स्त्रिया पूर्यते।'—बृहदारण्यकोपनिषद्, १४, ३।

३. (क) 'प्रकृतिं स्वा मवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः।''
—श्रीमद्भगवद्गीता, ९, ८।

(ख) 'मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।'
—वही, ९, १०।

४. धर्म कर्म कछु कीजई, सकल तरणि के साथ।
ता बिन जो कछु कीजई, निष्फल सोई नाथ॥
करिये युत भूषण रूपरयी। मिथिलेश सुता इक स्वर्णमयी॥
—केशवदास, रामचन्द्रिका, पृ० २२७।

५. 'सद्यःपरनिर्वृतये कान्ता-सम्मिततयोपदेशयुजे।'
—मम्मट, काव्यप्रकाश, १-२।

३. हिन्दी-पूर्व साहित्य मे नारी-चित्रण

भारतीय साहित्यधारा का उद्गम वेदो से सर्वमान्य है। इसके पश्चात् ब्राह्मण-ग्रथो एव उपनिषदो मे से होती हुई यह साहित्य-धारा रामायण और महाभारत मे आकर पर्याप्त गहन और विस्तीर्ण हो जाती है। तदुपरान्त स्मृतियो पुराणो और बौद्ध-ग्रन्थो म विविध रूप आकार ग्रहण करती हुई यह धारा ललित सस्कृत-साहित्य सिन्धु मे समाहित होती दिखाई देती है। वहाँ से इसका रूपान्तरण विभिन्न अपभ्रशो मे होता है। उनसे प्रधानत सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ का विकास हुआ है। हिन्दी उनमे से एक प्रमुख भाषा है। इस प्रकार हिन्दी-पूर्व की साहित्यिक परम्परा अति दीर्घ एव सुसमृद्ध है। इसमे अनेक सहस्राब्दियो के भारतीय जन-जीवन का विविध प्रकार से विशद चित्रण हुआ है। नारी-चित्रण भी उसी जन-जीवन के चित्रण मे समाहित है।

प्राचीन भारतीय वाङमय मे नारी के अनेक रूपो का अनेकविध चित्रण हुआ है। उनमे नारी के चार रूप प्रधान हैं—(१) देवी, (२) माता, (३) पत्नी, और (४) कन्या। नारी की उत्तरोत्तर उदात्तता की दृष्टि से यह क्रम उसके कन्या रूप से प्रारम्भ होकर देवी रूप तक चरम उत्कर्ष को प्राप्त होता दिखाई देता है। आस्था और आस्तिकता-प्रधान भारतीय शब्द शिल्पियो की दृष्टि सर्वप्रथम उसके सर्वोच्च एव दिव्य आध्यात्मिक रूप से होती हुई क्रमश लौकिक-पारिवारिक रूप तक पहुँची है। यहाँ उसी क्रम से उसका विवेचन उपयुक्त होगा।

(क) देवी-रूपा नारी

वैदिक-वाङ्मय मे नारी का अधिकाशत देवी-रूप मे चित्रण हुआ है। वेदो मे अदिति, उषा, इन्द्राणी, इला, दिति सीता, सूर्या, वाक्, सरस्वती आदि देवियो का अनेकत्र स्तवन हुआ है।[1] पुराण-युग तक आते-आते देवीरूपा नारी की अलौकिक विभूति का समाहार मुख्यत सरस्वती, दुर्गा और लक्ष्मी इन तीन रूपो मे हो गया। इनके अतिरिक्त विभिन्न प्राकृतिक विभूतियो मे भी किसी न किसी देवी-रूप का आरोपण करके उन्हे विभिन्न नाम दिये जाते रहे यथा, उषा, सध्या ज्योत्स्ना, दिवा, निशा आदि। परन्तु प्रधानता उन्ही पूर्वोक्त तीनो रूपो की रही है। भारतीय समाज-व्यवस्था के अन्तर्गत प्रचलित वर्ण-व्यवस्था का इन तीनो देवी रूपो से ऐसा लौकिक-पारलौकिक रागात्मक सम्बन्ध जुड गया कि ये जन-

---

१ डॉ० गजानन शर्मा—प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० ५०।

जीवन का नैसर्गिक अंग सा बन गये। ब्राह्मण वर्ण के लिए सरस्वती, क्षत्रिय वर्ण के लिए दुर्गा और वैश्य वर्ण के लिए लक्ष्मी की आराधना उनके जीवन-कर्म का मूल आधार बन गई। दुर्गा के अन्य विभिन्न रूपों की परिकल्पना ने इतर वर्णों के लिए भी देवी-पूजा का मार्ग सुलभ कर दिया। मार्कण्डेय पुराण के अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती' में शक्ति-रूपा देवी के विभिन्न रूपों का जो आख्यान हुआ है, वह किसी भी वर्ण, जाति या व्यक्ति के लिए आराध्य हो सकता है। विभिन्न सहज, नैसर्गिक प्रवृत्तियों में भी नारी के इस देवी रूप का आरोपण कर लिया गया है। मानव-जीवन की समूची चेतना, चिन्तना और चेष्टाओं को इसी देवी रूपा नारी-भावना से अभिभूत मान लिया गया है। 'दुर्गा-सप्तशती' के पाँचवें अध्याय में देवताओं ने देवी का स्तवन प्रकृति, भद्रा, रौद्रा, नित्या, गौरी, धात्री, कृष्णा, धूम्रा आदि नामों से किया है।[1] इसके पश्चात् उन्होंने सभी प्राणियों में इसी देवी-रूपा शक्ति की संस्थिति विष्णुमाया, चेतना, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षमा, जाति, लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, माता, भ्रान्ति आदि रूपों में मानकर उसकी वन्दना की है।[2]

पुराण-काल में उक्त तीनों देवी रूपों के अतिरिक्त 'शिवपत्नी पार्वती' के नाम से एक अन्य देवी रूप की भी प्रतिष्ठा हुई। इसे एक आदर्श पत्नी और सती नारी के रूप में विशेष ख्याति मिली। इसके अन्य नाम सती, गौरी आदि भी प्रसिद्ध हैं। परवर्ती संस्कृत साहित्य में सरस्वती की वंदना वागीश्वरी देवी के रूप में सर्वत्र प्राप्त है। पार्वती-वन्दना की परम्परा भी दृष्टिगोचर होती है। सीता द्वारा अभीष्ट वर की प्राप्ति के लिए गौरी-पूजा का प्रसंग सर्वविदित है।

वैदिक, पौराणिक और संस्कृत काव्यों में उल्लिखित ऋषि-नारियों, गुरु-पत्नियों एवं अन्य सपूज्या नारियों के नाम भी देवी-तुल्य गृहीत हैं। लोपामुद्रा, गार्गी, अनसूया, मैत्रेयी, अरुन्धती, मानसी आदि नाम इस रूप के अर्थवाहक हैं। इनमें सारी विद्याओं में निष्णात और वेदमन्त्रों का साक्षात्कार करने वाली नारियों के नाम गृहीत हैं। सारांश यह है कि देवीरूपा नारी का यह चित्रण भारतीय जीवन और साहित्य में उसकी अनन्य प्रतिष्ठा का द्योतक है।

(ख) मातृ-रूपा नारी

भारतीय साहित्य में नारी की उदात्तता का चरम निदर्शन उसके मातृ रूप

१. 'दुर्गा-सप्तशती', अध्याय ५, श्लोक ६-१२।
२. वही, अध्याय ५, श्लोक १६-१७।

में होता है। माता पिता के समास में माता शब्द का स्थान ही प्रथम है।[१] ऋग्वेद में अदिति का ओजस्विनी माता के रूप में चित्रण हुआ है और उसे अपने वीर-पुत्रों के पराक्रम पूर्ण कार्यों पर गर्वमयी दिखलाया गया है।[२] इसके अतिरिक्त ऋग्वेद सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् को केवल पिता का नाम देने में सन्तुष्ट नहीं अपितु उसे माता रूप में वन्द्य मानता है।[३] केनोपनिषद् में ब्रह्म का नारी रूप में वर्णन उसकी मातृशक्ति के माध्यम से किया गया है।[४] अथर्ववेद में पुत्र को यह उपदेश दिया गया है कि वह माता से प्रीतियुक्त मन वाला बने।[५] तैत्तिरीय ब्राह्मण में माँ की देवता की भाँति पूजा करने का आदेश है।[६] शतपथ ब्राह्मण में माता को सबसे पहला गुरु माना गया है।[७] 'वसिष्ठ धर्मसूत्र' और 'मनुस्मृति' के अनुसार उपाध्याय से आचार्य दस गुणा प्रतिष्ठित है, आचार्य से पिता सौ गुणा प्रतिष्ठित है किन्तु पिता से भी माता सहस्र गुणा अधिक प्रतिष्ठित है।[८] वसिष्ठ धर्मसूत्र का कथन है कि पतित पिता से सम्बन्ध विच्छेद किया जा सकता है किन्तु माता से नहीं।[९] 'छान्दोग्य उपनिषद्' मातृ महिमा गान में इतनी आगे बढ़ गई है कि उसके अनुसार 'स्वप्न में भी स्त्री-रूपा मातृ-

---

१. 'न यस्य सातुर्जनितोर वारि
 न मातरापितरा नू चिदिष्टौ ॥'—ऋग्वेद, ४, ६ ७।

२ (क) 'आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः।
 बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥'
 —वही, ३, ४, ११ एवं ७, २, ११।

 (ख) 'वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारीनर्यं ससूव।' इत्यादि।
 —वही, ७, २०, ५।

३ 'त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।'
 —ऋग्वेद, ८ ६८, ११।

४. केनोपनिषद्, ४, ७.

५. 'माता भवतु सम्मनाः।'—अथर्ववेद, ३, ३०, २।

६. 'मातृदेवो भव।'—तैत्तिरीय ब्राह्मण, वैदिकानुशासनम्।

७ 'मातुमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद।'—शतपथ ब्राह्मण,

८ (क) उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
 सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते ॥—मनुस्मृति, २, १४५।

 (ख) वसिष्ठधर्मसूत्र, १३, ४८।

९ 'पतितः पिता परित्याज्यः माता तु पुत्रे न पतति ॥'
 —वसिष्ठधर्मसूत्र, १३. ४७।

शक्ति के दर्शन मात्र से मनुष्य को समृद्धि की प्राप्ति होती है।"[1] भारतीय जन-जीवन में मातृ-रूपा नारी की सर्वोच्च प्रतिष्ठा इसी से स्पष्ट है कि यहाँ का हर आस्तिक मनुष्य देवाधिदेव को अपना सर्वस्व मानते हुए सर्वप्रथम उसकी वन्दना माता रूप में करता है।[2] माता को स्वर्ग से भी श्रेष्ठ बताने वाली उक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' (माता तथा मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है) निस्सन्देह मातृरूपा नारी के प्रति भारतीय मनीषा की अपार श्रद्धा की प्रतीक है। विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों की माता-रूप में स्तुति की परम्परा इसी तथ्य की परिचायिका है। यहाँ पवित्र नदियों को आज भी जन-साधारण 'गंगा मैया', 'यमुना मैया', 'सरस्वती मैया आदि मातृ'-सम्बोधनों से अभिहित करता है। इस मान्यता का आदिस्रोत भी वैदिक वाङ्मय है। 'ऋग्वैदिक ऋषियों ने प्राकृतिक तत्त्वों और देवों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकाशित करने में उन्हें माता के रूप में कल्पित किया है।'[3] इस सम्बन्ध में ऋग्वेद में वर्णित एक प्रसंग उल्लेखनीय है। दीर्घतमा को जब दासों द्वारा बाँध कर नदी में फेंक दिया गया और वह संयोगवश नदी से सुरक्षित बाहर निकल आया, तब वह मातृ-रूपा नदी के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहता है—'दासों ने तो मुझे दृढ़ता से बाँध कर फेंक दिया था किन्तु मातृ-स्वरूपा नदी ने मुझे निगला नहीं।"[4]

वाल्मीकि रामायण के अनुसार 'नारीत्व की चरम परिणति मातृत्व रूप में होती है। मनुष्य के चरित्र-निर्माण की सूत्रधारिणी माता है पिता नहीं।"[5] महाभारत में नारी के अन्य रूपों का चित्रण भले ही उसकी विशेष उदात्तता का परिचायक न हो किन्तु उसके मातृ-रूप की प्रतिष्ठा वहाँ भी पूर्ण रूप से

---

१. यदा कर्मसु काम्येषु स्त्रियं स्वप्नेषु पश्यति।
समृद्धिं तत्र जानीयात्। —छान्दोग्य उपनिषद्, ५, २, ६।

२. त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देव देव।
—श्रीमद्भगवद्गीता, मुख पृष्ठ, गीता प्रेस।

३. प्रशान्तकुमार, वैदिक साहित्य में नारी, पृ० १०८.

४ 'न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदी सुसमुब्धम वाधुः।'
—ऋग्वेद, १, १५८, ५।

५. 'न पित्र्यं मनु वर्तन्ते मातृकं द्विपदा इति।'
—वाल्मीकि-रामायण, २, ३५, २४।

हुई है। कालिदास कृत 'रघुवंश' और 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में मातृत्व का प्रशस्ति-गान अनेकविध हुआ है।[1] इस प्रकार प्राचीन भारतीय वाङ्मय में मातृ-रूपा नारी का चित्रण उसकी महती गरिमा का सूचक है।

(ग) पत्नी-रूपा नारी

वैदिक साहित्य में पत्नी को पति के घर में सर्वोपरि स्थान दिया गया है। इसका प्रमाण है ऋग्वेद का यह कथन कि 'पत्नी ही घर है।'[2] अथर्ववेद में पत्नी को रथ की धुरी के समान गृहस्थ का मूलाधार कहा गया है।[3] इस सम्बन्ध में अथर्ववेद की यह उक्ति उल्लेखनीय है— हे पत्नि! तू दृढ़ रूप से स्थिर रह। तू विराट् है। हे सरस्वति! तू इस पतिगृह में विष्णु की तरह है।[4] ऋग्वेद में पत्नी को सारे परिवार के लिए कल्याणकारिणी कहा गया है। वेदों का स्पष्ट अभिमत है कि 'जिस घर में पत्नी नहीं, उस घर में दिन का निवास नहीं।'[5] पत्नी सारे घर की नियामिका और व्यवस्थापिका है।[6] जिस प्रकार समुद्र वर्षा करके नदियों पर साम्राज्य प्राप्त करता है, उसी प्रकार पत्नी पति के घर जाकर वहां की सम्राज्ञी बनती है।[7] इसका अभिप्राय यही है कि जैसे समुद्र नदियों का राजा है और नदियां सम्पूर्ण जल-सम्पत्ति उसे समर्पित करती हैं, वैसे पत्नी गृह-स्वामिनी है और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा अर्जित सम्पत्ति उसी को समर्पित की जानी चाहिए।

'मनुस्मृति' में कहा गया है—'पितरों का और हमारा स्वर्ग सब पत्नी के अधीन है।'[8] मनु के कथनानुसार पत्नी पूज्या है। उसी की प्रसन्नता में परिवार की प्रसन्नता निहित है और उसके दुःख में समूचे परिवार के दुःखी होने की

---

१ डॉ० गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० १४५।

२ 'जायेदस्तं मघवन् सेदु योनि स्तदित् त्वा युक्ता हरयो वहन्तु।' —ऋग्वेद, ३, ५३, ४।

३. अथर्ववेद, १४, १, ६१।

४. 'प्रतितिष्ठ विराडसि विष्णुरिवेह सरस्वति।' —अथर्ववेद, १४, २, १५।

५ ऋग्वेद, १०, ८५, ४३-४४ तथा १०, १५९, २।

६ मूर्धासि राड्ध्रुवासि धरुणा धूर्यमि धरणी।
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी॥ —यजुर्वेद, १४, २१, २२।

७ यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा।
एवा त्वं सम्राज्ञ्येधि पत्युरस्तं परेत्य॥ —अथर्ववेद, १४, १, ४३।

८ 'दाराधीनस्तथा स्वर्गः पितृणामात्मनश्चहि।' —मनुस्मृति, ९, २८।

स्थिति होती है।"[1] अत कुल के हिताभिलाषी पिता, भ्राता, पति एव परिवार के अन्य सदस्यो को सदा गृहिणियो का आदर करना चाहिए।[2] जिस कुल की बहू-बेटिया क्लेश पाती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है, किन्तु जहा पर इन्हे किसी तरह का क्लेश नही होता, वह कुल सब प्रकार से सुख-सम्पन्न रहा करता है।[3]

स्मृतिकारो ने पत्नी के कतिपय अधिकारो का निर्देश किया है। उनके अनुसार कोई पति अकारण अपनी पत्नी का परित्याग नही कर सकता। ऐसा करने पर उसे कठोर प्रायश्चित्त करना पडेगा। आपस्तम्ब धर्मसूत्र का विधान यह है कि 'वह गर्दभ का चर्म धारण कर छ मास तक प्रतिदिन सात घरो मे यह कहकर भिक्षा मागे, उस व्यक्ति को भिक्षा दो, जिसने अपनी पत्नी का परित्याग किया है।"[4] स्मृतियो म एक से अधिक पत्नीधारी पति को निन्दनीय माना गया है।[5] उनके अनुसार एक पत्नी के जीवित रहते पुरुष के लिए दूसरा विवाह पूर्णत निषिद्ध है।[6] पत्नी के आर्थिक अधिकार के सम्बन्ध म मनु का कथन है कि जो व्यक्ति अपनी पत्नी का भरण-पोषण न कर सके, उसे शासन की ओर से अर्थ दण्ड दिया जाना चाहिए।

जीवन के विविध क्षेत्रो मे पत्नी के पतितुल्य अधिकारो की चर्चा करते हुए वेदो म कहा गया है कि पति अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए पत्नी का पाणिग्रहण करता है[7] अत उसे सदैव पत्नी के प्रति भद्र व्यवहार करना चाहिए। उसका कर्तव्य है कि वह प्रत्येक कार्य मे पत्नी से परामर्श करे। पति अपने हित और अहित के विचार के उपरान्त पत्नी को ग्रहण करता है अत अपनी पत्नी

---

१. 'स्त्रिया तुरोचमानाया, सर्वं तद्रोचते कुलम्।
तस्या त्वरोचमानाया सर्वमेव न रोचते॥'　　—मनुस्मृति, ३, ६२।

२ 'पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च, बहुकल्याणमीप्सुभि:॥'　　—वही, ३, ५५।

३. 'शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥'　　—वही, ३, ५७।

४ आपस्तम्बधर्मसूत्र, १, १०, २८, १६।

५. 'न द्वितीयश्च साध्वीना क्वचिद् भर्तोपदिश्यते।'　　वही, ५, १६२।

६. 'धर्मप्रजा सम्पन्ने दारे नान्यां कुर्वीत।'—आपस्तम्ब धर्मसूत्र, २, ५, ११, १२।

७ अथर्ववेद, १४, ५, ५०।

के कथनानुसार आचरण करना पति के लिए परम आवश्यक है।[1] उसे चाहिये कि वह पत्नी के मन की भावनाओं को भली-भाँति समझ कर तदनुकूल व्यवहार करे।[2] स्मृतिकारों ने वेदों की इस स्थापना का प्रबल समर्थन किया है। उनका विधान है कि पति सदा पत्नी की रक्षा म प्रयत्नशील रहे।[3]

पत्नीरूपा नारी की यह प्रतिष्ठा रामायण, महाभारत एव परवर्ती संस्कृत-साहित्य मे यथावत् स्थापित रही है। आदि महाकाव्य रामायण की रचना पत्नी रूपा नारी की गौरव-स्थापना क लिए ही हुई है। इसका चरम निदर्शन अश्वमेध यज्ञ के प्रसग मे दृष्टिगत होता है। डॉ० शान्तिराम नानूराम व्यास के कथनानुसार 'भारतीय मनीषा ने यह मत स्थिर किया है कि महाभारत द्यूत प्रसग है, भागवत चौर प्रसग है तो रामायण की यथार्थ संज्ञा स्त्री-प्रसग है, क्योंकि इसमे नारी का ही गौरव-गान है।'[4] महाभारतकार ने 'भार्या-रक्षण' मे असमर्थ व्यक्ति को नरकगामी कहकर पत्नी रूपा नारी का महत्त्व प्रदर्शित किया है।[5] कालिदासकृत 'रघुवश' तथा 'अभिज्ञान शाकुन्तल', भवभूतिकृत 'उत्तररामचरित' एव भट्ट नारायण कृत 'वेणी-सहार' आदि कृतियो मे पत्नी-रूपा नारी के अतीव उदात्त स्वरूप का चित्रण हुआ है।

प्राचीन साहित्य मे पत्नीरूपा नारी की अधिकार-प्रतिष्ठा के साथ-साथ उसके कर्तव्य की ओर भी सकेत किया गया है। इसमे सर्वाधिक प्रमुखता पति-सेवा को दी गई है। अथर्ववेद के अनुसार 'पति की यश सिद्धि एव सकल मनोरथो की पूर्ति मे यथाशक्ति सहयोग देना पत्नी का एकमात्र कर्तव्य है।'[6] पर-पुरुष के प्रति आसक्ति उसका सबसे बडा नैतिक अपराध माना गया है। मनु के अनुसार एक पत्नी का पातिव्रत्य यही है कि वह मन, वचन, कर्म से कभी भी व्यभिचार न करे।[7] इस प्रकार के व्यभिचार की अपराधिनी नारी को कुत्तो से

---

१ 'जाया जिनासे मनसा चरन्तीम्। तामन्वतिष्ये सखिभिर्नवग्वैः ॥'
—वही, १४, १, ५६।

२ 'एवा मज्नामि ते मनो यथा मा कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः।'
—वही, २, ३०, १।

३ 'यतन्ते रक्षितुं भार्यां भर्तारो दुर्बला अपि।' —मनुस्मृति, ६, ६७।

४ डॉ० गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय संस्कृति मे नारी', पृ० ११४।

५. महाभारत, १४, ९०, ४८-४६।

६ पत्युरनुव्रता भूत्वा सनह्यस्वामृतापकम्।' —अथर्ववेद, ५, २,३२।
(प्रशान्त कुमार वेदालकार कृत 'वैदिक साहित्य मे नारी', पृ० ८१)।

७. मनुस्मृति, ६, २६।

खिलवा देने के विधान की चर्चा भी की गई है।[1] पर-पुरुष गामिनी नारियों की चर्चा वेदों में भी है, उदाहरणत यजुर्वेद के अन्तर्गत एक यज्ञ प्रसंग में एक स्त्री से प्रश्न किया गया है—'कस्ते जार'? अर्थात् तेरा प्रेमी (यार) कौन है? किन्तु वहां इस प्रकार की पर-पुरुष में आसक्त नारी के प्रति यह उदारता दिखाई गई है कि वह अपने प्रेमी का नाम बता देने मात्र से उस अपराध से मुक्त मान ली जाती है।[2] इसी प्रकार वसिष्ठ धर्मसूत्र का अभिमत है कि 'शत्रु द्वारा बन्दी बनाई गई डाकुओं द्वारा अपहृत अथवा स्वेच्छा-विरुद्ध पर-पुरुष के बलात्कार से पीड़ित नारी का परित्याग उचित नहीं।'[3] इस सम्बन्ध में अन्य स्मृतिकारों का दृष्टिकोण पर्याप्त कठोर है। मनु के अनुसार पत्नी को पति का कुछ भी अप्रिय नहीं करना चाहिए।[4] पति से पृथक् उसका कोई यज्ञ या व्रत नहीं है। पति सेवा से ही उसे स्वर्ग-प्राप्ति सम्भव है।[5]

स्मृतियों में निर्दिष्ट स्त्री-कर्तव्य-सम्बन्धी उपर्युक्त विधान महाभारत काल तक आते-आते, पत्नी की विवशता और असहायता के कारण बनने लग गए। द्रौपदी के लिए पांच पुरुषों को पति रूप में वरण करने की अनिवार्यता इसका प्रमाण है। युधिष्ठिर द्वारा उसे निर्जीव अचल सम्पत्ति की भांति द्यूत में दांव पर लगा देना भी पत्नी-रूपा नारी की पति दासता की चरम सीमा है। परवर्ती संस्कृत कथा-साहित्य (कथासरित्सागर, दशकुमारचरित, हितोपदेश एवं पंचतंत्र आदि) में तो नारी के गर्हित रूप का अनेकविध चित्रण होने के कारण उसकी गरिमा उत्तरोत्तर क्षीण होती दिखाई देती है। इसकी पराकाष्ठा परवर्ती संस्कृत और अपभ्रंश मुक्तक-काव्य में हुई है। संस्कृत एवं अपभ्रंश में रचित शतक एवं सप्तशती ग्रन्थ नारी के किसी उदात्त रूप की परिकल्पना प्रस्तुत नहीं

---

१. भर्तारं लंघयेद् या तु स्त्री ज्ञाति-गुण-दर्पिता।
 तां श्वभिः खादयेद् राजा संस्थाने बहुसंस्थिते ॥ —वही, ८, ३७१।

२. डॉ० प्रशान्तकुमार वैदिक साहित्य में नारी, पृ० ७६।

३. स्वयं विप्रतिपन्ना वा यदि वा विप्रवासिता।
 बलात्कारोपभुक्ता वा चोर-हस्त-गतापि वा ॥
 नत्याज्या दूषिता नारी नास्यास्त्यागो विधीयते।
 पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुद्ध्यति ॥
 —वसिष्ठधर्मसूत्र, ३८, २-३, ३, ५८,११, ९।

४. 'पतिलोकं मभीप्सन्ती नाचरत् किंचिदप्रियम्।' —मनुस्मृति, ५ १५६।

५. नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
 पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ —वही, ५, १५५।

कर पाए। यही स्थिति तत्कालीन जैन एवं सिद्ध-साहित्य में भी है। वहाँ विविध प्रसंगों के माध्यम से नारी को प्रायः हीन एवं निन्द्य रूप में चित्रित किया गया है।[1]

(घ) कन्या-रूपा नारी

प्राचीन साहित्य में नारी के कन्या रूप का चित्रण अपेक्षाकृत कम मात्रा में हुआ है। वैदिक साहित्य में प्रत्येक गृहस्थ द्वारा कन्या की कामना और उसकी समुचित पालना किए जाने का विधान है। प्राचीन भाषा शास्त्रीय आचार्यों ने कन्या शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ 'सब के द्वारा वाञ्छनीय' बताया है।[2] कन्या की प्राप्ति के लिए पूषा देवता की मनौती किए जाने का उल्लेख वेदों में मिलता है।[3] वैदिक युग में पुत्र और पुत्री में कोई भेद नहीं माना गया। वहाँ पिता पुत्री में पुत्रभाव को प्रस्थापित करता है और दौहित्र को भी पौत्र समझता है।[4] स्मृति ग्रंथों में इस धारणा की पुष्टि यह कहकर की गई है कि 'जैसा पुत्र है, वैसी ही पुत्री है' और 'कन्या भी पुत्र के समान है।'[5] पुराणकाल में कन्या की प्रतिष्ठा अधिक दिखाई देती है। इसी काल में कन्या को देवी रूपा स्वीकार किया गया। इसका परम्परा विहित प्रमाण आज भी आस्तिक समाज में 'कन्या-पूजन' की प्रथा में प्राप्त है। श्रीमद्भागवत में नारी के कन्या रूप का गान विशदता से हुआ है।[6] रामायणकार का कथन है कि 'कन्या की प्राप्ति बड़ी तपस्या से होती है।'[7]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय समाज और साहित्य में कन्या-रूपा नारी का स्थान प्रतिष्ठापरक था। कालान्तर में मुक्ति के लिए पुत्र की प्राप्ति की अभिलाषा इतनी तीव्र होने लगी कि पुत्री का जन्म निवारण के लिए विशेष धार्मिक कृत्यों का विधान किया जाने लगा। तैत्तिरीय संहिता में निर्दिष्ट द्वितीया

---

१ डॉ० गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० १४६ १६७।

२ 'कन्या-कमनीया भवति।'—निरुक्त, ४, २।

३ डॉ० गजानन शर्मा, प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० ६०।

४. शासद् वह्निर्दुहितुर्नप्त्यंगाद् विद्वाँ ऋतस्य दीधितिं सपर्यन्।'
—ऋग्वेद, ३, ३१, १।

५ 'यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।'—मनुस्मृति, ६, १३०।

६. श्रीमद्भागवत, ६, १, १४।

७ वाल्मीकिरामायण, १, २५ ५६।

और पूर्णिमा के यज्ञों में इसी धारणा का संकेत मिलता है।[१] ऐतरेयब्राह्मण में तो यहां तक कह दिया है कि 'पत्नी एक साथी है, पुत्री एक विपत्ति है, पुत्र सर्वोच्च स्वर्ग का प्रकाश है।'[२] धीरे-धीरे यह धारणा इतनी बलवती हो गई कि रामायण के प्रारम्भ में 'कन्या की प्राप्ति बड़ी तपस्या से होती है' कहने वाले आदिकवि वाल्मीकि भी बाद में यह कह गए कि 'कन्या ही पिता के सभी दुःखों का कारण है।'[३] आश्चर्य है कि माता और पत्नी रूपा नारी की गुण-गरिमा का आख्यान करने वाले ये विद्वान् इस बात को कैसे भूल गए कि कन्या-रूप में सपोषित और यौवन-प्राप्त नारी ही तो क्रमशः पत्नी तथा मातृ-पद की अधिकारिणी बन पाएगी। कन्या रूप में उसका संसार में आगमन ही पुरुषों के लिए अवाञ्छनीय और चिन्तनीय समझा जाने पर अपने प्रति दिखाई गई इस उपेक्षा और अवमानना की अग्नि में जलने वाली नारी से पत्नी और माता रूप में भी पुरुषानुकूल आचरण की आशा किस कारण और किस अधिकार से की जा सकती है?

भारतीय समाज और परिवार में कन्या की यह स्थिति विवाह, दहेज, वैधव्य एवं आर्थिक स्वातन्त्र्य-सम्बन्धी विभिन्न सामाजिक रूढ़ियों का परिणाम मानी जा सकती है। यह निश्चित है कि कन्या के प्रति ऐसी धारणा पर्याप्त परवर्ती समय में उत्पन्न और पल्लवित हुई। वेदों में तो कन्या को पुत्र की भांति 'दायभागिनी' बताया गया है। कतिपय वैदिक ऋचाओं और परवर्ती स्मृति-ग्रन्थों में आर्थिक दाय के प्रसंग में कन्या की ज्येष्ठता से अनेकत्र इन्कार भी किया गया है। इस प्रकार के वचनों का अर्थ केवल इतना ही है कि कन्या को पिता के धन की आवश्यकता ही नहीं रह जाती क्योंकि वह अपने पति के घर में जाते ही सम्पूर्ण सम्पत्ति की स्वामिनी बन जाती है।[४] ऋग्वेद में 'कन्या को विवाह के लिए सब प्रकार से योग्य बनाने' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।[५]

यह ठीक है कि मध्य-युग में कन्याओं को जन्म लेते ही मार दिये जाने के विविध प्रसंग वास्तविक हैं। ऐसी घटनाएं पूर्णतः समकालीन परिस्थितियों का

---

१. शकुन्तला राव शास्त्री—'वुमन इन दी वैदिक एज' (हिन्दी अनुवाद, 'वैदिक कालीन नारी') पृ० ३५।
२. ऐतरेयब्राह्मण, ७, १३।
३. 'कन्या-पितृत्व दुःखं हि सर्वेषां मानकांक्षिणाम्।'
—वाल्मीकि रामायण, ७, ६, १०।
४. प्रशान्तकुमार—वैदिक साहित्य में नारी, पृ० १५।
५. ऋग्वेद—२, ३१, २।

अनिवार्य परिणाम समझी जानी चाहिएँ। कतिपय पाश्चात्य विद्वान् कन्या-वध की कुप्रथा का सम्बन्ध वेदो मे जोडने का प्रयास करते हैं, जिसे उनकी वेदार्थ-शैली से अनभिज्ञता का ही परिचायक माना जा सकता है। वेस्टरमार्क ने ऋग्वेद की जिस ऋचा से, वैदिक युग मे कन्या वध की प्रथा के विद्यमान होने की बात सिद्ध की है, उसका अर्थ इस प्रकार है—'हे व्रतधारी, तेजस्वी, विद्वान् पुरुषो ! आप लोग प्रबल इच्छा, ज्ञान और धर्मवाले होकर मुझ प्रजाजन के अवरोधो एव पापो को उसी प्रकार विनष्ट करो, जिस प्रकार एकान्त मे सन्तानोत्पत्ति करने वाली व्यभिचारिणी स्त्री अपनी अवैध सन्तान को ध्वस कर देती है।'[1] वेस्टरमार्क ने न जाने किस आधार पर 'सन्तान का अभिप्राय कन्या' लगा लिया है। 'कन्या' अर्थ लेने पर भी किसी व्यभिचारिणी की अवैध कन्या' होने का सन्दर्भ यह प्रतिपादित नही करता है कि यहा हर सामान्य कन्या के वध का निर्देश हुआ है। इसी प्रकार जिमर और डेलब्रुक नामक विद्वानो ने अपने 'वैदिक इण्डेक्स' (Vedic Index) नामक ग्रन्थ मे एक वेद-वचन के इस अर्थ को कि 'कन्या को विवाह-सस्कार के काल मे वर कुल मे छोड आते हैं, परन्तु पुरुष को नही छोडते' के स्थान पर यह अर्थ निर्धारित किया है कि 'पैदा हुई स्त्री को छोड देते हैं, परन्तु पुरुष को नही छोडते।'[2] और इसका यह अभिप्राय बताया है कि पैदा होने वाली कन्या का वध उचित है, पुत्र का नहीं। 'इस प्रकार के अनर्थकारी वक्तव्यो द्वारा प्राचीन भारतीय जीवन-पद्धति के प्रति अनावश्यक शकाएँ उत्पन्न करने के अतिरिक्त और कोई प्रयोजन सिद्ध नही होता।'[3]

४. आदि एवं मध्यकालीन हिन्दी साहित्य मे नारी चित्रण

आदिकालीन हिन्दी काव्य मे कवियो की नारी चित्रण की प्रवृत्ति दो विपरीत आयामो का स्पर्श करती दिखाई देती है। एक ओर सिद्ध एव नाथ पन्थियों द्वारा नारी को माया का पर्याय बनाकर गर्हित तथा हीन प्रतिपादित किया जा रहा था, दूसरी ओर रासोकार चारण-कवि उसकी कमनीयता और रूप-सज्जा का मुग्धकारी वर्णन कर उसे विलासिता के चरम माध्यम के

---

१. 'घृतव्रता आदित्या इषिरा आरे मत् कर्त रहसूरिवागः ।
शृण्वतो वो वरुण मित्र देवा भद्रस्य विद्वा अवसे हुवे व' ॥ ऋग्वेद,
२, २९, १।

२. जिमर एण्ड डेलब्रुक, वैदिक इण्डेक्स, खण्ड १, पृ० ४८७।

३ प्रशान्तकुमार वेदालकार वैदिक साहित्य मे नारी, पृ० ११-१२।

रूप में चित्रित कर रहे थे। रासो एवं अन्य वीर-गाथात्मक काव्यों में प्रमगत कन्या अथवा माता-रूप में भी नारी का चित्रण यत्किंचित् मात्रा में अवश्य हुआ है, किन्तु उसमें उदात्तता की कोई रेखा दृष्टिगोचर नहीं होती। वह नाम-मात्र की 'पुत्री' अथवा 'माता' है—इन दोनों रूपों की रागात्मक, भावात्मक अथवा पारिवारिक गरिमा का कहीं कोई संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत इस युग के काव्य-ग्रन्थों में वेश्याओं, कुट्टनियों, परकीया नायिकाओं तथा प्रमदाओं के ऐसे चित्र अंकित हैं जो नारी की प्रतिष्ठा को क्षति पहुँचाने वाले हैं। पत्नी तथा प्रेमिका-रूप में भी इस युग के काव्य में नारी का चित्रण हुआ है। ये नारियाँ प्रेम के उच्चतम रूप का निर्वाह करती हैं। प्रेमी या पति के वियोग में अपने अस्तित्व को समाप्त कर देना इनके लिए दुष्कर नहीं है। इस पक्ष का कवियों ने एकांगी चित्रण किया है परन्तु पारिवारिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार का नारी-चित्रण महत्त्व शून्य नहीं है।

आदिकालीन नारी चित्रण का उज्ज्वल पक्ष प्रमुखतः दो रूपों में चित्रित हैं। प्रथम, वीरांगना-रूप में तथा द्वितीय, आदर्श-सती-रूप में। वीर-काव्यों में चित्रित उत्साही, बलिदानी एवं प्रबल पराक्रमी योद्धाओं की प्रेरणादायिनी शक्ति के रूप में माता, पत्नी अथवा भगिनी रूपा नारी का वर्णन अन्ततोगत्वा इस युग में भी नारी महिमा की अक्षुण्णता बनाए रखने में समर्थ हुआ है। रासो-ग्रन्थों एवं आल्हाखण्ड आदि वीर-गीति-काव्यों के अतिरिक्त सूर्यमल्ल और बांकीदास-कृत मुक्तक वीर-काव्यों में इस प्रकार की वीरांगना नारियों के अनेक चित्र प्राप्त हैं।[1]

अद्दहरहमान (अब्दुर्रहमान) तथा विद्यापति कृत वीरेतर काव्यों में अधिकांशतः नारी के प्रेमिका-रूप का अंकन हुआ है। यह चित्रण प्रेम-तत्त्व की अतिशय सूक्ष्मता, तरलता और गम्भीरता को समझने-समझाने में जितना सहायक है, उतना समाज में नारी के विभिन्न रूपों, उसकी जीवन स्थितियों एवं कर्तव्याधिकार-सीमाओं का संकेतक नहीं।

मध्ययुगीन भक्तिकाव्य के अन्तर्गत संत कवियों द्वारा चित्रित नारी प्रायः हीन और गर्हित रूप में उपस्थित हुई है। उनके लिए नारी भक्ति-मुक्ति और आत्मज्ञान दूर करने वाली ही रही।[2] उसे उन्होंने साधना-मार्ग में बाधक

१. डॉ० गजानन शर्मा : प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० १६८-२२१।

२. 'नारी नसावे तीनि सुख जा नर पासैं होई।
भगति मुकति निज ग्यान मैं पैठि न सकई कोई॥'
—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत कबीर ग्रंथावली, पृ०, २११।

समझा। मुक्ति के उच्चतम लक्ष्य तक पहुँचने में नारी-रूपिणी अग्नि की ज्वाला का पार करना उनके लिए सदैव चिन्तनीय रहा।[1] सन्त कविगण कृत नारी-निन्दा वस्तुतः उसके कामिनी रूप की निन्दा है क्योंकि यह मनुष्य को देह-रस में निमग्न कर अध्यात्म-पथ पर अग्रसर होने से रोकता है। इससे सन्तों द्वारा नारी मात्र का जाति-रूप में तिरस्कार करना सिद्ध नहीं होता। अपने निराकार, सच्चिदानन्द आराध्य को उन्होंने अनेक स्थानों पर माता रूप में परिकल्पित किया है। उदाहरणतः कबीर कहते हैं—'हे हरि! तुम मेरी जननी हो, मैं तुम्हारा बालक हूँ।'[2] सन्त नामदेव ने भक्त और भगवान् की प्रीति को पुत्र और माता की प्रीति की उपमा दी है।[3] गुरु अर्जुनदेव का कथन है कि जिस प्रकार 'पुत्र माता द्वारा सम्बोधित होकर प्रसन्न रहता है, उसी प्रकार जीव प्रभु में आस्था रखकर सन्तुष्ट होता है।'[4] सन्त गुलाल परमात्मा को 'माता के समान सारे जगत् का पालन करने वाला' मानते हैं।[5] सन्त कवियों की दृष्टि में नारी का उदात्त रूप सर्वत्र सम्मान्य और पूज्य रहा है। नारी के चपल रमणी-रूप के प्रति विपरीत भाव की अभिव्यक्ति सन्त कवियों की प्रवृत्ति को देखते हुए अस्वाभाविक नहीं लगती।

भक्तिकालीन प्रेम-मार्गी कवियों की प्रवृत्ति नारी के प्रेमिका और पत्नी रूप का चित्रण करने की ओर अधिक उन्मुख रही है तथा इन रूपों का चित्रण उदात्तता लिए हुए है। पद्मावती, मधुमालती, हंसावती, इन्द्रावती आदि आदर्श प्रेमिकाएँ हैं। यही नारियाँ पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में आदर्श पत्नियाँ सिद्ध होती हैं। वस्तुतः प्रारम्भ में ये नायिकाएँ कामोन्माद, रूपगर्व एवं स्वार्थपरता से ग्रस्त दिखाई पड़ती हैं किन्तु आगे चलकर नायक के त्याग एवं बलिदान से इनमें भी सच्चे प्रेम का विकास हो जाता है।[6] उदाहरणार्थ विवाह पूर्व की पद्मावती जहाँ

---

१ 'एक कनक और कामिनी दोऊ अगनि की झाल।
देखें ही तन प्रजलै परस्या ह्वै पामाल॥'
—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत : कबीर ग्रंथावली, पृ० २११।

२. 'हरि जननी मैं बालक तोरा।' —वही, पृ० ४०३।

३. 'जैसी प्रीत बालक अरु माता।' —नामदेव, पृ० ४०।

४ 'पूत पेखि जिउ जीवत माता। ओति पोति जनु हरि सिउ राता॥'
—अर्जुनदेव (संत वाणी संग्रह), पृ० १२५।

५ 'जननी ह्वै कै सब जग पारा।'—सन्त गुलाल (संत वाणी संग्रह) पृ० १७५।

६ डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त हिन्दी साहित्य—प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ, पृ० ११३।

'मदन द्वारा निरन्तर सताई जाती हुई, पिता द्वारा विवाह का कोई उपक्रम न करने के कारण दुखी है' वहा विवाहोपरान्त की पद्मावती मात्र शारीरिक तृप्ति को ही प्रेम न समझकर पति की चिता मे जीवित जल मरने को उद्यत है।[2]

प्रेम-मार्गी कवियो के प्रेमाख्यानो मे माता और कन्या-रूपा नारी का चित्रण हुआ है, पर वह सर्वत्र औपचारिकता की सीमा मे आबद्ध है। इन विशिष्ट रूपो मे नारी की पारिवारिक एव सामाजिक परिधि के मध्य जिस प्रकार की मन स्थिति और रागात्मक चेतना हो सकती है—उसकी स्पष्ट झलक प्रेमाख्यानो मे अधिक नही मिलती।

मध्ययुगीन सगुण भक्ति काव्यधारा के अन्तर्गत रचित काव्य-कृतिया नारी के विविध रूपो के उदात्त चित्रण स युक्त हैं। कृष्ण-भक्त कवियो न माता, पत्नी, प्रेमिका और पुत्री-रूपो मे नारी-स्वरूप का निरूपण किया है। लोक-प्रसिद्ध कृष्ण-कथा से नारी के जितने रूप सम्बद्ध हो सकते थे, उन सबका उल्लेख इन कवियो ने विस्तार से किया है। कृष्ण-काव्य मे चित्रित यशोदा और कीर्ति आदर्श माताएँ हैं। य सन्तान के लिए सदैव सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार रहती हैं। जहाँ वे अपनी सन्तान को बडे स्नेह से खिला-पिलाकर उनके सम्यक् पालन-पोषण मे सजग हैं,[3] वहीं उनकी सन्तुष्टि के लिए परिवार और समाज की विभिन्न मर्यादाओ का उल्लघन करने को भी तैयार हैं। यशोदा कृष्ण को प्रसन्न रखने के लिए झूठी सौगन्ध खाने मे नहीं हिचकती।[4] कीर्ति

---

१. सुनु हीरामन कहौं बुझाई। दिन दिन मदन सतावै आई।
देस देस के वर मोहि आवहि। पिता हमार न आख लगावहि॥
—पद्मावत, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७५।

२. 'नेवछावर कै तन छहरावौं। छार होऊ सग बहुरि न आवौं॥
—पद्मावती डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पद्मावती नागमती सतीखड, पृ० ७०६।

३. (क) 'जसोदा हरि पालने झुलावै।'—सूरसागर, ना० प्र० सभा, वाराणसी पद-६६१।

(ख) 'कीरति उबटि न्हवाई राधा। अपनी लाडिलरी हिन साधा।'
—घन आनन्द (स० विश्वनाथप्रसाद मिश्र), पद ७४५, पृ० ५०७।

४. 'सूर स्याम मोहि गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।' —सूरसागर पद, ८३३।

राधा के हित चिन्तन म उसे अनक प्रकार से समझाती रहती है' जिस पर राधा कई बार खीझ उठती है।' यशोदा का कृष्ण को चलना सिखाना, कभी उसे ताली बजाकर नचाना, कभी पात्र मे पानी भरकर चन्द्रमा को खिलौने के रूप मे प्रस्तुत करना, कहानियाँ सुनाना एव धूल झाड़कर तेल मर्दन करना आदि कार्य भी जननी रूपा नारी के वात्सल्यमय स्वरूप के द्योतक है।

प्रेमिका रूप मे राधा एव गोपियों के चित्रण की विवेचना यहा अपेक्षित नही, काव्य-अध्येता उससे भलीभाँति परिचित हैं। कृष्ण-भक्त कवियो द्वारा पत्नी-रूपा नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण उल्लेखनीय है, क्योंकि गोपियों के कृष्ण-प्रेम को परकीय मानकर, उनके द्वारा स्व-स्व-पतियो की उपेक्षा प्रदर्शित किए जाने के विविध प्रसगों के आधार पर प्राय यह समझ लिया जाता है कि कृष्ण-भक्ति काव्य म पत्नी आदर्शों को आघात पहुँचा है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत

सूरसागर मे ऐसे अनेक पद प्राप्त हैं, जिनम पत्नी-कर्तव्यो का कथन हुआ है। सूरदास ने कहा है कि पति को छोड़कर परपुरुष का अनुगमन करने वाली स्त्री कुलीन नही। उसे मरने के उपरान्त तो नरक का वास मिलता ही है, जीवितावस्था मे भी इस ससार मे सब उसकी निन्दा करते हैं।' पत्नी का कर्तव्य है कि वह पति को परमेश्वर मानकर उसकी पूजा करे।' कृष्ण-काव्य के अध्ययन से यह धारणा बनती है कि गृहस्थ धर्म के अन्तर्गत पति सेवा और भक्ति क्षेत्र मे प्रेम-निष्ठा—ये दोनो बातें सर्वथा भिन्न हैं। इसीलिए एक गोपी अपने पति से कहती है कि 'एक बार कृष्ण के दर्शन कर आने दो, फिर मैं लौट

---

१ (क) 'काहैं को घर घर छिनु-छिनु जाति।
घर मे डाटि देति सिख जननी, नाहिं न नेकु डराति।
—सूरसागर, पद १७०८।

(ख) 'सुता लए जननी समुझावति। स्याम साथ सुनि सुनि रिस पावति।
सग बिहिअननि कैं मिलि खेलौ।' —वही, पद १७११।

२. 'तात रिस करत, भ्राता कहैं मारिहौं। तुमहु रिस करति, धन्य पितु माता अरु भ्रात तुमही।' —वही, पद १७०७।

३. तजि भरतार और जो भजिये, सो कुलीन नहिं होइ।
मरे नरक जीवत या जग मैं, भलौ कहै नहिं कोइ॥'
—वही, पद १०२७।

४ 'अब तुम भवन जाहु, पति पूजहु परमेश्वर की नाईं।'
—वही, पद १०१४।

कर तुम्हारी कामना पूर्ण कर दूगी।'[1] सामाजिक दृष्टि से नारी के अन्तर्मन का यह चित्रण भले ही अनुपयुक्त समझा जाए, परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे अस्वाभाविक नही कहा जा सकता।

कृष्ण-काव्य मे कन्या-रूपी नारी का चित्रण अधिकतर राधा के माध्यम से हुआ है। राधा-जन्म के अवसर पर वृषभानु के घर बधाइया गाए जाने का उल्लेख इस बात का परिचायक है कि उन दिनो कन्या का स्थान पुत्र की तुलना मे हीन नही था।[2] राधा को अपनी मा कीर्ति एव कभी-कभी यशोदा द्वारा दिये गये उपदेश तत्कालीन समाज मे कन्या के लिए निर्धारित सीमाओं की ओर इगित करते हैं। उदाहरण के लिये कीर्ति राधा के 'सयानी' हो जाने पर उसे बाहर घूमने से रोकती है और मुह को ढककर रखने की प्रेरणा देती है।[3] इसी प्रकार यशोदा भी उसे डाँट कर कहती है—'क्या तुझे घर पर कोई कार्य नहीं है? तू इधर उधर क्यो घूमती रहती है?'[4] इससे यह भी ध्वनित होता है कि घर-परिवार मे कन्या पर विभिन्न कार्य करने का दायित्व रहता था।

मध्ययुगीन राम-भक्ति काव्य मे विविध नारी-रूपो का चित्रण अधिक व्यापक स्तर पर हुआ है। राम-भक्त कवियो मे अग्रणी गोस्वामी तुलसीदास के नारी विषयक दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे विद्वान् समालोचको मे मतभेद हैं। डॉ० रामकुमार वर्मा के कथनानुसार 'तुलसीदास ने नारी-जाति के लिए बहुत आदर-भाव प्रकट किया है। पार्वती, अनसूया, कौशल्या, सीता, ग्रामवधू आदि की चरित्र-रेखा पवित्र और धर्मपूर्ण विचारो से निर्मित हुई है। कुछ आलोचको का

---

१. 'देखन दे वृन्दावनचन्दहि।
हा हा कन्त मान विनती यह, कुल अभिमान छाडि मतिमन्दहि।
दरसन पाइ आइ हौं अबहिं, करन सकल तेरे दुख दहि।'
—सूरसागर, पद ८०३।

२. 'श्रीवृषभानु-नृपति के अगनि, बाजति आजु बधाई।
कीरति दे रानी सुख-सानी सुता सुलच्छिन जाई॥'
—नन्ददास-ग्रन्थावली, पृ० २६७।

३. (क) 'अब राधा तू भई सयानी।
मेरी सीख मानि हिरदय धरि, जह तह डोलत बुद्धि अयानी॥'
—सूरसागर, पद १३१६।

(ख) 'सूर मुख पर देति काहें न, बरष द्वादस भारी।'
—वही, पद १७१५।

४. वही, पद ७१८।

कथन है कि तुलसीदास ने नारी-जाति की निन्दा की है और उन्हें ढोल गँवार की कोटि में रखा है। परन्तु यदि 'मानस' पर निष्पक्ष दृष्टि डाली जाए तो विदित होगा कि नारी के प्रति भर्त्सना के ऐसे प्रमाण उसी समय उपस्थित किए गए हैं जबकि नारी ने धर्म विरोधी आचरण किया है।[1] डॉ० माताप्रसाद गुप्त का मत इसके विपरीत है। वे कहते हैं—'प्रत्येक युग के कलाकार नारी-चित्रण में प्रायः उदार पाए जाते हैं किन्तु नारी-चित्रण में तुलसीदास बेहद अनुदार हैं।'[2] उक्त दोनों विद्वानों के अभिमत वास्तव में तथ्याधारित हैं। राम-चरितमानस' से दोनों मतों की सम्यक् पुष्टि के लिए अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं। सही बात तो यह है कि तुलसीदास द्वारा चित्रित नारी के विभिन्न रूपों का अध्ययन उनके विशिष्ट सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से 'मानस' का नारी-चित्रण प्रमुख रूप से चार रूपों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम रूप उस नारी का है जो तुलसी के आराध्य से सम्बन्धित होने के कारण नितान्त अलौकिक और चरम उदात्त है। सीता, कौशल्या, सुमित्रा आदि के चित्रण में यह रूप भली-भाँति देखा जा सकता है। दूसरा रूप उस नारी का है जो लौकिक धरातल पर परिवार और समाज की परिधि में हर दृष्टि से आदर्श है। अनसूया, पार्वती, मन्दोदरी, सुलोचना आदि के चरित्र इसके प्रमाण हैं। 'तुलसी को पारिवारिक जीवन में नारी के कल्याण-विधायक ममतामय रूप का विकास करना अभीप्सित था। जीवन की विशृंख-लताओं के मध्य उन्होंने ऐसी नारी का अंकन किया जो गृह-जीवन में त्याग, ममता और कर्त्तव्य का सबल लेकर अग्रसर होती है। अपने हृदय-रक्त से साधना और कर्त्तव्य का अभिषेक करती है।'[3] कवितावली में चित्रित कौशल्या एक ऐसी उदारहृदया माता है, जिसके लिए सपत्नी का पुत्र भी औरस पुत्र के समान स्नेह पात्र है।[4] सुमित्रा के माध्यम से मातृ-रूपा नारी का एक अन्य आदर्श पक्ष चित्रित हुआ है, जिसके लिए माता की कोमलता और ममता की

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४६४।

२. डॉ० माताप्रसाद गुप्त—तुलसीदास, पृ० ३०७।

३ उषा पांडेय—तुलसी की नारी भावना (डॉ० उदयभानुसिंह द्वारा संपादित 'तुलसी' में संकलित लेख), पृ० १५६।

४ 'तुलसी सरल भाय रघुराय माय मानी।
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है॥'
—कवितावली, वनगमन-३, पृ० २१।

अपेक्षा कर्तव्य प्रधान है।[1] सीता, पार्वती, मन्दोदरी आदि का चित्रण आदर्श पत्नी के रूप में हुआ है। पार्वती शिव को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए वन में जाकर घोर तप करती हैं, अत: पतिव्रता नारियों में उनका स्थान सर्व-प्रथम है।[2] मन्दोदरी अपने पति को कुपथ से हटने की प्रेरणा देकर अपने सच्चे पतिव्रता-धर्म का परिचय देती है।[3] अनसूया द्वारा सीता को दिये गये उपदेश के अन्तर्गत पत्नी कर्तव्यों का विशद निर्देश मिलता है। उसमें बताया गया है कि पत्नी का एकमात्र धर्म व्रत और नियम यही है कि वह मन वाणी और कर्म से पति के चरणों में अनुरक्त रहे।[4] नारी के कन्या-रूप की प्रतिष्ठा वहाँ दृष्टिगोचर होती है जहाँ तुलसी ने उसकी पवित्रता के संरक्षण को परम धर्म बतलाया है।[5] उनके अनुसार गुणशीला एवं कर्तव्यपरायण पुत्री पितृकुल एवं श्वसुरकुल दोनों का उद्धार कर सकती है।[6]

रामचरितमानस में नारी के तृतीय रूप का चित्रण वह है, जिसके अन्तर्गत तुलसी ने अपने समकालीन समाज में नारी की शोचनीय स्थिति की झलक प्रस्तुत की है। एक प्रसंग में उन्होंने तत्कालीन समाज में नारी की पराधीनता के अभिशाप की सजीव मूर्ति बतलाया है।[7] और भी कई जगह समाज द्वारा नारी को सहज ही मूर्ख, नासमझ और पुरुष-सेविका समझे जाने का संकेत

---

१. सिय रघुबीर की सेवा सुचि ह्वै हौ तो जानिहौं सही सुत मोरे।
—गीतावली, पद-११, पृ० १८३।

२. उर धरि उमा प्रान पति चरना। जाइ बिपिन लागीं तपु करना॥
—रामचरितमानस, बालकांड, १७४।

३. अस कहि लोचन बारि भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुबीर पद अचल होइ अहिवात॥
—वही, लंकाकांड, दोहा-७।

४. एकहि धरम एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति-पद-प्रेमा॥
—रामचरितमानस, अरण्यकांड, ४, २।

५. अनुज बधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥
—वही, किष्किन्धाकांड, ४-६।

६. पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ॥
—वही, अयोध्याकांड, १-२८७।

७. कत बिधि सृजीं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं॥
—वही, बालकांड, १०२।

है।[1] एक ओर उन्होंने जहां पुरुषों द्वारा सती नारियों के तिरस्कार और कुलटाओं के सम्मान का उल्लेख किया है।[2] वहां दूसरी ओर नारियों द्वारा भी गुणवान् और सुन्दर पुरुषों को त्याग कर परपुरुषासक्त होने का वर्णन किया है।[3]

अब आता है 'मानस' में चित्रित नारी की निन्दा का प्रसंग। तुलसीदास द्वारा चित्रित नारी का यह चतुर्थ रूप है। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि ऐसे प्रसंगों में तुलसी ने अपने पूर्ववर्ती सन्त कवियों की परम्परा का ही निर्वाह किया है। अन्य सन्तों के समान वे भी नारी को त्रिगुण-विलासिनी, तप-संयम विरोधिनी एवं साधना पथ की बाधा मानते हैं।[4] उन्होंने नारी में निसर्ग से विद्यमान साहस, असत्य, चचलता माया, भय, अविवेक, अपवित्रता और दया-हीनता आदि वृत्तियों की गणना अवगुणों में की है।[5] उनकी दृष्टि में नारी स्वाधीनता उसके कुपथ गमन की प्रतीक है।[6] पशुवत् आचरण करने वाली नारी को उन्होंने प्रताड़ना की अधिकारिणी भी कह दिया है।[7] तुलसी की ये मान्यताएं कतिपय विशिष्ट और पर्याप्त सीमित सन्दर्भों में ही सटीक बैठती हैं, अन्यथा उन्होंने सर्वत्र कर्तव्यपरायण नारी की प्रशंसा की है। तत्कालीन समाज की प्रवृत्ति के प्रभाव से उन्होंने नारी को विलास की सामग्री में गिना

---

१ अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़ नारि अयानी॥
—रामचरितमानस, बालकांड, १२०।

२. कुलवत निकारहिं नारी सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गति॥
—वही, उत्तरकांड १०० (२)।

३. गुनमंदिर सुंदर पति त्यागी। भजहिं नारि परपुरुष अभागी॥
—वही, उत्तरकांड, ९९ (२)।

४ (क) जप तप नेम जलाश्रय भारी। होइ ग्रीसम सोखइ सब नारी॥
—वही, अरण्यकांड, १, ४४।

(ख) पाप उलूकनिकर सुखकारी। नारि निबिड़ रजनी अंधियारी॥
—वही, अरण्यकांड, ४, ४६।

५ (क) नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
(ख) साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक असौच अदाया॥
—वही, लंकाकांड, १६ (१-२)।

६ महावृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
—वही, किष्किन्धाकांड, ४, १५।

७ ढोल गंवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी॥
—वही, सुन्दरकांड, ३, ६०।

है, परन्तु उनके अन्तर के किसी कोने में नारी मर्यादा और उसकी पवित्रता के प्रति श्रद्धा एवं आदर का भाव सतत ही बना रहा।"[1]

उत्तरमध्यकालीन रीतिकाव्य में नारी-चित्रण का क्षेत्र उसके प्रमदा-रूप तक ही सीमित दिखाई देता है। इसके अन्तर्गत कवियों ने नायिकाभेद वर्णन में विशेष रुचि दिखलाई है। उन्होंने नायिकारूपिणी नारी के रूप-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करते समय उसके बाह्य अंग-प्रत्यंग का अवलोकन तो बड़ी सूक्ष्मता से किया, परन्तु उसके अन्तर्जगत् एवं पारिवारिक तथा सामाजिक रूप के विश्लेषण का कोई प्रयास नहीं किया। माता और कन्या-रूपा नारी रीतिकाव्य से बहिष्कृत है ही, पत्नीरूप में भी वह स्वकीया या परकीया नायिका के आवरण में लिपटी हुई है।

निष्कर्ष

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं आदि-मध्य-कालीन हिन्दी काव्य के अन्तर्गत नारीचित्रण के विविध रूपों के विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष सहज ही प्रस्तुत किया जा सकता है कि परिस्थितियों के अनुसार नारी की स्थिति परिवर्तित होती रही है।

हिन्दीपूर्व भारतीय साहित्य में प्राप्त नारी-चित्रण, उसके कन्या रूप को छोड़कर, अन्य सभी रूपों में उदात्ततायुक्त है। शिक्षा, शासन, समाज, परिवार एवं धर्म आदि क्षेत्रों में उसकी स्थिति सम्माननीय रही है। ऋग्वेद में उसके चरमोदात्त रूप का चित्रण है। अन्य ग्रन्थों में भी उसे कहीं अधिकार-च्युत नहीं किया गया। यद्यपि अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण एवं मैत्रायणीसंहिता आदि में नारी के महत्त्व में कुछ न्यूनता दृष्टिगत होती है तथापि उपनिषदों में हम उसे पुनः उच्च पद पर प्रतिष्ठित देखते हैं।[2] रामायण, महाभारत, पुराण-साहित्य एवं परवर्ती संस्कृत-साहित्य में भी नारी चित्रण उसकी परम्परागत मर्यादा के भीतर हुआ है। कतिपय कथा-प्रसंगों में कुछ नारी-पात्रों का अमर्यादित अथवा हीन समझा जाने वाला चित्रण देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उस विशिष्ट युग में नारी पूरी तरह से प्रतिष्ठा-वंचित हो चुकी थी। सभी-कथा-प्रसंग या दृष्टान्त रूप में आए हुए सन्दर्भ अनिवार्य रूप से रचनाकार के निजी दृष्टिकोण के प्रमाण नहीं हो सकते। जहाँ तक प्राचीन साहित्य-स्रष्टाओं की

---

१. उषा पाडेय—तुलसी की नारीभावना (डॉ० उदयभानुसिंह द्वारा सपादित 'तुलसी' में सकलित लेख, पृ० १६४)।

२. डॉ० गजानन शर्मा . प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० ७४।

अपनी नारी दृष्टि का प्रश्न है, वे नारी के प्रति सहृदय और आदर भाव से युक्त दिखाई देते हैं। इसका प्रमाण ऐतरेयोपनिषत् का यह कथन है—'नारी हमारी पालना करती है। अतः उसकी पालना करना हमारा कर्तव्य है।'[1]

आदि तथा मध्यकालीन हिन्दीकाव्य में चित्रित नारी के विविध रूप उसके जीवन के उत्कृष्ट एवं निकृष्ट दोनों छोरों की ओर निर्देश करते हैं। यह बात निर्विवाद रूप से सत्य है कि हर युग में 'नारी' समाज का अभिन्न अंग मानी जाती रही है। भारतीय वाङ्मय में नारी के महत्त्व का विशद वर्णन ऋषियों मुनियों और समाजशास्त्रियों ने किया है। प्रत्येक युग में नारी धर्म और संस्कृति की वाहिका मानी जाती रही है। देव-समुदाय में भी देवियों को ऋषियों तथा मुनियों ने प्रथम स्थान प्रदान किया है। 'भारत की निरक्षरा नारी अपनी भारतीय संस्कृति की सूत्रधारिणी आज तक बनी हुई है। भारतीय नारी ने यह महत्ता अपने असीम त्याग, पतिव्रता धर्म, दया, दानशीलता, सेवा-भाव, अनुकम्पा तथा अपने पति, सास, ससुर और परिवार में अगाध श्रद्धा के कारण प्राप्त की है।

मध्ययुग की नारी विलासिता के परिवेश में बँध गई थी। उसके चारों ओर मध्ययुगीन सांस्कृतिक एवं सामाजिक धारणाओं ने एक संकीर्ण जीवन का मोहात्मक बन्धन बाँध दिया था। वह घर की चार दीवारी में कैद सी हो गई थी। उसका जीवन उसे अपने आप में त्रस्त एवं हेय लगता था।

राजनीतिक वातावरण के परिवर्तन के साथ ही नारी-जागरण आरम्भ हुआ। अंग्रेजी प्रशासन द्वारा शिक्षा-प्रचार से नारी-जीवन के बन्धन कटने लगे। शिक्षा-सुधार के प्रयत्नों के कारण देश-भर में राजनीतिक स्वतन्त्रता के आन्दोलन में नारी भी पुरुष के समान आगे आने लगी। उत्तर में स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं दक्षिण-पूर्व में राजा राममोहनराय, बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सुब्रह्मण्यम् भारती आदि के नारी के लिये जीवन में उत्थान सम्बन्धी विचारों से नारी-जीवन में नवीन स्फूर्ति आई। स्वतन्त्रता के आन्दोलन में नारियों के प्रत्येक वर्ग ने भाग लिया। प्रेमचन्द, शरत्, जैनेन्द्र, चतुरसेन आदि का साहित्य इसका प्रमाण है। अब नारी शिक्षा तथा राजनीति के अतिरिक्त न्याय, प्रशासन आदि क्षेत्रों में भी आगे आ चुकी है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् तो भारतीय नारी ने राजनीतिक जागृति में अधिकाधिक प्रगति की ओर चरण बढ़ाए हैं। देश के उच्चतम प्रशासकीय पदों पर वह आरूढ हुई है। वह अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी अपने व्यक्तित्व का प्रभाव

---

१ ऐतरेयोपनिषद्, ८-३।

सिद्ध कर चुकी है। श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित, हंसा मेहता, राजकुमारी ग्रमृत-कौर, इन्दिरा गांधी ग्रादि इसके प्रमाण हैं।

इस प्रकार देश की बदलती परिस्थितियों के साथ-साथ नारी-जीवन में बहुमुखी प्रगति तथा जागृति ग्राती गई है। उपन्यासकार ग्राचार्य चतुरसेन ने भारतीय इतिहास के पुरातन युग से लेकर वर्तमान ग्रन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक कार्य करने वाली नारियों का चरित्र-चित्रण किया है। उन्होंने ग्रपनी लेखनी में उपन्यासों में नारी के विविध रूपों को सजीवता से चित्रित किया है।

द्वितीय अध्याय

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो में नारी-चित्रण की पृष्ठभूमि

१. हिंदी उपन्यासो मे नारी-चित्रण का स्वरूप

साहित्य को समाज का दर्पण कहा गया है। समाज मे नारी और पुरुष, दोनों का अस्तित्व समान है। जीवन के व्यावहारिक क्षेत्र मे नारी की अपेक्षा भले ही पुरुष का वर्चस्व अधिक दिखाई देता है किन्तु कला और साहित्य के क्षेत्र मे नारी का महत्त्व स्पष्ट है। 'पुरुष समाज का मस्तिष्क है तो नारी हृदय।'[१] इसके अतिरिक्त 'पुरुष की तुलना मे नारी कोमल भावनाओ से अधिक सम्पन्न है।'[२] अत मानव के सूक्ष्म मनोजगत् का चित्रण करने वाले उपन्यासो मे उसकी विशिष्ट स्थिति होना स्वाभाविक है। उपन्यास कथात्मक विधा है और कथा सूत्रो की स्वाभाविक सरचना नारी-चरित्रो के अभाव मे असम्भव है।

यहाँ प्रश्न उठाया जा सकता है, कि किसी कृतिकार की रचनाओ मे केवल 'नारी चित्रण' अथवा 'नारी-सम्बन्धी समस्याओ की खोज ही विशेषत क्यो की जाए? किसी रचना मे 'पुरुष चित्रण' या 'पुरुष सबधी समस्याओं' के विवेचन विश्लेषण की अपेक्षा क्यो नही की जाती? उत्तर स्पष्ट है कि अन्वेषक की दृष्टि सदा किसी वस्तु या स्थिति के दुर्बल या गौण प्रतीत होने वाले पक्ष की ओर अधिक आकृष्ट होती है, जबकि वह पक्ष महत्त्वपूर्ण होते हुए भी उपेक्षित रह गया हो। मानव समाज की स्थापना से लेकर अद्यतन उन्नयन की

---

१ अदल बदल (नीलमणि से सयुक्त) पृ० १२२।
२ वाई० एम० रीग, ह्वीदर वुमन? पृ० २७४।

अवस्था तक सभी स्थितियों और सभी क्षेत्रों में पुरुषवर्ग सामान्यतः सक्रिय दिखाई देता है। साहित्यिक क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान के सभी विषय स्वभावतः उसी की गतिविधियों के लेखे-जोखे पर आधारित रहते हैं। इसके विपरीत नारी जो कि सृष्टि की आदिशक्ति और 'पुरुष के जीवन की मूल आधार है'[1] कई कारणों से सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और हीन बनी रही। उसकी अब तक की उपेक्षा और हीनता के कारणों की खोज करना प्रत्येक सजग साहित्यकार का नैतिक दायित्व है। मैं समझता हूँ कि विभिन्न साहित्यकारों द्वारा नारी-संबंधी समस्याओं पर व्यक्त किए गए दृष्टिकोण के आधार पर समाज में नारी-संबंधी धारणा को प्रस्तुत करना साहित्य-अध्येता एवं अनुसंधाता का कर्त्तव्य है। 'नारी का व्यक्तित्व उतना ही महान्, श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण है जितना पुरुष का।'[2] उसकी इस श्रेष्ठता को आघात पहुँचाने वाले कारणों तथा उनके समाधानों का निरूपण जिस रूप में कोई कथाकार करता है, उसी को हम उसकी नारी-चित्रण-कला मान सकते हैं।

आचार्य चतुरसेन ने जिस युग में लेखनी उठाई, वह नव-जागरण और विभिन्न दिशाओं में प्रगति के नये आन्दोलनों का युग था। भारतीय समाज पाश्चात्य सभ्यता के द्रुत प्रसार के परिप्रेक्ष्य में राजा राममोहनराय, महर्षि दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर प्रभृति प्रबल सुधारकों द्वारा आन्दोलित हो चुका था और लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी एवं ला० लाजपतराय जैसे नेता इसी सन्दर्भ में जनता को नई दिशा प्रदान कर रहे थे। प्रत्येक क्षेत्र में प्रत्येक स्तर पर स्वाधीनता की पुकार अधिकाधिक बलवती होती जा रही थी और उस स्वाधीनता-संग्राम में बाधक तत्त्वों का मूलोच्छेदन करने के लिए सुनियोजित चिन्तन सक्रियता से चल रहा था। स्वाधीनता और सर्वतोमुखी प्रगति की जनाकांक्षा के मार्ग में कई ऐसी सामाजिक रूढ़ियाँ भी बाधक थीं, जिनका नारी-वर्ग से विशेष सम्बन्ध था। अधिकांश सामाजिक कुरीतियों का शिकार देश का नारी-वर्ग था, अतः उन कुरीतियों के निराकरण के आयोजन ने देश में नारी-जागरण की एक ऐसी लहर पैदा कर दी, जिसने राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र के साथ-साथ साहित्यिक क्षेत्र में भी अद्भुत हलचल मचा दी। भारतेन्दु-युग से लेकर प्रसाद, प्रेमचन्द-युग तक समस्त साहित्यकार अपनी कृतियों में, समाज में नारी की स्थिति का अनेकधा आकलन करते हुए, उसे उसके अनुकूल अधिकार और प्रतिष्ठा दिलाने के प्रयत्नों में

---

१. आचार्य चतुरसेन, दो किनारे, पृ० ४०।
२. वाई० एम० रीस, हूदिर वुमन ? पृ० २७४।

सहमति प्रकट कर चुके थे। ऐसी स्थिति में उपन्यासकारों ने भी नारियों की हीनावस्था पर ध्यान दिया।

सामान्य रूप में उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक, नीति तथा शिक्षा सम्बन्धी एवं ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की परम्परा चल पड़ी थी। इन उपन्यासों का ध्येय सुधार नीति के पुट के साथ-साथ प्रेम और शौर्य के अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करना था। ऐतिहासिक उपन्यासों का ध्येय देश में राष्ट्र-प्रेम और सामाजिक सुधारों का प्रचार करना था। इस काल के उपन्यासों में देश के प्राचीन गौरव और उसके पतन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। इस काल के लेखक समाज-सुधार, धर्म-सुधार, व्यक्तिगत चारित्रिक सुधार, अंग्रेजी प्रभाव से बचाव आदि बातों पर बल देते थे। अंग्रेजी शिक्षितों का फैशन के पीछे पड़कर अपनी प्राचीन परिपाटी को छोड़ दुर्दशा भोगना भी इनमें चित्रित है। कुछ लोग तो उस फैशन के गर्त से निकल आते हैं, अन्यथा अधिकतर लोग उसमें डूब जाते हैं। उस समय उनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय होती है। पश्चिमी शिक्षा से देश के स्त्री पुरुषों में विलासिता, बाह्याडम्बर आदि बातें बढ़ती जाती थी। दूसरी ओर, शिक्षा के अभाव के कारण जनता में अनेक कुरीतियां और कुप्रथाएं प्रचलित हो गई थी। मद्यपान, वेश्यागमन, जुआ खेलने आदि की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। उपन्यास-लेखक इन बातों को रोकना चाहते थे। वे मध्यम मार्ग पसन्द करते थे। पश्चिमी शिक्षा ग्रहण करने पर भी जनता को सभ्यता और संस्कृति से विमुख न होने देना इनका लक्ष्य था। इस सम्बन्ध में उन्होंने पौराणिक-ऐतिहासिक कथाओं, सामाजिक और गार्हस्थ्य जीवन से सामग्री ली और कल्पना एवं किंवदन्तियों का आश्रय ग्रहण किया।[1]

साथ ही उन्होंने नारी की विभिन्न कठिनाइयों को प्रमुखता देते हुए ऐसी नायिकाओं को प्रस्तुत करने की चेष्टा की, जिसमें वे नारियों की समस्याओं को यथार्थ रूप से उपन्यास के माध्यम से समाज के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें तथा उसके बन्द नेत्र खोलकर उसे परिवर्तन की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दे सकें। उपन्यासकारों के इस प्रकार के नारी चित्रण का प्रमुख उद्देश्य नारी की हीनावस्था की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित कर नारियों के विकास के लिए एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार करना था जिससे उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हो सके।[2]

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में उक्त उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक हो पाई है, इस पर विचार करने से पूर्व उनके पूर्ववर्ती एवं समकालीन प्रमुख

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय—आधुनिक हिंदी साहित्य, पृ० १६४।
२. डॉ० सुरेश सिन्हा : हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना, पृ० ६८।

उपन्यासकारों के उपन्यासों में नारी-चित्रण के स्वरूप पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

(क) आचार्य चतुरसेन से पूर्व के उपन्यासों में नारी चित्रण

हिन्दी-उपन्यास-साहित्य का उद्भव भारतेन्दु-युग से माना जाता है। इस युग में रचित उपन्यासों के नारी चित्रण में तीन तत्त्व हैं—

(१) फारसी कथा-साहित्य का प्रभाव।

(२) रीतिकालीन शृंगारिक भावना।

(३) तत्कालीन सुधारवादी आन्दोलनों की चर्चा।

फारसी कथा-साहित्य के प्रभाव के परिणाम-स्वरूप कतिपय भारतेन्दुकालीन उपन्यासों में नारियाँ पुरुषों की भाँति ऐयार रूप में चित्रित हुई हैं। वे जाल फरेब, झूठ, चालाकी, सभी का उपयोग करती हैं। देवकीनन्दन खत्री कृत 'चन्द्रकान्ता' की कुन्दन धनपती के वेश में किशोरी को जीवित जलाने को उद्यत है।[1] वस्तुतः तिलस्मी उपन्यासों के रचयिताओं ने नारी के व्यक्तित्व का सतुलित या सम्यक् चित्रण नहीं किया।"[2] उनका उद्देश्य कथा को अधिकाधिक रहस्यमय बनाना-भर रहता था, नारी चित्रण करके उसके अन्तरंग-बहिरंग का विवेचन करना नहीं।

चतुरसेन के पूर्व-रचित उपन्यासों के नारी-चित्रण पर दूसरी छाप रीतिकालीन शृंगारिक-भावना की है। परिणामतः उन उपन्यासों में कई प्रकार की प्रमत्त प्रेमिकाएं चित्रित हैं, जो सभी प्रकार के व्यवधानों का परिहार कर यौवन-सुलभ हर कामना पूर्ण करने में कोई कोर कसर नहीं छोड़ती। उनकी शृंगार छटा रीतिकालीन कवियों की नायिकाओं से किसी प्रकार न्यून नहीं है।

इन उपन्यासों के नारी चित्रण में तीसरी छाप है तत्कालीन सुधारवादी आन्दोलनों की। यद्यपि कतिपय तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में भी उनके रचयिताओं ने प्रसंगतः विभिन्न नारी-समस्याओं की चर्चा चलाई है तथापि पूर्णतः सुधारवादी दृष्टिकोण को लेकर अनेक सामाजिक उपन्यासों की पृथक् रूप से भी रचना हुई। स्वयं भारतेन्दु और उनके समकालीन अन्य साहित्यकारों की सामाजिक चेतना अत्यन्त प्रबुद्ध थी। अतः कुछ उपन्यास तो विशेषतः हिन्दुओं की लड़कियों को हिन्दुओं के रीति-नीति के अनुसार लाभ पहुँचाने के

---

१. देवकीनन्दन खत्री, चन्द्रकान्ता सन्तति, चौथा हिस्सा, पृ० ११३।

२. डॉ० बिन्दु अग्रवाल : हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण, पृ० २०।

उद्देश्य से लिखे गए।[1] एक ओर जहाँ ठाकुर जगमोहनसिंह ने अपने 'श्यामा स्वप्न' नामक उपन्यास का समापन इन शब्दों के साथ किया है— इस सागर का मथन कर इसका सार अमृत न तो, स्त्री चरित्र से बचो। बस शंकराचार्य के इसी वाक्य का स्मरण रखो— द्वार किमेकं नरकस्य नारी।[2] तो दूसरी ओर ईश्वरी प्रसाद शर्मा ने 'वामाशिक्षक' उपन्यास का उपसंहार इन शब्दों के साथ किया है—'जो तुम भी गंगा और किशोरी की सी चालचलन सीखोगी तो वैसे ही तुम्हारा जीवन भी सुख में बीतेगा दुःख तुम्हारे पास फटकेगा भी नहीं।'[3]

चतुरसेन पूर्व उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी प्रथम लेखक थे जिन्होंने नारी की सामाजिक पराधीनता और तज्जन्य व्यथाओं को उपन्यास का विषय बनाया। उन्होंने अपने दर्जनों उपन्यासों में वेश्या-प्रथा, बाल विवाह, विधवा जीवन आदि की विस्तृत चर्चा की है।[4] इससे उनका नारी विषयक-सुधारवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है। अपने इस दृष्टिकोण की घोषणा भी उन्होंने अपने उपन्यासों में कई प्रकार से की है। एक स्थान पर उन्होंने लिखा है— अपने देश के भाइयों से इस बात के लिए सविनय अनुरोध करता हूँ कि वे सबसे पहले कन्याओं के सुधार करने का प्रयत्न करें क्योंकि यदि सुकन्या समय पाकर सुगृहिणी होगी तो वही एक दिन सुमाता होगी।[5] अन्यत्र वे पुरुष बनाम नारी के अभियोग में नारी के अधिवक्ता के रूप में उपस्थित होकर कहते हैं— दुनिया की सभी औरतें खराब होती हैं। महज गलत और वाहियात है।[6] साथ ही उनका स्पष्ट मत है कि 'यदि स्त्री भली हो तो उसे कोई मारकी पुरुष नहीं बिगाड़ सकता।'[7] उनकी दृष्टि में नारियों की पतितावस्था के वास्तविक अपराधी उनके माता पिता और अभिभावक ही हैं।[8]

इसी युग के एक अन्य सामाजिक उपन्यासकार मेहता लज्जाराम शर्मा ने भी अपने उपन्यासों में नारी-सम्बन्धी सुधारवादी दृष्टिकोण प्रस्तुत करने के साथ परंपरागत मर्यादाओं के संरक्षण का आग्रह किया है। अपने 'आदर्श हिन्दू

---

१ ईश्वरी प्रसाद शर्मा, वामाशिक्षक, भूमिका।

२ ठाकुर जगमोहनसिंह, श्यामास्वप्न, पृ० १७६-७७।

३ ईश्वरी प्रसाद शर्मा, वामाशिक्षक, पृ० २२३-२४।

४ डॉ० गणेशन हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० १९६।

५ किशोरीलाल गोस्वामी माधवी माधव वा मदनमोहिनी पृ० २३४।

६ वही, लखनऊ की कब्र या शाहीमहलसरा, पृ० ८२।

७ वही, माधवी माधव वा मदनमोहिनी, पृ० २०१।

८ वही, माधवी-माधव वा मदनमोहिनी पृ० २१६।

नामक उपन्यास के प्रधान नारी-पात्र प्रियवदा के मुख से पर्दा-प्रथा के समर्थन में उन्होंने कहलाया है—'उनका सुख उन्हें ही मुबारक रहे। हम पर्दे में रहने वालियों को ऐसा सुख नहीं चाहिये। हम घर के धंधे में ही मग्न हैं।'[1] अन्यत्र इसी उपन्यास में पत्नी की मर्यादा का स्पष्टीकरण उन्होंने इन शब्दों में किया है—' ' संसार में परमेश्वर के समान कोई नहीं, किन्तु स्त्री का पति ही परमेश्वर है। जिन स्त्रियों का यही अटल सिद्धांत है, वे व्यभिचारिणी नहीं हो सकती, और व्यभिचार से बढ़कर कोई पाप नहीं है।'[2]

पूर्व-चतुरसेन युग में सुधारवादी आंदोलन से प्रभावित नारी-चित्रण करने वाले उपन्यासकारों में पंडित टीकाराम सदाशिव तिवारी एवं देवीप्रसाद शर्मा के नाम भी उल्लेखनीय हैं। तिवारी-रचित 'पुष्पकुमारी' और 'शीलमणि' उपन्यास आदर्श-नारी-पात्रों का उदात्त रूप प्रस्तुत करते हैं। 'पुष्पकुमारी' की नायिका पुष्पकुमारी के चरित्र की संस्तुति करते हुए वे लिखते हैं—''' और इतना सब सहन करते हुए भी साम्प्रतकाल में जो नारियाँ तुम समान अपना जीवन हिन्दू-धर्म एवं समाज की रक्षा करते हुए व्यतीत कर रही हैं, वे धन्य-धन्य हैं।'[3] देवीप्रसाद शर्मा-कृत उपन्यास 'सुन्दर सरोजिनी' में भी सती धर्म की महिमा एवं पतिव्रता-धर्म की गरिमा व्यंजित है।

इस प्रकार आचार्य चतुरसेन से पूर्व के उपन्यासकारों द्वारा नारी के अधिकांशतः दो विपरीत आयामों से युक्त चित्र अंकित हुए हैं। एक प्रकार के चित्र में वह विलासिनी प्रमदा के रूप में उपस्थित है तो दूसरे प्रकार के चित्र में वह आदर्शों के उच्चतम शिखर पर आसीन दिखाई देती है। निश्चय ही नारी के ये दोनों रूप जीवन के यथार्थ और व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य की झलक प्रस्तुत नहीं करते। सामयिक नारी-समस्याओं की ध्वनि इनमें प्रतिध्वनित है, किन्तु उनका वर्णन-विवेचन अथवा समाधान-निरूपण वास्तविक धरातल पर नहीं हुआ है।

चतुरसेन-कालीन उपन्यासों में नारी-चित्रण

आचार्य चतुरसेन ने सन् १९१६-१७ में लेखनी संभाली और उसे अन्त

---

१. मेहता लज्जाराम शर्मा, आदर्श हिन्दू, पृ० ६०७।

२. वही, वही, पृ० ३१।

३. टीकाराम सदाशिव तिवारी, पुष्पकुमारी, पृ० १६०।

(१९६०) तक विश्राम नहीं लेने दिया।[1] लगभग अर्द्ध शताब्दी की इस अवधि में उपन्यास क्षेत्र में अनेक नए प्रतिमान स्थापित हुए, जिनका समीक्षात्मक विवरण समय-समय पर विभिन्न आलोचना-ग्रन्थों और शोध प्रबंधों में प्रस्तुत हो चुका है और हो रहा है। यहाँ प्रसंग से उसका पुनराख्यान अपेक्षित नहीं है। यहाँ उस युग के उपन्यासों में नारी चित्रण की कतिपय प्रमुख रेखाएं प्रकाश्य हैं, जो किसी-न किसी रूप में आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में भी प्राप्त हैं। वे रेखाएँ चतुष्कोणात्मक हैं। इनमें एक कोण वह है जो विभिन्न सामाजिक-राजनैतिक समस्याओं और उनके समाधानों को अपनी सीमाओं में समेटे हुए है। इस कोण के निर्माता हैं 'मुंशी प्रेमचन्द'। दूसरे कोण की रेखाएँ सुदूर अतीत तक जाकर विविध ऐतिहासिक सदर्भों की खोज में प्रवृत्त दिखाई देती हैं, जिनके अग्रणी रेखाकार वृन्दावनलाल वर्मा हैं। तीसरा कोण विभिन्न मनोवैज्ञानिक बिन्दुओं का अकन करता हुआ एक अलग वृत्त की रचना करता है जिसके रचयिताओं के अन्तर्गत आचार्य चतुरसेन के समकालीन उपन्यासकारों में जैनेन्द्र शीर्षस्थ हैं। विवेच्य अवधि में रचित उपन्यासों की चतुर्थ उल्लेखनीय कोटि वह है, जिसे 'उग्र यथार्थवादी' अथवा 'नग्न वास्तविकतावादी' प्रवृत्ति का पर्याय कहा जाता है और जिसके प्रतिनिधि लेखक पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' माने जाते हैं।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में नारी चित्रण की पृष्ठभूमि की रूपरेखा उक्त चारों प्रमुख कोटियों के प्रतिनिधि उपन्यासकारों—प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र और उग्र के उपन्यासों में प्राप्त नारी-विषयक दृष्टि-कोण के आधार पर सहज ही निर्मित की जा सकती है। अपने समय और विशिष्ट कथा क्षेत्र में मूर्धन्य इन चारों उपन्यासकारों के आचार्य चतुरसेन न केवल लगभग समवयस्क थे, अपितु इनके साहित्यिक व्यक्तित्व के भी एकाकार-समुच्चय थे। इनके उपन्यासों में प्रेमचन्द की सी पैनी सामाजिक और मानवतावादी दृष्टि, वृन्दावनलाल वर्मा सरीखा अतीत-प्रेम, जैनेन्द्र तुल्य मनोविश्लेषणात्मक प्रवृत्ति एवं उग्र-सम 'उग्र यथार्थवादिता' का समन्वित समाहार है।

एक बार दिल्ली के एक प्रतिष्ठित प्रकाशक द्वारा एक अपेक्षाकृत नये उपन्यासकार को दी गई पार्टी के अवसर पर, अपने जैसे प्रौढ उपन्यासकार के प्रति दिखाई गई उपेक्षा पर अन्तर्मंथन करते हुए आचार्य जी ने अपने साथ 'उग्र' और जैनेन्द्र' की तुलना अनायास ही कर दी है—' मगर उस मजलिस में मैं

---

१ क्षेमचन्द्र सुमन आचार्य चतुरसेन शास्त्री, जीवन और व्यक्तित्व के (साप्ताहिक हिन्दुस्तान), चतुरसेन श्रद्धांजलि विशेषांक, मार्च ६० में सकलित, पृ० ६।

तो था ही; उग्र थे, जैनेन्द्र थे और भी अनेक थे ''। उग्र भी शायद गुनगुने हो रहे थे ''मैं सोच ही रहा था कि'''अब मेरी बारी आएगी। परन्तु कहाँ? उग्र एकदम उठ खड़े हुए। अपना परिचय दिया, जो कहना-सुनना था, वह गए। परन्तु मेरी बारी तो फिर भी नहीं आई। बारी आई जैनेन्द्र की। घत्तेरे की। अब मुझे स्वीकार करना पड़ा कि जैनेन्द्र जी मुझसे भी बड़े साहित्यकार हैं—यद्यपि उम्र मे वे भी छोटे हैं। जैनेन्द्र जलेबी-ब्राण्ड साहित्यकार हैं। उनके साहित्य मे जलेबी-जैसा कुछ चिपचिप चिपकता, कुछ गोल-गोल उलझा, कुछ सुलझा मीठा-मीठा साहित्य-रस रहता है।' फिर मेरा ध्यान सामने बैठे उग्र पर पड़ा। निस्सन्देह उग्र डंडा-ब्राण्ड साहित्यकार हैं—सीधा खोपड़ी पर खींच मारते हैं। फिर वह बिलबिलाया करे, अस्पताल जाए या चूना-गुड़ का लेप करे। और मैं हूँ लाठी-ब्राण्ड साहित्यकार—चोट करूँगा तो ठौर करके धर देना ही मेरा लक्ष्य है, साँस आने का काम नहीं ।'[1] इस कथन से स्पष्ट है कि किस प्रकार आचार्य जी स्वयं को जैनेन्द्र और उग्र के साथ समजित किया करते थे। एक अन्य आत्मकथ्य में भी उन्होंने अपनी उपन्यास रचना-प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा और जैनेन्द्र का ही उल्लेख किया है—'प्रेमचन्द के उपन्यासों मे मेरा मन नहीं लगा ''। हाँ, वृन्दावनलाल वर्मा का 'गढ़कुण्डार' रुचि से पढ़ा। ' जैनेन्द्र की 'परख' मैंने नहीं पढ़ी'' पर 'परख' के पात्रों से मेरा परिचय है और जब जैनेन्द्र उनसे खेल रहे थे, वे दिन मुझे याद हैं। कट्टो ('परख' की प्रमुख नारी-पात्र) को तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ।''[2] वृन्दावनलाल वर्मा के साथ आचार्य जी की साहित्यिक आत्मीयता का परिचय वर्मा जी के अपने एक लेख से भी मिलता है, जिसमे उन्होंने लिखा है कि ४६ वर्ष पूर्व आगरा में कानून पढ़ते समय 'प्रताप' मे छपे लेख से प्रभावित होकर उन्होंने उसके लेखक का नाम डायरी में टाँप लिया—'चतुरसेन'। सन् १९३६ मे अनायास दोनों की भेंट झाँसी के एक बाजार मे हो गई। चतुरसेन जी के मुख से 'गढ़कुण्डार' की प्रशंसा सुनकर उन्होंने कहा—'मैं तो एक छोटा-सा ही सेवक हूँ मातृभाषा का।' पर तभी आचार्य जी ने बड़ी बेतकल्लुफी से कहा—'बड़े भैया! मुझे बनावट बिलकुल पसन्द नहीं। उपन्यास क्षेत्र में पहले आप

---

१. आचार्य चतुरसेन, धर्मपुत्र, भूमिका, पृ० ६-७।

२. आचार्य चतुरसेन 'मैं उपन्यास कैसे लिखता हूँ' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान—६ मार्च १९६० के चतुरसेन-श्रद्धांजलि विशेषांक मे प्रकाशित लेख), पृ० १७।

और फिर मैं—बस।"[1] स्पष्ट है कि आचार्य जी ऐतिहासिक उपन्यासो के क्षेत्र मे वृन्दावनलाल वर्मा और अपने अतिरिक्त अन्य किसी का नाम उल्लेखनीय नही मानते थे।

इस प्रकार आचार्य जी ने विभिन्न सदर्भों मे जिन प्रमुख साहित्यकारो का नामोल्लेख किया है—उनके उपन्यासो मे नारी-चित्रण के स्वरूप की एक झलक देख लेना असगत न होगा।

१. प्रेमचन्द के उपन्यासों मे नारी-चित्रण

प्रेमचन्द समाज की वास्तविक स्थिति के प्रथम सूक्ष्मदर्शी उपन्यासकार थे। उन्होने समाज के सभी वर्गों और उनसे सम्बन्धित सदर्भों का व्यापक और यथार्थ चित्रण अपने उपन्यासो मे किया है। स्वभावत नारी-चित्रण को उनके उपन्यासो मे प्रमुखता प्राप्त है। उनके उपन्यासो के नारी-पात्र समाज, देश और काल के हर आयाम को स्पर्श करने वाले हैं। गाँवो की अपढ, अक्खड, अधमर्यादा-वादिनी और धर्म तथा समाज के स्वयम्भू कर्णधारो के शोषण-चक्र का शिकार बनी रहने वाली नारियाँ तो उनके औपन्यासिक कथा-सूत्रो की विधायिनी हैं ही, शहर की सुशिक्षिता, आधुनिकाओ के भी अन्तरग तथा बहिरग स्वरूप का चित्रण उनके उपन्यासो मे बडी सजीवता से हुआ है। वे घर-परिवार की सीमाओं मे आबद्ध रहने पर भी धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रो मे पर्याप्त सक्रियता का परिचय देती हैं। उनके पुरुष-पात्रो और नारी-पात्रो के चित्रण मे एक अन्तर बहुत स्पष्ट है। पुरुष पात्रो के चित्रण मे उन्होने जिस यथार्थ दृष्टिकोण का आद्योपान्त निर्वाह किया है, नारी-चित्रण मे उसका सन्तुलन बना नहीं रह सका है। 'भावुकता से यथासाध्य बचकर यथार्थवादी दृष्टिकोण से समाज का निरीक्षण करने वाले प्रथम लेखक होने पर भी जहाँ तक नारी से उनका सम्बन्ध है, वे भावुकता से पूर्णतया मुक्त नही हो पाए।"[2] इसीलिए उनके उपन्यासो के प्राय सभी नारी-पात्र आदर्श हैं। वेश्याओं, विधवाओं, अनमेल-विवाह के दुष्परिणाम से पीडित अबलाओं, विलासी और भ्रमरवृत्ति-धारी पुरुषो के दुराचरण से सतप्त गृहिणियो और समाज के सम्भ्रात सदस्यो द्वारा मनसा-वाचा-कर्मणा क्रीत-शोषित निम्नवर्ग की स्त्रियो के साथ-साथ

---

१ वृन्दावनलाल वर्मा, बडे भैया : छोटे भैया (साप्ताहिक हिन्दुस्तान के ६ मार्च १९६० के चतुरसेन श्रद्धाजलि विशेषाक मे प्रकाशित लेख), पृ० २९।

२ डॉ० गणेशन, हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० १९६-९७।

उच्च शिक्षा प्राप्त नागरिकाओ, सामाजिक एव राजनैतिक क्षेत्र मे जागरूकता का परिचय देने वाली प्रगतिशील आधुनिकाओ तथा विभिन्न व्यावसायिक क्षेत्रो मे कार्य करने वाली कर्मठ महिलाओ—सभी को, प्रेमचन्द ने पुरुष की तुलना में किसी-न-किसी दृष्टि से ऊचा ठहराया है। उनके उपन्यासो मे चित्रित 'सभी नारिया सती-साध्वी अबलाए हैं। जो भारतीय स्त्री के आभूषणो स विभूषित हैं।"[1]

एक समीक्षक की दृष्टि मे 'प्रेमचन्द युगीन लगभग सभी उपन्यासो मे गाँव की नारी के आगे शहर की नारी और शहर की नारी के आगे आधुनिक नारी सदैव पराजित हुई है।' इसका अभिप्राय यही है कि इन लेखको ने पुरातनवादिनी नारियो को अधिकाधिक प्रशसनीय रूप मे चित्रित करने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द का दृष्टिकोण भी यही प्रतीत होता है। उन्होंने अपने एक पत्र मे स्वय कहा है—'मेरा, नारी का आदर्श है, एक ही स्थान पर त्याग, सेवा और पवित्रता का केन्द्रित होना। त्याग बिना फल की आशा के हो, सेवा सदैव बिना असन्तोष प्रकट किए हुए हो और पवित्रता सीजर की पत्नी की भाँति ऐसी हो जिसके लिए पछताने की आवश्यकता न पडे।"[2] अपनी इस मान्यता को उन्होंने अपने विभिन्न उपन्यासो मे व्यावहारिक रूप देने का भी प्रयास किया है। इसके लिए क्रमशः उनके उपन्यासो मे नारी चित्रण की प्रक्रिया पर दृष्टि-निक्षेप कर लेना उपयुक्त होगा।

प्रेमचन्द का नारी-दृष्टि सबधी उपन्यास 'प्रतिज्ञा' ऐसा है, जिसमे विधवा-जीवन का मर्म चित्र अकित है। उपन्यास के अन्त मे विधवाश्रम की स्थापना इस बात की द्योतक है कि प्रेमचन्द के प्रारम्भिक उपन्यासो मे, पूर्ववर्ती उपन्यासकारो जैसा सुधारवादी दृष्टिकोण प्रमुख रहा है। 'सेवासदन' मे भी वेश्या नारी के उद्धार हेतु सेवा सदन की स्थापना उनके इसी दृष्टिकोण की ओर इगित करती है। किन्तु विभिन्न नारी-समस्याओ के सबध मे उनके द्वारा सकेतित ये सुधारात्मक समाधान मात्र उपदेशात्मक नही हैं। इन तक पहुँचने से पूर्व प्रेमचन्द ने समस्याओ के समग्र स्वरूप का चित्रण कर दिया है। यदि वे इस प्रकार के समाधान प्रस्तुत न भी करते तो भी उनके चित्रण-मात्र से स्त्री-जाति के प्रति समाज का सहानुभूतिपूर्वक ध्यान आकृष्ट करने का, उनका उद्देश्य पूर्ण हो जाता। 'सेवासदन' मे वेश्या-नारी के प्रति अपनी सहृदयता व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—'हमे उनसे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं है। यह उनके साथ

---

१. डॉ० गणेशन, हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० ११८।
२. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : प्रेमचन्द : एक विवेचन, पृ० १७७।

घोर अन्याय होगा। यह हमारी ही कुवासनाएँ, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथाएँ हैं, जिन्होंने वेश्या का रूप धारण किया। यह दालमण्डी हमारे ही जीवन का कलुषित प्रतिबिम्ब, हमारे ही पैशाचिक अधर्म का साक्षात्कार स्वरूप है। हम किस मुँह से उन्हें घृणा करें।'[1] इस प्रकार पुरुषों को वेश्या-समस्या के दोषी ठहराकर उनकी प्रताड़ना करना प्रेमचन्द की नारी-विषयक-भावुकतामयी सहानुभूति का परिचायक है। आगे चलकर इसी उपन्यास में उन्होंने स्पष्ट किया है—'आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि उनमें कितनी धार्मिक श्रद्धा, पाप जीवन से कितनी घृणा, अपने जीवनोद्धार की कितनी अभिलाषा है उन्हें केवल एक सहारे की आवश्यकता है।'[2]

'निर्मला' में नारी की अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति अनमेल विवाह के माध्यम से हुई है। एक नवयौवना का अधेड़ व्यक्ति से पाणिग्रहण और जीवनभर स्वय को उसके अनुकूल बनाए रखने के लिए घोर मानसिक द्वन्द्व जिस सूक्ष्मता और सजीवता से प्रेमचन्द की लेखनी द्वारा हुआ है, उतना कथित मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों की लेखनी भी नहीं कर पाई है। अपने पति की पूर्व पत्नी के ज्येष्ठ पुत्र और लगभग अपने समवयस्क मन्साराम के प्रति निर्मला के हृदय में सहज रागात्मक आकर्षण है। 'मन्साराम के हँसने बोलने में उसकी विलासिनी कल्पना उत्तेजित भी होती थी और तृप्त भी। उससे बातें करते हुए उसे एक अपार सुख का अनुभव होता था, जिसे वह शब्दों में प्रकट न कर सकती थी।' किन्तु आदर्शवादी प्रेमचन्द ने उसे कहीं मर्यादा से च्युत नहीं होने दिया—'कुवासना की उसके मन में छाया भी न थी। वह स्वप्न में भी मन्साराम से कलुषित प्रेम करने की बात न सोच सकती थी।'[3] सचमुच 'अपनी परम्परा-संचित संस्कृति में पलने वाली एक भारतीय नारी और कुछ हो ही नहीं सकती। ...सृष्टि की सबसे बड़ी अदम्य शक्ति यौन चेतना पर भारतीय नारी ने जो संयम रखना सीखा है, उसी का रूप यहाँ प्रस्तुत है।'[4] निर्मला 'अपने यौन और अहं में जकड़ी हुई—एक मध्यवर्गीय युवती है—जिसके लिए पति ही परमेश्वर है।' वह 'कर्त्तव्य की वेदी पर अपना सारा जीवन और अपनी सारी कामनाएँ होम कर देती है। उसका हृदय रोता रहता है पर मुख पर हँसी का रंग भरना

---

१. प्रेमचन्द, सेवासदन, पृ० २१५।

२ वही, वही, पृ० ३११।

३. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ० ६०।

४ डॉ० गणेशन—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० १६७।

५. प्रेमचन्द, निर्मला, पृ० ७०।

पड़ता है। जिसका मुँह देखने को जी नहीं चाहता, उसके सामने हँस-हँस कर बातें करनी पड़ती हैं। जिस देह का स्पर्श उसे सर्प के शीतल स्पर्श के समान लगता है उससे आलिंगित होकर उस जितनी घृणा, जितनी मर्मवेदना होती है, उसे कौन जान सकता है। उस समय उसकी यही इच्छा होती है कि धरती फट जाए और वह उसमे समा जाए।"[1] मन्साराम की मानसिक वेदना, पति की शंकालु दृष्टि, ननद की उपेक्षा और अपने मूक-रुदन के कारण निर्मला विक्षिप्त-सी हो जाती है। अन्तत वह भीतर ही भीतर तिल तिल जल घुट कर मरती है। निर्दय समाज की जिस असगत अव्यवस्था के कारण उसकी यह दशा हुई, उसके प्रति निर्मला की अन्तरात्मा का आक्रोश अन्तिम समय इन शब्दो म फूट पडता है—बच्ची को आपकी गोद मे छोड़े जाती हूँ। अगर जीती-जागती बच ता किसी अच्छे कुल मे विवाह कर दीजिएगा।" चाहे क्वाँरी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा, इतनी ही आपस विनय है।"[2] अनमेल विवाह स अभिशप्त नारी की यह करुण गुहार प्रेमचन्द ही समाज के कानो तक पहुँचा सकते थे।

'प्रेमाश्रम' म भी प्रेमचन्द का पूर्वकथित आदर्शवादी सुधारात्मक दृष्टिकोण एक अन्य रूप मे व्यक्त हुआ है। वहाँ श्रद्धा एक सर्वगुण-सम्पन्न नारी है। परम्परागत भारतीय आदर्शों के प्रति उसकी अनन्य निष्ठा है। किन्तु विदेश स लौटन वाले अपन पति प्रेमशंकर के साथ उसकी रुचियों और प्रवृत्तियों का सामजस्य कैसे हो—यही समस्या है। ऐसी विषम स्थिति मे नारी का कर्तव्य-पथ क्या होना चाहिए, श्रद्धा के चित्रण के माध्यम स—इसकी समीक्षा करना ही प्रेमचन्द का उद्देश्य है। जो श्रद्धा धर्म की अभिज्ञा अथवा लोक निन्दा सहन न कर सकने के कारण प्राणप्रिय पति से भी हाथ धोना सहन कर लेती है, वह बाद मे प्रेमशंकर की सुरीति, त्याग एव सेवाकार्य को ही उसका सच्चा प्रायश्चित्त मानकर आत्मतुष्ट हो जाती है।

दाम्पत्य-विषमता की यह समस्या 'प्रेमाश्रम' मे विद्यावती के चित्रण द्वारा व्यक्त हुई है, जिसका पति उसकी विधवा बहिन गायत्री के प्रति आसक्त होकर उसे अपनी कलुषित वासना का शिकार बनाता है। विद्यावती पहले तो अपने पति के हर अनाचार को सहकर भी उसकी सेवा मे निरत रहती है परन्तु अन्त मे अत्यन्त असह्य स्थिति उत्पन्न होने पर आत्महत्या कर लेती है। पुरुष प्रवचिता नारी का यह करुण प्राप्तव्य दिखलाकर प्रेमचन्द ने वस्तुत उसे इस असहाय

---

१. कोमल कोठारी—विजयदान (सपादक)—प्रेमचन्द के पात्र, पृ० ६५।
२ प्रेमचन्द—निर्मला, पृ० ७४।

और विवश अवस्था में ग्रस्त रखने वाले समाज को ही झकझोरना चाहा है। गायत्री के चरित्र के माध्यम से उन्होंने विधवा-नारी की मानसिक विकृतियों का भी मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। सामाजिक मर्यादाओं और नैतिक संयम के आवरण में दबी उसकी अतृप्त कामनाएँ, उसकी बहिन विद्यावती के पति ज्ञानशंकर के जरा-सा उकसाने से ही मचल उठती हैं। वह लोकनिन्दा और आत्मग्लानि से बचने के लिए अपनी वासना-तृप्ति की सम्पूर्ण प्रक्रिया पर कृष्ण लीला अथवा रासलीला के रूप में भगवद्भक्ति का आवरण डालकर सन्तुष्ट हो जाती है। एक विधवा तरुणी द्वारा इस प्रकार का आचरण दिखलाकर प्रेमचन्द जी ने एक ओर यह बताना चाहा है कि समाज को इसके लिए वैध मार्ग अर्थात् विधवा के पुनर्विवाह के सम्बन्ध में गम्भीरता से सोचना चाहिए, दूसरी ओर उन्होंने कामी पुरुष की अनीति का भी भण्डाफोड़ किया है।

'कर्मभूमि' तथा 'रंगभूमि' में आकर प्रेमचन्द के नारी चित्रण के आयाम कुछ अधिक व्यापक हो गए हैं। इनसे पहले के उपन्यासों में नारी-चित्रण अधिकांशतः पारिवारिक परिधि के भीतर हुआ है। इन दोनों उपन्यासों में नारी गाँवों से निकलकर शहर में, और पारिवारिक सीमाओं से निकल कर बृहत् सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्र में जा पहुँची है। 'कर्मभूमि' की सुखदा के माध्यम से प्रेमचन्द जी ने यह चित्रित करना चाहा है कि भारतीय नारियाँ किस सीमा तक प्रगतिशील एवं सजग हो चुकी हैं। सुखदा सीमित पारिवारिक परिधि को त्याग कर राजनीति में सक्रिय भाग लेती है। प्रारम्भ की उसकी विलासिनी प्रवृत्ति धीरे-धीरे इतनी कर्मठता और विवेकशीलता में बदल जाती है कि वह निरन्तर पर्दे में रहने वाली, पति की मुस्लिम प्रेमिका सकीना के साथ-साथ अपने धन-लोलुप ससुर लाला समरकान्त को भी देशसेवा के पथ पर अग्रसर करने में समर्थ होती है। निरीह, भोली और सहज अनुराग की सौम्य प्रतिमा सकीना का अमरकान्त के प्रति प्रेम दिखलाकर प्रेमचन्द ने अन्तर्जातीय सौहार्द का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया है, किन्तु वे इस अन्तर्जातीय प्रेम को विवाह तक नहीं ला पाए और अन्त में अमरकान्त के एक मुस्लिम मित्र से सकीना का परिचय कराकर वे हिन्दू-समाज के धर्म सकट से मुक्त हो गए हैं। 'रंगभूमि' की ईसाई तरुणी सोफिया और विनय के प्रेम को भी उन्होंने उच्चकोटि का सात्त्विक प्रेम ही बना रहने दिया है, विवाह-बन्धन से उसे जातीय विवाद का विषय नहीं बनने दिया। 'कर्मभूमि' की नैना के माध्यम से दाम्पत्य विषमता का प्रश्न नए रूप में प्रस्तुत किया गया है तो मुन्नी के माध्यम से नारी के अदम्य साहस और आत्मसम्मान के भाव का चित्रण हुआ है। गोरे सिपाहियों द्वारा पतित की गई यह ग्राम्य ललना, समाज से किसी प्रकार के संरक्षण और औदार्य

की आशा न करके स्वयं एक गोरे की हत्या कर जेलयात्रा स्वीकार करती है और बाद में अवसर आने पर देश-सेवा-कार्य में भाग लेती है। नारी के इस आत्मसम्मान की ही अभिव्यक्ति एक अन्य रूप में 'रंगभूमि' के अन्तर्गत इन्दु के माध्यम से हुई है जो अपने अंग्रेजियत-परस्त पति महेन्द्रकुमार का हृदय परिवर्तित करने का प्रयत्न करती है किन्तु असफल रहने पर, उसे छोड़कर मातृगृह में लौट आती है। उसे पुरुष की दासता पसन्द नहीं—'आपको अपनी कीर्ति और सम्मान मुबारक रहे; मेरा भी ईश्वर मालिक है। कहाँ तक लौंडी बनूँ, अब हद हो गई। यह लीजिए अपना घर, खूब टाँगें फैलाकर सोइए।''[1] इसी उपन्यास में इन्दु की माता रानी जाह्नवी और उसके पुत्र विनय की प्रेमिका सोफिया भी नारी के उदात्त चरित्र का चित्र प्रस्तुत करती हैं। वस्तुतः इन तीनों चरित्रों में शक्ति का तत्त्व प्रधान है। सोफिया आदर्शवादिनी है। उसके लिए जीवन का चरमोत्कर्ष सेवा, सहानुभूति और देश-प्रेम है। वह जाति से ईसाई किन्तु संस्कारों और भावनाओं से एक आदर्श आर्य-बाला है। रानी जाह्नवी आदर्श क्षत्राणी है, देशानुरागिनी है।

'गबन' का प्रधान प्रतिपाद्य नारियों का आभूषण प्रेम है। उपन्यास की नायिका जालपा का आभूषण-प्रेम एक अच्छे-भले परिवार को किस प्रकार विपत्तियों के जाल में ग्रस्त कर देता है—इसका चित्रण प्रेमचन्द ने घटनाक्रम के माध्यम से किया है। उपन्यास के उत्तरार्द्ध में यही आभूषण-प्रेमिका जालपा एक आदर्श भारतीय ललना के रूप में उदात्त चरित्र का परिचय देती है। पति को झूठी गवाही के कुचक्र में मुक्त करने, निरपराध देश-सेवक को सरकार द्वारा (और अपने पति की झूठी गवाही के कारण) फाँसी का दण्ड मिलने पर उसके परिवार की अनन्य सेवा तथा पति की सहजानुरागिणी वेश्या जोहरा को उदारतापूर्वक स्वपरिवार की सदस्या स्वीकार करने में वह महत्ता का परिचय देती है।

'ग़बन' की रतन नारी-जीवन की अनेक विभीषिकाओं को जागृत करने का माध्यम सिद्ध हुई है। इनमें अनमेल-विवाह, वैधव्य-अभिशाप और संयुक्त-परिवार-प्रथा प्रमुख हैं। उसके पति वकील इन्दुभूषण की आयु उसके पिता तुल्य है, जिससे उसके पत्नी-प्रेम के स्थान पर पुत्री-स्नेह की आकांक्षा ही थोड़ी-बहुत तृप्त हो पाती है। पति के जर्जर, रोगग्रस्त शरीर के काल कवलित हो जाने पर वह युवा विधवा दर-दर की ठोकरें खाने पर विवश हो जाती है। उसके पति का भतीजा उसकी समूची सम्पत्ति हथियाकर उसे दाने-दाने का

---

१. प्रेमचन्द रंगभूमि, पृ० ३६८।

मुहताज बना देता है। 'कोहरा' के माध्यम से लेखक ने वेश्या-समस्या का चित्रण किया है किन्तु 'गबन' में इस समस्या के पुराने आदर्शवादी समाधान को नहीं दुहराया गया। सम्भवत प्रेमचन्द अब तक समाज की उस कट्टर रूढ़िवादिता की कठोरता से भली-भाँति परिचित हो चुके थे, जिससे टकराकर सभी सुधारवादी आदर्श व्यर्थ सिद्ध हो चुके थे। इसी कारण वे 'गबन' में अपनी ओर से नारी-जीवन की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध में कोई भी टीका-टिप्पणी किए बिना, केवल प्रमुख नारी-पात्रों के मुख से ही उनकी अन्तर्वेदना को व्यक्त कराकर रह गए। नारी के आत्माभिमान और स्वरक्षा में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता उन्होंने जालपा को कहे गए रतन के इन शब्दों द्वारा प्रदर्शित की है—'कोई जरा सी शरारत करे तो ठोकर मारना। बस, कुछ पूछना मत। ठोकर जमाकर, तब बात करना। (कमर से छुरी निकालकर) इसे अपने पास रख लो। मैं जब कभी बाहर निकलती हूँ तो इसे अपने पास रख लेती हूँ। इससे दिल मजबूत रहता है।'[1] किन्तु प्रेमचन्द ने इसी उपन्यास में यह भी दिखा दिया है कि नारी के लिए परायों से प्राण रक्षा कर लेना सुगम है पर अपनों की स्वार्थान्धता से जीवन-रक्षा कर पाना नितान्त कठिन है। इसलिए रतन मणिभूषण के हाथों अत्यन्त असहाय कर दिए जाने पर कह उठती है—'अगर मेरी जबान में इतनी ताक़त होती कि सारे देश में उसकी आवाज पहुँचती तो मैं सब स्त्रियों से कहती—'बहनो! सम्मिलित परिवार में विवाह न करना ··परिवार तुम्हारे लिए फूलों की सेज नहीं, काँटों की शय्या है।'[2] नारी-स्वाधीनता का भाव भी प्रेमचन्द ने रतन तथा जालपा के माध्यम से प्रकट किया है। रतन पति के स्वार्थी भतीजे की कृपा ठुकराते हुए कहती है—'संसार में हजारों विधवाएँ हैं जो मेहनत-मजदूरी करके अपना निर्वाह कर रही हैं। मैं भी उसी तरह मेहनत-मजदूरी करूँगी। जो अपना पेट भी न पाल सके, उसे जीते रहने का, दूसरों का बोझ बनने का कोई हक नहीं।'[3] दूसरी ओर जालपा रमानाथ द्वारा पुलिस द्वारा अनुचित रूप से प्राप्त धन के आधार पर, सब्ज बाग दिखाए जाने पर, उसे प्रताड़ित करते हुए कहती है—'तुम्हारा धन और वैभव तुम्हें मुबारक हो, जालपा उसे पैरों से ठुकराती है। जिसने धन और पद के लिए अपनी आत्मा बेच दी, उसे मैं मनुष्य नहीं समझती।'···जालपा अपने पालन और रक्षा के

---

१ प्रेमचन्द गबन, पृ० २३१।

२ वही, वही, पृ० २६६।

३ वही, वही, पृ० २६५।

लिए तुम्हारी मुहताज नहीं।"[1] पुरुषों के विश्वासघात के कारण गर्हित वेश्या-वृत्ति स्वीकार करने को विवश अबलाओं की मनोव्यथा ज़ोहरा के इन शब्दों में व्यक्त हुई है—'हम में जितनी बेचारियाँ मर्दों की बेवफाई से निराश होकर अपना चैन-आराम खो बैठती हैं, उनका पता अगर दुनिया को चले तो आँखें खुल जाएँ।'[2]

'गोदान' प्रेमचन्द का अन्तिम पूर्ण उपन्यास है। उनके अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इनमें नारी-चित्रण पर्याप्त विशदता और गहनता लिए हुए है। धनिया, झुनिया, सिलिया आदि ग्रामीण और मालती, गोविन्दी आदि शहरी नारियाँ अपने माध्यम से स्त्री जीवन के अनेक बिन्दुओं को उभारती हैं। धनिया अपने परंपरागत परिवेश के कारण अक्खड़, झगड़ालू और कर्कशा होते हुए भी आदर्श पत्नी, आदर्श माँ और आदर्श सास सिद्ध होती है। इसके अतिरिक्त वह इतनी स्वाभिमानिनी, निडर और व्यवहार-कुशल महिला है कि सारे गाँव और आस-पास के लोग उसे 'देवी' मानने लगते हैं। कुछ दिन तक लोग उसके दर्शनों को आते रहे क्योंकि वह अद्भुत साहस दिखाकर मर्दों के भी कान काटने में समर्थ है।[3] वह नारी-अधिकारों की इतनी प्रबल समर्थिका है कि अपने पुत्र गोबर द्वारा बाल विधवा झुनिया को अवैध रूप से घर ले आने पर भी उसे अपने उन्मुक्त हृदय से स्वीकार करती है। उसकी दृष्टि में 'मेहरिया रख लेना पाप नहीं है, रखकर छोड़ देना पाप है।'[4] गोबर जब लोक-लाजवश झुनिया को छोड़कर शहर भाग जाता है तो धनिया कहती है—'कायर कहीं का! जिसकी बाँह पकड़ी उसका निर्वाह करना चाहिए कि मुँह में कालिख लगाकर भाग जाना चाहिए।'[5] वह अन्नपूर्णा देवी की भाँति सारे परिवार पर वरद छाया किए हुए है। उसका पति होरी जब दारोगा को रिश्वत रूप में घर-उधार की सारी पूँजी देने लगता है तो झपट कर कहती है—'ये रुपये कहाँ लें जा रहा है—बता।... घर के परानी रात दिन मरें और दाने-दाने को तरसें, लत्ता भी पहनने को मयस्सर न हो और अंजुली भर रुपये लेकर चला है इज्जत बचाने।'[6]

'गोदान' की मालती उन सुशिक्षिता आधुनिकाओं की प्रतिनिधि है, जो

---

१. प्रेमचन्द : गबन, पृ० २७१।
२. वही, वही, पृ० २८६।
३. वही, गोदान, पृ० १२२-१२३।
४. वही, वही, पृ० १६३।
५. वही, वही, पृ० १५२।
६ वही, वही, पृ० १४२।

ज्ञान और विवेक, स्त्री-अधिकारों तथा स्वाधीनता का सही उपयोग जानती हैं। मिस्टर खन्ना की पत्नी पति के अनुचिताचरण से व्यथित, दाम्पत्य विषमता का शिकार बनी हुई एक विवश पत्नी होने पर भी माँ-रूप में बड़ा उदात्त व्यक्तित्व लिए हुए है। वह अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर घर छोड़ कर चली जाती है किन्तु जब मिस्टर मेहता उसे मातृत्व के महान् गौरव की याद दिलाते हुए कहते हैं—'नारी केवल माता है और उसके उपरान्त वह जो कुछ है, सब मातृत्व का उपक्रम-मात्र है। मातृत्व संसार की सबसे बड़ी साधना, सबसे बड़ी तपस्या, सबसे बड़ा त्याग और सबसे महान् विजय है। एक शब्द में मैं उसे 'लय' कहूँगा—जीवन का व्यक्तित्व का और नारीत्व का भी।' तो वह तुरन्त घर लौट आती है। बच्चे घर में से निकल आए और 'अम्माँ-अम्माँ' कहते हुए माता से लिपट गए। गोविन्दी के मुख पर मातृत्व की उज्ज्वल, गौरवमयी ज्योति चमक उठी।[1] निस्सन्देह प्रेमचन्द नारी के इसी रूप के उपासक हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों के समीक्षकों ने 'गोदान' के एक प्रमुख पात्र मेहता को प्रेमचन्द के नारी विषयक विचारों का प्रवक्ता स्वीकार किया है। मेहता का यह कथन स्वयं इसका प्रमाण माना जा सकता है—'देवियो, मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो कहते हैं, स्त्री और पुरुष में समान शक्तियाँ हैं, समान प्रवृत्तियाँ हैं और उनमें कोई भिन्नता नहीं है। इससे भयंकर असत्य की मैं कल्पना नहीं कर सकता।' आपकी विद्या और आपका अधिकार हिंसा और ध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है।'''इन नकली, अप्राकृतिक विनाशकारी अधिकारों के लिए आप वे अधिकार छोड़ देना चाहती हैं जो आपको प्रकृति ने दिए हैं।[2]

स्पष्ट है कि प्रेमचन्द नारी के लिए प्रगतिशीलता के सभी लक्षणों की यथा-समय और यथावसर आवश्यकता स्वीकार करते हुए भी, उसके भारतीय मर्यादावादी आदर्शों से सर्वथा विच्छिन्न हो जाने के पक्ष में नहीं हैं। संयोगवश, आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में भी इसी मान्यता की छाप अनेकत्र मिल जाती है।

२. वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में नारी-चित्रण

वृन्दावनलाल वर्मा के सामाजिक उपन्यासों में नारी के विविध रूपों का चित्रण प्राप्त है। इनमें से अधिकांश उपन्यासों के नाम, इनमें चित्रित प्रमुख

---

१ प्रेमचन्द : गोदान, पृ० २५१।

२ वही, वही, पृ० २००-२०३।

नारियों ('विराटा की पद्मिनी', 'लक्ष्मीबाई', 'कचनार', 'मृगनयनी', 'अहिल्या-बाई') के नामों पर आधारित होना इसका प्रमाण है। वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों का अनुसन्धान-परक अध्ययन करने वाले एक विद्वान् के कथनानुसार वर्मा जी के उपन्यासों में नारी पात्र प्रबल और प्रधान हैं। वर्मा जी की अपनी आदर्श नारी-पात्रों के विषय में एक धारणा है स्त्री के भौतिक सौन्दर्य और बाह्य आकर्षण तक वे सीमित नहीं रह जाते। उसमें दैवी गुणों को देखना उन्हें भला लगता है। नारी के बाह्य सौंदर्य और लावण्य के परे उसमें निहित आन्तरिक तेज की खोज तथा उसके बाह्य और आन्तरिक गुणों में सामंजस्य स्थापित करना उनका लक्ष्य रहता है। उनकी यह नारी पुरुष से कहीं ऊँची है। उनकी दृष्टि में पुरुष शक्ति है तो नारी उसकी संचालक प्रेरणा। प्रारम्भ के उपन्यासों में नारी-विषयक उनकी धारणा अधिक कल्पनामय और रोमांटिक रही है। वह प्रेयसी के रूप में आती है, प्रेमी के जीवन-लक्ष्य की केन्द्र और उसकी पूजा अर्चना की पावन प्रतिमा बनकर। तारा ('गढकुण्डार') तथा कुमुद (विराटा की पद्मिनी') उपन्यासकार की इसी प्रारम्भिक प्रवृत्ति की देन हैं। अगले उपन्यासों में लेखक की प्रौढ धारणा कल्पनाकाश की उडानों से जी भर कर संघर्षमयी इस कठोर धरती पर उतर आती है। ये नारी पात्र पुरुष पात्रों को प्रेरणा ही नहीं देते, संसार के संघर्षों में स्वयं जूझते हुए अपनी शक्ति का भी परिचय देते हैं। कचनार ('कचनार'), मृगनयनी तथा लाखी ('मृगनयनी'), रूपा ('सोना') और नूरबाई ('टूटे काँटे) ऐसे ही पात्र हैं। लक्ष्मीबाई ('झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई') तथा अहिल्याबाई ('अहिल्याबाई) में ये गुण अपने चरम विकास पर दीख पडते हैं।"[1] 'गढकुण्डार' की तारा दैवी गुणों से युक्त नारी है। दिवाकर से उसका प्रेम उदात्त कोटि का है। इसी उपन्यास में मानवती का अग्निदत्त से प्रेम है, किन्तु अवसर आने पर वह अस्थिर-चित्त नारी अपने प्रेमी अग्निदत्त की दुर्दशा का कारण बनती है। इस प्रकार, यहाँ नारी-प्रणय के दो विपरीत रूप दिखलाए गए हैं। 'विराटा की पद्मिनी' की कुमुद में भी दुर्गा के अवतार का आरोप किया गया है। कुंजर के प्रति उसकी प्रेम निष्ठा सात्त्विक है। दूर-दूर तक के लोगों द्वारा देवी रूप में विख्यात और सपूज्य समझी जाने वाली 'कुमुद'[2] स्वयं को इतनी संयत रखती है कि अपने अन्तर के

१. डॉ॰ शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ॰ १७०।

२. 'उस कन्या को देवी का अवतार मानते हुए न केवल गाँव के लोग ठठ के ठठ जमा होकर उसके घर पर या मन्दिर में जाते थे, बल्कि बाहर के, दूर-दूर के लोग भी अब मानता मान-मान कर आते थे।'
—विराटा की पद्मिनी, पृ॰ २२-२३।

प्रणय को अपनी अन्तरंग सखी गोमती पर भी व्यक्त नहीं होने देती। वह अंत तक देवी हो की भाँति निश्छल, निर्मल और निश्चल रहती है। लेखक ने बड़े कौशल से उसके नारीत्व और देवीत्व दोनों का निर्वाह किया है।"[1] इस वर्मा जी का नारी-विषयक यह आदर्शवादी दृष्टिकोण स्पष्ट है, जिसके कारण वे मनोवैज्ञानिक धरातल पर विकसित प्रेम को भी दिव्य एवं अलौकिक बनाए रख सके।

'झाँसी की रानी—लक्ष्मीबाई' में वर्मा जी ने इतिहास और कल्पना के कलात्मक समन्वित संयोजन से लक्ष्मीबाई के अद्भुत शक्तिशाली व्यक्तित्व का निर्माण किया है। बाल्यकाल से लेकर मृत्यु-पर्यन्त रानी के चरित्र में असाधारण एकरूपता दिखाने में लेखक सफल हुआ है। स्त्री-सुलभ कोमलता के साथ साथ पुरुषार्थ एवं कर्मठता का ऐसा निदर्शन साहित्य में कम ही देखने को मिलेगा।[2] डॉ० सिंहल ने लक्ष्मीबाई के चरित्र में विद्यमान, प्रधान और गौण, सत्ताईस गुणों का विवेचन करते हुए भली-भाँति स्पष्ट किया है कि उसका चरित्र कितना आदर्श है और किस प्रकार वर्मा जी ने उसके अस्पष्ट इतिहास-प्रसिद्ध चित्र में मानवोचित रंगों को भरकर उसे दिव्य रूप प्रदान किया है।[3] अदम्य वीरत्व के साथ-साथ मातृत्व एवं पत्नीत्व की सम्पूर्ण कोमलता भी लक्ष्मीबाई के चरित्र का अभिन्न अंग है। दत्तक पुत्र दामोदरराव पर वह आजीवन स्नेह बरसाती रही। 'बचपन से ही जिसका जीवन कुश्ती, मलखम्ब, अश्वारोहण एवं अस्त्र-शस्त्र के अभ्यास में बीता, जिसकी कल्पना में एक देश-व्यापी क्रान्ति का चित्र बनता-बिगड़ता रहता था, जिसने 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावक.' के रहस्य को आत्मगत कर लिया था, जिसने बरसाती नदियों एवं वन-पर्वतों की उपेक्षा करके सागरसिंह जैसे दुर्दमनीय डाकू को स्वयं पकड़ लिया, जिसने सम्मुख युद्ध में अपनी वीरता से अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिए, वही 'हल्दी कूकू' जैसे पर्व पर झाँसी की सामान्य-स्त्रियों के बीच पतियों का नाम पूछने और बताने में साधारण स्त्री-सा ही उत्साह प्रदर्शित करती है। अधेड़ अवस्था वाले पति के प्रति भी उसकी अनुराग-भावना किसी अन्य नारी से कम न थी।"[4]

इस उपन्यास में अन्य भी अनेक आदर्श एवं उदात्त-चरित्र नारी पात्रों की

---

१ डॉ० बिन्दु अग्रवाल—हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण, पृ० २६४।

२. शिवनारायण श्रीवास्तव—हिन्दी उपन्यास, पृ० १६६।

३ डॉ० शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७६-१८१।

४ शिवनारायण श्रीवास्तव—हिन्दी उपन्यास, पृ० १६७।

सृष्टि हुई है। सुन्दर, मुन्दर, मोतीबाई, काशी, जूही और झलकारी आदि सभी का चरित्र विकास वर्मा जी ने स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। सुन्दर, मुन्दर और काशी की स्वामि भक्ति निराली है। इसी प्रकार झलकारी का सहज स्वामिनी प्रेम अद्भुत सात्विकता लिए हुए है। जूही और मोती जो नाटक में अभिनय किया करती थी, रानी के सम्पर्क में बिल्कुल ही बदल जाती हैं। दोनों का अपने अपने प्रेमियों के प्रति अनन्य-एकनिष्ठ प्रेम है, किन्तु साथ ही अद्भुत आत्म सयम, कर्मनिष्ठा और व्यवहार-कुशलता उनमें हैं। वस्तुतः भारतीय नारी के प्रति वर्मा जी की श्रद्धा इस उपन्यास में मूर्त्त हो उठी है।

वर्मा जी की कचनार (कचनार') में गाम्भीर्य, सयम, आत्मगौरव और आन्तरिक स्नेह का अपूर्व सगम है। उसका रूप-यौवन मादक होते हुए भी अगारे-सा दाहक नहीं, कपूर सा शीतल और सौम्य है। 'उसे देखने को जी तो चाहता है परन्तु देखते ही सहम जाता है।' कठ मीठा होते हुए भी चिनौती-सा देता है (वह) कटीला गुलाब है मुस्कान में ओठ व्यग्य-सा करते हैं। ' जब चलती है, ऐसा जान पडता है कि किसी मठ की योगिन है।"[1] वह राजा दलीपसिंह की पत्नी (कलावती) के साथ दहेज में मिली हुई दासी है। किन्तु दलीपसिंह की अकाल मृत्यु के बाद उसके रिश्ते का भाई मानसिंह कलावती से विवाह करके कचनार को भी अन्य दासियों की भाँति वासना की पुतली बनाना चाहता है किन्तु कचनार का स्पष्ट कथन है— मेरे साथ भाँवर डालिए। मुझ को अपनी पत्नी की प्रतिष्ठा दीजिए। अपनी जीवन सहचरी बनाइए। मैं आपके चरणों में अपना मस्तक रख दूँगी। परन्तु मैं ऐसा अगरखा नहीं बन सकती जो जब जी चाहा, उतार कर फेंक दिया।"[2] दूसरी ओर दलीपसिंह से उसका मूक-प्रेम है। दलीपसिंह की मृत्यु के बाद भी वह अपनी साधना से विचलित नहीं होती। मानसिंह के कुचक्र को छिन्न भिन्न कर गुसाइयों की छावनी में पहुँचने के पश्चात् उसकी प्रेम-साधना सफल होती है। परिस्थितियाँ उसकी भेंट पुनः दलीपसिंह (जो वास्तव में मरा नहीं था, गुसाइयों की छावनी में 'सुमन्त-पुरी' नाम से रह रहा था) से करवा देती हैं। सक्षेप में, 'कचनार में सौंदर्य, कोमलता, तीखापन है। नारीत्व के शोषकों के प्रति वह उग्र है। सयम और साधना के प्रति उसमें घोर निष्ठा है, पुरुषों का-सा साहस और दृढ़ता है। वह आदर्श की निष्प्राण मूर्ति नहीं, दृढ़ता और कोमलता से मिश्रित सौंदर्यमयी नारी है। लेखक की नारी-सम्बन्धी धारणा कचनार में आकर विकसित और पुष्ट

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा—कचनार, पृ० १४-१५।

२. वही, वही, पृ० २६।

हुई है।"

'मृगनयनी' वर्मा जी का सर्वाधिक चर्चित ऐतिहासिक उपन्यास है। मृगनयनी के चरित्र को लक्ष्मीबाई के चरित्र का ही संशोधित संस्करण कहा जा सकता है। संशोधन उसके गुणों में परिवर्द्धन का ही कारण बना है। वह परिवर्द्धन है—मृगनयनी का अद्भुत कला-प्रेम।[1] उसके बलिष्ठ, प्रचण्ड एवं उग्र व्यक्तित्व में कोमलता, रसिकता और मधुरता का समावेश है। स्वाभिमान, सादगी तथा सहृदयता का भाव उसमें एकत्र सन्निविष्ट है। नारीत्व की मर्यादा से वह भलीभाँति अभिज्ञ है और उसके संरक्षण में वह कदापि शिथिलता नहीं आने देती।

'लाखी' इस उपन्यास का एक अन्य महिमामय नारीपात्र है। अटल के प्रति उसका अनन्य अनुराग और उसका करुण बलिदान अविस्मरणीय है।

वर्मा जी के सामाजिक उपन्यासों में अधिकांशतः विवाह सम्बन्धी समस्याओं के माध्यम से नारी-चित्रण हुआ है। 'लगन' और 'संगम' में दहेज-प्रथा की विषमता का वर्णन है तो 'कुंडली-चक्र' में युवक-युवतियों के स्वभाव की उपेक्षा कर, मात्र कुंडली मिलाकर विवाह करा देने का दुष्परिणाम बताया गया है। 'प्रेम की भेंट' नाम ही युवक-युवती के सहज प्रेम की ओर इंगित करता है। 'अचल मेरा कोई' में अनमेल विवाह की विभीषिका व्यक्त हुई है। इसमें वर्मा जी ने विधवा के पुनर्विवाह का औचित्य भी प्रकारान्तर से प्रतिपादित किया है।

'लगन' की रामा एक साहसी नारी है। वह दहेज प्रथा पर चुपचाप बलिदान होने की अपेक्षा प्रत्युत्पन्न मतित्व का परिचय देकर, माता पिता द्वारा पूर्वनिश्चित अपने वर के घर जा पहुँचती है। 'कुंडली चक्र' की रतन और पूर्णिमा नारी-प्रकृति के दो विपरीत आयामों का स्पर्श करने वाली नारियाँ हैं। रतन अत्यधिक मर्यादा-वादिनी है। वह परम्परागत रूढ़ियों के सामने नतमस्तक होकर, अपने इच्छित व्यक्ति से विवाह नहीं कर पाती। इसके विपरीत पूर्णिमा एक दूरदर्शिनी, विवेकशीला और जागरूक युवती है। वह बुद्धि-बल से अपने तीन-तीन विवाहेच्छुक युवकों द्वारा उत्पन्न परिस्थितिचक्र से साफ बचकर अभीष्ट युवक से विवाह करने में सफल हो जाती है। वर्मा जी ने इन दोनों नारी-पात्रों में से पूर्णिमा के आचरण को उपयुक्त मानते हुए, ललितसेन द्वारा रतन को कहलाया है—'तुम्हीं यदि कुछ रौद्र प्रकृति की होती, तो आज यह नौबत

---

१. डॉ० शशिभूषण सिंहल—उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १७६।
२ वही, वही, पृ० १८१।

क्यो आती ? तुम लोगो की आदर्श पूजा ने ही बहुत-से पुरुषो को नरक का कीड़ा बना रखा है ।'[१]

'प्रेम की भेंट' की उजियारी के रूप मे वर्मा जी ने नारी के उस विद्रूप का चित्रण किया है जिसमे ईर्ष्या प्रतिहिंसा और अविवेक मिलकर एक हो गए हैं । उसके लिए अपने प्रणय पात्र धीरज के अन्य किसी स्त्री के प्रति आसक्त होने की कल्पनामात्र असह्य है । धीरज के प्रति उसका प्रबल आग्रह है—'मुझ परदेसी को चाहो—तुम यदि किसी को अपने भीतर बसाए हो, बहुत दिनो ऐसा न कर सकोगे ।'[२]

'अचल मेरा कोई' मे भी कुंती और निशा के रूप मे वर्मा जी ने दो भिन्न नारी मूर्तियाँ गढ़ी है । कुन्ती का अचल से प्रेम है किन्तु विवाह सुधाकर से होता है । विवाहोपरान्त भी अचल से उसका मिलना-जुलना जारी रहने के कारण सुधाकर जब उसे रोकना चाहता है, तो वह आत्मघात कर लेती है । अनमेल-विवाह के कारण पति पत्नी की आयु मे ही नही, अपितु रुचियो और प्रवृत्तियो मे भी मेल नही बैठता । दूसरी ओर निशा एक विधवा शिक्षित युवती है । वह अचल से विवाह करके समाज के सम्मुख सफल विवाहित जीवन का अनुपम आदर्श उपस्थित करती है । उसके त्याग की प्रशंसा करते हुए अचल कहता है—'असली त्याग तो तुम्हारा है । हमारा समाज अब भी पिछड़ा हुआ है । उसी समाज के लाल सबोच मे विधवाएँ अपने हाड मांस को गला-गला कर और जला-जला कर जीवन बिताती है । पाखंडियो और धूर्तों की पूजा होती है, पर इन यातना मग्न तपस्विनियो को कोई पूछता है ?'[३]

३ उग्र के उपन्यासो मे नारी-चित्रण

'उग्र' को अनेक साहित्य-समीक्षको ने 'नग्नवादी', 'अतियथार्थवादी' तथा 'प्रकृतिवादी' आदि कहकर, उनकी गणना ऐसे उपन्यासकारो[४] मे की है, जिन्होंने 'जीवन के साथ प्रकाश वाले उभय पक्षो मे से अधिकतर उसकी छाया को ही

---

१. वृन्दावनलाल वर्मा—कुण्डली चक्र, पृ० २०४ ।

२. वही, वही, पृ० २०४ ।

३ वही, अचल मेरा कोई, पृ० १४२ ।

४ (क) श्री कृष्णलाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ० ३१५ ।

(ख) शिवदानसिंह चौहान साहित्यानुशीलन, पृ० २३६ ।

(ग) नन्ददुलारे वाजपेयी, नया साहित्य : नए प्रश्न पृ० १ ।

(घ) त्रिभुवनसिंह, हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद, पृ० १८६-८७ ।

पसन्द किया और उसी में रस भरने में मस्त रहे।"[1] किन्तु कोढ़ियों के शरीर की भांति विभिन्न विभीषिकाओं से ग्रस्त भारतीय समाज के निरन्तर रिसते फोड़ों और घावों को टटोल-टटोल कर साफ करने में कलात्मक सौंदर्य आ भी कैसे सकता था! उग्र के सभी उपन्यासों में नारी के प्रायः उस रूप का चित्रण हुआ है, जिसका सम्बन्ध स्वस्थ पारिवारिक या सामाजिक परिधि के बाहर, नैतिक मर्यादाओं के परम्परागत चित्रण से नितान्त भिन्न है। नारी के कर्त्तव्यों या अधिकारों का प्रश्न तो वहाँ उठाया और सुलझाया जा सकता है जहाँ पहले उसके अस्तित्व की स्वीकृति हो। परन्तु जहाँ नारी पुरुष के वासना जाल में छटपटाती मछली के अतिरिक्त कुछ नहीं है, वहाँ सिद्धान्तों और मर्यादा की चर्चा ही व्यर्थ है। इसीलिए 'उग्र' की सम्पूर्ण औपन्यासिक प्रतिभा यह स्पष्ट करने में प्रवृत्त रही है कि नारी कहाँ-कहाँ किस-किस रूप में पुरुष के फँके हुए पाशे में उलझी हुई है और उसकी मुक्ति में [illegible] समाज की कितनी प्रचण्ड प्रताडना की आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'उग्र' ने दो प्रकार के नारी पात्रों की सृष्टि की : [illegible] असहाय हैं और दूसरे वे, जो [illegible] बने रहने के लिए प्रत्येक प्रकार की परिस्थितियों से टक्कर लेने में समर्थ हैं।

'चन्द हसीनों के खतूत' नामक उपन्यास की नायिका, नारी-समाज में एक क्रान्तिकारिणी युवती के रूप में सामने आती है। उसे अपने हिन्दू सहपाठी मुरारिकृष्ण से प्रेम है। उसके लिए वह समाज और धर्म के सभी बन्धनों को तोड़ने को तत्पर है। उसकी स्पष्ट घोषणा है—'औरत का दिल ऐसी चीज नहीं जिसे आज 'हिन्दू' और कल 'मुसलमान' कह दिया जाय।...सच्ची औरत अपना आका, अपना मालिक, अपना खुदा एक बार चुनती है, हजार बार नहीं। इसलिए औरतें मर्दों से ऊँची हैं, माँ हैं।'[2] वह नारी-जीवन पर पड़ने वाली इस्लामी कट्टरता के कुप्रभाव को धराशायी करने के लिए एक वीर-रमणी का रूप धारण कर लेती है। उसके हृदय में 'नारी-सुलभ ममता और भावुकता ही नहीं, बद्ध रूढ़ियों के प्रति क्रान्ति करने की विद्रोही भावना भी है।'[3] इस उपन्यास में 'उग्र' की नारी-विषयक दृष्टि है—'स्त्रियाँ तो रत्नों की तरह सदा पवित्र हैं। किसी भी जाति की पुत्री को, किसी भी जाति के पुरुष को मन मिलने

---

१ शिवनारायण श्रीवास्तव—हिन्दी-उपन्यास, पृ० २२३।
२. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', चन्द हसीनों के खतूत, पृ०।
३ रत्नाकर पाण्डेय—'उग्र और उनका साहित्य', पृ० ११०।

पर प्रसन्नतापूर्वक प्रहार कर लेना चाहिए।"[1]

'दिल्ली का दलाल' नामक उपन्यास में अनैतिक नारी-व्यापार के अड्डों की समस्या चित्रित हुई है। अपने इस उपन्यास का उद्देश्य 'उग्र' जी ने बताया है कि 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्त के आधार पर समाज की कुत्सा की, कुत्सा के सही-सही चित्रण से ही दूर किया जा सकता है। उनका कथन तो यहाँ तक है कि 'दिल्ली का दलाल' उपन्यास को सारे देश के स्कूलों में बालक-बालिकाओं के कोर्स में रखकर पढ़ा दिया जाया करे ताकि बुराई की ओर कदम उठाने से पहले वे परिणाम से तो परिचित रहें।[2] किन्तु ऐसा लिखते समय 'उग्र' जी इस मनोवैज्ञानिक सत्य को अनदेखा कर गए, जिसके अनुसार किशोरवय कोमलमति बालक-बालिकाएँ कुप्रवृत्तियों का वर्णन पढ़-पढ़कर उनमें प्रवृत्त होते हैं, न कि उनसे बचने का प्रयत्न करने में समर्थ होते हैं। फिर भी, पुरुषों द्वारा नारी को व्यापार-रूप में उपयोग में लाने के विविध हथकण्डों का इस उपन्यास में नग्न चित्रण करके 'उग्र' ने समाज की चेतना को झकझोड़ने का प्रयास अवश्य किया है।

'बुधुआ की बेटी' (बाद में 'मनुष्यानन्द' के नाम से प्रकाशित) में बुधुआ भंगी की रूपवती युवा कन्या रधिया के माध्यम से उच्चवर्गीय और सम्भ्रान्त समझे जाने वाले समुदाय द्वारा 'बड़प्पन' के नाम पर हो रहे शोषण को अनावृत किया गया है। रधिया के शब्दों में 'यह पुरुष-जाति धोखेबाजों, अत्याचारियों और कायरों की जाति है, जो सदा से हम स्त्रियों को फुसला फुसला कर नष्ट करती और हमारे प्राणों को घास-भूसे की तरह पशुता से कुचलती चली आ रही है।"[3] रधिया का यह आक्रोश वस्तुतः समूची नारी-जाति का ही आक्रोश नहीं, स्वयं लेखक का भी अपने सहजाति-भाइयों के प्रति आक्रोश है। इसकी पुष्टि उसने मनुष्यानन्द द्वारा कराई है—'स्त्री-जाति पर शुरू से ही सबल होने के कारण पुरुष जुल्म करते आ रहे हैं। पुरुषों का गढ़ा (घड़ा) हुआ समाज भी उन्हीं के पक्ष में अधिक है। अब स्त्रियों को एक बार इस स्वार्थी पुरुष जाति के विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनी होगी।'[4]

'शराबी' उपन्यास की नायिका जवाहर अपने शराबी पिता की करतूतों के कारण, बरबस वेश्या के कोठे पर जा पहुँचती है, परन्तु वहाँ की विपन्न

---

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'—चन्द हसीनों के खतूत, पृ० ११८।
२. वही, दिल्ली का दलाल, भूमिका।
३ पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', मनुष्यानन्द (बुधुआ की बेटी), पृ० ६०।
४. वही, वही, पृ० ६०।

परिस्थितियों में भी उस के द्वारा अपने सतीत्व और स्त्री-मर्यादा की रक्षा करने में समर्थ होना नारी के अदम्य साहस का प्रतीक है। इस उपन्यास मे अनमेल-विवाह की कुप्रथा की शिकार नारी का चित्रण भी हीरा के माध्यम से हुआ है, जो एक ऐसी दुर्भाग्यशालिनी युवती है, जिसे परिवार की कटु और असहनीय परिस्थितियों से बाध्य हो कर, अपने पिता की वय के तुल्य एक विधुर के हाथो मे अपना अविकसित यौवन सौंप देना पड़ता है। लेखक ने विकसित होने से पहले ही कुचल दिये जाने वाले इस नारी-कुसुम का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है।

'सरकार तुम्हारी आँखो मे' नामक उपन्यास मे सामन्ती विलासिता के पंक मे भी कमल-पत्रवत् स्वयं को निर्लिप्त रख पाने मे समर्थ फिरोजी का हृदय स्पर्शी चित्र अंकित है। यह राजकीय संगीतज्ञ गुलाब की पुत्री है। इस पर उनके आश्रयदाता मदनसिंह जू की आसक्ति है। फिरोज़ी अपनी कला के आश्चर्यजनक प्रभाव द्वारा राजा की वासनात्मक कुप्रवृत्तियो का परिमार्जन करने के अथक प्रयास मे सफल होकर भी अन्ततः एक दिन पुरुष प्रवंचना का शिकार होने की स्थिति मे आते ही रौद्र-रूप धारण कर लेती है। 'उग्र' ने इस अवसर पर उसके उग्र रूप की अवतारणा करा कर मानो नारी-मात्र को पुरुष के अनाचार से मुक्ति पाने के लिए शक्ति-प्रयोग का संदेश दिया है।

अनमेल-विवाह के दुष्परिणाम-स्वरूप जीवन होम देने वाली अभागिनी नारियो का विशद चित्रण 'उग्र' के 'जी जी जी' नामक उपन्यास मे हुआ है। इसकी नायिका प्रभा मर्यादा की बेड़ियो मे जकड़ी, समाज-शोषित नारी का प्रतिनिधित्व करती है। पितृ-गृह मे वह सौतेली मां के हाथो यातनाएँ सहन करती है और पति-गृह मे उससे भी अधिक शारीरिक और मानसिक कष्ट का शिकार होती है। उसका अधेड़ पति दुराचारी, लम्पट और कामुक है। उसकी स्वार्थान्धता की अग्नि मे वह धीरे-धीरे हविष्य बनकर समाप्त हो जाती है। उसके चरित्र की गरिमा इस बात मे है कि स्वयं अन्तर्वेदना के भीषण तूफानो मे फँसी रहने पर भी वह फुटपाथ पर तड़प-तड़प कर जीने वाले एक विकलांग और पंगु भिखारी का जीवन सुधारने के लिए जी-जान एक कर देती है। इसी प्रकार वह किशोर का भी सस्नेह उपकार करती है। किन्तु उसकी अपनी जीवन-नैया का खिवैया भरे-पूरे समाज मे कोई भी नही है।

इस उपन्यास मे 'उग्र' के नारी-विषयक दृष्टिकोण की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है। प्रारम्भ मे ही वे कहते हैं—'संसार का इतिहास स्त्रियों पर पुरुष के अत्याचारों से भरा है। आज की लड़ाइयो मे राजनीति के खेल खेलता है पुरुष,

युद्ध भी करता है वही और जय-पराजय दोनों अवस्थाओं में देशी-विदेशी अत्याचारों का शिकार बनती हैं औरतें।...पिछले हजारों वर्षों से नारी जैसी रही है वैसी ही आज भी है।[1] आगे चलकर उन्होंने स्त्रियों को भी अपनी मर्यादा बनाए रखने का सन्देश इन शब्दों में दिया है—'स्त्री का आदर वहीं तक, जहाँ तक वह अपनी मर्यादा समझे।'[2] किन्तु मर्यादा में रहने से उनका अभिप्राय स्त्रियों को घर की किसी कोठरी में बन्दी बनाकर रखने से नहीं। उन्हें तो स्त्रियों का स्वस्थ, बलिष्ठ एवं आत्म-निर्भर होना अभीष्ट है। उनका कथन है—'मैं कहता हूँ, गुण्डों से बचाने के लिए स्त्रियों को तन्दुरुस्त बनाना होगा, न कि कोठरी में बन्द कर मार डालना।'[3]

'उग्र' के एक अध्येता-समीक्षक का यह मत उपयुक्त ही है कि 'शराबी', 'चन्द हसीनों के खतूत', 'फागुन के दिन चार' और 'जी जी जी' आदि की नारियाँ हमारी पारिवारिक मनोवृत्ति की शिकार विवश नारियाँ हैं। वे भावुकता में मर्यादा का पालन करती हुई हर प्रकार की आपदाओं का मुकाबला साहस के साथ करती हैं। वे अपने सतीत्व की रक्षा के लिए या तो प्राणोत्सर्ग कर देती हैं अथवा कामुक व्यभिचारियों की दूषित मनोवृत्ति की शिकार होने से पहले उनका भण्डाफोड़ करके सारे समाज के सामने मुक्त होती हैं।"[4]

४. जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी-चित्रण

गांधीवादी दार्शनिक विचारधारा और फ्रायडवादी मनोविश्लेषणात्मक पद्धति के सम्मिलित प्रभाव ने जैनेन्द्र की अन्य साहित्यिक कृतियों की भाँति, उनके उपन्यासों के नारी-पात्रों को भी पर्याप्त रहस्यमय रूप में प्रस्तुत किया है। अत: उनके उपन्यासों में नारी-चित्रण सामान्य पारिवारिक या सामाजिक धरातल पर नहीं हुआ है। उनके उपन्यासों का परिप्रेक्ष्य असामान्य और बाह्य जगत् की अपेक्षा अधिकांशत: अन्तर्जगत् से सम्बन्धित है। इसलिए उनमें चित्रित नारियाँ भी या तो अति बौद्धिकता में ग्रस्त हैं या भावुकता के चरम शिखर पर अवस्थित हैं। जैनेन्द्र 'नारी के उस रूप को मान्यता नहीं देते जो हमारी सांस्कृतिक परम्परा को मान्य है। अनन्य सहिष्णुता से समस्त सामाजिक बन्धनों और अत्याचारों को सहती हुई, निर्बल किन्तु मायामयी नारी जैनेन्द्र के लिए अज्ञात

१. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'—'जी जी जी', पृ० १५-१६
२. वही, वही, पृ० ३०।
३. वही, वही, पृ० ७५।
४. डॉ० रत्नाकर पाण्डेय—'उग्र' और उनका साहित्य, पृ० १४४।

है।'''पर पाश्चात्य सभ्यता की उस जागृत नारी को भी वे मान्यता नहीं देते, जो पुरुष तथा समाज के बन्धनों को खोलकर बल्कि तोड़कर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करती है। इन स्त्रियों के जीवन का आधार प्रेम और सहयोग नहीं है, अतः स्त्री का वह रूप भी जैनेन्द्र के लिए वर्ज्य है। उन्होंने जिस नारी का चित्रण किया है वह भव्य है, पुरुष से अधिक बल रखने वाली है, प्रेम तथा अन्य सद्भावनाओं की अधिष्ठात्री है आत्मशक्ति में अग्रगण्य है, और यह सब होने के कारण बहुत कुछ अलौकिक और अस्वाभाविक है।'[1]

'परख' की कट्टो एक बाल विधवा किन्तु नटखट और हँसोड़ देहातिन है। न जाने कब वह 'अपने हृदय की सारी श्रद्धा, सारा विश्वास, समस्त अनुराग अपने एक 'मास्टर' के चरणों में निछावर कर देती है।' वह स्वयम्भू सधवा बन बैठती है किन्तु अपने अन्तःकरण में अंगीकृत पति की विवशताओं को सुन देखकर, हृदय पर पत्थर रखकर महान् उत्सर्ग का परिचय देती है। वह उसे पूर्ण अपना' मानकर भी उसे पूर्णतः मुक्त कर देती है तथा अपने प्रति अत्यन्त सात्त्विक अनुराग रखने वाले बिहारी के प्रणय-सूत्र में सच्चे मन से आबद्ध होकर असाधारण उदात्तता का परिचय देती है। उनका मिलन शारीरिक नहीं, केवल आत्मिक है। 'कट्टो' जैसी नारी को सामान्यतः समाज में देख पाना कठिन है।

जैनेन्द्र के 'सुनीता' उपन्यास की सुनीता अपने कतिपय गुणों के कारण पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी है। वह अपने पति श्रीकान्त के प्रति पूर्णतः समर्पित है किन्तु पति के एक अन्तर्मुखी, कुंठित मित्र हरिप्रसन्न को, पति की प्रेरणा से सामाजिकता की ओर उन्मुख करने के लिए, सीमा से बहुत आगे जाकर भी, अपना सब कुछ समर्पित करने को तत्पर हो जाती है। वह पति-परायणता के कारण ही हरिप्रसन्न के प्रति स्नेहशील है किन्तु कर्त्तव्य के प्रति जागरूक वह नारी कभी भी गृहिणी धर्म से च्युत नहीं होती। एक बार पति के कुछ दिनों के लिए घर से बाहर जाने और उसे वहाँ से पत्र द्वारा हरिप्रसन्न को हर हालत में प्रसन्न रखने का निर्देश पाने पर वह भीषण अन्तः संघर्ष में उलझ जाती है, परन्तु उसका नैतिक बल बड़े आश्चर्यजनक ढंग से उस सारी उलझन से बचा ले जाता है। हरिप्रसन्न को अवाक् रहस्यमयी दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए वह पूछती है—'तुम क्या चाहते हो हरि बाबू?' और यह उत्तर मिलने पर कि 'तुमको चाहता हूँ, समूची तुमको चाहता हूँ।' वह हरिप्रसन्न के सम्मुख निरावरण हो जाती है साड़ी उतार फेंकती है, शरीर से चिपटकर सटी

---

1 डॉ० गणेशन—हिन्दी उपन्यास साहित्य का अध्ययन, पृ० २०७।

हुई 'साडी' को फाड फेंकती है और कहती है—'मैं तो तुम्हारे सामने हूँ। इन्कार कब करती हूँ? लेकिन अपने को मारो मत, कर्म करो, मुझे चाहते हो तो ले लो। परन्तु हरिप्रसन्न को उसे देखने तक का साहस नहीं होता, वह शान्त चुप बैठा रहता है।'[1]

इस प्रकार सुनीता मे हमे नारी के व्यक्तित्व का ऐसा तेजोमय रूप मिलता है, जो तन से विवश होने पर तनिक डिगता नही, वरन् अपनी अलौकिक शक्ति से हरिप्रसन्न को वासना विमुख करने मे सफल होता है। निश्चय ही 'इस आदर्शवादी चरित्र के माध्यम से जैनेन्द्र ने नारी के नैतिक बल और आत्मामय व्यक्तित्व का जो चित्र उपस्थित किया है, वह अदभुत है।'[2] उन्होंने सुनीता के माध्यम से नारी के शाश्वत कर्तव्य की भी बडी सुन्दर व्याख्या कर दी है—'जब तक वह (पुरुष) सामने भागता है, हम पीछे-पीछे हैं। जब वह पीठ की ओर भागना चाहे, तब हम सामने हो जाती हैं। हम से पार होकर वह नहीं जा सकेगा। स्त्री यह न सहेगी कि पुरुष उसके आगे मार्ग स्पष्ट न करता जाए। पुरुष इस दायित्व से भागना चाहेगा तो पीछे स्त्री मे गिरफ्तार होकर फिर उसे आगे-आगे चलना होगा। पुरुषो के इस अधिकार के आगे स्त्री कृतज्ञ है, किन्तु स्त्री का भी यह अधिकार है कि वह पुरुष को पदच्युत न होने दे।'[3]

'कल्याणी' उपन्यास मे नारी का एक अन्य रूप चित्रित है जिसे हम नारी की आर्थिक स्वाधीनता के प्रश्न से सम्बन्धित पाते हैं। कल्याणी का पति चाहता है कि उसकी पत्नी शिक्षिता हो, धनोपार्जन करे, फैशन से रहे। किन्तु कल्याणी जब डाक्टरी का व्यवसाय करने लगती है तो वह पत्नी के प्रति बडा सतर्क, बडा सन्देहशील हो उठता है। एक बार तो वह पत्नी पर दुश्चरित्रता का आरोप लगा कर उसे बुरी तरह पीटता भी है। किन्तु कल्याणी यह सब कुछ मूक-भाव से सह लेती है। जीवन-पर्यन्त वह अपनी व्यक्तिगत इच्छाओ को पति की इच्छाओ पर न्योछावर करती हुई, अन्तत अन्तर्वेदना को साथ लिए इस ससार से विदा हो जाती है। एक सुशिक्षिता नारी का यह मूक बलिदान, जैनेन्द्र की 'आत्मपीडन को आदर्श मानने वाली' दृष्टि का परिचायक है। लेकिन इससे उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि नवीन शिक्षा मे पली, स्वय चिन्तन की शक्ति से युक्त, आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन रहने वाली नारी भी परम्परागत पुरुष की अधीनता से मुक्त नही हो पाई है। स्वय कल्याणी के शब्दो मे—'स्त्री निर्दोष

---

१. जैनेन्द्र—सुनीता, पृ० १००-१०१।
२ डॉ० बिन्दु अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास मे नारी चित्रण, पृ० २०२।
३. जैनन्द्र, सुनीता, पृ० ५८।

हो सकती है ? पहला दोष तो यही है कि वह स्त्री है ।"[1]

'त्यागपत्र' की मृणाल अपने सामाजिक परिवेश के कारण, सच्ची मानसिक तृप्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकती है किन्तु उसे सर्वत्र उपेक्षा, प्रताडना और घृणा ही प्राप्त होती है। वह किशोरावस्था मे जिस युवक से प्रेम करती है अभिभावक उसकी परवाह न करके, उसका विवाह अन्यत्र कर देते हैं। वह अभिभावकों के निर्णय को स्वीकार कर अपने दाम्पत्य जीवन को अधिकाधिक आदर्श बनाने का प्रयत्न करती है—'' हुआ जो हुआ। ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। सच्ची बन कर ही समर्पित हुआ जा सकता है।' और उसका यह सच्चापन ही उसके लिए अभिशाप बन जाता है; क्योंकि उसका पति उसको विवाह पूर्व प्रेम की बात सुनकर उसे त्याग देता है। वह विवश होकर पडोसी कोयले वाले के पास रहने लगती है। एक दिन वह भी उसे छोड जाता है। तब वह एक सम्भ्रान्त कुल के बालकों को पढाने का काम करती है, परन्तु परिस्थितियाँ उसे वहाँ भी टिकने नहीं देती। अन्त मे उसे वहाँ शरण लेनी पडती है, जहाँ समाज के परित्यक्त, घृणित जीव अपनी मृत्यु की घडियाँ गिनते रहते हैं। इस प्रकार 'त्याग-पत्र' मे नारी-चरित्र की नैतिकता के पुन-र्मूल्याकन का अत्यन्त प्रभावोत्पादक प्रयत्न हुआ है।

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन के नारी चित्रण मे उनके समकालीन इन उपन्यासकारों के दृष्टिकोण की झलक मिलती है। यह साम्य न तो अनुकरण पर आधारित है और न ही प्रभाव के आदान-प्रदान पर; अपितु इस का एक मात्र कारण युगीन परिस्थितियों एव उन-उन लेखकों के निज-निज अध्ययन और अनुभव का प्रतिफलन है। प्रेमचन्द-सी व्यापक दृष्टि यदि अन्य उपन्यासकारों मे नहीं है तो चतुरसेन-सी अन्तर्राष्ट्रीय मानव सवेदना का अन्यत्र अभाव है। 'उग्र' की याथातथ्यवादिता को अन्य उपन्यासकार यदि यथावत् अगीकार नहीं कर पाए तो जैनेन्द्र का दार्शनिक चिन्तन और मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण, उनका निजी वैशिष्ट्य है। किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि पुरुषाधीनता, सामाजिक रूढियों और परम्परागत नैतिक मर्यादाओं के युग-युगीन बन्धनों से नारी की मुक्ति, स्वाधीनता और उसके स्वावलम्बन की कामना इन सभी उपन्यासकारों ने किसी न किसी रूप मे व्यक्त की है। इसके अतिरिक्त नारी के गरिमामय उदात्त-स्वरूप के प्रति भी इन सभी की समान आस्था है। नारी-चित्रण की उनकी पद्धतियाँ अवश्य भिन्न भिन्न हैं, किन्तु मूल-सवेदना मे कोई अन्तर नहीं है।

---

१ जैनेन्द्र, कल्याणी, पृ० २३-२४।

तृतीय अध्याय

आचार्य चतुरसेन तथा उनका कथा-साहित्य

(क) चतुरसेन की जीवन-रेखाएँ एवं व्यक्तित्व

माता-पिता

आचार्य चतुरसेन के पिता ठाकुर केवलराम वर्मा कर्मठ आर्यसमाजी और प्रगतिशील विचारों के व्यक्ति थे। समाज में व्याप्त अन्धविश्वास के खण्डन के लिये वे सदा उग्रता से तत्पर रहते थे। चतुरसेन की माता, उनके शब्दों में—'त्याग, स्नेह और सहिष्णुता को मिलाकर जो एक श्रद्धा और आदर्श की देवी की कल्पना की जा सकती है, वही वे थी।' इस घर में चतुरसेन का जन्म हुआ।[1] पिता के तेजोवान् व्यक्तित्व और सुधारवादी दृष्टिकोण का चतुरसेन के जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा था। कोमलता एवं संवेदनशीलता उन्हें माता से प्राप्त हुई थी।

गुरुकुल-शिक्षा और सांस्कृतिक प्रभाव

चतुरसेन का बाल्यकाल, अधिकांशतः चान्दोग (उत्तरप्रदेश) में व्यतीत हुआ था। निकट के गाँव 'रसूलपुर' में प० गंगाराम से इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। बाद में इनके पिता उन्हें उपयुक्त शिक्षा दिलाने के उद्देश्य से सिकन्दराबाद आकर रहने लगे। वहाँ पहले इन्होंने गुरुकुल में पढ़ना प्रारम्भ किया, फिर वे वहाँ से भागकर काशी जा पहुँचे। उन्हीं के शब्दों में, 'राह में बहुत विपदाएँ झेली। काशी पहुँचने पर भी कष्टों का सामना किया। वहाँ हम

---

१. अगस्त २६, १८९१ ई०, संवत् १९४८, भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी, रविवार। देखिए—आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्मकहानी, पृ० २।

क्षेत्रों में खाते-पीते रहते और आवारागर्दी में पड़ते। विद्यार्थियों तथा पड़ों की गुडागिरी के भी खूब हथकंडे देखे, कुछ सीखे भी, पीछे पिता जी ने आकर श्री केशवदेव शास्त्री के यहाँ व्यवस्था कर दी।"[1] श्री केशवदेव शास्त्री के अमेरिका चले जाने पर इन्होंने प० जीवाराम तथा श्यामलाल शास्त्री के सान्निध्य में रहकर साहित्य तथा व्याकरण की उच्च शिक्षा प्राप्त की।

कुछ समय पश्चात्, चतुरसेन संस्कृत कालेज, जयपुर मे चार वर्ष तक आयुर्वेद-शास्त्र का विधिवत् अध्ययन करते रहे। सन् १६०६ तक इन्होंने वहाँ साहित्य और चिकित्सा सम्बन्धी विभिन्न परीक्षाएँ उत्तीर्ण की। तत्पश्चात् सिकन्दराबाद लौट चिकित्सा-कार्य आरम्भ कर दिया। शीघ्र ही इन्हें दिल्ली में कार्य करने का अवसर मिल गया। वहाँ इन्होंने साथ-साथ अध्ययन कार्य भी किया। परिणामतः इन्होंने आयुर्वेद विशारद, उपाध्याय, शास्त्री एव आचार्य परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर ली।

गृहस्थ-जीवन की ओर

जयपुर मे शिक्षा ग्रहण करते समय ही चतुरसेन का विवाह मुहम्मदपुर देवमल (बिजनौर) के प्रसिद्ध वैद्य कल्याणसिंह की पुत्री तारादेवी से सन् १६१२ ई० में हुआ। इस बीच ये सिकन्दराबाद छोड़कर दिल्ली में एक कुशल चिकित्सक के रूप मे पर्याप्त प्रतिष्ठित हुए। पहले इन्होंने किनारी बाजार में निजी औषधालय चलाया। फिर पनहपुरी के कटरा मेदगरान में ये सेठ साँवलदास के औषधालय और वैदिक विद्यालय में नौकरी करने लगे। इन्हीं दिनों इनके ससुर डी० ए० वी० कालेज, लाहौर के व्यवस्थापकों की ओर से 'आयुर्वेद कालेज' के प्रधानाचार्य पद पर नियुक्त हुए और वे अपना अजमेर का श्रीकल्याण औषधालय इन्हें सौंप गए। कुछ दिनों बाद उनके प्रयत्न से चतुरसेन डी० ए० वी० कालेज लाहौर मे आयुर्वेद के सीनियर प्रोफेसर नियुक्त हो गए। पर, वहाँ के अधिकारियों से मतभेद होने के कारण ये एक साल बाद ही पुन अजमेर लौट आए।

उपन्यास-क्षेत्र मे प्रवेश

अजमेर के जीवन मे, चतुरसेन का उपन्यास-क्षेत्र मे पदार्पण हुआ। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति के पश्चात् वहाँ प्लेग का भीषण प्रकोप हुआ था। एक चिकित्सक के नाते इस समस्या का प्रत्यक्षानुभव होने के कारण चतुरसेन के

---

१ डॉ० पद्मसिंह शर्मा कमलेश—मैं इनसे मिला, प्रथम किश्त, पृ ८५।

हृदय पर इस घटना का बहुत प्रभाव पड़ा और इन्होंने 'प्लेग विभ्राट्' नामक उपन्यास लिखा।

चिकित्सक-साहित्यकार के अनुभव

चिकित्सक के रूप मे कार्य करते समय मानव-चरित्र के विविध पक्ष चतुरसेन के सामने आए। कई पेचीदे मामले इन्हे सुलझाने पडे। बहुत से राजा-महाराजाओ, रानियो तथा सम्भ्रान्त प्रभावशाली जनो के भीतरी आर्त्तनाद, दुर्बलताएँ, मूर्खताएँ, कुत्साएँ इन पर प्रकट होने लगी। एक चिकित्सक के रूप मे इनकी ख्याति भी खूब हुई। यही ख्याति सन् १९२० मे इन्हे अकस्मात् अजमेर से बम्बई ले गई। वहाँ के एक पुस्तक विक्रेता की पत्नी का भीषण रोग इनकी चिकित्सा से दूर हो गया और वह प्रसन्न होकर इन्हे अपने साथ बम्बई ले गया। वहाँ ये 'अजमेर वाले वैद्यराज' के नाम से चिकित्सा करके प्रसिद्धि और धन कमाने लगे। वहाँ ये कुछ मित्रो की सगति से सट्टा भी खेलने लग गए। उन दिनो ये लोग प्रतिदिन लाख-पचास हजार कमाते-खोते थे। किन्तु सट्टे के इस शौक का परिणाम बहुत बुरा हुआ। एक दिन अपना सब कुछ देकर ये छूँछे हाथ घर लौट आए। तभी इन पर एक और दैवी आघात हुआ। इनकी पत्नी क्षयरोग के कारण चल बसी।

क्रान्तिकारी साहित्यकार

एक वर्ष पश्चात् सन् १९२६ मे मन्दसौर निवासी नानूराम की पुत्री प्रियवदा से इनका दूसरा विवाह सम्पन्न हुआ। इन्ही दिनो इनका सम्पर्क क्रान्तिकारी भगतसिंह तथा उनके माध्यम से क्रान्तिकारी आन्दोलन से हो गया। प्रयाग की मासिक पत्रिका 'चाँद' के फाँसी अक और मारवाडी अक का सम्पादन इन्होंने पूरे परिश्रम से किया। भगतसिंह की सक्रिय सहायता से इन्हें पर्याप्त सम्बन्धित सामग्री सहज सुलभ हो गई। फाँसी अक ने सर्वत्र तहलका मचा दिया। कुछ समय पश्चात्, इन्हीं के सम्पादन मे निकले मारवाडी अक का उद्देश्य धन की कुत्सा और सामाजिक रूढियो के प्रति विद्रोह की भावना जागृत करना था। बाद मे ब्रिटिश सरकार ने दोनो अक जब्त कर लिए। इस घटना से चतुरसेन एक क्रान्तिकारी और समाज-सुधारक साहित्यकार के रूप मे पर्याप्त प्रसिद्ध हो गए।

अडिग साहसी

इस बीच चतुरसेन ने अपना चिकित्सा-व्यवसाय और लेखन कार्य साथ-साथ जारी रखा। सन् १९३४ मे इनकी दूसरी पत्नी का भी बीमारी के कारण

देहावसान हो गया। अब तक इनके निस्सन्तान होने के कारण परिवार वालों ने एक वर्ष के भीतर ही इनका तीसरा विवाह बनारस के एक रईस ठाकुर रामकिशोरसिंह की पुत्री ज्ञानदेवी से कर दिया। इस विवाह के पश्चात् चतुरसेन स्वयं को धीरे धीरे चिकित्सा-कार्य से हटाकर पूर्णत लेखन-कार्य में प्रवृत्त करने लगे। अनेक वर्षों की अविराम साधना, गहन चिन्तन और कठोर परिश्रम के फलस्वरूप इन्होंने जून १९४२ में 'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास लिखकर पूर्ण किया। किन्तु कुछ धूर्त्त मित्रों ने छल-पूर्वक उपन्यास की पाण्डुलिपि चुरा ली। इस घटना से चतुरसेन के मन पर इतना आघात लगा कि दो वर्ष तक इन्होंने हस्ताक्षर तक के लिए लेखनी नहीं छुई। सब काम बन्द कर दिए। लोगों से मुलाकात भी बन्द कर दी। इन दो वर्षों में इन्होंने अनुभव किया कि इनके रक्त की प्रत्येक बूँद आँसू बन गई है। परन्तु रक्त में मिलकर शरीर के भीतर ही चक्कर काट रही है। अभी वे इस घात से सभल भी न पाये थे कि दैवयोग से इनकी तीसरी पत्नी ज्ञानदेवी दिसम्बर १९४४ में चल बसीं। इससे इनकी दशा अर्धविक्षिप्त की-सी हो गई थी। परिवार वालो, इष्ट मित्रों और बन्धु-बान्धवों ने इन्हें धैर्य बधाने के अनेक यत्न किये। पर, कोई परिणाम न निकला अन्तत इनकी साली (बाद में चतुर्थ पत्नी) कमलकिशोरी ने सोचा—'तेरी जैसी लड़कियाँ रोज-रोज कीड़े मकौड़ों जैसी पैदा होती हैं और मर जाती हैं, तेरे जीवन का क्या मूल्य ! पर ऐसे पुरुष रोज रोज पैदा नहीं होते, उनके जीवन की रक्षा कर। मैंने माताजी से कहा। उन्होंने उन्हें राजी करके मेरा विवाह उनसे कर दिया। काफी दिनों बाद उनमें नए जीवन का सचार हुआ।'[1]

चौथे विवाह के उपरान्त चतुरसेन के अशान्त, अस्थिर जीवन में धीरे-धीरे पुन स्थिरता आ गई। इन्होंने अपनी समूची साहित्यिक चेतना को सचित करके 'वैशाली की नगरवधू' पुन लिखना आरम्भ कर दिया। तीन वर्ष के परिश्रम के पश्चात् सन् १९४८ में इसके प्रकाशित होते ही साहित्य-जगत् को एक नई विभूति मिली। आचार्य जी ने इस उपन्यास की रचना पर परम सन्तोष अनुभव कर इसकी भूमिका में लिखा था—'निरन्तर चालीस वर्षों से अर्जित सम्पूर्ण साहित्य सम्पदा को मैं अपनी प्रसन्नता से रद्द करता हूँ और यह घोषणा करता हूँ कि मैं अपनी यह पहली कृति विनयांजलि सहित आपको भेंट करता हूँ।'[2]

---

१ साप्ताहिक हिन्दुस्तान (चतुरसेन श्रद्धांजलि अक, १७ अप्रैल, १९६०), पृ० ४।

२ वैशाली की नगरवधू प्रवचन, पृ० ५।

साहित्य-साधना-पथ का राही : चतुरसेन

साहित्य साधना का पथ अपना कर चतुरसेन चिकित्सा-कार्य से सम्बन्ध-विच्छेद कर चुके थे। फलत आर्थिक अभाव इन्हे कष्ट देने लगा। नियमित आय का अब कोई साधन नही रह गया था। सन् १६४७ की यमुना नदी की बाढ मे इनकी शाहदरा-स्थित सम्पत्ति भी नष्ट हो गई। इन विषम परिस्थितियो मे भी इनका लेखन-क्रम अविराम जारी रहा। सन् १६५० मे भीषण रोग-ग्रस्त होकर, कठिनाई से ये 'आत्म-बल' द्वारा स्वास्थ्य-लाभ कर सके और निरन्तर लिखते रहे। 'वय रक्षाम', 'सोमनाथ', 'गोली', 'सोना और खून' एव 'भारतीय सस्कृति का इतिहास' जैसी प्रौढ रचनाएँ इस परवर्ती काल मे रची गई। इनकी लेखनी, अन्तिम दिनो में इनकी मृत्यु शय्या पर भी चलती रही। इर्विन अस्पताल मे, मृत्यु से कुछ ही दिन पहले इन्होंने पेंसिल से अपना मद्रास-भ्रमण से सम्बन्धित लेख लिखा। वहाँ से ये कुछ ही समय पूर्व लौटे थे। फरवरी २, सन् १६६० को उनका निधन हो गया।

आचार्य चतुरसेन : व्यक्तित्व

आचार्य चतुरसेन का जीवन साधना और श्रम का था। उनके निकट सम्पर्क मे आने वाले एक विद्वान् के शब्दो मे उनका व्यक्तित्व इस प्रकार था—

'स्वस्थ, गठा हुआ स्थूल किन्तु बलिष्ठ एव स्फूर्तिवान् शरीर, मुख-मण्डल पर गम्भीरता एव प्रौढता, नेत्रो पर नीले रग का सुनहरी कमानी का चश्मा, क्लीन शेव, बाए कपोल पर एक छोटा-सा तिल, चौडा ललाट, ६८ वर्ष से अधिक आयु मे भी एकदम काले सिर के केश, बत्तीसी इस आयु मे भी श्वेत, सबल एव दृढ, गेहुआ रग, गठिया के कारण कुछ रुक-रुक कर चलने के अभ्यस्त, अध्ययन के कारण धसे हुए नेत्र, स्वर में दृढता, बातचीत मे आत्मीयता, विद्रोह, नवीनता एव अध्ययन का पुट।'[1]

चतुरसेन के ऐसे व्यक्तित्व के मूल मे परिस्थितियो एव उनके निजी गुणो का हाथ है। ये विशेषताएँ उनके आन्तरिक व्यक्तित्व की व्यक्त मूर्त रेखाएँ कही जा सकती हैं। इनका आख्यान चतुरसेन ने स्वय किया है—'अभाव, सेवा, श्रम, विद्रोह, वेदना, कल्पना, विवेक और सयम।'

अभावों मे पला साहित्यकार

चतुरसेन ने अभावो का सामना बचपन से ही किया था। जब उन्होंने होश

---

१. डॉ० शुभकार कपूर—आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य, पृ० २५।

सम्भाला, तभी से आजीवन अभाव का वे अनुभव करते रहे। वे एक निर्धन परिवार के सदस्य थे। विद्यार्थी-जीवन में वे वर्षों तक तीन रुपया मासिक पर निर्वाह करते रहे। उनके पिता उनकी रोगिणी माता के लिए समय पर ठीक पथ्य और औषध भी न जुटा पाते थे। आवश्यकता होने पर चतुरसेन के पिता उन्हें पड़ोसियों से उधार माँग लाने को भेजते, किन्तु वे वहाँ से प्रायः इन्कार लेकर लौटते। उन दिनों यह अभाव उन्हें विशेष नहीं खला, पर बाद में उसने एक स्थायी पीड़ा चतुरसेन के मन में भर दी। इस पीड़ा ने उन्हें स्वावलम्बी बना दिया। चिकित्सा-कार्य करते हुए उनकी शरण में आए अनेक अभावग्रस्त रोगियों का दुःख-दर्द देखकर वे पसीज उठते थे। यही दीनों के प्रति दुःख-दर्द करुणा और आवेग का रूप धारण कर उनके उपन्यास-साहित्य में व्यक्त हुआ है।

चतुरसेन के जीवन में ऐसे भी अवसर आए, जब लाख-पचास हज़ार रुपये एक-एक दिन में उनके हाथ आए। किन्तु परिस्थितिवश अभाव स्थायी रूप से गया ही नहीं। वे उदारतावश अधिक खर्च करते रहे अथवा जुए आदि तक में भी रुपया गँवाते रहे। वास्तविक कारण यह है कि वे अन्तरात्मना साहित्यकार थे। व्यक्ति का साहित्यकार और चिकित्सक एक साथ रह पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। वे सच्चे साहित्यकार एवं समाजचेता होने के कारण अन्त में चिकित्सा-कार्य को छोड़ बैठे। नियमित आय न होने से जीवन-पर्यन्त अभाव उनके पीछे पड़ा रहा। इसी अभाव की पूर्ति के लिए पैंसठ वर्ष की आयु में भी उन्हें लिखना पड़ा। पत्नी जब चाय-चीनी खत्म होने की घोषणा करती हुई अनुकूल उत्तर की आशा में खड़ी उनका मुँह ताकती थी, तो उन्हें बगलें भाँकनी पड़ती थी। पत्नी की ओर देखकर हँस तो देते थे, पर शर्म से पलकें झुका लेते थे।

चतुरसेन के जीवन में अभाव केवल आर्थिक ही नहीं था। पारिवारिक जीवन में सन्तान की कमी उन्हें सदा खलती रही। प्रत्येक मनुष्य गृहस्थ-जीवन में सन्तान की कामना करता है, परन्तु उन्हें ६३ वर्ष की आयु तक सन्तान-सुख प्राप्त न हुआ। बाहर भी, साहित्य क्षेत्र में उन्हें बहुत बार उपेक्षित होना पड़ा। वे उद्बुद्ध कलाकार थे। अनेक समारोहों में अपने से बहुत छोटे साहित्यकारों को सम्मानित और स्वयं को उपेक्षित देखकर उनके मन को आघात पहुँचता और वे विद्रोही बनते गये।

मानवीय संवेदना का लेखक

चतुरसेन ने सेवा-भाव पिता से विरासत में प्राप्त किया। उनके पिता ने

निरन्तर, चौदह वर्ष तक उनकी रोगिणी माता की प्राण-पण से सेवा की थी। उस भावना की गहरी छाप चतुरसेन के हृदय-पटल पर अंकित हो गई। घर की निर्धनता की स्थिति में परिश्रम की आवश्यकता थी। चतुरसेन बचपन में ही परिश्रमी रहे। विद्रोह की भावना उनमें अनेक कारणों से उत्पन्न हुई। उनके पिता कट्टर आर्यसमाजी होने के कारण समय-समय पर सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन उग्रता से करते थे। साथ ही, चिकित्सक होने के नाते रईसों, धनवानों, राजा-महाराजाओं के अन्तःपुरों में प्रवेश पाने पर, उन्होंने वहाँ व्याप्त अनीति, अनाचार और कुत्सा का नग्न रूप देखा था। ऐसी सामाजिक अव्यवस्था के प्रति उनका भावुक मन विद्रोह कर उठा था। धन, धर्म, समाज और राजनीतिक सत्ता के बोझ के नीचे दबे दलित-वर्ग की पीड़ा के प्रति आकुल सहानुभूति धीरे-धीरे चतुरसेन के तरुण रक्त में समा गई।

प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर चतुरसेन ने भयानक महामारी, इन्फ्लुएंजा और प्लेग के दिनों में प्रतिदिन दो-तीन सौ नर-नारियों को भीषण यन्त्रणाओं में छटपटाते हुए मृत्यु का ग्रास बनते देखा था। उन्हें ऐसे लोगों के प्रिय जनों के क्रन्दन आर्तनाद को अति निकट से देखने-सुनने का अवसर मिला था। चतुरसेन जैसे तरुण के लिए, इतने नर-नारियों का, नित्य प्राण बचाने के भगीरथ प्रयत्नों के बावजूद, शरीरान्त कोई साधारण बात न थी। इससे चतुरसेन की आत्मा आहत हो उठी। वे स्वयं १०५ डिग्री के ज्वर में रहकर रात दिन एक के बाद दूसरे साघातिक रोगियों को देखते और उपचार करते थे। कोई-कोई मृत्यु तो अतिशय भयानक, हृदय विदारक तथा मर्मान्तक पीड़ा देने वाली होती थी। इस अनुभव से प्रभावित होकर चतुरसेन ने पहला उपन्यास 'प्लेग विभ्राट्' लिखा। फिर तो ऐसी आँखों-देखी घटनाओं के फलस्वरूप उनके संवेदनशील मन की कल्पना सक्रिय हो उठी। अब उनके जीवन में अभाव, सेवा, श्रम एवं विद्रोह के साथ वेदना तथा कल्पना का समावेश हो गया।

इन्हीं दिनों चतुरसेन पर राजनीतिक प्रभाव पड़ा। इससे पहले वे जाति-वादी थे। छुआछूत का भी उन्हें कुछ विचार था। किन्तु इन्हीं दिनों बम्बई में उनका परिचय हाजी मुहम्मद अल्लारखिया शिवाजी से हुआ। उन दिनों राष्ट्रवाद, देश-भक्ति और हिन्दुत्व चतुरसेन की विचारधारा के केन्द्र थे। हाजी साहिब के घनिष्ठ सम्पर्क में आने पर वे हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव तथा राष्ट्रीयता पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगे। इससे पहले वे भारत में मुसलमानों को आक्रान्ता तथा हिन्दुओं को भारत की सन्तान समझते थे। अब उन्होंने इन विचारों में मानव-समस्याओं का अन्त न देखकर, राष्ट्र-भक्ति और देश-भक्ति से भी ऊपर उठने का निश्चय कर लिया। फलस्वरूप उनकी चेतना मानव-प्रेम

पर जा टिकी। अब उन्होंने अपने साहित्य में मानवतावाद पर लिखने का निश्चय कर लिया। 'धर्मपुत्र' में उनका यही निश्चय प्रतिफलित हुआ है। मानव-वेदना, हास्य, जीवन और संघर्ष के चित्र तो वे खींचते ही थे। परिणामतः 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास' तथा 'बहते आँसू' आदि उपन्यास भी वे लिख ही चुके थे। उनकी अन्तर्दृष्टि में अब यह भावना समा गई कि उन्हें सच्चे साहित्यकार के नाते हिन्दी के महाप्रांगण में नये महत्तर काल के मानव की महान् सत्ता, जगत् की सत्यता, मानवता, विश्वबन्धुत्व कला और विज्ञान का एकीकरण तथा मानव को अभय विचरण प्रदान करने वाले साहित्य की रचना करनी चाहिए। उन्होंने इस विचारधारा को अपने उपन्यासों द्वारा मूर्तरूप देने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। 'वय रक्षाम', 'सप्रास, सोना और खून', 'मोती', 'शुभदा' तथा 'ईदो' जैसे उपन्यासों की रचना उसी का परिणाम है।

उद्दीप्त अहं का धनी कलाकार

आत्म-सम्मान तथा अक्खड़पन चतुरसेन के व्यक्तित्व में प्रबलरूप में थे। ऐसे प्रबुद्ध कलाकार का स्वाभिमानी होना तो समझ में आ सकता है किन्तु अक्खड़पन की पृष्ठभूमि पर विचार करना आवश्यक है। समाज द्वारा पूर्ण सम्मान न मिलना इसका एक कारण है। उन्होंने अपनी जीवनी में अनेक बार इस ओर संकेत भी किया है। दूसरे, इस अक्खड़पन के लिए उनकी पारिवारिक परिस्थितियाँ भी बहुत कुछ उत्तरदायी हैं। उन्होंने एक नहीं, एक के बाद एक, कुल चार विवाह किए, किन्तु फिर भी उन्हें आशानुरूप जीवन सुख उपलब्ध नहीं हुआ। उनके अनेक विवाह कराने का प्रश्न भी विचारणीय है। प्रत्येक मनुष्य में सन्तानेच्छा प्रबलतर होती है। वास्तविकता यह है कि तीन पत्नियों के निधन होने तक उनके यहाँ कोई सन्तान नहीं हुई। अतएव वे इतने विवाह करवाने के लिए विवश हुए। चौथे विवाह के बाद कन्या जन्म को उन्होंने आत्मकहानी में एक जगह विधि-विडम्बना कहा है। उनका विचार था कि साठ वर्ष की आयु के पश्चात् कन्या-जन्म दैव द्वारा उनके साथ किया उपहास है। इसके अतिरिक्त कामुक-प्रवृत्ति उनके अनेक विवाह कराने का कारण हो सकती है। कुछ भी हो, जीवन के आरम्भिक काल में अनुभूत आर्थिक कठिनाइयों तथा विषम परिस्थितियों ने उनके मानस को आहत अवश्य कर दिया था। इसीलिए उनके हृदय पर कुण्ठा का साम्राज्य हो गया। यही कुण्ठा धीरे-धीरे उन्हें अक्खड़ बनाती गई। चतुरसेन ने इस अक्खड़पन को अपने 'अहं' की संज्ञा दी है। उन्होंने आत्मकहानी में लिखा है—'स्वीकार करता हूँ कि सोलह

माने महवादी हूँ, साथ ही यह भी निवेदन करूँगा कि महवादी ही सही साहित्यकार कहा जा सकता है।"[1]

चतुरसेन का आत्म-सम्मान अनेक अवसरों पर अपनी पूर्ण गरिमा के साथ प्रकट भी हुआ है। लाहौर के डी० ए० वी० कालेज मे कठिनाई से प्राप्त आयुर्वेद के सीनियर प्रोफेसर की नौकरी को वे इसलिए छोड आए, क्योंकि प्रिंसिपल के कमरे में जाकर हाजिरी के रजिस्टर पर हस्ताक्षर करने पडते थे। दो-चार मिनट की देरी होने पर ऐसा मालूम होने लगता था कि प्रिंसिपल सारे प्राणों से उन्हे ही देख रहा है। इसी प्रकार उन्होंने 'रहीम-समारोह' का निमन्त्रण यह कहकर अस्वीकार कर दिया था—'ऐसे इन समारोहो मे निश्चित रूप से दूल्हा राष्ट्रपति और हम साहित्यकार बाराती रहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति आपको धेले का तीन बना रहे हैं। क्या आप यह नही सोचते ? मैं आपके नियोजित ऐसे समारोहो मे आऊँ और पांच-सात रुपया टैक्सी मे खर्च करूँ, सिर्फ दर्शक बनने के लिए, ऐसा बेवकूफ नही हूँ।'[2]

चतुरसेन का अक्खड़पन मात्र निजी 'अहं' की तुष्टि का हेतु न होकर समस्त साहित्यकार-समाज के सम्मानार्थ था। एक अवसर पर 'धर्मयुग' के सम्पादक को फटकारते हुए उन्होंने लिखा है—'साहित्यकार फक्कड है। वह साहित्य रचता है, सौन्दर्य की सृष्टि करता है। सो आपके चाँदी के टुकडों के लिए नही, जो आप अपनी समझ मे अनुग्रह करके जब तब भेज देते हैं, जितना जी मे आया, उतना। साहित्यकार भूखा है तो इसका यह मतलब नही कि वह कदन्न भी खा सकता है। उसकी भी एक शान है और उसकी वह शान आपकी उस किराये की कुर्सी की शान से, जिस पर बैठ कर आप साहित्यकार को जुलाहा समझते हैं, बहुत भारी है।"[3]

चतुरसेन की यह शान न राज्यपालों के सामने कम हुई और न ही देश के प्रधानमन्त्री के सामने। एक बार वे उत्तरप्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी से यथाविधि समय लेकर मिलने गये। उन दिनो मुंशी जी नैनीताल के राजभवन में ठहरे हुए थे। चतुरसेन डाँडी मे बैठकर वहाँ पहुँचे तो द्वारपाल ने डाँडी बाहर ही छोड देने का आग्रह किया। आप तत्काल बोले—'नियम गवर्नर मुंशी के होंगे, पर हमे तो गवर्नर मुंशी से मिलना ही नहीं।' तब उन्होंने डाँडी वाले से कहा—'डाँडी नीचे रख दो'

१. आचार्य चतुरसेन— मेरी आत्मकहानी' (आत्मनिवेदन), पृ० ग।
२. वही, वही, पृ० ५४७।
३. वही, वही, पृ० ५८५।

जितने समय के लिए हमे मुशी जी ने बुलाया है, हम उतने समय यही द्वार पर बैठे रहेंगे और फिर लौट जायेंगे।' प्रधान द्वारपाल यह सुनते ही चकराया। उसने मुशी जी के निजी सचिव को फोन किया और उसने मुशी जी को सब हाल सुनाया। मुशी जी ने कहा—'द्वार खोल दो और उन्हें डाडी पर ही आने दो।'[१]

इसी प्रकार एक बार अमृतसर मे साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के अवसर पर अपनी उपेक्षा और ससद् अध्यक्ष मावलकर की अति प्रतिष्ठा देखकर उन्होंने अपने भाषण में कहा—'मावलकर जी की बारात मे आकर बहुत प्रसन्नता हुई। दूल्हा तो सुन्दर है ही, बारात भी खूब सजी है और प्रबन्ध भी शानदार है, पर साहित्य रूपी दुलहिन इस धूम-धाम म ऐसी दब गई कि छुईमुई-सी घूघट म लिपटी दबी बैठी है, कही दिखाई नही देती।'[२]

अपराजेय उपन्यासकार

चतुरसेन ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति 'वैशाली की नगरवधू' स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधान-मन्त्री प० जवाहरलाल नेहरू को 'ओ ब्राह्मण !' के नाम से सम्बोधित कर बडे व्यग्य-भरे शब्दो के साथ समर्पित की थी। इसमे सरकार द्वारा साहित्यकारो की उपेक्षा की भी शिकायत थी। कुछ दिनो के बाद उन्हें प्रधान मन्त्री के निजी सचिव का पत्र मिला, जिसमे उनसे पूछा गया था—'आपने बिना पूछे प्रधान-मन्त्री को समर्पण क्यों किया ?' उत्तर मे चतुरसेन ने लिखा—'मैंने प्रधानमन्त्री को अपने कई वर्षों के परिश्रम का फल दिया है, उनसे कुछ माँगा नही। इस तरह मैं दानी हूँ, भिखारी नही कि पूछता फिरूँ, कुछ लेना है क्या ? फिर भी नेहरू को मेरा समर्पण पसन्द न हो तो उनसे कहना कि पुस्तक का यह पन्ना फाड दें।'[३]

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार ऐसा उग्र और अक्खड व्यक्ति मुँहफट अधिक किन्तु हृदय से निष्कपट होता है। यह बात चतुरसेन के व्यक्तित्व पर खरी उतरती है। अतएव उनके व्यक्तित्व का कोमल पक्ष स्पृहणीय है। वे स्वय को जीवन और ससार से नितान्त निस्सग मानते थे। उनम एक प्रकार की अजीब प्रकार की मिलनसारी की आदत थी। स्वभाव से वे मनमौजी और

---

१ कन्हैयालाल मिश्र—एक कड़वा साहित्य (सा० हिन्दुस्तान), १७ अप्रैल, १९६०, पृ० ५।

२ वही, वही, पृ० ६।

३ वैशाली की नगरवधू, मुखपृष्ठ (समर्पण)।

हँसमुख थे। उन्होंने शौकीन तबियत पाई थी। उनके यहाँ प्राय महफिल जमी रहती थी। उसमें साहित्य की फुलझड़ियाँ छूटती रहती थी।

अपने घर से बाहर भी वे अनेक महफिलों मे, विशेषत गाने-बजाने की महफिलो मे जाते रहते थे। जोधपुर प्रवास के समय एक गणिका-गायिका से इनका घनिष्ठ सम्पर्क हुआ। उसके जीवन से प्रभावित होकर उन्होंने तुरन्त 'गणिका-सस्था' का निर्माण कर डाला। इस सस्था की मुख्य गणिका से उनका काफी समय तक पत्र-व्यवहार भी चलता रहा।

उनके मनमौजी स्वभाव का अनुमान इस बात से लगता है कि साहित्य सेवा की 'सनक' मे उन्होने चिकित्सा-व्यवसाय से होने वाली आय को लात मार दी। उन्ही के शब्दों मे इसका उल्लेख यो है—'सन् १९३६ मे मैंने प्रैक्टिस छोडी। तब मेरी ३०००) रुपये मासिक की प्रैक्टिस थी। मुलाकात की फीस लेता था। एक बार श्री पुरुषोत्तमदास टडन को भी मुझसे मिलने के लिए तीन दिन प्रतीक्षा करनी पडी थी।'[1]

चतुरसेन को साहित्य तथा प्रैक्टिस मे से एक काम चुनना था। उन्होंने साहित्य को चुनना अधिक समीचीन समझा। किन्तु ऐसा करने से नियमित आय सर्वथा बन्द हो गई। फिर भी इस बात का उन्हे दुःख न था। वे 'इच्छा-दरिद्र पुरुष थे और वे अपनी साहित्य-सम्पदा से सर्वथा सम्पन्न।' इस स्थिति का चित्रण स्वय उनकी लेखनी से इस प्रकार हुआ है—'कारोबार मेरा सब चौपट है। आमदनी का अल्लाह बेली है। दस रुपये भी समय पर जुटा सकूँगा, इसका भरोसा नही है। कभी मैंने पचास पचास हजार का जमा-खर्च इन्ही हाथो से किया था। पर तब तक मैं साहित्य-सम्पदा से सम्पन्न न हो पाया था। साहित्य ने आज मुझे भूखों मार डालने के किनारे डाल दिया है। परन्तु जहाँ तक सुख का प्रश्न है, आनन्द का हिसाब-किताब है, मैं कह सकता हूँ कि न राजा, न महाराज, न बादशाह, न शाहनशाह, न बीते युग के सम्राट्, न आज के युग के राष्ट्रपति उस आनन्द का एक कण प्राप्त कर सके या कर सकते हैं, जो मैं अपनी लेखनी से स्याही बखेरने मे करता हूँ।'[2] चतुरसेन के इस व्यक्तित्व की झलक उनके उपन्यासो मे देखी जा सकती है।

जन्मजात साहित्यकार

चतुरसेन जन्मजात साहित्यकार थे। उनके मन मे सृजन-शक्ति की लहर

---

[1] आचार्य चतुरसेन—मेरी आत्मकहानी, पृ० ५३१।

[2] वही, वही (आत्मनिवेदन), पृ० ख।

आती थी और वे लिखने बैठ जाते थे। उनकी आत्म-प्रेरणा ने ही उनसे दो सौ से ऊपर छोटी-बड़ी रचनाएँ लिखवा कर हिन्दी-साहित्य भंडार की अभिवृद्धि कराई है। उन्होंने शरीर विज्ञान, चिकित्सा-शास्त्र, समाज-शास्त्र, साहित्य-समालोचना एवं इतिहास-सम्बन्धी अनेक ग्रन्थों की रचना की है। पर उनकी अन्तरात्मा का वास्तविक प्रकाशन उनकी कथा कृतियों, विशेषकर उपन्यासों मे प्रकट हुआ है। संसार का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार बनना उनका स्वप्न था, अतएव उनका उपन्यास-साहित्य शास्त्रीय ज्ञान-भंडार से लेकर उर्वर कल्पना की हरी-भरी फसलों तक फैला हुआ है। उसमे प्रादेशिक इतिहास तथा व्यक्ति चरित्र के इतिवृत्त से लेकर विश्व-इतिहास तक का विस्तार है। इतना ही नहीं, उनके कथा-साहित्य मे वैदिक काल की धुंधली झलकियों के साथ हमारे आँखों-देखे समयों और घटनाओं का वृत्तान्त भी है। 'सोना और खून' में समग्र विश्व की मानवता के इतिहास को देखने और अंकित करने का उनका प्रयास अनूठा है।

यहाँ देखना यह है कि चतुरसेन की इस विपुल कथा-सामग्री की पृष्ठभूमि क्या है? और उनकी लेखन-प्रक्रिया का मूल शक्ति स्रोत क्या है? उत्तर स्पष्ट है कि उनका अपना जीवन, व्यापक अध्ययन, गहन चिन्तन-मनन और व्यावहारिक अनुभव—ये सभी तत्व अन्ततोगत्वा उनके जीवन के अभिन्न अंग हैं। अतः 'साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है' यह उक्ति उनके उपन्यासों पर चरितार्थ होती है।

चतुरसेन के प्रारम्भिक उपन्यासों मे उनका समाज-सुधारक रूप दृष्टिगत होता है। वे हृदय से साहित्यकार, व्यवसाय से चिकित्सक थे। उनसे मनुष्य-शरीर का ही नहीं, उसकी आत्मा का, उससे समाज का कोई भी दोष गुप्त नहीं रह पाया था। उन्होंने समाज के दोषों को बहुत निकट से देखा-परखा था। समाज के दूषण देखकर वे तड़प उठे थे। एक स्थान पर आत्मकहानी मे उन्होंने स्वयं लिखा है—"मैं मनुष्य की पीड़ा नहीं सह सकता। खासकर स्त्रियों और बच्चों पर मेरा बड़ा मोह है। उनके दुख-दर्द को देखते ही मैं आपे से बाहर हो उठता हूँ। सुलगने लगता हूँ तो कलम उठाता हूँ। फिर वह कलम नहीं, दुधारा खाण्डा हो जाता है। मैं आगा-पीछा नहीं सोचता, चौमुखी मार करता हूँ।"[1] उनका यह कथन उनके उपन्यासों के नारी पात्रों के सम्बन्ध में खरा उतरता है।

---

१. आचार्य चतुरसेन—मेरी आत्मकहानी, पृ० ३२०-२१।

नारी-जीवन का चितेरा उपन्यासकार

चतुरसेन इतने विवाहों के कारण विभिन्न विचारधारा की पत्नियों के संसर्ग से नारी-स्वभाव को अच्छी तरह समझ सकने में समर्थ हुए होंगे। उनके साहित्य में अनेक रूपों की नारियों का पाया जाना इस तथ्य का प्रमाण है। अपने अनेक उपन्यासों की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने बताया है कि किस प्रकार उनके अधिकांश उपन्यासों की रचना के पीछे किसी न किसी नारी का करुण क्रन्दन छिपा हुआ है। ऐसे उपन्यासों में से 'हृदय की परख', 'हृदय की प्यास' और 'बहते आँसू' का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। यहाँ 'आत्म-दाह' तथा ऐसे अन्य प्रमुख उपन्यासों के सम्बन्ध में बताना आवश्यक समझा जा रहा है। 'आत्मदाह' की रचना में चतुरसेन ने अपनी पत्नी की करुण मृत्यु और अपने दूसरे विवाह के समय की मन स्थिति को भी प्रेरक माना है। उनका कथन है—'पत्नी का देहान्त हो गया, बहुत भारी आघात था, केवल जीवन पर नहीं, मानस पर, विचारधारा पर। अब पीड़ा मेरी सम्पूर्ण चेतना को आक्रान्त कर गई। उसने मेरी कलम को गहराई में उतार दिया।'[1] 'आत्मदाह' में द्वितीय विवाह होने पर सुधीन्द्र की जिस मानसिक स्थिति का चतुरसेन ने चित्रण किया है, वह वास्तव में उनकी अपनी ही है।

'अपराजिता' में चतुरसेन ने उस नारी को जागृत होते और अपने अधिकारों की रक्षा के लिए जूझते दिखाया है, जिसे उसने अपने पास-पड़ोस में पुत्री, बहिन और माँ के रूप में सदा त्याग-तपस्या करते देखा था और जिसे समाज में निर्दय पति द्वारा अकारण प्रताड़ित होते पाया था। उनका कथन है—'बचपन में मैंने माता की निरीह-असहाय अवस्था देखी। अपने परिजन, पास-पड़ोस की स्त्रियों की दुरवस्था को देखा। मेरी आँखें खुल गईं और नारी की भावुकता और पीड़ा मेरे अंग-अंग में प्रवेश करती गई। तब से अब तक बहुत बार मुझे उनके लिए आँखों का पानी बहाना पड़ा। इस बीच गहन वनों से होकर जीवन पार करना पड़ा। परन्तु वह नारी, जो हृदय में बैठी सो बैठी, आँसू में भरी हुई, दर्द से कराहती हुई, निराशा से लाचार, असहाय।'[2]

चतुरसेन ने धन-सम्पदा के ढेरों के नीचे दबी नारी की कराह को सहृदयता तथा संवेदनशीलता से सुना तथा 'गोली' में उसे वाणी प्रदान की। वे कहते हैं—'यह मत समझिये कि चम्पा ('गोली' की नायिका) कोई कल्पित मूर्ति है। यह एक सजीव स्त्री है, जिसकी वाणी में साठ हजार नर-नारी बोल रहे

---

१. आचार्य चतुरसेन—वातायन, पृ० २४।

२ आचार्य चतुरसेन—अपराजिता—उत्तप्त अलकरण, पृ० क ग ग।

हैं, जिनका मुँह शताब्दियों से सिया हुआ था, जिनके मुखो पर नही, आत्मा पर भी गुलामी के ताले जड़े हुए थे। आज उसका मुँह खुला है तो राजा महाराजाओं के टूटे हुए सिंहासन भी चीत्कार कर उठे हैं।"[1]

यही पर्याप्त नही, चतुरसेन ने भारत की विधवा, दासी, देवदासी, वेश्या आदि अनेक प्रकार से पीड़ित नारियों का चित्रण कर, और उनके उदात्त चरित्रों को उभार कर भारतीय रूढ़ियों के प्रति विद्रोह तथा आदर्श एवं मर्यादा की रक्षा का सफल प्रयास किया है।

प्रौढ रचनाएँ

'सोमनाथ' तथा 'वयं रक्षाम' को चतुरसेन ने अपनी तप साधना का प्रतिफल माना है। वे कहते हैं—'काय-क्लेश को तप की पूताग्नि में होम दिया, तब देवता के दो वरदान पाए—'सोमनाथ' और 'वयं रक्षाम'। मेरे नेत्र गए, स्वास्थ्य गया, जीवन की सन्ध्या को अन्धकार मिला, पर मैं घाटे मे नही रहा, दो-दो वरों से सम्पन्न हो कर।"[2]

चतुरसेन जीवन के अन्तिम क्षणों तक आहत किन्तु अपराजित योद्धा की भाँति जीवन मे सघर्ष करते रहे। उनकी आत्म-कहानी की आरम्भिक पंक्तियाँ उनके अन्तिम जीवन की सही झलक प्रस्तुत करती हैं—"मैं एक आहत किन्तु अपराजित योद्धा हूँ। अपने चिर-जीवन में मैंने सब कुछ खोया है—पाया कुछ भी नहीं। मैंने एक भी मित्र जीवन मे नही उत्पन्न किया। आज जीवन की सन्ध्या मे मैंने अपने को सर्वथा एकाकी, असहाय और निस्सग अनुभव करता हूँ। मेरी दशा उस मुसाफिर के समान है, जो दिन-भर निरन्तर मजिल काटता रहा हो, और अब निर्जन राह ही मे सूर्य अस्त हो गया हो, वह बेसरोसामान थककर राह के एक वृक्ष के सहारे रात काटने पड गया हो, और मजिलों दूर अपने घर मे बिछी सुखद, दुग्ध फेन सम शय्या की, सन्ध्या की भाँति स्निग्ध पत्नी की, और फूल के समान सुन्दर अपने पुत्र की केवल कल्पना मात्र कर रहा हो।"[3]

चतुरसेन का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनके व्यक्तित्व में तीक्ष्णता और आवेग के साथ अक्खड़पन का समावेश था। यह सब उनकी पारिवारिक परिस्थितियों एव समाज द्वारा उनकी उपेक्षा वृत्ति के कारण था। सन्तान का

---

१. आचार्य चतुरसेन—गोली—सिंहासन चीत्कार कर उठे, पृ० १।
२. वैशाली की नगरवधू (दूसरे सस्करण की भूमिका), पृ० ६।
३ आचार्य चतुरसेन—मेरी आत्मकहानी, पृ० १।

जीवन के अन्तिम वर्षों में होना भी इसका अन्यतम कारण कहा जा सकता है।

समाज में नारी-दुर्दशा के कारण वे विशेष रूप से व्यग्र रहते थे। साहित्य में वे लौह-लेखनी के धनी थे। वे ऊपर से रूखे, पर हृदय से कोमल थे।

जीवन-संघर्षों ने उन्हें आजीवन स्वस्थ एवं परिश्रमी बनाये रखा। वे जातीयता से राष्ट्रीयता, राष्ट्रीयता से मानववाद की ओर प्रवृत्त होते गये। अभाव उनका जीवन-साथी रहा। फिर भी उनमें आत्म-बल की मात्रा कम नहीं हुई।

(ख) चतुरसेन के उपन्यासों की प्रामाणिक तालिका तथा उनके उपन्यासों के कथातन्तुओं के प्रकाश में विवेच्य नारी-पात्रों की उद्भव-प्रक्रिया

आचार्य जी के उपन्यासों की संख्या

आचार्य चतुरसेन के सम्पूर्ण साहित्य का विवरण उनकी 'आत्म-कहानी'[1] के अन्त में एक परिशिष्ट के अन्तर्गत दिया गया है। इसका प्रकाशन आचार्य जी के स्वर्गवास के उपरान्त सन् १९६३ में 'चतुरसेन-साहित्य-समिति ज्ञानधाम शाहदरा, देहली,' द्वारा हुआ है। इसमें उल्लिखित उपन्यासों की संख्या २६ है। इनमें से दो उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' और सोना और खून' अनेक खंडों अथवा भागों में विभक्त हैं। 'आत्म-कहानी' में दी गई सूची के अनुसार आचार्य जी के दो उपन्यास 'मोती' और 'ईदो' अपूर्ण ही थे, उन्हें आचार्य जी के अनुज श्री चन्द्रसेन ने उनके मरणोपरान्त पूर्ण करके प्रकाशित करवाया है। इसके अतिरिक्त 'सोना और खून' के जो खंड इस समय उपलब्ध हैं, वे अपने आप में पूर्ण होते हुए भी आचार्य जी के वक्तव्यानुसार अपूर्ण समझने चाहिए, क्योंकि उनका विचार इसे पचास खंडों और दस भागों में पूर्ण करने का था, परन्तु इसके दो भाग (बारह खण्ड) ही प्रकाशित हो पाये थे कि मृत्यु ने उनके हाथ से लेखनी छीन ली।

इन २६ उपन्यासों के अतिरिक्त आचार्य जी के नाम से तीन अन्य उपन्यास भी प्रकाशित हैं। ये हैं—'मुमदा', 'खून और खून' तथा 'अपराधी'। इनमें से 'मुमदा' 'सोना और खून' का ही एक अंश है। इसे पृथक् रूप में प्रकाशित किया गया है। 'खून और खून' भारत-विभाजन की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसका 'कुछ अंश' आचार्य जी ने स्वयं लिखा था, शेषांश उनके अनुज चन्द्रसेन

१　आचार्य चतुरसेन—मेरी आत्मकहानी, परिशिष्ट।

द्वारा जोड कर इसे पूर्ण रूप दिया गया है। 'अपराधी' की रचना स्थिति भी यही है। 'आत्मकहानी' के परिशिष्ट में इसके प्रारम्भिक पाँच परिच्छेद इस सूचना के साथ दिये गये हैं—'सन् १९१५ में आचार्य जी ने पहला उपन्यास 'अपराधी' लिखा। परन्तु यह उपन्यास प्रकाशित नहीं हुआ। लिखकर रखा रहा। अब खोजने पर इस उपन्यास के आरम्भ के कुछ पृष्ठ मिले।'[1] उन कुछ पृष्ठों से आचार्य जी के अनुज श्री चन्द्रसेन ने 'कथा-सूत्र' ग्रहण कर इसे पूर्ण उपन्यास का रूप दे दिया है। इस प्रकार आचार्य चतुरसेन के प्राप्त प्रकाशित उपन्यासों की संख्या बत्तीस हो जाती है। इनके अतिरिक्त उन्होंने एक अन्य उपन्यास 'प्लेग विभ्राट्' भी सन् १९१७-१८ में लिखा था।[2] 'आत्म-कहानी' के परिशिष्ट में दिये गये विवरण के अनुसार 'यह उपन्यास पुस्तक रूप में प्रकाशित भी हुआ था, परन्तु इसकी कोई प्रति अब उपलब्ध नहीं है। उपन्यास के केवल प्रारम्भिक कुछ अंश ही हस्तलिखित रूप में मिले हैं।'[3] ये अंश चार परिच्छेदों में 'आत्म-कहानी' में दिये गये हैं। इनमें कोई कथा-सूत्र उपलब्ध नहीं होता। जो पात्र आए हैं वे सभी पुरुष हैं। नारी पात्रों का नितान्त अभाव होने से यह उपन्यास हमारे आलोच्य विषय से असम्बद्ध है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों [illegible] है। उनकी विधिवत् सूची प्रस्तुत है—

क्रम सं०	उपन्यास	[illegible]	प्रथम प्रकाशन
१	हृदय की परख	हिन्दी रत्नाकर कार्यालय, बम्बई	१९१८
२	हृदय की प्यास	[illegible] पुस्तक माला, लखनऊ	१९३१
३.	पूर्णाहुति (खवास का ब्याह)	"	१९३२
४	बहते आँसू (अमर अभिलाषा)	साहित्य-मंडल, दिल्ली	१९३३
५	आत्म दाह	"	१९३४
६	नीलमणि	साहित्य मंडल पटना	१९४१
७	वैशाली की नगरवधू (दो भाग)	गौतम बुक डिपो, दिल्ली	१९४८
८.	नरमेध	चौधरी एंड सन्स, वाराणसी	१९४९
९	देवांगना (मन्दिर की नर्तकी)	"	१९५१

---

१. आचार्य चतुरसेन, मेरी आत्मकहानी, पृ० ३८१।

२ वही, वही, पृ० ३९७।

३. वही, वही, पृ० ३९७।

क्रम सं०	उपन्यास	प्रकाशक	प्रथम प्रकाशन
१०.	रक्त की प्यास (हरण-निमन्त्रण)	चौधरी एण्ड सस, वाराणसी	१९५१
११.	दो किनारे	,,	१९५१
१२	अपराजिता	आत्माराम एड सन्स, दिल्ली	१९५२
१३.	अदल-बदल	चौधरी एड सन्स, वाराणसी	१९५३
१४.	आलमगीर	शारदा प्रकाशन, भागलपुर	१९५४
१५.	सोमनाथ	स्वय प्रकाशित	१९५४
१६.	धर्मपुत्र	,,	१९५४
१७.	वय रक्षाम (दो भाग)	,,	१९५५
१८	गोली	राजहस प्रकाशन, दिल्ली	१९५७
१९.	सोना और खून १-४	,,	१९५८
२०.	आभा	हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली	१९५८
२१.	उदयास्त	राजपाल एड सन्स, दिल्ली	१९५८
२२.	लाल पानी	जय प्रकाशन, वाराणसी	१९५९
२३.	बगुला के पख	राजपाल एड सन्स, दिल्ली	१९५९
२४.	खग्रास	प्रभात प्रकाशन, दिल्ली	१९६१
२५.	सह्याद्रि की चट्टानें	,,	१९६१
२६.	बिना चिराग का शहर	अजन्ता पाकेट बुक्स, दिल्ली	१९६१
२७.	पत्थर युग के दो बुत	राजपाल एड सन्स, दिल्ली	१९६१
२८.	मोती	,,	१९६१
२९.	ईदो	,,	१९६२
३०.	शुभदा	हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी	१९६२
३१.	खून और खून	नवयुग प्रकाशन, दिल्ली,	१९७०
३२.	अपराधी	सुमन पाकेट बुक्स, दिल्ली	प्रथम सस्करण

इन बत्तीस उपन्यासों के नारी-पात्रों का अध्ययन प्रस्तुत प्रबन्ध में किया गया है। इनमे से भी केवल उल्लिखित सूची के प्रथम २७ उपन्यास मूलत: आचार्य जी द्वारा पूर्णरूप मे लिखे गये हैं। अन्तिम पाँच उपन्यास या तो उनके किसी पूर्ववर्ती उपन्यास का अश हैं (जैसे शुभदा) या उनके अनुज द्वारा पूर्व प्राप्त अपूर्ण सामग्री के आधार पर पूर्ण किये गये हैं। प्रस्तुत अध्ययन मे उन्हें भी गृहीत कर लिया गया है, क्योंकि साहित्य-जगत् मे उनका प्रचलन आचार्य जी के नाम मे है और उनमे चित्रित नारी-जीवन उनके पूर्वोक्त सत्ताईस उपन्यासों मे प्राप्त सामान्य प्रवृत्तियों के अनुकूल है।

आचार्य चतुरसेन के कतिपय उपन्यासों का प्रकाशन उनकी मृत्यु (१०

फरवरी सन् १९६१) के पश्चात् भी हो रहा है। इतना ही नहीं, उनके अनुज श्री चन्द्रसेन ने उनके कई उपन्यासों को नाम-परिवर्तित करके प्रकाशित करवा दिया है। उदाहरणत 'लालकिला' या 'लालकिले की चौखट' नाम से 'आलमगीर,' 'रानी कुंवर बाई' नाम से 'अपराधी' का प्रकाशन किया गया है। इस तथ्य को स्वयं उनके अनुज श्री चन्द्रसेन ने अपने एक पत्र में इन पंक्तियों के लेखक के समक्ष स्वीकार किया है।[1] स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन की मृत्यु के पश्चात् उनके नाम से प्रकाशित परिवर्तित नाम वाले उपन्यासों को शोध की सामग्री में सम्मिलित करना साहित्यिक ईमानदारी नहीं है। अत इस शोध प्रबन्ध में उन्हीं उपन्यासों को लिया गया है जो प्रामाणिक रूप से आचार्य चतुरसेन के नाम में ज्ञात एवं प्रकाशित हैं। इन उपन्यासों के कथातत्वों के प्रकाश में विवेच्य नारी-पात्रों की उद्भव-प्रक्रिया पर हम विचार करेंगे।

(१) 'हृदय की परख'—इस उपन्यास में नारी पुरुष के अवैध सम्बन्धों से उत्पन्न सन्तान के जीवन की समस्या का चित्र है। मूर्देव अपनी पत्नी, शारदा की अपेक्षा शशिकला के प्रति अधिक आसक्त है। शशिकला एक कन्या को जन्म देती है। उसका नाम सरला रखा जाता है। सरला के युवती होने पर उसके पालनकर्ता लोकनाथसिंह का युवा-पुत्र सत्य उसकी ओर आकृष्ट होता है। सरला की उधर रुचि न होने के कारण वह घर छोड़ जाती है। रेल में उसका परिचय सुन्दरलाल से होता है। इसी के माध्यम से वह शारदा और शशिकला से भी मिलती है किन्तु सरला शशिकला का वास्तविक माता के रूप में परिचय पाकर भी उसकी नितान्त अवहेलना करती है। शशिकला यह आघात न सह सकने के कारण मर जाती है।

उधर सरला विद्याधर से विवाह करना चाहती है परन्तु विद्याधर उसके वर्ण संकर सन्तान होने के कारण वंश-गौरव-वश सहमत नहीं होता। सरला विक्षिप्त-सी होकर सत्य के पास पुन लौट आती है। वहीं उसकी मृत्यु हो

---

१. 'लाल किले की चौखट' यदि आपने पढ़ ली है तो वही 'लाल किला' है। 'आलमगीर' में यह सब कथानक है। अतः शोध-कार्य की दृष्टि से 'लालकिला' या 'लालकिले की चौखट' या 'आत्मपीड़ा' पढ़ना व्यर्थ और अनुपयोगी है।

'अत अब आप इन उपन्यासों को न पढ़ें।' 'वैसे मैंने आपको जो पुस्तक सूची पहले दी थी, वही आपके मतलब की है और आप उस पर कार्य कर भी रहे हैं। अन्य नवीन पुस्तक कोई नहीं है। आप तो उसी सूची के आधार पर अपना कार्य निबटाइए।—चन्द्रसेन, दिल्ली, ६,३,७२।

जाती है।

इस उपन्यास मे उल्लेखनीय तीन नारी-पात्र हैं—सरला, शारदा और शशिकला। तीनो किसी न किसी रूप मे पुरुष की वासना-वृत्ति से पीडित हैं। सरला मे नारी के सभी सहज गुण विद्यमान हैं किन्तु उसके जन्म का कटु प्रसग उसका जीवन विषाक्त कर देता है। उसके जीवन में दो युवक आते हैं, सत्य और विद्याधर। दोनो उससे अपनी इच्छापूर्ति चाहते हैं, किन्तु प्रत्युत्तर मे उसके नारी-सुलभ अधिकारो को नितान्त अस्वीकार कर देते हैं।

शारदा सरला जैसी मझधार मे डूबने वाली नाव न होकर भी पुरुष की कामुकता के कारण जीवन-सागर मे एकाकिनी बहने के लिये छोड दी जाती है।

शशिकला की स्थिति इन दोनो की अपेक्षा अधिक विषम है। वह किसी की अकशायिनी बन चुकी है पर पत्नीत्व के गौरव से वचित है। वह माँ है पर अपनी पुत्री को अपनी सन्तान नही कह सकती।

(२) 'हृदय की प्यास'—पुरुष को नारी के रूप के साथ उसके हृदय की भी परख होनी चाहिये। सुखी गार्हस्थ्य का मूल आधार पत्नी का रूप ही नही, उसकी मर्यादाशीलता, उदारता और समर्पण भी अपेक्षित है। सुखदा ऐसी ही नारी है। वह पति, प्रवीण, की सेवा मे निरन्तर रत है किन्तु उसके द्वारा उपेक्षित और प्रताडित होती है। प्रवीण अपने मित्र भगवती की पत्नी पर आसक्त है। वह सयोगवश उसे अपने साथ ले आता है और कई दिनो तक दोनो इकट्ठे रहते हैं। सुखदा फिर भी मन मे कोई मालिन्य नही लाती। इसी बीच रहस्योद्‌घाटन होता है कि इन दोनो का स्नेह भाई-बहिन का है। प्रवीण अकस्मात् रुग्ण हो जाता है। रोग-शय्या पर पडे-पडे वह सुखदा की सेवा-तत्परता से प्रभावित होता है। परिणामस्वरूप प्रवीण तथा सुखदा मे स्नेह यथावत् स्थापित हो जाता है।

यहाँ तीन प्रकार की नारियाँ हैं। सुखदा आदर्श पत्नीत्व की द्योतक है। भगवती की बहू निरीह और भोली नारी के रूप मे चित्रित है। सुखदा की सास (प्रवीण की माँ) पुत्रो और पुत्रवधुओ के सुखमय जीवन को सर्वस्व मानने वाली वृद्धा है।

सुखदा व्यक्तित्व प्रधान नारी है। वह आत्म-लीन और अन्तर्मुखी होने के कारण पति के अनुचित आचरण पर ध्यान नही देती। भगवती की बहू मे स्वतन्त्र-बुद्धि न होने पर भी उसकी सरलता और निरीहता भीषण पारिवारिक सकट का शुभ समाधान करने मे सहायक सिद्ध होती है।

(३) 'पूर्णाहुति'—इसमे पृथ्वीराज चौहान एव सयोगिता के प्रेम, सयोगिता के अपहरण और उन दोनो के विवाह का प्रसग है। मुहम्मद गोरी के ऐतिहासिक आक्रमण का प्रसग भी उपन्यास मे है।

संयोगिता इसमें प्रमुख नारी पात्र है। यह मध्यकालीन सामन्ती परिवार की रमणी है और भीषण विपत्तियों तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी पति को स्वयं वरण करने के अधिकार का उपयोग करती है। उपन्यास 'रासो' शैली का गद्यरूप होने के कारण संयोगिता का चरित्र रोमाण्टिक, कल्पना-मण्डित, सौन्दर्य तथा प्रेममय क्रीडा कलाप में ओत-प्रोत है।

(४) 'बहते आंसू'—इसकी मूल-संवेदना विधवा-समस्या है। लेखक ने छः विधवाओं की दशा का चित्रण भिन्न-भिन्न सामाजिक परिस्थितियों में किया है। इनमें भगवती की व्यथा-गाथा सर्वाधिक करुण है। वह हरगोविन्द से प्रवंचित की जाकर 'गर्भवती विधवा' के रूप में समाज की कुत्सा का ग्रास बनती है। नारायणी, सुशीला और मालती तीनों बाल विधवाएँ हैं। नारायणी भगवती की बहिन है। लेखक ने अन्त में इन तीनों का आर्य-समाज पद्धति से पुनर्विवाह दिखाकर समस्या का समाधान किया है। इससे पूर्व ये तीनों किसी न किसी लम्पट पुरुष की वासना की लपटों से झुलसती दिखाई गई हैं। अभागिन कुमुद जीवन भर वैधव्य के आदर्श नियमों को पालती है। बसन्ती भी भगवती के प्रवंचक हरगोविन्द की लम्पटता की चरम सीमा का उदाहरण प्रस्तुत करती है।

उपन्यास का अन्त सन्तान की माँ बनने की असह्य अन्तर्वेदना से पीड़ित भगवती के दुःखद अवसान के साथ किया गया है।

यहाँ छः विधवा नारी-पात्र हैं—भगवती, नारायणी, कुमुद, सुशीला, मालती और बसन्ती। इनमें से नारायणी, सुशीला और मालती वे नारियाँ हैं जो पति या पत्नी शब्द के व्यावहारिक बोध से पूर्व ही विधवा हो जाती हैं। परिवार और समाज के व्यंग्य-बाण ही इन्हें छलनी नहीं करते, बल्कि ये स्वेच्छाचारी लम्पटों की वासनाग्नि में होम होती हैं। अन्त में पुनर्विवाह द्वारा इन्हें सुख की साँस मिलती है। कुमुद किंचित् वय प्राप्त विधवा है। यह पति-साहचर्य का प्रत्यक्ष अनुभव कर काल की क्रूरता-वश वैधव्य का अभिशाप पाती है। लेखक ऐसी विधवाओं में आदर्श साध्वी होने की अपेक्षा रखता है। भगवती और बसन्ती दोनों हरगोविन्द की लम्पटता से जीवन विषावत बना लेती हैं। भगवती का चित्र बहुत करुण है। वैधव्य में सन्तानोत्पत्ति की अन्तर्वेदना उसका अन्त ही कर देती है।

उपन्यास में सासें, ननदें, पड़ोसिनें और गृहिणियाँ स्वयं नारी के प्रति सहानुभूति रहित तथा हृदयहीन हैं। लेखक का लक्ष्य यह स्पष्ट करना है कि स्वयं नारी ही नारी के बन्धन और कष्टों से मनोविनोद की सामग्री प्राप्त करती है।

इस उपन्यास में शिक्षिता लेडी डाक्टर, नर्स आदि आधुनिक युग की नारियां विवेक और सेवाभाव का परिचय देती हैं। ये संस्कार विधवा सुशीला के चरित्र में भी पनपते दिखाये गये हैं। वह राजा साहब की हत्या के अपराधी और अपने सतीत्व के रक्षक, प्रकाश, की मुक्ति के लिये वायसराय के पास एक 'डेपूटेशन' ले,जाने का आयोजन करती है।

(५) 'आत्मदाह'—इसमें नारी-जागरण की सजीव झाँकी है। इसका नायक सुधीन्द्र है,। उसकी पहली पत्नी माया की मृत्यु के उपरान्त आगत दूसरी पत्नी सुधा सुशिक्षिता और स्वाधीनता-संग्राम में पति के समान बढ़-चढ़कर भाग लेने वाली जागरूक महिला सिद्ध होती है। सुधीन्द्र के संयुक्त परिवार और ससुराल के चित्रण के अन्तर्गत कई नारियों का चरित्र आया है। इनमें सुधीन्द्र की माँ, बहिनें, कमला, इन्दु और सालियां, राधा और यशोदा प्रमुख हैं। सुधीन्द्र का जीवट विलक्षण है। यह स्वाधीनता आन्दोलन में जेल यात्रा और काले पानी का दण्ड पाता है। अन्त में, सुधा की मृत्यु, फिर सुधीन्द्र का काले पानी से लौटना, उसका पागल बनकर सुधा की स्मृति में यहाँ वहाँ भटकना, जीते-जी आत्म-दाह का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

यहाँ माता, सास, बहिन, बहू, साली, जेठानी, देवरानी, विधवा, सधवा और वेश्या जैसे अनेक नारी रूप आते हैं। सुधीन्द्र की माँ आदर्श माता और सास है। वह सुधीन्द्र की दूसरी पत्नी सुधा को जी-जान से प्यार करती है। कमला और इन्दु सुधीन्द्र की स्नेही बहनें हैं तो राधा और यशोदा सुधा की। सुधा आदर्श पत्नी, आदर्श भाभी और आदर्श जेठानी है। सुधीन्द्र और सुधा की माताएँ, सुधीन्द्र की छोटी बहिन इन्दु तथा स्वयं सुधा आदर्श साध्वी, सधवाएं हैं। सुधीन्द्र की बड़ी बहिन कमला एक आदर्श विधवा है। वह 'वैधव्य को भाग्य' मानकर पुनर्विवाह अस्वीकार कर देती है।

उपन्यास में सुधीन्द्र के अनुज राजाराम की पूर्वपत्नी भगवती कर्कशा, फूहड़, दुर्विनीत तथा विघटन प्रवृत्ति की नारी दिखाई गई है। वह बात-बात पर सास की ताड़ना करती है। पति को भी वह सास के विरुद्ध भड़काती रहती है। सुधा राजनैतिक और सामाजिक जागृति की सूचक रूप में चित्रित है। वह उत्सर्ग की सजीव मूर्ति और गान्धीवादिनी है, पति के साथ जेल-यात्रा की यातनाएँ भोगती है। सुधीन्द्र की अनुजा इन्दु पतिपरायणता का चरम आदर्श है। वह लम्पट और डाकू बन्दी पति को आभूषण तक बेचकर मुकदमा लड़कर मुक्त कराती है।

रामदुलारी वेश्या वर्ग के जीवन की तत्कालीन स्थिति का परिचायक नारी पात्र है। विधवा सरला ब्राह्मण-कन्या है। वह सेवा-परायण तथा सच्चरित्र

है।

(६) 'नीलमणि'—इसमे नारी-मनोविज्ञान का सूक्ष्म विश्लेषण है। नायिका नीलमणि अंग्रेजी शिक्षा-सभ्यता के वातावरण मे मुक्त प्रेम तथा स्वच्छन्द विहार को जीवन का सर्वोच्च अधिकार मान बैठती है। पूर्व-अपरिचित युवक महेन्द्र से विवाह हो जाना वह सर्वथा महत्त्वहीन समझती है। अपने बालमित्र विनय से उसकी इतनी आत्मीयता है, मानो वही जीवन-सहचर है। पितृ-गृह मे पति की उपेक्षा और ससुराल मे भी पति-विरक्ति उसकी अहम्मन्यता की द्योतक हैं। महेन्द्र की सहिष्णुता तथा विनय की प्रेरणा अन्त मे उसे गार्हस्थ्य-जीवन की ओर उन्मुख करती हैं। इससे नीलमणि पति के साथ एकात्म हो अन्त सघर्ष की पीडा से मुक्त होती है।

यहाँ नीलमणि और उसकी माता प्रमुख नारी पात्र हैं। नीलमणि का चरित्र लेखक की नारी-चेतना के विकास का सूचक है। 'किसी युवती से बिना पूछे ही एक अपरिचित पुरुष के साथ उसे बाँध दिया जाता है', वह समाज के इस विधान से बहुत व्यथित है। पर इसमे अपरिचित पुरुष कोई प्रतिकूल या प्रतिद्वन्द्वी व्यक्ति नही है बल्कि उसका शुभ चिन्तक पति है। वास्तव मे यहाँ स्वय नारी ही अपने मन की विरोधी प्रवृत्तियो के पाटो मे ग्रस्त है। उसे उनसे मुक्ति एक पुरुष की प्रेरणा से ही मिलती है। इस प्रकार यह उपन्यास नारी-समस्या के नितान्त आधुनिक सन्दर्भ की व्याख्या है। अन्त मे नीलमणि गार्हस्थ्य जीवन मे लौट कर मनस्तोष अनुभव करती है।

(७) 'वैशाली की नगरवधू'—यह बृहदाकार उपन्यास दो भागो मे है। अम्बपाली बलपूर्वक नगरवधू बनाये जाने के अन्याय का कई प्रकार से विरोध करने पर भी स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करने मे असफल रहती है। उसके प्रणय-ससार मे राजकीय विधान बाधक बनते हैं। वह प्रेमी हर्षदेव तथा अन्य अज्ञात कुलशील युवक सोमप्रभ को गणराज्य के विरुद्ध उकसाकर अपने प्रेम की हत्या का प्रतिशोध लेना चाहती है। वह मगध-सम्राट् बिम्बसार को प्रेम-पाश मे बाँध वैशाली के विरुद्ध आक्रमण से मगध और वैशाली दोनो का ध्वस करा देती है। फिर भी, उसकी मनोकामना अतृप्त ही रहती है। अन्त मे तथागत भगवान् की शरण मे भिक्षुणी बनकर वह सन्तुष्टि-लाभ करती दिखाई गई है।

इस मुख्य कथा के साथ कतिपय उपकथाएँ हैं। उदाहरणार्थ, बिम्बसार की ओर से वैशाली के विरुद्ध लडने वाले अम्बपाली के सहोदर युवक सोमप्रभ, नागकन्या कुण्डनी और चम्पा की राजकुमारी चन्द्रभद्रा के उपकथानक है।

उपन्यास मे सात प्रमुख नारीपात्र हैं। लेखक ने प्राचीन बौद्ध ग्रन्थो के अध्ययन द्वारा यह अनुभव किया कि जैसे उन दिनो नारी पुरुष की क्रीतदासी

और उसके द्वारा निर्मित विधि-विधानों के अधीन रहने को विवश थी, वैसे ही आधुनिक युग में नारी पुरुष के स्वार्थ-पिंजर में बन्द है। उसके विरुद्ध चेतावनी के रूप में जिस महिमामयी और अपूर्व शक्तिमण्डित नारी-पात्रों की उन्होंने सृष्टि की, अम्बपाली उसी का प्रतिफल है। कुण्डनी का असाधारण चरित्र बौद्ध और गुप्त युग की विषकन्याओं की याद दिलाता है। वैशाली में यही भद्रनन्दिनी वेश्या के रूप में अनेक व्यक्तियों को अपनी अंगुलि के संकेत पर नचाती है। चन्द्रभद्रा का व्यक्तित्व अनुपम है अतएव सोमप्रभ, कुण्डनी और विदूडभ उससे प्रभावित होकर हर स्थिति में इसके संरक्षण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। रोहिणी और मातंगी के चरित्र उपन्यास की कथावस्तु के विकास में सहायक हैं। कलिंग-सेना समाज के अन्याय के विरुद्ध नारी विद्रोह की सूचिका है। मल्लिका कौशल देश की महारानी है, फिर भी स्वत्व-हीन है।

(८) 'नरमेघ'—'नारी एकनिष्ठ प्रेम, क्षमा, त्याग और सहिष्णुता की मूर्ति होते हुए भी जब अपने प्रति होने वाले अन्याय की चरम सीमा देखती है तब उसके प्रतिशोध की ज्वाला के सम्मुख ज्वालामुखी पर्वत भी नहीं टिक पाते।'[1] यह इस उपन्यास का कथ्य है। नगर के प्रसिद्ध एडवोकेट-जनरल गोपाल दास समाज के सम्भ्रान्त नागरिक होकर भी अज्ञातनामा परस्त्री के प्रति आसक्त हैं। वह स्त्री गृहस्थ है। परन्तु इन दोनों के योग से एक अवैध सन्तान का जन्म होता है। वह स्त्री अन्तत: कलंकिता होने में प्रतिशोध-भावना वश गोपालदास की हत्या कर पुलिस को आत्म-समर्पण कर देती है। अदालत से उसे मृत्यु-दण्ड मिलता है। माँ को बचाने का प्रयत्न उसका अवैध पुत्र त्रिभुवनदास ही करता है। उसका विवाह नगर के प्रतिष्ठित सर शादीलाल की पुत्री किरण से निश्चित होता है। त्रिभुवनदास के पालक पिता ठाकुरदास मरते समय उसके अवैध सन्तान होने का रहस्योद्घाटन कर सारी सम्पत्ति किरण के नाम लिखते हैं तथा त्रिभुवन को उससे विवाह न करने का आदेश भी दे जाते हैं। इस पर त्रिभुवन सम्पत्ति और विवाह से किनारा कर लेता है किन्तु फिर भी किरण अपने माता पिता की उपेक्षा कर उसी से विवाह करती है।

यहाँ तीन प्रमुख नारी पात्र हैं—किरण, अज्ञातनामा स्त्री और लेडी शादीलाल।

किरण अन्धरूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह का शंख फूंकने वाली विवेक और निर्भीकता-युक्त युवती है। वह मनुष्य के जन्म-गत प्रवादों की अपेक्षा प्रत्यक्ष आचरण को महत्व देती है। अज्ञातनामा स्त्री पहले तो वासना ग्रस्त होकर

१. नरमेघ, पृ० १।

परपुरुष को आत्मसमर्पण कर देती है, फिर उसे वांछित प्रतिदान न मिलने के प्रतिशोधवश उसकी हत्या कर डालती है। लेडी शादीलाल तथा-कथित कुलीनता, सभ्रान्तता और भौतिक सुख-सम्पदा को सर्वस्व मानने वाली नारी है।

(९) 'रक्त की प्यास'—पाटन (गुजरात) का महाराज अजयपाल अपने अनुज कुमार भीमदेव को सेनापति के रूप में कलंगी देकर आबू के परमार के पास भेजता है। वहाँ परमार की राजकन्या इच्छनीकुमारी और भीमदेव परस्पर अनुरक्त हो जाते हैं। भीमदेव-द्वारा प्रणय-याचना करने पर इच्छनीकुमारी उसे जुझाऊ सोलंकी भटो के साथ आबू आकर अपने हरण का निमन्त्रण देती है। हरण के लिये उद्यत भीमदेव को रोककर उसकी भाभी नायिकादेवी उसके लिये परमार के पास पुत्री-याचना का सदेश भेजती है। परन्तु परमार अपनी पुत्री केवल छत्रधारी राजा को देना चाहता है। राज्य के जन-विद्रोह मे अजयपाल मारा जाता है। उसके बाद संयोगवश भीमदेव छत्रधारी नरेश बन जाता है। वह वीर सामन्तो समेत आबू पहुँचता है, पर इस समय तक इच्छनीकुमारी का वाग्दान पृथ्वीराज से हो चुकता है। इस विकट परिस्थिति मे इच्छनीकुमारी सामाजिक मर्यादावश पृथ्वीराज को प्रश्रय देती है और भीमदेव से लौट जाने का आग्रह करती हुई अपने सतीत्व की रक्षा की याचना करती है। इस पर भीमदेव लौट तो जाता है पर पृथ्वीराज का सदा के लिए वैरी बन जाता है।

यहाँ राजपूती आन का चित्र अंकित है। इस झूठी आन की बलिवेदी पर भारत के स्वतंत्र राज्य समाप्त हो गए तथा विदेशियो के आगमन का मार्ग खुल गया।

उपन्यास मे चार प्रमुख नारी पात्र हैं—इच्छनीकुमारी, महारानी नायिकादेवी, लीलावती (भीमदेव की पत्नी) और राजमाता पद्मावती। इच्छनीकुमारी राजपूती गरिमा की सजीव मूर्ति है। वह नारी-मर्यादा का आदर करती हुई भीमदेव को शरीर-स्पर्श की अनुमति नही देती। महारानी नायिकादेवी राजपूती मान के साथ विवेकवती भी है। लीलावती भीमदेव की सौम्य, समर्पिता पत्नी है। इसे पति के सुख-दुःख मे ही अपना सुख-दुःख प्रतीत होता है। राजमाता पद्मावती मध्ययुगीन नायिकाओं की विलासिता, अविवेक और अधिकारी प्रवृत्ति की प्रतिनिधि नारी है। अजयपाल की उसके प्रति असीम अनुरक्ति और जनहित के प्रति घोर विरक्ति ही जन-विद्रोह का कारण बनती है।

(१०) 'देवांगना'—इस उपन्यास मे मध्ययुगीन देवदासी-प्रथा की आड मे होने वाले सामाजिक अनाचार का चित्रण है। काशी के विशाल 'विराट्' नामक मन्दिर की देवदासी मंजु इसकी कथा का केन्द्रबिन्दु है। महन्त सिद्धेश्वर शैशव से इसे पालता है परन्तु युवती हो जाने पर उसका शीलभंग करना चाहता है।

नवदीक्षित भिक्षु दिवोदास उसे महत के चंगुल से मुक्ति दिलाता है। वह विक्रमशिला के नगरसेठ धनंजय का इकलौता पुत्र है। दिवोदास और मंजु वहाँ से देशान्तर के लिये प्रस्थान करते हैं। विराट् मन्दिर में गर्हित जीवन व्यतीत करने वाली सौम्य, शान्त महिला सुनयना भी इनके साथ चल देती है। मार्ग में रहस्योद्घाटन होता है कि सुनयना लिच्छविराज की पट्ट राजमहिषी सुकीर्तिदेवी है और मंजु उसकी पुत्री है। काशी-नरेश द्वारा लिच्छविराज के छलपूर्वक मारे जाने से वह नवजात कन्या मंजु के साथ काशीमन्दिर के महन्त की यन्त्रणाओं को मूक भाव से सह रही थी।

सुनयना की प्रेरणा से दिवोदास और मंजु पुन मन्दिर में आ जाते हैं। यहाँ किसी अपराध के कारण मंजु सैनिकों द्वारा बन्दी बना ली जाती है। दिवोदास का सेवक सुखदास मंजु और उसकी माँ को अन्धकूप से मुक्त कराता है। मार्ग में मंजु के पुत्र उत्पन्न हो जाता है। राजसैनिकों के आ जाने से सुनयना दौहित्र समेत बच निकलती है। कुछ समय पश्चात् सभी मिल जाते हैं। अन्त में दिवोदास और मंजुघोषा परस्पर विवाह सूत्र में बँध जाते हैं।

इस उपन्यास में मंजुघोषा और सुनयना दो प्रमुख पात्र हैं। दोनों सामन्ती वर्ग की नारियाँ हैं। ये युग के सामाजिक विधान की आड़ में पनपने वाली स्वेच्छाचारिता का भंडाफोड़ कर उसका सफल विरोध करती हैं। मंजुघोषा का व्यक्तित्व अप्रतिम सौन्दर्य और उच्च आत्मगौरव के संयोग से बड़ा प्रभावशाली बन पड़ा है। वह नारीमर्यादा के संरक्षण में सजग है। सुनयना ममता और त्याग की प्रतिमा है।

(११) 'दो किनारे'—इसमें दो कथा-खण्ड हैं, पहला 'दो सौ की बीवी', दूसरा 'दादाभाई'। पहले खण्ड की नायिका रमाशंकर द्वारा दो सौ रुपये में खरीदी पत्नी मालती है। रमाशंकर की पूर्व-पत्नी मर चुकी है। पहली पत्नी से एक पुत्र (राजीव) भी है। मालती का सहज वात्सल्य राजीव की घृणा को प्रेम में बदल देता है। रमाशंकर यद्यपि हृदय से उसे बहुत चाहता है किन्तु क्रीतपत्नी होने के कारण उसमें कठोरता का व्यवहार करता है। रमाशंकर अपने मित्र रामनाथ की ओर मालती के आकर्षण का आभास पाते ही उसे प्रताड़ित करता है। इससे क्षुब्ध होकर मालती रामनाथ के घर जाकर उसे पत्नी रूप में ग्रहण करने का आग्रह करती है। रामनाथ के उद्यत होते ही रमाशंकर और राजीव वहाँ आ जाते हैं। पति की दीन-दशा और पुत्र की उदासी देख मालती का हृदय बदल जाता है। वह पुन घर लौट कर सुखद जीवन बिताने लगती है।

'दादाभाई' का केन्द्र उत्कट साहसी, निर्भय युवक नरेन्द्र है। जिस अन्यायी और भ्रष्टाचारी अंग्रेज आफिसर से वह 'फर्म' के बिल पास करवाने के लिये

लइन जाता है उसी की पत्नी को असहाय देखकर तुरन्त 'फर्म' के सेफ' से दस हजार रुपय देकर उसकी सहायता करता है। फर्म' के वयोवृद्ध स्वामी जगदम्बा बाबू की पुत्री सुधा को धन मदान्ध कैलाश और रमेश द्वारा फँसाने के षड्यन्त्रों को वह विफल कर उन्हें सकट मुक्त करता है। अन्त मे सुधा उस पति के रूप मे वरण कर लेती है।

उपन्यास के प्रथम कथा खण्ड मे मालती दूसरे मे सुधा प्रमुख नारी पात्र हैं। मध्यवर्गीय परिवार की होते हुए भी दोनों पात्रो की दिशाएँ भिन्न हैं। मालती कठोर व्यवहार सहन न कर नया मार्ग खोजने को विवश होती है किन्तु वह पति और पुत्र के जीवन को रीता देख त्याग और समर्पण का आदर्श प्रस्तुत करती है। सुधा पुरुष के त्याग का सुफल प्राप्त करती है। नरेन्द्र उसे कैलाश और रमेश के चगुल से न छुड़ाता तो उसका नारीत्व विखण्डित हो जाता।

(१२) 'अपराजिता'—इस उपन्यास की नायिका स्वाभिमानिनी और मर्यादा शील युवती राज है। यह पिता गजराज के जातीय सम्मान की रक्षार्थ पूर्व प्रेमी ब्रजराज के प्रणय का उत्सर्ग कर ठाकुर राघवेन्द्रसिंह से विवाह करती है। प्रिय सखी राधा का पाणिग्रहण ब्रजराज से करा कर अपना सारा दहेज उसे दे डालती है। ससुराल में इस बात पर हुए झगड़े को निपटाने के लिए और अपनी अधिकार-प्रतिष्ठा के लिए सत्याग्रह कर देती है। वह दहेज को भी स्त्रीधन सिद्ध करती है। पिता के प्रति कहे ससुर के अपशब्दो को सत्याग्रह के अमोघ अस्त्र से वापिस लिवाने मे सफल होती है। इसमे ग्रामवासी भी पूर्ण सहयोग देते हैं। परन्तु मनोमालिन्य के कारण पति-पत्नी इक्कीस वर्ष पृथक् रहते हैं। पति के मोटर-दुर्घटना मे घायल और नेत्रहीन हो जाने पर स्वस्थ होने तक यह पति-सेवा मे दिन-रात एक कर पुन एकान्त वास ले लेती है।

उधर राघवेन्द्रसिंह गुप्त रूप से अन्य स्त्री को पत्नी-रूप से रखता है। उससे उसका एक पुत्र भी है। राघवेन्द्रसिंह के मदिरा-पान और दुराचार को न त्यागने पर दूसरी पत्नी अपने पुत्र द्वारा सती-साध्वी राज को करुणा-सन्देश भेजती है। अन्त मे राज 'अह' का त्याग कर समर्पण भाव से पति को सन्मार्ग पर ले आती है। दोनों का इक्कीस वर्ष पश्चात् मिलन हो जाता है।

उपन्यास की नायिका राज नारी अधिकारो की रक्षा के लिए साहस, त्याग, बलिदान और आत्म-पीडन की चरम सीमा तक जा पहुँचती है। उसमे सारे समाज को चुनौती देने की क्षमता है। इसे वह सार्थक करके भी दिखा देती है। राधा, रुक्मिणी और राज की सौत अन्य नारी-पात्र हैं। ये राज के नारीत्व की आभा को और उद्दीप्त करने का माध्यम-मात्र हैं।

(१३) 'अदल-बदल'—इस उपन्यास की कथा दो परिवारो मे आकार ग्रहण

करती हुई अन्त मे एक हो जाती है। एक परिवार मे आधुनिकता के स्वच्छन्द वातावरण का प्रेमी डॉ० कृष्णगोपाल क्लबो और पार्टियो मे मस्त रहकर साध्वी पत्नी विमला देवी की घोर उपेक्षा करता है। दूसरे परिवार मे आधुनिका माया-देवी सरल स्वभाव पति मास्टर हरप्रसाद की उपेक्षा कर उन्मुक्त विहार को जीवन रस माने हुए है। डॉ० कृष्णगोपाल और मायादेवी का क्लब मे उत्तरोत्तर बढता हुआ आकर्षण प्रणय-पडाव से होता हुआ विवाह-मजिल तक आ पहुँचता है। किन्तु सुहाग-रात के अवसर पर ही मायादेवी का अन्तर्द्वन्द्व उसे झकझोर डालता है। वह भाग कर पुन पूर्व पति के पास आकर ही शाति की साँस लेती है।

इस उपन्यास मे विमलादेवी और मायादेवी दो पृथक् ध्रुवों के छोरो पर खडी दो प्रमुख नारियाँ हैं। विमलादेवी सरलता तथा सज्जनता की सजीव प्रतिमा है। *मायादेवी वाह्य तडक-भडक मे खोई आधुनिका। मायादेवी के अतस्* की भूख उसे घर से बाहर जरूर ले जाती है किन्तु उसका नारीत्व शीघ्र ही उसकी विकृतियो का दमन करने मे सफल हो जाता है।

(१४) 'आलमगीर'—इसमे आलमगीर उपाधिधारी मुगल सम्राट् औरगजेब की शैशव से देहावसान तक की कथा है। इतिहासकारो की दृष्टि से ओझल मुगलकालीन समाज की अन्त स्थिति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके लेखक ने बाह्य राजनैतिक घटनाओ के पीछे हरम की स्त्रियो के हस्तक्षेप का विशद चित्रण किया है।

मुगल-परिवार मे शाहजादियो की विवाह न करने की प्रथा, बादशाहो की घोर विलासिता, सरदारो और दरबारियों की पत्नियो पर बादशाहो की काम-वासना की जकडन और पिता-पुत्रियो तक मे अवैध यौन-सम्बन्धो की सभावनाएँ ये सब बातें तत्कालीन नारी-दुर्दशा की परिचायिका हैं।

उपन्यास मे बेगम शाइस्ताखाँ और जहाँआरा दो प्रमुख नारी पात्र हैं। रोशनआरा, हीराबाई, जीनत उन्निसा अन्य उल्लेखनीय पात्र हैं। 'हरम' की अन्य सैकडों स्त्रियाँ इनके अतिरिक्त हैं। बेगम शाइस्ताखाँ का चरित्र मर्यादा-मय एव गौरवपूर्ण है। अन्य सभी नारी पात्र प्राय उन दिनो चलने वाले भोग-विलास के अविरल चक्र की कडियाँ मात्र हैं। बादशाह शाहजहाँ की काम-वासना की शिकार अनेक सरदार पत्नियाँ अपने स्वामियो को विद्रोह के लिये भडका कर प्रतिशोध का अवसर उपस्थित करती हैं। बेगम शाइस्ताखाँ इनमें अग्रणी है। कहीं-कहीं शाहशाह की बडी शाहजादी जहाँआरा के क्षुब्ध कथनों से भी थोपे विधानो से पीडित और पुरुष की कामाग्नि मे दहकती नारी की अन्त-र्वेदना फूट पडती है।

(१५) 'सोमनाथ'—इसमे महमूद गजनवी के भारत पर सत्रहवें आक्रमण और सोमनाथ पतन के ऐतिहासिक और राजनैतिक महत्त्व की घटना के पीछे छिपी पुरुष की नारी लालसा को लेखक ने कल्पना-कुशलता से अनावृत किया है। सोमनाथ-मदिर मे निर्माल्य के लिये लाई गई अप्रतिम सुन्दरी 'चौला' पर छद्मवेशी महमूद आसक्त होकर उसका अपहरण करना चाहता है। घटना-स्थल पर उपस्थित पाटन-राजकुमार भीमदेव के रोकने ललकारने पर दोनो मे छिडे द्वन्द्व-युद्ध को गग सर्वज्ञ शात करा देते हैं। गग सर्वज्ञ की उदारतावश मुक्त महमूद पुन आक्रमण कर चौला को ले जाने की लालसा लिये गजनी लौट जाता है।

इधर गग सर्वज्ञ का शिष्य कापालिक रुद्रभद्र चौला का अपहरण करता है। गग सर्वज्ञ और भीमदेव उसे मुक्त करा लेते हैं। इस कारण गुरु शिष्य मे सघर्ष विकराल रूप धारण कर लेता है। महमूद के पुन सोमनाथ पर आक्रमण मे रुद्रभद्र उसकी सहायता करता है। इससे मदिर का विध्वस, गग सर्वज्ञ की हत्या और महमूद की विजय होती है। भीमदेव बच निकलता है। महमूद चौला को नहीं पा सकता। वह अनेक यातनाए सहता हुआ, कच्छ मरुस्थल मे भटकती सेना समाप्त कर, उदात्त रमणी शोभना की कृपा से बचकर स्वदेश लौट जाता है।

भीमदेव परिस्थितियो के विषम-चक्र को पार करता हुआ पाटन का राजा बन चौला को राजमहिषी बनाना चाहता है। राज्य परिवार के विरोध करने पर भी वह चौला को बुलवा भेजता है। चौला हृदय से भीमदेव को समर्पित होकर भी राज्य-मगल-कामना-निमित्त विवाह न कर प्रेमोत्सर्ग कर देती है।

इस उपन्यास मे चौला, शोभना और गगा तीन प्रमुख नारी पात्र हैं। तीनों मे लेखक ने नारीत्व के महान् गुणो को एकत्र कर सजोया है। तीनो मर्यादामयी, आत्म-गौरव-शालिनी और उत्सर्ग-भावना से परिपूरित हैं।

(१६) 'धर्मपुत्र'—हुस्नबानू अपनी अवैध सन्तान को डॉ॰ अमृतराय और अरुणा के हाथों मे सौंपती है। यहाँ वह दिलीप नाम से पल और पढ़ लिखकर आदर्श और कट्टर हिन्दू के रूप में प्रतिष्ठित होता है। 'दिलीप जन्म से मुसलमान है' यह समझते हुए डॉ॰ अमृतराय और अरुणा दिलीप के साथ समाज की एक कुलीन कन्या का विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर देते हैं। उधर माता-पिता द्वारा जाति-च्युत बैरिस्टर राय राधाकृष्ण की विदेश शिक्षिता पुत्री मायादेवी के साथ निश्चित विवाह को दिलीप अपने को उच्चकुलीन हिन्दू मानता हुआ अस्वीकार कर देता है। उस समय स्थिति बडी विकट, मनोवैज्ञानिक एव नाटकीय हो जाती है, जब राय राधाकृष्ण पुत्री मायादेवी को साथ लेकर दिलीप के घर आते हैं तथा दिलीप और मायादेवी का पारस्परिक सहज आकर्षण अनुराग का

रूप धारण कर लेता है। दिलीप अपने संस्कारगत पूर्वाग्रहवश माया को अस्वीकृत करके भी उसके प्रति आकृष्ट है। माया 'विलायत रिटर्न', सुशिक्षिता, स्वाभिमानिनी एवं दिलीप द्वारा अपमानित की जाकर भी, उस पर मुग्ध है। इसी बीच हुस्नबानू इस विकटता को समाप्त करने के लिये दिलीप को उसका वास्तविक परिचय कराती है। दिलीप का संस्कारगत गर्व नष्ट हो जाता है। उसकी आत्मा छटपटाती है। वह गृह त्याग चाहता है परन्तु मायादेवी का स्नेहार्द्र व्यवहार उसके आहत हृदय के लिए अमृतकण सिद्ध होता है। अन्त में दोनों के विवाह के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

इसमें हुस्नबानू, अरुणा और मायादेवी तीन प्रमुख नारी-पात्र हैं। तीनों आधुनिक सम्भ्रान्त वर्ग से सम्बन्धित और नारी के सहज गुणों से भरपूर हैं। हुस्नबानू की अवैध सन्तान होना परिस्थितियों की विषमता का परिणाम है, उसके मर्यादाहीन दुराचरण का नहीं। इसके उपरान्त उसका सारा जीवन त्यागमयी साध्वी नारी का है। अरुणा की उदारता मुस्लिम स्त्री की सन्तान को पुत्रवत् घर में रखकर पालने-पढ़ाने में है। मायादेवी सुशिक्षिता, प्रगतिशील और आत्मसम्मान की मूर्ति है किन्तु इनसे भी अधिक उसमें मानवीय संवेदना है, तभी तो वह जाति और जन्मगत संस्कारों की अपेक्षा पुरुष के हृदय को अधिक महत्व देती हुई दिलीप का वरण करती है।

(१७) 'वयं रक्षामः'—इसका कथानक जगदीश्वर रावण की सप्तद्वीप-विजय से आरम्भ होकर उसके अनन्त वैभव और ऐश्वर्य की झलक दिखलाता हुआ राम द्वारा उसकी पराजय और मृत्यु के साथ समाप्त हो जाता है। लेखक ने इसमें वेद, पुराण, उपनिषद्, दर्शन एवं अन्यान्य इतिहास ग्रन्थों से अनेक कथा-उपकथाएँ लेकर इन्हें अपनी विशिष्ट शैली में प्रस्तुत करके वृहत्तर भारत की समूची सांस्कृतिक चेतना को अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। उसके स्वकथनानुसार—'इस उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं, जिन्हें धर्म के रंगीन शीशे में सारे संसार ने उन्हें अन्तरिक्ष का देवता मान लिया था। मैं इस उपन्यास में उन्हें नर-रूप में आपके समक्ष प्रस्तुत करने का साहस कर रहा हूँ।'[1]

इस उपन्यास में अनेक नारी-पात्र हैं। उनमें से प्रमुख हैं—दैत्यबाला, मायावती, सूर्पणखा, मन्दोदरी, सुलोचना, सीता और मन्थरा। तारा, सरमा, मदालसा, राक्षसी लंका, जयन्ती, सोमदा गौण पात्र हैं। ये सभी प्राग्वेदकालीन

१. वयं रक्षामः, पूर्व निवेदन, पृ० ८।

नारियाँ हैं। उपन्यास में प्रत्येक पात्र का अपना पृथक् व्यक्तित्व है। दैत्यबाला नृत्य-संगीत-कला में निष्णात है। मायावती मर्यादा और सतीत्व रक्षा में अनन्य है। दैत्यबाला अपनी सहृदयता के कारण रावण का आश्रय स्वीकार करती है। मायावती रावण के दुराचरण का प्रतिकार करती हुई उसे अपने पति द्वारा बन्दी बनवाती है। बाद में देवासुर-संग्राम में पति, असुर के मर जाने पर वह रावण को मुक्त करा कर उदारता दिखाती है और स्वयं सती होकर पति परायणता का प्रमाण भी देती है।

सीता और सुलोचना लोकविश्रुत मान्यताओं के अनुसार गौरव, त्याग, पतिपरायणता और मर्यादाशीलता की प्रतिमूर्तियाँ हैं। मन्दोदरी पति के मरणोपरान्त विभीषण की अन्त:पुर-स्वामिनी दिखाई गई है। शूर्पणखा और मन्थरा लोक प्रचलित दूषित स्वभाव का परिचय देती हैं।

(१८) 'गोली'—यह 'चम्पा' गोली की आत्मकथा के रूप में है। महारानी कुवरी के विवाह में यह महाराज को भेंट होती है। इसका रूप-लावण्य महाराजा को सुहागरात में भी परिणीता रानी को छोड़ कर इसके कक्ष में खींच लाता है। पहली बार ही गर्भ रहने पर इसका विवाह 'किसुन' गोले से कर दिया जाता है। चम्पा विवाह-मण्डप के बाद उसका कर-स्पर्श तक भी नहीं कर सकती है। राजा के सहवास से उसकी पाँच सन्तानें होती हैं, पुत्रियाँ उसी जैसी सुन्दर और पुत्र राजा जैसे तेजवान्। परन्तु वे किसुन गोले की सन्तान के रूप में दर दर के टुकड़ों पर पलते हैं। चम्पा के दुर्भाग्य का यहीं अन्त नहीं होता। लालजी खवास की ईर्ष्या और षड्यन्त्र से वह महाराजा का कोपभाजन बनती है। परिणामस्वरूप वह ड्योढ़ियों के नारकीय जीवन को भोगती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय रियासतों के विलय के अवसर पर उस जीवन से इसकी मुक्ति होती है। इस बीच महाराजा और 'पति' किसुन मर जाते हैं तथापि अन्य मानवों की भाँति स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस लेने का अवसर मिलने पर वह प्रसन्न होती है।

इसमें चम्पा और महारानी कुवरी दो प्रमुख नारी पात्र हैं। चम्पा एक ऐसी नारी है जिसकी समता की स्त्री आप संसार के पर्दे पर नहीं ढूंढ सकते। इसका व्यक्तित्व निराला है जीवन निराला है, धर्म निराला है, सुख दुख और संसार निराला है।"[1]

कुवरी महारानी होकर भी जीवन भर महाराजा के कर-स्पर्श का सपना तक न देख सकी। इस विषय में महाराजा से शिकायत करने आए पिता को वह शान्त करके लौटा देती है। वह आहत नारीत्व का अपमान सहकर भी विद्रोह

१. गोली, टूटे हुए सिंहासन चीत्कार कर उठे, पृ० ३

न करके उन्नीस वर्ष तक आत्मपीडन का विलक्षण परिचय देती है। अन्त में मृत्यु उसे इस जीवित आत्मदाह से मुक्ति दिलाती है।

चन्द्रमहल और केसर जैसे अन्य नारी पात्र पुरुष की भोग वासना के उपकरणमात्र हैं।

(१९) उदयास्त —इसमें जन-तन्त्रीय शक्तियों का उदय और सामन्तशाही का अस्त दिखाया गया है। मगनू चमार एक रियासत के राजा साहिब के अमगत अधिकारों को चुनौती देता है। वह राजा साहिब से अपमानित होकर कांग्रेस के समर्थन से उसके विरुद्ध मान हानि का मुकदमा भी लडता है और उसके प्रतिद्वन्द्वी के रूप में चुनाव भी लडता है। मुकदमा हार जाने से राजा साहिब मर जाता है और दोनों वर्गों के संघर्ष का अन्त हो जाता है। क्योंकि राजा साहिब का बेटा सुरेशसिंह उदार दृष्टिकोण के कारण राजा साहिब और मगनू में पहले से ही समझौते के लिए मध्यस्थता करने का प्रयास करता है अत वह मगनू को अपने साथ अपने 'फार्म' पर रख लेता है।

इसमें प्रत्यक्षत कोई प्रमुख नारी पात्र नहीं है। फिर भी लेखक ने कामरेड कैलास जैसे सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्ताओं द्वारा नारी-मुक्ति सम्बन्धी प्रगतिशील विचार दिये हैं, यथा—'स्त्री नाम का प्राणी तो सबसे ज्यादा पीडित वर्ग का मजूर है।'[1] वैसे सुरेशसिंह की पत्नी प्रमिलादेवी पति के उदार विचारों का पूरा साथ देती है। सेठ की पुत्री पद्मा पिता को मजदूरों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित करती दीखती है।

(२०) आभा—आभा डॉ० अनिल की पत्नी और एक पुत्री की माँ है। इसकी प्रणयासक्ति पति की अपेक्षा उसके मित्र रमेश के प्रति है। यह प्रेमावेगवश पति से उसे त्याग कर रमेश के साथ जाने की अनुमति ले लेती है। रमेश के साथ स्वच्छन्द विचरते हुए भी वह पूर्व-जीवन की स्मृतियों के कारण मुक्तभाव से उसे आत्म-समर्पण नहीं कर पाती। इतने ही में वह अपने को गर्भवती जान अज्ञातभय से विह्वल हो जाती है। वहीं वह एक पुत्र को जन्म देती है। अनिल डॉक्टर के रूप में आता है। अन्त में आभा का अन्तर्द्वन्द्व चरम सीमा पर पहुँच उसे पुन पति के पास चले जाने को बाध्य कर देता है।

इसमें इसकी नायिका आभा एकमात्र नारी-पात्र है। इसका अन्तर्द्वन्द्व आधुनिक नारियों की मानसिक उथल पुथल का सूचक है घर की चार-दीवारी से निरत पुरुष की भाँति मुक्त विहार उसका सपना है। आभा अत्याधुनिक प्रगतिशील नारी होकर भी मर्यादा के महत्त्व को अंगीकार करती है।

---

१. उदयास्त, पृ० १६४।

(२१) 'लाल पानी'—इसमे कच्छ प्रदेश के दो स्वतन्त्र राजाओ भीमजी और जाम रावणसिंह के संघर्ष की कथा है। भीमजी का पुत्र जाम हम्मीर, जाम रावणसिंह को मार उसके कुमारों की हत्या के लिए सचेष्ट है। उनका विश्वस्त नौकर छच्छर बूटा उन्हे सुरक्षित बचा ले जाता है। मार्ग म बडे कुमार खगारजी का विवाह ठाकुर जालिमसिंह की पुत्री से और छोटे कुमार सायबजी का विवाह वीरसिंह की कन्या से होता है। गुजरात पहुँच कर इनकी भेंट सिंह की मृगया के लिये आए सकटग्रस्त सुलतान मुहम्मद बेगडा से होती है। कुमार अकस्मात् आकर उसे बचा लेते हैं। पुरस्कार-स्वरूप सुलतान की सैनिक सहायता से वे जाम रावणसिंह पर आक्रमण कर उसे बन्दी बना लेते हैं। बाद मे राज तिलक के समय राव खगारजी रावणसिंह को मुक्त कर देते हैं।

इसमे प्रमुख नारी-पात्रो के रूप मे प्रसगत दोनो कुमारो की पत्नियाँ और सुलतान मुहम्मद बेगडा की बेगम का उल्लेख मिलता है। ये केवल तद्युगीन सामन्ती परिवारो की अनिवार्यता के रूप मे चित्रित हैं।

(२२) 'बगुला के पख'—जुगनू पहले एक विलायती साहब और मेम साहब का कृपा-पात्र बनकर मुन्शी जगनपरसाद के रूप मे ख्यात होता है। परिस्थितियाँ उसे खद्दरधारी काग्रेसी बना देती हैं। वह दिल्ली के प्रतिष्ठित काग्रेसी शोभाराम का आश्रय पा उत्तरोत्तर प्रगति करता हुआ मन्त्री पद तक पहुँच जाता है। इसी बीच शोभाराम के अधिक अस्वस्थ हो जाने से उसे चिकित्सा के लिये मसूरी ले जाया जाता है। वही उसका देहावसान हो जाता है। उसकी निराश्रित पत्नी पद्मा को मन्त्री महोदय की कृपा-प्राप्ति के लिय उसकी वासना से समझौता करने पर बाध्य होना पडता है, परिणाम-स्वरूप वह आत्म-समर्पण कर देती है।

मन्त्री जगनपरसाद की काम-लिप्सा अधिकार-मद के साथ बढती जाती है। राजनैतिक प्रभाववश सम्भ्रान्त परिवार की सुशिक्षित युवती शारदा से उसका विवाह निश्चित हो जाता है। विवाह मण्डप पर अकस्मात् उसके 'जुगनू भगी' होने का रहस्य खुलते ही उसे भागकर जान बचानी पडती है। शारदा का विवाह कभी उसके कृपापात्र और मन्त्री की तुलना म उपेक्षित अध्यापक परशुराम के साथ हो जाता है।

इसमे पद्मा और शारदा दो प्रमुख नारी-पात्र हैं। दोनो एक ढोगी, कामुक और वासना-कीट पुरुष से प्रवचित होती हैं। दोनों मध्यवर्गीय सम्भ्रान्त परिवारो से सम्बन्धित हैं। दोनो का अस्तित्व दो भिन्न नारी-समस्याओ की ओर इगित करता है। पद्मा पति की साधुता का दण्ड भोगने वाली सधवा, बाद म विवश होकर आश्रयदाता को आत्म-समर्पण करने वाली विधवा है। शारदा डॉ० खन्ना को सुशिक्षि ता पुत्री और पिता के वचन का पालन करने वाली मर्यादाशील

युवती है।

(२३) 'खग्रास'—यह शुद्ध वैज्ञानिक उपन्यास है। रूसी तरुण वैज्ञानिक जोरोवस्की पहले पत्नी लिजा को अपनी चन्द्रलोक यात्रा का विवरण सुनाता है, फिर उसे साथ लेकर उत्तरी ध्रुव की यात्रा पर चल देता है। वहीं एक अज्ञान-नामा 'गूढ़ पुरुष' विभिन्न वैज्ञानिक आविष्कारों के शान्ति के लिये प्रयोग में जुटा हुआ है। उसकी पुत्री प्रतिभा भी उसके साथ है। 'गूढ़ पुरुष' की मृत्यु के अनन्तर अन्य भारतीय तरुण वैज्ञानिक तिवारी उसके कार्य को हाथ में लेता है। प्रतिभा का उससे विवाह हो जाता है।

इसमें लिजा, प्रतिभा और रमा उल्लेखनीय नारी पात्र हैं। वैज्ञानिक उपन्यास होने से समूचा विवेचन विज्ञान के वरदान अभिशाप एवं मानव के हिता-हित में उसके उपयोग को लेकर हुआ है। किसी सामाजिक विचार की इसमें कोई विशेष झलक नहीं है। इससे स्पष्ट होता है कि अब नारियाँ पुरुषों की भाँति वैज्ञानिक अभियानों और साहसिक खोजों में भाग लेने लगी हैं। यह नारी के बौद्धिक विकास का परिचायक है।

(२४) 'सह्याद्रि की चट्टान'—इसमें छत्रपति शिवाजी के देश प्रेम, शौर्य, साहस और रण-कौशल की ऐतिहासिक गाथा है। प्रतापी मुगल-सम्राट् औरंगजेब के विरुद्ध शिवाजी के सतत संघर्ष का इसमें चित्रण है। अधिकांश घटनाएँ ऐतिहासिक हैं किन्तु प्रस्तुतीकरण की शैली लेखक की अपनी है।

इस उपन्यास में नारी-पात्र के रूप में केवल शिवाजी की माता जीजाबाई का नाम उल्लेखनीय है। इसके व्यक्तित्व और प्रेरक चरित्र की हल्की सी झलक दृष्टिगोचर होती है। यह शिवाजी की मातृनिष्ठा का द्योतक है। इसका चरित्र इतिहास-सम्मत रेखाओं में अंकित है।

(२५) 'बिना चिराग का शहर'—सुलतान अलाउद्दीन का सरदार मलिक काफ़ूर गुजरात पर आक्रमण कर, राजा को परास्त कर देता है और उसकी पत्नी कमलावती का अपहरण कर सुलतान के पास ले आता है। गुजरात का राजा करणदेव अपनी पुत्री देवलदेवी के साथ देवगिरि के राजा रामचन्द्र की शरण में चला जाता है।

उधर कमलावती अलाउद्दीन की बेगम बनकर पुत्री देवलदेवी को शाहज़ादा खिज्रखाँ के लिए मंगवा भेजती है। मलिक काफ़ूर उसे देवगिरि से अपहरण करता है और उसकी खिज्रखाँ से शादी भी हो जाती है। किन्तु स्वयं मलिक काफ़ूर उससे प्रेम करने लगता है। तभी उसका प्रतिद्वन्द्वी उलगुखाँ देवलदेवी का अप-हरण कर देवगिरि के नये राजा हरपाल की शरण में ले जाता है। मलिक काफ़ूर देवगिरि पर आक्रमण करके उलगुखाँ को मार डालता है तथा राजा की

डौले जी जाल बिछवा डालता है किन्तु देवलदेवी का कोई पता नहीं चलता।

इसमे कलावती और देवलदेवी दो प्रमुख नारीपात्र हैं। दोनो राजपरिवार के सामन्ती वर्ग की नारियाँ हैं। दोनो का उद्देश्य भोग विलास के अतिरिक्त और कुछ प्रतीत नहीं होता। अलाउद्दीन के हरम मे पहुँचते ही उनकी भोग लिप्सा इतनी बढ जाती है कि उनके लिए नारीत्व की मर्यादा या स्वाभिमान का कोई महत्त्व नहीं रहता।

(२६) 'पत्थर युग के दो बुत'—सुनीलदत्त मदिरा सेवी है। उसकी पत्नी रेखा के प्रयास करने पर भी वह व्यसन नहीं छोडता। रेखा पति के उपेक्षाभाव से प्रतिशोध की आग मे तप्त हो उसके मित्र दिलीपकुमार राय की ओर आकृष्ट होती है। इधर सुनीलदत्त पत्नी को बहुत चिन्तित देख सुरा सेवन त्याग देता है, पर रेखा विश्वासघात करके दिलीपकुमार राय को आत्म-समर्पण कर देती है। राय रेखा को ही नहीं, अन्य कई रमणियो को भी भोगलिप्सा की भट्टी मे झोंक चुका है। इसी कारण उसकी पत्नी माया उसके दुराचार से असन्तुष्ट होकर अविवाहित नवयुवक वर्मा के प्रति आसक्त हो जाती है और अपनी पुत्री (लीला) को छोडकर वर्मा के साथ विवाह करके अन्यत्र चली जाती है। उधर रेखा सुनीलदत्त के सम्मुख राय से विवाह की इच्छा व्यक्त करती है। इस पर स्वय सुनीलदत्त द्वारा राय से यह प्रस्ताव करने पर उसका उत्तर है—'तब तो जो-जो औरतें मेरे साथ सोती हैं, मुझे उन सबसे शादी करनी पडेगी।'[1] इस उत्तर से क्षुब्ध सुनीलदत्त राय की हत्या करके मृत्युदण्ड पाता है। रेखा दुराचार का कलक एव वैधव्य का बोझ लिये बेटे के साथ जीवन-भर रोने-तडपने के लिए रह जाती है।

इसमे रेखा, माया और लीला तीन प्रमुख नारीपात्र है। रेखा तथा माया सम्भ्रान्त परिवारो की नारियाँ हैं। दोनो पतियो के आचरण से असन्तुष्ट हो पर-पुरुष गमन का मार्ग अपनाती हैं। दोनो का गन्तव्य भिन्न है। माया अविवाहित नवयुवक से प्रेम करके प्रणय का प्रतिदान पाती है, किन्तु रेखा अविवेकान्ध हो राय जैसे लम्पट को आत्म-समर्पण करती है। लीला एक ऐसी अभागिनी कन्या है जो माता और पिता के दुराचरण की यन्त्रणा को सहती हुई भीतर ही भीतर घुटती रहती है।

(२७) 'सोना और खून'—इसमे विगत पाँच सौ वर्षो मे विदेशियो की भारत लूट का चित्रण करके यह प्रतिपादित किया गया है कि विदेशियो ने यहाँ से सोना प्राप्त करने के लिए भारतीयो का कितना खून बहाया है। सोलहवी शताब्दी से लेकर बीसवी शताब्दी तक के विशाल घटनाक्रम को लेखक ने इसमे

---

१ पत्थर युग के दो बुत, पृ० १७८।

सूत्रबद्ध करने का प्रयास किया है।

यह राजनैतिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास है। इसमें राजनैतिक महत्व के नारी पात्र ही आ सकते थे। ऐसे पात्रों में झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का नाम अग्रगण्य है। उसका व्यक्तित्व आज किसी भारतीय के लिए अपरिचित नहीं। उसका चरित्र राजनीति, शासन एवं स्वाधीनता-संघर्ष में नारियों के महत्वपूर्ण योगदान का ज्वलन्त उदाहरण है। इसके अतिरिक्त मलका बेगम, कुदसिया बेगम, मंगला, कुमारी विक्टोरिया, मेरी स्टुअर्ट महारानी एलिजाबेथ, फ्लोरेंस नाइटिंगेल, सुभद्रा, रानी राजमणि तथा गोमती के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनके चरित्रों से नारी के विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्वों का उद्घाटन होता है।

(२८) 'मोती'—इसका नायक कलकत्ता की एक वेश्या, जोहरा का भाई मोती है। वह बहिन के स्नेह-संरक्षण में पलकर एक सत्यनिष्ठ साहसी और बलिदानी देशभक्त के रूप में उन असंख्य-अनाम युवकों का प्रतिनिधित्व करता है, जिनका सम्पूर्ण यौवन राष्ट्रीय-चेतना के भव्य उद्यान में खाद बन कर समा गया। जोहरा दिल्ली के एक वयोवृद्ध-ऐयाश-नवाब की सहज आत्मीयता से प्रभावित होकर उसी के साथ दिल्ली चली जाती है और यहीं के 'पुराने शहर' की चारदीवारी में उसका तथा उसके छोटे भाई मोती का व्यक्तित्व विकास होता है। कलकत्ता में जोहरा की भेंट एक अद्भुत जीवट के युवक क्रान्तिकारी हंसराज-से हुई थी। उसे मन ही मन वह अपना आराध्य मान चुकी थी। संयोगवश दिल्ली में क्रान्तिकारियों की गतिविधियों के परिणाम-स्वरूप वही हंसराज मोती के माध्यम से पुनः जोहरा के घर शरण लेता है। पुलिस मोती को हंसराज समझकर ले जाती है। अन्त में जोहरा, नवाब की पुत्री नीलम और स्वयं नवाब के सम्मिलित प्रयत्नों से मोती की कारावास से मुक्ति हो जाती है।

इसमें जोहरा और नीलम दो प्रमुख नारी-पात्र हैं। जोहरा परिस्थितिवश 'वेश्या' के आवरण में छिपी एक सौम्य नारी मूर्ति है। मोती में जो साहस, सत्यनिष्ठा और स्वाभिमान है, वह सब जोहरा की प्रेरणाओं का प्रतिफल है। अपने जीवन-धन हंसराज को, *जिसे उसने सच्चे मन से प्यार किया था, देश के* बलि-पथ पर जाते देखकर अपने प्रणय का गला घोंट देना उस जैसी असाधारण रमणी का ही कार्य है। नीलम ढहते सामन्तवाद के खोखले खण्डहर में से उगती नई प्रगतिशील पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती है। वह बूढ़े, ऐयाश और सरकार-परस्त नवाब को भी देशभक्त बनाने में समर्थ होती है।

(२९) 'सुभद्रा'—इस उपन्यास का घटनाक्रम उन्नीसवीं शताब्दी में, बंगाल में गतिमान् समाज-सुधार के आन्दोलनों पर आधारित है। सुभद्रा नामक एक

बालविधवा ब्राह्मण-कन्या को परिजनों द्वारा बलात् अग्नि-चिता में झोंकने से एक अंग्रेज युवक मैकडानल्ड बचा लेता है। शुभदा उस ईसाई सैनिक अधिकारी के घर रहती हुई और यहाँ तक कि उससे विवाह करके भी हिन्दू संस्कारों के प्रति अपनी आस्था अडिग बनाए रहती है। जातीय संकीर्णता, सती प्रथा एवं अन्य रूढ़िवादिता का व्यावहारिक विरोध—यही इस उपन्यास की मूल संवेदना है। राजा राममोहनराय गोपालपाण्डे और मंगल पाण्डे प्रभृति ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के समावेश से कथानक की विश्वसनीयता बढ़ गई है। रानी रासमणि, दासी और गोमती की प्रासंगिक कथाएं क्रमशः हिन्दू समाज की रूढ़िवादिता एवं ईसाई धर्म-प्रचारकों की मानवीय उदारता के पोषण-हेतु प्रस्तुत की गई प्रतीत होती हैं। परोक्षतः सन् १८५७ ईस्वी के सैनिक विद्रोह की पृष्ठभूमि की झलक भी इस उपन्यास में मिल जाती है।

शुभदा रानी रासमणि और गोमती इस उपन्यास के उल्लेखनीय नारी पात्र हैं। तीनों को लेखक ने 'आदर्श भारतीय नारी' की उदात्त मूर्तियों के रूप में चित्रित किया है। शुभदा उदार, विवेकशील तथा प्रगतिशील युवती है। रासमणि एक त्यागमयी, धर्म-परायणा, साध्वी विधवा है। गोमती एक मध्य-वर्गीय वैश्य परिवार की सदा घर की चारदीवारी और पर्दे में रहने वाली सम्भ्रान्त गृहिणी है, किन्तु परिस्थितिवश पति के मर जाने पर, एक ईसाई पादरी की जीवन-संगिनी बनकर जन सेवा का व्रत लेकर वह अकस्मात् अपनी असाधारणता का आलोक फैला देती है।

(३०) **ईदो'**—इसका कथानक द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि पर आधारित है। इसका केन्द्र-स्थल जापान का राजप्रासाद 'ईदो' है। जापान सम्राज्ञी की विवेकशीलता और राष्ट्रीय गरिमा से युक्त राजनीति का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण इसमें हुआ है। उसके रहस्यमय दिव्य व्यक्तित्व से प्रेरित हो, विभिन्न जासूस महिलाओं ने किस प्रकार विश्व की महान् शक्तियों के मुकाबले में जापान का गौरव अक्षुण्ण बनाए रखने का प्रयत्न किया, यह रोचक तथ्य पढ़ते ही बनता है। अन्त में, अमरीकी अणुबम के विस्फोट के परिणामस्वरूप जापान के पतन और सम्राज्ञी की शान्ति-भावना की नीति का चित्रण भी बड़े मार्मिक रूप में हुआ है।

जापान-सम्राज्ञी नागाको के अतिरिक्त इसमें विदेशी राज्य-सत्ताओं से सबंधित अन्य भी अनेक महत्त्वपूर्ण नारी पात्र चित्रित हैं। इनमें से अधिकांश का चरित्र कूटनीतिक घटनाचक्रों के माध्यम से चित्रित हुआ है। मादाम लूपेस्कू, केल, क्लारा एवं यहूदी वीरबाला ब्राचा जैसी ऐसी ही साहसी नारियाँ हैं। इनके आदर्श भारतीय महिलाओं के लिए भी प्रेरणा-दायक हो सकते हैं।

(३१) 'खून और खून'—इसका कथानक यों तो भारत-विभाजन की पृष्ठ-भूमि-रूप मे, लगभग आधी शती के दीर्घ अन्तराल तथा प्राय सम्पूर्ण भारत-क्षेत्र मे फैला हुआ है तथापि इसके तीन सूत्र स्पष्टत पृथक् रूप मे दृष्टिगत होते हैं—प्रथम, बम्बई में पारसी युवती रतन और मुस्लिम-लीगी नेता मिस्टर जिन्ना का प्रणय विग्रह, द्वितीय, एक अनाम ग्राम मे केशव नामक एक भोले युवक के घर और उसके आसपास की घटनाएँ तथा तृतीय, लाहौर, काश्मीर और दिल्ली में बी हमीदन नामक नर्तकी-वेश्या के साथ-साथ घूमता कथा-चक्र। ये तीनो कथा-भाग परस्पर पूर्णत असबद्ध हैं। इनमे से किसी एक को भी मुख्य या गौण कथानक नही बनाया जा सकता। इसके अतिरिक्त ईसा की बीसवीं शताब्दी के समूचे पूर्वार्द्ध मे, भारत-भर मे चलने वाली राजनीतिक गतिविधियों पर आधारित विभिन्न घटनाएँ भी 'भानमती के पिटारे' के ईंट रोडो की भाँति इस उपन्यास मे विद्यमान हैं। इनमे इन्दिरा (गान्धी) के अन्तर्जातीय विवाह और सरोजिनी नायडू के जिन्ना के प्रति असफल प्रणय को भी पर्याप्त प्रमुख स्थान मिला है।

चरित्रविकास और स्त्री-जीवन के वैशिष्ट्य-चित्रण की दृष्टि से इसके नारी-पात्रों मे से केवल रतन, केशव की माँ और बी हमीदन के नाम उल्लेखनीय हैं। रतन नवोदित भारत की प्रगतिशील, कर्मठ और उदात्त चरित्र रमणियों की प्रतिनिधि है। केशव की माँ ग्राम्य-भारत की परम्परा-जीवी साध्वी महिलाओ की सौम्य मूर्ति है। बी हमीदन को व्यवसाय मे पतित किन्तु आचरण से एक आदर्श कर्त्तव्य-परायण और देश भक्त स्त्री के रूप मे चित्रित किया गया है।

इनके अतिरिक्त श्रीमती एनी बीसेंट, सरोजिनी नायडू तथा इन्दिरा (गान्धी) आदि राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रख्याति की नारियो के नाम भी इस उपन्यास मे उल्लिखित हैं।

(३२) 'अपराधी'—इसमे कोई एक भी ऐसा सूत्र नहीं, जिसका सहारा लेकर इसके गहन कथानक-प्रदेश मे प्रवेश प्राप्त कर, इसकी बिखरी घटनाओं को एकत्र सजोया जा सके। गाँव के एक निम्नवर्गीय परिवार के वर्णन से इसका आरम्भ होता है। परिवार मे एक वृद्ध, उसकी पुत्रवधू और पतोहू हैं। उसका निखट्टू पुत्र चोरी का कुछ माल घर में छिपाकर ऐसा लुप्त होता है कि उपन्यास के अन्त में जाकर दिखाई देता है। अब तक उसका बाप मर चुका है, पत्नी तथा पुत्री शहर मे बस कर अनैतिक यौन-व्यापार द्वारा उदर-पोषण मे सलग्न हैं। इस बीच के शताधिक पृष्ठ किसी नारी चन्द्रमुखी के प्रणय, वैधव्य और उसकी पुत्री के 'अनोखे' और 'शानदार विवाह-विवरण' में भरे हुए हैं। आर्य-समाज

की प्रख्यात कार्यकर्त्री रमाबाई के 'आदर्श जीवन' की झलक उपन्यास में देखी जा सकती है।

गुलिया, रानी चन्द्रकुंवरि और रमाबाई इसके उल्लेखनीय नारी पात्र हैं। यद्यपि इनमें से किसी एक का भी क्रमिक चरित्र विकास उपन्यास में चित्रित नहीं हो पाया, तथापि नारी-जीवन के विविध मार्मिक पक्षों के उद्घाटन में इनका पर्याप्त योगदान दिखाई देता है। गुलिया असहाय ग्राम्य-नारियों की विवशता का करुण रूप उपस्थित करती है। चन्द्रकुंवरि अबला नारी की जीवन्त सबलता का मूर्तिमन्त रूप है। रमाबाई का समाजसेविका के रूप में बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में भारत भर में व्याप्त नारी-जागरण के आन्दोलन का प्रतिनिधित्व करती है।

चतुर्थ अध्याय

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रों का वर्गीकरण

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में ११० नारी-पात्र उल्लेखनीय हैं। उनके उपन्यासों के नारी-पात्रों में माँ, सौतेली माँ, पुत्री, पत्नी, बहिन, ननद, भाभी, सौत, जेठानी, देवरानी, सास, पुत्रवधू आदि सभी पारिवारिक रूप दृष्टिगत होते हैं। परिवार की परिधि से बाहर के प्रेमिका, वेश्या, कुट्टनी, दासी आदि रूप भी वहाँ विद्यमान हैं। यदि काव्य-शास्त्रीय परम्परा के आधार पर इन उपन्यासों की नारियों का नायिका-रूप में विश्लेषण करें, तो इनमें तीनों प्रकार की नायिकाएँ—स्वकीया, परकीया और सामान्या विद्यमान हैं। इनके अवान्तर रूप-मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, प्रोषितपतिका, विदग्धा, खंडिता, अभिसारिका, मानिनी, विरहिणी तथा गर्विता आदि रूप भी जहाँ-तहाँ देखे जा सकते हैं।

भारत के इतिहास-क्रम की दृष्टि से विचार किया जाय तो पौराणिक, ऐतिहासिक और आधुनिक—सभी युगों की नारियों के साक्षात्कार का अवसर उनके उपन्यासों में प्राप्त हो जाता है। इस विषय पर आगे विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है।

व्यक्तिगत चारित्रिक वैशिष्ट्य के आधार पर भी प्रायः सभी कोटियों के नारीपात्र इन उपन्यासों में व्याप्त हैं। इन नारियों में कुछ शक्ति, त्याग, उत्सर्ग और मर्यादा की महिमामयी मूर्तियाँ हैं, कुछ भोग-विलास और शरीर-सुख को ही सब कुछ समझने वाली पतिता एवं हीन नारियाँ भी हैं। शिक्षिता-अशिक्षिता, चरित्रवती-चरित्रहीन, सुशील-फूहड़, उदार-प्रचण्ड, स्नेहमयी-ईर्ष्यालु इत्यादि सभी प्रकार के नारी-पात्र आचार्य जी के उपन्यासों में खोजे जा सकते हैं। ये सभी नारी रूप बहिरंग दृष्टि से संबंधित हैं। अन्तरंग दृष्टि से भी बौद्धिकता

प्रधान, जासूस, तर्कशील, विवेकयुक्त, साहसी एवं विद्रोहिणी नारियों के साथ सर्वथा विचार-शून्य, निरीह, विवश और मूक अबलाओं की भी इन उपन्यासों में प्रचुरता है। इन सभी नारी रूपों का अध्ययन विवेचन एक ही क्रम में करना न तो सम्भव है और न ही शोध सीमाओं की दृष्टि से उपयुक्त है। अतः उन्हें अध्ययन-सुविधा के विचार से विभिन्न वर्गीकृत परिधियों में रखकर इनका परखना समीचीन होगा।

वर्गीकरण के आधार

परिवर्तन संसार का अपरिवर्तनीय नियम है। निरन्तर गतिशीलता में ही उसकी चरम गति निहित है। अतः संसार का सर्वश्रेष्ठ प्राणी होने का दावा रखने वाले मनुष्य के जीवन में नित्य नए परिवर्तन के विविध आयाम और गति की अनन्त दिशाएँ दिखाई देती हैं। तदनुसार उनके चरित्र में अनेकरूपता का दिग्दर्शन होना स्वाभाविक है। किंतु जिस प्रकार सागर के विशाल वक्ष पर कहीं तो उत्ताल तरंगों की अनेक-विधात्मक क्रीड़ा दिखाई देती है और कहीं जल नितान्त शान्त और स्थिर प्रतीत होता है उसी प्रकार मानव-समुदाय में कुछ व्यक्ति नितान्त सक्रिय एवं उत्तरोत्तर गतिशील दिखाई देते हैं, और अन्य अनेक जन 'सांचे में ढले मिर्जबन्द' पदार्थों की भांति एक से, स्थिर और तटस्थ बने रहते हैं। नारी-चरित्रों में भी यही स्थिति प्रायः देखी जाती है। इस प्रकार नारी पात्रों के वर्गीकरण का एक आधार 'चरित्रगत स्थिरता अथवा परिवर्तन की प्रवृत्ति' को माना जा सकता है।[1] किंतु यह आधार बहुत स्थूल और अस्पष्ट है क्योंकि 'स्थिर' प्रतीत होने वाले नारी-पात्रों के मनोजगत् में कितनी हलचल रहती है, यह कौन जानता है? इसी प्रकार 'गतिशील' नारी-पात्रों की गतिविधि मात्र शारीरिक अथवा बाहरी सक्रियता तक ही सीमित हो सकती है। उनका मन मस्तिष्क कितना 'जड़' है—यह बात विश्वासपूर्वक नहीं कही जा सकती। डॉ० शशिभूषण सिंहल ने वृन्दावनलाल वर्मा के उपन्यासों में पात्र और चरित्रचित्रण की समीक्षा करते हुए 'चरित्र की विशेषताओं तथा परिवर्तनशीलता' को आधार मानकर दो प्रकार से उनका वर्गीकरण किया है। प्रथम प्रकार के वर्गीकरण में उन्होंने 'सामान्य, वर्गगत या प्रतिनिधि पात्र' एवं 'व्यक्तित्व प्रधान पात्र' नाम से दो वर्ग बताए हैं तथा दूसरे प्रकार के अन्तर्गत 'स्थिर' और 'गतिशील' पात्रों की गणना की है।[2] परन्तु 'स्थिरता और गतिशीलता' एवं

---

१. डॉ० रामप्रकाश, समीक्षा सिद्धान्त, पृ० ११४।
२. डॉ० शशिभूषण सिंहल, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १३६।

'वर्ग' और व्यक्ति' की परिधि के भीतर भी चरित्रों की विविधता एवं अनेक-रूपता की अधिक गहराई और सूक्ष्मता में जाकर खोज की जा सकती है। यह आधार उपन्यासों के सर्वसामान्य पात्रों के विहगम-सर्वेक्षण की दृष्टि से अवश्य ग्राह्य है, किन्तु किसी विशिष्ट उपन्यासकार के नारी-पात्रों के विशेष अध्ययन के सन्दर्भ में मात्र इसी आधार पर सन्तोष नहीं किया जा सकता।

डॉ० सुरेश सिन्हा ने हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना पर विचार करते हुए उनके दो मोटे वर्ग बतलाए हैं— वासनात्मक तथा अवासनात्मक'। इस तरह उन्होंने नारी चरित्रों के वर्गीकरण का मुख्य आधार 'वासना का होना या न होना' माना है और उनकी दृष्टि में वर्गीकरण का यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण आधार है।[1] वासनात्मक वर्ग में प्रेमिकाओं वेश्याओं, नर्तकियों, विवाहिताओं आदि की गणना की गई है तथा अवासनात्मक वर्ग के अन्तर्गत नारी के माँ, बहिन आदि रूपों का वर्गीकरण किया गया है।[1] किन्तु नारी जीवन के समग्र, सर्वांग स्वरूप पर दृष्टिपात करने पर वर्गीकरण के उक्त आधार की अवैज्ञानिकता स्वतः स्पष्ट हो जाती है। वासना' के आधार पर नारी-पात्रों की स्थिति पर विचार करना केवल पारिवारिक एवं कुछ-कुछ सामाजिक क्षेत्रों की परिधि में तो समीचीन समझा जा सकता है, सभी क्षेत्रों में नहीं। वासनात्मक वर्ग में परिगणित प्रेमिका नारी क्या उसके साथ ही किसी की पुत्री, बहिन या मा (अवासनात्मक) नहीं हो सकती ? अथवा एक ओर अवासनात्मक वर्ग में समाविष्ट मा-बहिन आदि स्त्रियाँ क्या दूसरी ओर प्रेमिकाएँ और विवाहिता वासनात्मक नहीं हो सकती ? फिर 'नर्तकियों' को वासनात्मक वर्ग में रखने का आधार एवं औचित्य क्या है ? नृत्य-कला-निपुणता किस दृष्टि से वासनामूलक या वासनापरक है ? विद्वान् समीक्षक ने यह स्पष्ट नहीं किया। अतः वर्गीकरण का उक्त आधार पूर्णतः ग्राह्य नहीं हो सकता या कम से कम इसे एकमात्र आधार नहीं माना जा सकता।

डॉ० बिन्दु अग्रवाल द्वारा 'हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण' के सन्दर्भ में विविध नारी रूपों की गणना कराई गई है, यथा—"नारी के पारिवारिक रूप-पत्नी, सपत्नी, माँ, पुत्री, बहिन, सास, बहू, देवरानी, जिठानी, ननद, भौजाई, भाभी आदि, और नारी के शाश्वत रूप माता, पत्नी, प्रेयसी आदि।"[2] उक्त सभी वर्ग प्रधानतः पारिवारिक सम्बन्धों पर आधारित हैं। नारी-चरित्र के वर्गीकरण के अन्य आधारों का यहाँ कोई संकेत नहीं मिलता।

---

१. डॉ० सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास में नायिका की परिकल्पना, पृ० ११४।
२. डॉ० बिन्दु अग्रवाल, हिन्दी उपन्यास में नारी चित्रण, पृ० २५२-६०।

डॉ० शुभकार कपूर ने आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो के सभी (नारी पुरुष) पात्रो को चार वर्गों मे विभाजित किया है—

१ कथा को गति प्रदान करने वाले प्रमुख पात्र।

२. कथा को गति प्रदान करने वाले सहायक पात्र।

३. काल विशेष के परिचायक व्यक्तित्वप्रधान पात्र।

४. कथा प्रवाह में गौण, क्षणिक स्थान ग्रहण करने वाले पात्र।[1]

इस वर्गीकरण का आधार स्पष्टत 'कथा-विकास में महत्ता' है। अत इस वर्गीकरण मे पात्रो को उपन्यास रूपी ढाँचे के गठनात्मक उपकरण के रूप में ही लिया गया है। उनके चरित्रगत वैविध्य का इस वर्गीकरण में कोई आधार-भूत सकेत नहीं मिलता। आगे चलकर उन्होंने समस्त पात्रों को दो वर्गों मे विभक्त किया है—(१) पुरुष एव (२) नारी-पात्र। फिर बताया है— ये वर्गगत पात्र भी हैं और व्यक्तिनिष्ठ भी।' इसी के साथ वे लिखते हैं—'किन्तु आचार्य चतुरसेन के पात्रो को उपन्यासो की दृष्टि से निम्न तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

१ पौराणिक पात्र।

२. ऐतिहासिक पात्र।

३. सामाजिक पात्र।

इसके आगे वे पुन लिखते हैं—उपर्युक्त वर्गीकरण के अनुसार भी आचार्य चतुरसेन के पात्रो को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है—

१ वर्गगत या प्रतिनिधि पात्र।

२ व्यक्तित्व प्रधान-पात्र।

३ अलौकिक या असाधारण पात्र।[2]

इस प्रकार डॉ० कपूर ने, एक के बाद एक, चार वर्गीकरण दिये हैं और पहले वर्गीकरण को दूसरे का तथा दूसरे को तीसरे का आधार बताया है, किन्तु किसी भी प्रकार के वर्गीकरण मे पात्रो के चरित्रगत वैशिष्ट्य का जो मूलभूत अस्तित्व रहता है—उसे आधार रूप मे निर्दिष्ट नहीं किया गया है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रो के सभी रूपो एव उनके चरित्र-चित्रण की सभी प्रमुख रेखाओ का सम्यक् आकलन करने से पूर्व, उनके वैज्ञानिक वर्गीकरण की उपयुक्त रूपरेखा आधार-रूप में तैयार कर लेना आवश्यक है। हमारे विचार मे आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो के सभी नारी-पात्रों

---

१. डॉ० शुभकार कपूर, 'आचार्य चतुरसेन का कथा साहित्य', पृ० २४५।

२ वही, वही, पृ० २४६।

का स्थूलतः बहिरंग और अंतरंग दृष्टि से वर्गीकरण किया जा सकता है। बहिरंग आधार के अन्तर्गत हम पात्रों को उपन्यास की कथा में महत्त्व, वा परिवार, समाज, इतिहासक्रम और परम्परागत नायिका भेदों के आधारों पर गणना कर सकते हैं। अन्तरंग आधारों में वैयक्तिक, चारित्रिक और युगीन दृष्टि के वैशिष्ट्य को ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार कुल मिलाकर विवेच्य नारी पात्रों के वर्गीकरण के लिये उक्त आठ आधार उपलब्ध हैं। इन विभिन्न आधारों की दृष्टि से भी विविध नारी पात्रों का अनेकधा वर्गविभाजन संभव है, जिसकी एक रूपरेखा निम्नलिखित क्रम में प्रस्तुत की जा रही है।

(१) बहिरंग वर्गीकरण

(क) उपन्यासकथा में महत्त्व की दृष्टि से

प्रत्येक उपन्यास के कथा विकास में अनेक पात्रों का प्रत्यक्ष या परोक्ष योगदान रहता है। इनमें से कुछ पात्र कथा को अन्तिम परिणाम तक ले चलने में सक्रिय रहते हैं और कुछ बीच-बीच में आकर, आवश्यकता और अवसर के अनुसार, उसे कोई नया मोड देकर फिर तिरोहित हो जाते हैं। कुछ पात्र अपना कोई पृथक् अस्तित्व न रखकर, अन्य पात्रों के चरित्र विकास का माध्यम-मात्र बनकर आते हैं। यह स्थिति पुरुष और नारी दोनों प्रकार के पात्रों के लिये सम्भाव्य है अत इस आधार पर विवेच्य उपन्यासों के नारी पात्रों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा रहा है—

१ कथा में प्रमुख अथवा सजीव नारी-पात्र।
२ गौण अथवा सहायक नारी-पात्र।
३ सामान्य नारी-पात्र (कथा में उपकरण मात्र)।

१. प्रमुख अथवा सजीव नारी-पात्र

जिस प्रकार समाज का स्वरूप कतिपय सक्रिय व्यक्तियों द्वारा निर्मित होता है, उसी प्रकार उपन्यास का अस्तित्व उसके जीवन्त पात्रों पर निर्भर रहता है। उन्हें उस उपन्यास के प्रमुख पात्र मानना चाहिए। यहाँ उल्लेखनीय है कि ऐसे नारी-पात्रों के अन्तर्गत उपन्यास की नायिका-मात्र ही नहीं है। कुछ समीक्षक नायिकाओं और प्रमुख नारी-पात्रों में कोई अंतर नहीं मानते। उनकी दृष्टि में सभी नारी-पात्र एक समान होते हैं।[1] पात्र परिकल्पना अथवा पात्र-

१. डॉ० सुरेश सिनहा, 'हिन्दी उपन्यास में नायिका की परिकल्पना', देखिए भूमिका।

विवेचन की यह पद्धति सर्वथा अनुपयुक्त है। किसी उपन्यास के समूचे कथानक की सूत्रधारिणी ऐसी नारी उसकी नायिका मानी जा सकती है, जिसके चरित्र पर अन्य पात्रों एवं उपन्यास के केन्द्रीय विचार अथवा उद्देश्य की सार्थकता निर्भर हो। किसी उपन्यास में ऐसा नारी पात्र कोई एक ही हो सकता है किन्तु प्रमुख नारी-पात्र उससे एक से अधिक भी हो सकते हैं। उपन्यासकार की चरित्र-चित्रण क्षमता को विशेषतः उद्घाटन करने वाले सभी पात्र प्रमुख कहे जा सकते हैं। आचार्य जी के विवेच्य बत्तीस (३२) उपन्यासों में ऐसे जीवन्त नारी पात्रों की संख्या ११० है। ये ऐसे प्रमुख पात्र हैं, जिनके बिना तत्सम्बन्धी उपन्यास के स्वरूप, कथ्य और कार्य की पूरी परिकल्पना ही विशृंखलित और विखण्डित हो सकती है।

उपन्यास क्रम से इन प्रमुख नारी पात्रों की नामतालिका इस प्रकार है—

उपन्यास	पात्र
१ हृदय की परख	१ सरला, २ शारदा, ३ शशिकला।
२. हृदय की प्यास	१ सुखदा, २ भगवती की बहू।
३ पूर्णाहुति	१ संयोगिता।
४. बहते आँसू	१ नारायणी, २. भगवती, ३ सुशीला, ४ मालती, ५. कुमुद।
५ आत्मदाह	१. माया, २. सुधा, ३ सुधीन्द्र की माँ (माया, सुधा की सास), ४. सरला ५. भगवती।
६. नीलमणि	१. नीलू (नीलमणि), २. नीलू की माँ, ३. नीलू की सास (महेन्द्र की माँ), ४ मणि, ५. कुमुदिनी।
७ वैशाली की नगरवधू	१ अम्बपाली, २. कुण्डनी, ३. मातंगी, ४. चन्द्रप्रभा, ५. कलिंगसेना, ६ मल्लिका, ७. नन्दिनी, ८. रोहिणी।
८. नरमेध	१ अनाम नारी, २. चन्द्रकिरण, ३ लेडी दादी लाल।
९ रक्त की प्यास	१ इच्छनीकुमारी, २ लीलावती, ३. नायिका देवी, ४. पद्मावती।
१० देवांगना	१. मंजुघोषा, सुनयना (रानी सुकीर्ति देवी)।
११. दो किनारे	(अ) दो माँ की बीवी—१. मालती।
	(आ) दादा कामरेड—१. सुधा, २. केसर।

उपन्यास	पात्र
१२ अपराजिता	१. राज, २ राधा, ३ अन्नपूर्णा, ४ रुक्मिणी।
१३. अदल-बदल	१. विमला देवी, २ माया देवी, ३. ३ मालतीदेवी।
१४ आलमगीर	१ जहाँआरा, २. बेगम शाइस्ता खाँ।
१५ सोमनाथ	१ चौला, २ शोभना, ३ गंगा।
१६. धर्मपुत्र	१ हुस्नबानू, २ अरुणा, ३. जीनत, ४ माया।
१७ वय रक्षाम.	१ दैत्यबाला, २ मायावती, ३ मंदोदरी ४ कैकसी, ५ शूर्पणखा, ६. सुलोचना, ७ कैकेयी, ८ सीता, ९ मथरा।
१८ गोली	१. चम्पा, २ कुंवरी, ३ केसर, ४ चन्द्रमहल।
१९ उदयास्त	१ प्रमिला रानी, २. पद्मा, ३ रेणुका देवी, ४ सरला।
२०. आभा	१. आभा।
२१. लाल पानी	१ पार्वती, २. नन्दकुमारी, ३ गुर्जर-कुमारी।
२२. बगुला के पंख	१. शारदा, २. पद्मा।
२३. खग्रास	१. लिजा, २. प्रतिभा।
२४. सह्याद्रि की चट्टानें	१. जीजाबाई।
२५. बिना चिराग का शहर	१. रानी कमलावती, २. राजकुमारी देवलदेवी।
२६. पत्थर युग के दो बुत	१. रेखा, २. माया, ३. लीलावती।
२७. सोना और खून	१ समरू बेगम, २ कुदसिया बेगम, ३. मगला, ४. कुमारी विविधाना, ५ मेरी स्टुअर्ट, ६ रानी एलिजाबथ ७. फ्लोरेंस नाइटिंगेल, ८. लक्ष्मीबाई।
२८. मोती	१. जोहरा, २. नीलम।
२९. शुभदा	१. शुभदा, २ रानी रासमणि, ३ गोमती।

उपन्यास	पात्र
३० ईदो	१ सम्राज्ञी नागाको, २ मादाम सूर्मस्टू, ३ केन, ४ ग्रावा
३१ खून और खून	१ केशव की माँ, २ रतन, ३ बी हमीदन।
३२ अपराधी	१ गुलिया २ रानी चन्द्रकुंवरि, ३ रमाबाई।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का समग्र विवेचन इन्हीं एक सौ दस (११०) प्रमुख नारी-पात्रों पर केन्द्रित है। आगे की सम्पूर्ण वर्गीकरण प्रक्रिया में भी प्रमुखतः इन्हीं को दृष्टि में रखा गया है।

२. गौण पात्र

आचार्य चतुरसेन के प्रत्येक उपन्यास में ऐसे नारी पात्र भी हैं, जो बहती जल धारा में तृण-पत्रवत् अनायास सम्मिलित हो गए हैं, उनके पृथक् निजी अस्तित्व की उल्लेखनीय सार्थकता नहीं है। यद्यपि कुछ उपन्यासों की प्रासंगिक कथाओं से सम्बन्धित अनेक नारी पात्र उपन्यास के पूरे कलेवर में बहुत साधारण अथवा नगण्य होते हुए भी, अपने विशिष्ट सन्दर्भ में अवश्य अपनी कुछ न कुछ महत्ता रखते हैं, फिर भी उन्हें आचार्य जी के नारी चित्रण-कौशल अथवा समाज में नारी की स्थिति-सम्बन्धी विवेचन प्रसंग में प्रमुख पात्रों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। ऐसे गौण पात्रों में से उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं—

उपन्यास	पात्र
१ पूर्णाहुति	जाह्नवी, पृथ्वीराज की छ रानियाँ।
२ बहते आँसू	नारायणी और भगवती की माँ, इनकी भाभी, चमेली, कुमुद की भाभी, सुशीला की वृद्धा मकान मालकिन, छुजिया नाइन।
३. आत्मदाह	प्रभा, इन्दु, सुधीर की बहिनें, देश की जोगिन, सुधा की भौजाइयाँ, रामदुलारी।
४ वैशाली की नगरवधू	मदलेखा, रम्भा, मधु, नाइन।
५ रक्त की प्यास	शोभा, चन्द्रकला।
६. आलमगीर	रोशनआरा जेबुन्निसा, हीराबाई, जार्जियन युवती।
७ सोमनाथ	रमाबाई, शूद्रा दासी, दुर्लभ देवी।

उपन्यास	पात्र
८ धर्मपुत्र	करुणा, कुमुदेश्वरी।
६. गोली	महारानियाँ, लेडी डॉक्टर, नर्स, अंग्रेज रेजीडेंट की पत्नी।
१० उदयास्त	रानी माँ, चन्द्रमहल, मौसी, रजनी।
११. आभा	तुलमा।
१२ लाल पानी	कुम्भाबाई, जालिमसिंह की पत्नी।
१३ बगुला के पंख	मेम साहबा, श्रीमती बुलाकीदास, मोती, मिसेज डेविड, माधुरी।
१४. खग्रास	रानी साहबा, रमादेवी।
१५. सोना और खून	मोतीबाई, सुन्दर, सुन्दर, जिंदा रानी, मुबारिक बेगम, मिसज कपूर।
१६. शुभदा	मिसेज कर्नल, मिसेज हिग्गिंस।
१७. ईदो	कार्मन, क्लारा पेटेडिया, श्रीमती सोलोमन।
१८. खून और खून	गोविन्द की पत्नी, गोविन्द की माँ, रीता, मिसेज प्रसाद, बेगम ननकू नवाब, एनी बीसेंट, सरोजिनी नायडू, इन्दिरा (गांधी)।
१६. अपराधी	हंसा ठकुरानी, रानी चन्द्रकुंवरि की पुत्री।

३. सामान्य नारी-पात्र (कथा में उपकरणमात्र)

उपर्युक्त सजीव एवं सहायक नारी-पात्रों के अतिरिक्त सामान्यतः किसी उत्सव आदि के समय उपस्थित रहने वाला अनाम नारी-समुदाय, बड़े परिवारों में सेविका, धाय, सखी आदि के रूप में विद्यमान स्त्रियाँ अथवा राजघरानों की असंख्य परिचारिकाएँ आदि ऐसे नारी पात्र हैं, जिन्हें सामान्य ही कहा जा सकता है। आचार्य जी के कतिपय पौराणिक और इतिहास-रस-सम्बन्धी बृहदाकार उपन्यासों में तो इनकी संख्या सहस्र-सीमा को भी पार कर गई है। ये सभी नारी-पात्र बृहत् स्त्री-समाज रूपी सागर की तरंगों और बुलबुलों की भाँति उसका एक अनिवार्य अंग तो हैं, किन्तु धारा को मोड़ देने वाली शक्ति इनमें नहीं है।

(ख) पारिवारिक सम्बन्धों की दृष्टि से

इस सृष्टि का मूल नारी है तथा नारी की सार्थकता परिवार-रचना मे है। सृष्टि की आदिनारी ने जब आदिपुरुष से प्रथम सम्पर्क स्थापित किया तो दोनो का पारस्परिक सान्निध्य, विश्वास और पूर्व—पूरक सम्बन्ध परिवार के रूप मे ही प्रतिफलित हुआ। आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से पोषण और सरक्षण का दायित्व भले ही पुरुष ने सभाले रखा है, पर परिवार की मूलाधार नारी ही है। नारी के बिना परिवार अकल्पनीय है और परिवार के बिना नारी की गति नही है। अत नारी-जीवन के किसी भी पक्ष का अध्ययन और विवेचन करते समय उसके पारिवारिक रूप को देखना-समझना आवश्यक है।

पारिवारिक सम्बन्धो की दृष्टि से प्रमुखत विवेच्य नारी-रूप ये हैं—

१. माँ, २. सौतेली मा, ३. पुत्री, ४ बहिन, ५ पत्नी, ६ ननद, ७ भाभी, ८ जेठानी, ९ देवरानी, १० सास, ११ पुत्रवधू १२ सौत, १३ साली।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो मे नारी के य सभी पारिवारिक रूप प्राप्त हैं। इनका क्रमानुसार विवरण यहाँ प्रस्तुत है—

१ माँ रूप मे चित्रित नारी-पात्र
शशिकला (हृदय की परख)
नारायणी और भगवती की माँ (बहते आँसू)
सुधीन्द्र की माँ (आत्मदाह)
नीलू की माँ (नीलमणि)
मातगी (वैशाली की नगरवधू)
लेडी शादीलाल (नरमेध)
सुनयना (देवागना)
जीजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें)
मायादेवी (अदल-बदल)
रेखा (पत्थर युग के दो बुत)
केशव की माँ, गोविन्द की माँ (खून और खून)
रानी चन्द्रकुवरि (अपराधी)

२. सौतेली माँ रूप मे चित्रित नारी-पात्र
रेणुकादेवी (उदयास्त)

३ पुत्रीरूप में चित्रित नारी-पात्र
सरला (हृदय की परख)
हुस्नबानू (पौत्री रूप मे), माया, करुणा (धर्मपुत्र)

जहांआरा, रोशनआरा (आलमगीर)
पद्मा, सरला (उदयास्त)
शारदा (बगुला के पंख)
लीलावती (पत्थर युग के दो बुत)
मगला, फ्लोरेंस नाइटिंगेल (सोना और खून)
नीलम (मोती)
रतन, रीता, इन्दिरा (गांधी) (खून और खून)

४ बहिन के रूप में चित्रित नारी-पात्र
कुमुद (बहते आंसू)
जोहरा (मोती)
बी हमीदन (अपराधी)

५. पत्नी रूप में चित्रित नारी पात्र
शारदा (हृदय की परख)
सुखदा, भगवती की बहू (हृदय की प्यास)
माया, सुधा, भगवती (आत्मदाह)
नीलू (नीलमणि)
चन्द्रभद्रा, मल्लिका, कलिंगसेना, नन्दिनी, रोहिणी (वैशाली की नगरवधू)
लीलावती, नार्गिस देवी (रक्त की प्यास)
मालती (दो किनारे)
राज, राधा (अपराजिता)
विमला देवी, माया देवी (अदल-बदल)
बेगम शाइस्ताखां (आलमगीर)
अरुणा (धर्मपुत्र)
मन्दोदरी, कैकेयी, सुलोचना, सीता (वयं रक्षामः)
कुबरी (गोली)
प्रमिलारानी (उदयास्त)
आभा (आभा)
पद्मा (बगुला के पंख)
रेखा, माया (पत्थर युग के दो बुत)
समरू बेगम, कुदसिया बेगम, रानी लक्ष्मीबाई (सोना और खून)
शुभदा, गोमती (शुभदा)
रतन (खून और खून)

मुखिया, रमाबाई (अपराधी)

५. ननद रूप में चित्रित नारी पात्र

कुमुद (बहते आँसू)

६ भाभी-रूप में चित्रित नारी-पात्र

कुमुद की भाभी (बहते आँसू)

सुधा की भौजाइयाँ (आत्मदाह)

नीलू (नीलमणि)

मन्दोदरी (वय रक्षामः)

८. जेठानी रूप में चित्रित नारी-पात्र

कुमुद की जेठानी (बहते आँसू)

६. देवरानी-रूप मे चित्रित नारी-पात्र

कुमुद की देवरानी (बहते आँसू)

१०. सास रूप में चित्रित नारी पात्र

सुखदा की सास (हृदय की प्यास)

नीलू की सास (नीलमणि)

गोविन्द की माँ (खून और खून)

११. पुत्रवधू रूप में चित्रित नारी पात्र

सुखदा, भगवती की बहू (हृदय की प्यास)

माया, सुधा (आत्मदाह)

नीलू (नीलमणि)

राज (अपराजिता)

गोविन्द की बहू (खून और खून)

१२. सपत्नी रूप में नारी-पात्र

कलिंगसेना, नन्दिनी, मल्लिका (वैशाली की नगरवधू)।

१३. साली रूप में चित्रित नारी-पात्र

कुमुदिनी (नीलमणि)

उपर्युक्त पारिवारिक नारी रूपों की नाम-तालिका से स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के अधिकांश नारी-पात्र माँ, पुत्री और पत्नी-रूप में चित्रित हुए हैं। बहिन, भाभी, ननद, सास, बहू आदि पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण कम है। देवरानी, जेठानी, सौत और साली रूपी नारी पात्र अत्यन्त अल्प-मात्रा में हैं। इसका एक कारण यह है कि संयुक्त-परिवार का चित्रण दो-एक उपन्यासों को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं किया गया है। दूसरे, आचार्य जी की प्रवृत्ति प्रेम, यौन-सम्बन्ध, विवाह आदि के सन्दर्भ में नारी की पारिवारिक और

सामाजिक स्थिति का तथा नारी-पुरुष-सम्बन्धों का विश्लेषण करने की ओर अधिक रही है। माँ-रूप में चित्रित नारी-पात्र एकाध अपवाद को छोड़कर, प्राय स्नेहपूर्ण, ममतायुक्त और अनुभव प्रौढ़ हैं। आचार्य जी ने जिस नारी-पात्र को उपन्यास में जिस रूप में उभारने का विशेष प्रयास किया है, उसे उसी रूप के अन्तर्गत यहाँ वर्गीकरण में परिगणित किया गया है। यद्यपि गौणत उनका अस्तित्व अन्य रूपों में भी प्रस्तुत हुआ है। उदाहरणत 'आत्मदाह' की सुधा या 'नीलमणि' की नीलू पत्नी, बहू या भाभी बनने से पूर्व पुत्री और बहिन रूप में भी उपन्यास में प्रस्तुत हैं, किंतु पूरे उपन्यास की मूल संवेदना उनके पत्नी रूप के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। अत इनकी गणना पत्नी-रूप में करना अधिक उपयुक्त समझा गया है। हाँ, जिन नारी-पात्रों के चरित्रों में पुत्री, बहिन और पत्नी रूप में विद्यमान विशेषताओं की स्थिति समान महत्त्व की अथवा किसी न किसी दृष्टि से उल्लेखनीय है, उन्हें एकाधिक रूपों के अन्तर्गत समाविष्ट किया गया है। अगले अध्याय में, सभी प्रमुख नारी पात्रों के चारित्रिक-विश्लेषण में उनके एक या एकाधिक पारिवारिक रूपों पर सम्यक् विचार किया गया है।

(ग) सामाजिक स्थिति की दृष्टि से

व्यक्ति से परिवार और परिवार से समाज की रचना होती है। व्यक्ति समाज का स्रष्टा और विधायक है। व्यक्ति समुदाय जब भावात्मक आकार या सगठित सस्था का रूप लेता है, उस समय व्यक्ति, व्यक्तिमात्र न रहकर समाज-शरीर का एक अग बन जाता है। ऐसी स्थिति में उसकी पहचान और परख उसके सामाजिक स्वरूप के आधार पर करनी आवश्यक हो जाती है। पुरुष और नारी के सामाजिक अस्तित्व में पर्याप्त अन्तर रहा है, विशेषत भारतीय परिवेश में। समाज-सरचना के नियमोपनियमो, विधि निषेधों, कार्य-व्यापारों और रीति-नीतियों के निर्माण में, जो स्वत्व पुरुष को प्राप्त है, वह स्त्री को नहीं है। यदि कहीं अपवाद-रूप में नारी को ऐसा अवसर मिला भी है, तो उसकी कोई स्थायी छाप समाज में दृष्टिगोचर नहीं होती। ऐसी अवस्था में नारी का, समाज के सामान्य ढाँचे में पुरुष या परिवार के पूरक-रूप में, जो स्थान रहा है, उसी पर विचार किया जा सकता है।

उपर्युक्त आधार पर हमें आचार्य जी के उपन्यासों में निम्नलिखित चार प्रकार के नारी-पात्र मिलते हैं—१. प्रेमिका, २. वेश्या, ३. दासी (नौकरानी) ४ कुट्टनी।

इन नारी-रूपों के अन्तर्गत आने वाले विविध पात्रों की नामावली इस

प्रकार है—

१. प्रेमिकाएँ
   संयोगिता (पूर्णाहुति)
   चन्द्रभद्रा (वैशाली की नगरवधू)
   चन्द्र किरण (नरमेध)
   मंजुघोषा (देवांगना)
   जहाँआरा (आलमगीर)
   चौला, शोभना, रमा (सोमनाथ)
   माया (धर्मपुत्र)
   दैत्यबाला, शूर्पणखा (वय रक्षाम)
   पद्मा (उदयास्त)
   नीलम (मोती)
   मादाम सूर्पेस्कू (ईदो)
   लिजा (खग्रास)

२ वेश्याएँ
   वसन्ती, चमेली (बहते आँसू)
   राजदुलारी (आत्मदाह)
   अम्बपाली, मदनन्दिनी (वैशाली की नगरवधू)
   केसर (दो किनारे)
   मोती (बगुला के पंख)
   मोतीबाई (सोना और खून)
   जोहरा (मोती)
   बी हमीदन (खून और खून)
   गुलिया (अपराधी)

३. सेविकाएँ (दासियाँ)
   धनिया (नीलमणि)
   मदलेखा, मधु (वैशाली की नगरवधू)
   शूद्रा दासी (सोमनाथ)
   मन्थरा (वय रक्षामः)
   केसर (गोली)
   तुलसा (आभा)

४. कुट्टनियाँ
   छजिया, अनाम बुढ़िया (सुशीला की मकान मालकिन) (बहते आँसू)

नाइन (वैशाली की नगरवधू)
मालतीदेवी (अदल-बदल)

मिसेज प्रसाद (खून और खून) तथा वैशाली की नगरवधू, आलमगमीर, वय रक्षाम, गोली, बिना चिराग का शहर, सोना और खून एवं मोती आदि उपन्यासों की कई अनाम स्त्रियाँ।

(घ) इतिहास-क्रम की दृष्टि से

संसार परिवर्तन शील है। इस परिवर्तन चक्र के साथ युग, राष्ट्र, समाज और व्यक्ति का जीवन भी बदलता रहता है। जैसे सहस्र वर्ष पूर्व के और आज के व्यक्ति का जीवन क्रम समान नहीं है; वैसे ही पूर्वीय और पश्चिमीय, या पर्वतीय और मैदानी व्यक्तियों का जीवन-क्रम देश काल की दृष्टि से पर्याप्त भिन्न है। यही कारण है कि हमारे देश के वैदिक-कालीन, मध्यकालीन तथा आधुनिक समाज की नारी-सम्बन्धी मान्यताओं में भारी अन्तर है। परिणाम-स्वरूप नारी की स्थिति युग विशेष के अनुरूप भिन्न भिन्न रही है। प्राचीन युग और आज की नारी मूल प्रवृत्तियों की दृष्टि से है तो 'नारी' ही। उसका पुरुष सम्बन्ध, जननी रूप और नैसर्गिक मार्दव-सुलभ वैशिष्ट्य सर्वदा अक्षुण्ण है। फिर भी हर युग की राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में उसकी वैयक्तिक और चारित्रिक विशेषताएँ बदलती रही हैं। उदाहरणतः गुप्त, बौद्ध या मध्ययुग के राजतंत्रीय और सामन्ती वातावरण में नारी जीवन की महत्ता और हीनता की पराकाष्ठा का जो विपरीत ध्रुवीकरण दिखाई देता है, वह आज के युग में प्रायः असम्भव है। इसी प्रकार देशी रियासतों और रजवाड़ों में नारी जो गर्हित नारकीय जीवन बिताती रही थी, आज उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

तात्पर्य यह है कि आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रों का दिग्दर्शन एक ही फलक पर देशकालगत दृष्टिभेद के कारण एक ही मानदण्ड से नहीं कराया जा सकता। आचार्य जी के उपन्यासों में अत्यन्त प्राचीन वैदिक और पौराणिक युग से लेकर स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय और विदेशी पात्र तक समाविष्ट हैं। अध्ययन की सुविधा हेतु उन्हें हम निम्नलिखित चार उपवर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(अ) कालभेद से—१. पौराणिक नारी-पात्र (५०० ई० पू० से पहले तक)
२. ऐतिहासिक नारी-पात्र (ई० पू० पाँचवीं शताब्दी से १६ वीं शताब्दी तक)

३ आधुनिक नारी पात्र (बीसवीं शताब्दी से आगे)

(आ) देश-भेद से—४ विदेशी नारी पात्र।

पौराणिक नारी-पात्रों में वैदिक या उत्तरवैदिक कालीन नारी-पात्र भी सम्मिलित हैं। 'वयं रक्षाम' जैसे उपन्यासों में पौराणिक तथा पुराण पूर्व अन्य सभी युगों के भी विविध पात्रों को एकत्र सजो दिया गया है। संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों के मतानुसार पाँचवीं शताब्दी ईसा पूर्व तक पुराण निश्चित रूप धारण कर चुके थे।[1] इसके पश्चात् ऐतिहासिक युग आरम्भ हो जाता है। ऐतिहासिक नारी पात्रों में ५०० वर्ष ईस्वी पूर्व से सम्बन्धित 'वैशाली की नगर वधू' से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी से सम्बन्धित 'सोना और खून' तक के नारी पात्र समाविष्ट हैं। यह उल्लेखनीय है कि आचार्य जी के पौराणिक तथा ऐतिहासिक या इतिहास-रस-सम्बन्धी उपन्यासों के अनेक नारी-पात्र पूर्णतः कल्पित हैं। ऐतिहासिक वातावरण में उनका चरित्र-विकास दिखाया गया है अतः उन्हें आधुनिक नारी-पात्रों से भिन्न रखना आवश्यक समझा गया है। पौराणिक नारी पात्रों में स्वच्छन्दता ऐतिहासिक नारीपात्रों में युगीन वातावरण के अनुरूप अपने को ढालने की विवशता एवं आधुनिक नारीपात्रों में जागृति और प्रगति की विशेषता लक्षित होती है अतएव सामाजिक उपन्यासों के नारी-पात्रों को आधुनिक उपवर्ग में रखा गया है।

इन उपवर्गों में परिगणनीय नारी-पात्रों की सूची इस प्रकार है—

१. पौराणिक नारी-पात्र—दैत्यबाला, कैकसी, मन्दोदरी मायावती, कैकेयी शूर्पणखा, सीता सुलोचना, मन्थरा ('वयं रक्षाम')।

२. ऐतिहासिक नारी पात्र—संयोगिता, जाह्नवी (पूर्णाहुति), अम्बपाली, कुण्डनी, मातंगी, चन्द्रभद्रा, कलिंगसेना, मल्लिका, नन्दिनी, रोहिणी (वैशाली की नगरवधू), इच्छनी कुमारी, लीलावती, नायिकादेवी पद्मावती (रक्त की प्यास), मंजुघोषा, सुकीर्तिदेवी (देवांगना) जहाँआरा, रोशनआरा, हीराबाई, जेबुन्निसा, बेगम शाइस्ताखाँ आदि (आलमगीर) चौला, शोभना (सोमनाथ), पार्वती, नन्दकुमारी, गुर्जर कुमारी (लालपानी) जीजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें), रानी कमलावती, देवलदेवी (बिना चिराग का शहर), समरू बेगम, कुदसिया बेगम, मंगला, रानी लक्ष्मीबाई, मोतीबाई सुन्दर, सुन्दर, जिन्दा रानी, मुबारिक बेगम आदि (सोना और खून), शुभदा, रानी रासमणि (शुभदा), रतन, एनी बीसेंट, सरोजिनी नायडू, इन्दिरा (गांधी), (खून और खून), रमाबाई (अपराधी)।

---

१. वरदाचार्य, 'संस्कृत साहित्य का इतिहास', पृ० ७६।

३. आधुनिक नारी-पात्र—मंगला, शारदा, शशिकला (हृदय की परख), मुखदा, भगवती की बहू (हृदय की प्यास), नारायणी भगवती, सुशीला, मालती, कुमुद बसन्ती (बहन श्रांसू) सुधा सरला (आत्मदाह), नीलू (नीलमणि), चन्द्रकिरण (नरमेध) मालती सुधा (दो किनारे), राज, राधा, रविमणी (अपराजिता), विमला देवी माया देवी, मालती देवी (अदल बदल), हुस्नबानू अरुणा, माया (धर्मपुत्र), चम्पा (गोली), प्रमिला रानी, पद्मा, रेणुकादेवी (उदयास्त) आभा (आभा), शारदा पद्मा, श्रीमती बुलाकीदास, (बगुला के पंख), प्रतिभा (संग्राम), रेखा, माया लीलावती (पत्थर युग के ो बुत), जोहरा, नीलम (मीनी)।

४. विदेशी नारी पात्र—मेम साहिबा (दो किनारे) जार्जियन युवती (आलमगीर), मेम साहिबा (बगुला के पंख), अंग्रेज रेजीडेंट की पत्नी (गोली) लिज़ा (संग्राम), कुमारी विवियाना, मेरी स्टूअर्ट, रानी एलिजाबेथ, फ्लोरेंस नाइटिंगेल (मोना और खून), सम्राज्ञी नागाको, मादाम सूर्पेस्कू, केन, ढाचा, कार्मेन, क्लारा पेटेसिया, श्रीमती सोलोमन (ईदो)।

(ड) परम्परागत काव्यशास्त्रीय नायिका भेद की दृष्टि से

संस्कृत और हिन्दी के काव्याचार्यों, विशेषकर 'साहित्यदर्पण'-कार आचार्य विश्वनाथ तथा 'काव्यदर्पण'-कार आचार्य रामदहिन मिश्र ने काव्यात्मा रस-विवेचन के अन्तर्गत आलम्बन आश्रयरूपा नारी को विभिन्न नायिका-भेदों में प्रस्तुत किया है। आचार्य चतुरसेन के अधिकांश औपन्यासिक नारी-पात्र किसी न किसी रूप में नायिका-नाम-परिधि को भी स्पर्श करते हैं। नारी-मनोविज्ञान एवं नारी के सामाजिक महत्त्व की दृष्टि से इस प्रकार का वर्गीकरण और विवेचन आवश्यक है।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में नायिकाभेद के अन्तर्गत नारियों के प्रमुख तीन वर्ग हैं—स्वकीया, परकीया एवं सामान्या।[६] विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त, घर के काम-काज में निपुण, पतिव्रता स्त्री स्वकीया कही जाती है। परकीया नायिका परपुरुष में अनुराग करती हुई भी उसे प्रकट न करने के कारण परकीया कही जाती है। सामान्या प्रायः वेश्या होती है, वह धीर एवं कलाप्रगल्भ होती है। इन प्रमुख वर्गों के भी अनेक अवान्तर भेदोपभेद किये गये हैं। किन्तु उनका विशद विवरण किसी काव्यशास्त्रीय लक्षणग्रन्थ का प्रतिपाद्य है, प्रस्तुत

---

६ अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणा स्त्रीति। ३,५६।

—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, पृ० ७१।

शोध प्रबन्ध का नहीं । यहाँ केवल प्रमुख भेदों के आधार पर वर्गीकरण प्रस्तुत किया जा रहा है । यथावसर और यथावश्यक अवान्तर नाम-रूपों का उल्लेख भी यथास्थान किया जा रहा है ।

१. स्वकीया[1]

शारदा (खण्डिता, अन्य संयोग दुःखिता, प्रवत्स्यत्पतिका)	
सरला (मुग्धा, अज्ञातयौवना) —	(हृदय की परख)
सुखदा (खण्डिता, विरहिणी)	(हृदय की प्यास)
यशोमिता (प्रौढ़ा)	(पूर्णाहुति)
सुधा (प्रोषितपतिका)	(आत्मदाह)
नीलू (कलहान्तरिता)	(नीलमणि)
चन्द्रभद्रा (मुग्धा)	(वैशाली की नगरवधू)
चन्द्र किरण	(नरमेध)
इच्छनीकुमारी (गर्विता)	(रक्त की प्यास)
लीलावती (खण्डिता)	"
नायिकादेवी (प्रौढ़ा)	"
मंजुघोषा (मुग्धा)	(देवांगना)
मालती (प्रौढ़ा)	(दो किनारे)
सुधा (मुग्धा)	"
राज (मानिनी)	(अपराजिता)
राधा (मुग्धा)	"
विमलादेवी (खण्डिता, मानिनी)	(अदल बदल)
चौला (मुग्धा)	(सोमनाथ)
अरुणा (प्रौढ़ा)	(धर्मपुत्र)
माया (मानिनी)	"
मन्दोदरी (प्रौढ़ा)	(वयं रक्षामः)
कैकेयी (प्रौढ़ा)	"
शूर्पणखा (मुग्धा)	"
सीता (विरहिणी)	"
सुलोचना (प्रौढ़ा)	"
कुबरी (खण्डिता, अन्य संभोग दुःखिता मानिनी)	(गोली)

---

१. विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया, ३,५७ ।
विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, पृ० ७२ ।

प्रमिला रानी (प्रौढ़ा), पद्मा (मुग्धा) (उदयास्त)
शारदा (मुग्धा, अज्ञात यौवना) (बगुला के पंख)
लिज्ञा (प्रौढ़ा), प्रतिभा (मुग्धा) (संग्राम)
नीलम (मुग्धा) (मोती)
रतन (मानिनी) (खून और खून)

२ परकीया[1]

शशिकला (हृदय की परख)
अनाम नारी (नरमेध)
केसर (दो किनारे)
मायादेवी (अदल-बदल)
मायावती (वय रक्षाम्)
चम्पा, चन्द्रमहल (गोली)
आभा (आभा)
पद्मा (बगुला के पंख)
कमलादेवी (बिना चिराग का शहर)
रेखा, माया (पत्थर युग के दो बुत)

३. सामान्या[2]

बसन्ती, चमेली (बहते आँसू)
राजदुलारी (आत्मदाह)
अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू)
केसर (दो किनारे)
मोती (बगुला के पंख)
मोतीबाई (सोना और खून)
दैत्यबाला (वय रक्षाम्)
जोहरा (मोती)
बी हमीदन (खून और खून)
गुलिया (अपराधी)

---

१. अप्रकट-पर-पुरुषानुरागा परकीया। —भानुदत्त, रसमञ्जरी, पृ० ८७।
२. धीरा कला-प्रगल्भा स्याद् वेश्या सामान्य नायिका।
—विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, ३-६७, पृ० ७८।

२ अन्तरंग वर्गीकरण

(क) व्यक्तित्व क्षमता की दृष्टि से

आकाश पर अनेक नक्षत्र टिमटिमाते हैं किन्तु अन्धकार-पटल को अपनी ज्योतिरेखाओं से आलोक का प्रसार करने की क्षमता कतिपय नक्षत्रों में ही होती है। यही स्थिति व्यक्ति की किसी युग और समाज में होती है। अधिकांश व्यक्ति परिस्थिति के प्रवाह में जल धारा में तिनकों की भाँति बहते हैं, किन्तु कुछ व्यक्ति अडिग, शक्तिशाली चट्टान की भाँति समाज-धारा का मार्ग अवरुद्ध कर उसके दिशा-परिवर्तन में समर्थ होकर अपनी अमिट छाप जन-मानस के पटल पर अंकित कर जाते हैं। यह श्रेय समाज में साहसी और उदात्त-चरित्र पुरुषों को प्राय: प्राप्त होता रहा है, किन्तु स्त्रियाँ भी ऐसे अवसर से सर्वथा वंचित नहीं रही हैं। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में ऐसे नारीपात्रों की पर्याप्त संख्या है। इन पात्रों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

१ परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले नारीपात्र।
२. परिस्थितियों से प्रभावित होने वाले नारीपात्र।

१. परिस्थितियों को प्रभावित करने वाले नारी-पात्र

मंगला (हृदय की परख), सुशीला, कुमुद, मालती (बहते आँसू), सरला (आत्मदाह), अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू), कुण्डनी, कलिंगसेना (वैशाली की नगरवधू), किरण (नरमेध), इच्छनीकुमारी, नायिकादेवी, पद्मावती (रक्त की प्यास), मंजुघोषा (देवांगना), मालती, सुधा, केसर (दो किनारे), राज (अपराजिता), जहाँआरा, बेगम शाइस्ताखाँ (आलमगीर,) चौला, शोभना (सोमनाथ), हुस्नबानू, माया (धर्मपुत्र), दैत्यबाला, मन्दोदरी, कैकेयी, सुलोचना, शूर्पणखा, मन्थरा, (वय रक्षामः), चम्पा (गोली), पद्मा (उदयास्त,) लिज़ा, प्रतिमा (ग्यास), जीजाबाई (महाद्रि की चट्टानें), मंगला, कुमारी विविमाना, मेरी स्टुअर्ट, रानी एलिजाबेथ, रानी लक्ष्मीबाई, फ्लोरेंस नाइटिंगेल (सोना और खून,) जोहरा, नीलम (मोती), शुभदा, गोमती (शुभदा), सम्राज्ञी नागाको, मादाम लूनेस्कू (ईदो), केशव की माँ, रतन, एनी बीसेंट, इंदिरा (गांधी) (खून और खून), रानी चंद्रकुँवरि, रमाबाई (अपराधी)।

२. परिस्थितियों से प्रभावित होने वाले नारी-पात्र

शारदा, शशिकला (हृदय की परख), सुखदा, भगवती की बहू, सुखदा की माँ, भगवती की माँ, (हृदय की प्यास), नारायणी, भगवती, बसन्ती (बहते

आँसू), सुधा, प्रभा, सुधीन्द्र की माँ (आत्मदाह) मातगी, चन्द्रभद्रा, मल्लिका, नन्दिनी (वैशाली की नगरवधू), अनाम नारी, लेडी लादीलाल (नरमेध), लीलावती (रक्त की प्यास), सुनयना (देवागना), राधा, रुक्मिणी, अन्नपूर्णा (अपराजिता), मायावती (वय रक्षाम), कुँवरी, चन्द्रमहल (गोली) प्रमिला रानी, रेणुकादेवी, सरला (उदयास्त), आभा (आभा), शारदा, पद्मा श्रीमती बुलाकी दास (बगुला के पख), कमलावती, देवलदेवी (बिना चिराग का शहर) रेखा, माया, लीलावती (पत्थर युग के दो बुत), समरू बेगम, कुदसिया बेगम, *रानी जिन्दा (सोना और खून), रानी रासमणि, गोमती, (सुभदा), गोविन्द* की माँ, गोविन्द की बहू, सरोजिनी नायडू (खून और खून), गुलिया (अपराधी)।

(ख) चारित्रिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से

प्रत्येक मानव बाह्यत अपने अगों की दृष्टि से समान दीखता हुआ भी सूक्ष्मत शरीर-गठन, नाक-नक्श और रग-रूप मे एक-दूसरे से भिन्न है। उसी प्रकार स्वभाव और विचार मे भी प्रत्येक मानव मे परस्पर पर्याप्त भिन्नता है। नारियो मे इस पारस्परिक भिन्नता का अन्तराल और भी विस्तृत है। 'तिरिया चरित्र' की गहनता, रहस्यमयता और अगम्यता हर युग के कवियो-लेखको ने स्वीकार की है। चतुरसेन ने अपने नारी-पात्रो के इस चरित्र-गत वैविध्य को विभिन्न प्रसगो के माध्यम से रेखाकित किया है। बाह्यत ये अधिकाश नारी-पात्र सौन्दर्य और आकर्षण में प्राय समान हैं, किन्तु सूक्ष्मत उनके चारित्रिक गुण-दोषो मे पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है। इस आधार पर इन नारी-पात्रों को प्रमुखत दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है, (१) उदात्त-चरित्र नारी-पात्र, (२) हीन-चरित्र नारी-पात्र। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत प्रमुखतः तेज, त्याग, कर्त्तव्य-परायणता आदि गुणो से मडित नारी-पात्र हैं। दूसरे वर्ग मे कामुक, विलासी, स्वार्थी, पुरुष-प्रवचक और दूषित उद्देश्य की सिद्धि मे तत्पर नारी-पात्र है। दोनो प्रकार के नारी-पात्र इस प्रकार हैं—

१. उदात्त-चरित्र नारी-पात्र

सरला, शारदा (हृदय की परख), सुखदा (हृदय की प्यास), सुशीला, कुमुद (बहते आँसू), सुधा, सरला (आत्मदाह), अम्बपाली, कलिंगसेना, रोहिणी (वैशाली की नगरवधू), किरण (नरमेध), लीलावती, नायिकादेवी (रक्त की प्यास), मजुघोषा (देवागना), केसर (दो किनारे), राज, रुक्मिणी (अपराजिता), बेगम शाइस्ताखाँ (आलमगीर), चौला, शोभना, गगा (सोमनाथ), हुस्नबानू (धर्मपुत्र), सीता, मन्दोदरी, सुलोचना, कैकेयी

(वय रक्षाम), कुँवरी (गोली), प्रतिमा (खग्रास), ओजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें), समरू बेगम, कुमारी विविधाना, मगला, फ्लोरेंस नाइटिंगेल, लक्ष्मीबाई (सोना और खून), जोहरा (मोती), शुभदा, रानी रासमणि, गोमती (शुभदा), सम्राज्ञी नागाको, आबा (ईदो), केशव की माँ, बी हमीदन (खून और खून), रानी चन्द्रकुँवरि, रमाबाई (अपराधी)।

२. हीन-चरित्र नारी-पात्र

शशिकला (हृदय की परख) भगवती की बहू (हृदय की प्यास), भगवती, चमेली, बसन्ती, मालती, (बहते आँसू), भगवती (आत्मदाह), मायादेवी, विमलादेवी, (अदल बदल), जहाँआरा, रौशनआरा, जार्जियन युवती (आलमगीर), दैत्यबाला, मायावती (वय रक्षाम), चम्पा, चन्द्रमहल (गोली), रेणुकादेवी (उदयास्त), पदमा, श्रीमती बुलाकीदास, मोती (बगुला के पख), कमलादेवी, देवलदेवी (बिना चिराग का शहर), रेखा, माया (पत्थर युग के दो बुत), मेरी स्टुअर्ट, रानी एलिजाबेथ (सोना और खून), गोविन्द की माँ (खून और खून), गुलिया (अपराधी)।

(ग) युग-प्रभाव की दृष्टि से

भारतीय समाज मे अनेक युगो से चिन्तन, परिवर्तन और सुधार का दायित्व अधिकाशत पुरुषो पर रहा है। अब स्थिति बदल चुकी है। यद्यपि भारतीय इतिहास के पृष्ठो मे पहले भी जागरूकता, वीरता और कर्मठता का परिचय देने वाली अनेक नारियो की गौरव गाथाएँ प्राप्त हैं, तथापि नारी-जागरण का जो आन्दोलन उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध से आरम्भ हुआ, उसका विराट् रूप आधुनिक युग में ही दृष्टिगोचर होता है। आचार्य चतुरसेन के सामाजिक उपन्यासों मे ऐसे प्रबुद्ध नारी-पात्र हैं। इनका परिचय अध्याय आठ मे दिया जायेगा। ये नारियाँ युग-परिवेश के प्रति पूर्णत जागरूक हैं तथा नारी-अधिकारो एव सामाजिक सुधारो के लिए सतत प्रयत्नशील हैं। यही नही, अपितु उपन्यासकार ने 'वैशाली की नगरवधू' जैसे कुछ ऐतिहासिक उपन्यासों मे भी इस प्रकार के युग के प्रति जागरूक नारी पात्रों की रचना की है।

इस आधार पर चतुरसेन के उपन्यासो के नारीपात्र दो वर्गों मे विभक्त किये जा सकते हैं—

१ युगपरिवेश के प्रति जागरूक नारी-पात्र

ये राजनैतिक, समाजिक क्षेत्र मे सक्रिय नारी-पात्र हैं तथा नारी-अधिकारो

के प्रति विशेष रूप मे सचेष्ट प्रतीत होते हैं।

युगपरिवेश के प्रति जागरूक नारीपात्र कार्यक्षेत्र के आधार पर पांच उप-वर्गों मे विभक्त किय गये हैं—

[क] राजनैतिक दृष्टि से जागरूक नारीपात्र—जो देश की राजनैतिक गति विधियो म पुरुषो की भांति सक्रिय हैं।

[ख] सामाजिक क्षेत्र मे सक्रिय नारी पात्र—जो विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के विरोध मे सघर्षरत हैं।

[ग] नारी-अधिकारों के प्रति जागरूक नारी पात्र—जो पुरुषों के समान अधिकार प्राप्ति के लिये सचेष्ट हैं।

[घ] नारी-कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक नारी-पात्र—जिन्हे परिवार एव समाज आदि के प्रति अपने दायित्वो का बोध है।

[ङ] वैचारिक दृष्टि से प्रबुद्ध नारी पात्र—जो जीवन की विभिन्न समस्याओं के सम्बन्ध मे अपने विचारो की अभिव्यक्ति म समर्थ हैं।

[क] राजनैतिक दृष्टि से जागरूक नारी पात्र

कुण्डनी, रोहिणी (वैशाली की नगरवधू), इच्छनीकुमारी नाफिकादेवी (रक्त की प्यास), जहाँआरा (आलमगीर), पद्मा रेणुकादेवी (उदयास्त), जीजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें), मगला मरी स्टुअर्ट, रानी एलिजाबेथ, रानी लक्ष्मीबाई (सोना और खून), शुभदा (शुभदा,) सम्राज्ञी नागाको, मादाम सूर्पेन्मू, केन, आचा (ईदो) रतन, एनीबीसेंट (खून और खून)।

[ख] सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय नारी-पात्र

सुधा (दो किनारे), मालती देवी (अदल-बदल), फ्लोरेंस नाइटिंगेल (सोना और खून), गोमती (शुभदा), रमाबाई (अपराधी)।

[ग] नारी अधिकारों के प्रति जागरूक नारी-पात्र

अम्बपाली, कलिंगसेना (वैशाली की नगरवधू,) राज, रुक्मिणी (अपराजिता) मायादेवी (अदल-बदल), रेखा, माया (पत्थर युग के दो बुत)।

[घ] नारी कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक नारी पात्र

शारदा (हृदय की परख), सुखदा (हृदय की प्यास), नीलू की माँ, नीलू की सास (नीलमणि), विमलादेवी (अदल-बदल), अरुणा (धर्मपुत्र), सुन्दरी (गोली)।

[ङ] वैचारिक दृष्टि से प्रबुद्ध नारी-पात्र

सरला (हृदय की परख), सुशीला, कुमुद (बहते आँसू), राजदुलारी, सरला, सुधा (आत्मदाह), नीलू (नीलमणि), किरण (नरमेध), मधुघोषा, सुनयना (देवांगना), बेगम (दो किनारे), बेगम शाइस्तामां (आलमगीर),

शोभना शोभना (सोमनाथ), हुस्नबानू माया (धर्मपुत्र), मन्दोदरी, शूर्पणखा, सुलोचना (वय रक्षाम) चम्पा (गोली) प्रमिलारानी (उदयास्त), आभा (आभा) चित्रा प्रतिभा (बगुला), नीलावती (पत्थर युग के दो बुत), समरू बेगम, कुमारी त्रिविधाना (माना और खून) जोहरा, नीलम (सोना) केशव की माँ, बी हुमीदन (खून और खून) रानी चन्द्रकुँवरि (अपराधी)।

२ युग परिवेश से तटस्थ, अपने में सीमित नारीपात्र

भगवती की बहू (हृदय की प्यास) सयोगिता (पूर्णाहुति) नारायणी, भगवती, मालती, बसन्ती (बहते आँसू) सुधीन्द्र की माँ (आत्मदाह), मणि, कुमुदिनी (नीलमणि) मानसी, चन्द्रभद्रा मल्लिका, नन्दिनी, मदलेखा (वैशाली की नगरवधू) मनोरमारानी लेडी शादीलाल (नरमेध), लीलावती (रक्त की प्यास), मालती (दो किनारे), राधा, अन्नपूर्णा (अपराजिता), गंगा (सोमनाथ), केसर (गोली), सरला (उदयास्त), पार्वती नन्दकुमारी गुर्जरकुमारी (लाल पानी), शारदा, पद्मा, श्रीमती बुलाकीदास (बगुला के पंख), कमलावती देवलदेवी (बिना चिराग का शहर), रानी रानमणि (शुभदा) गोविंद की बहू, गोविन्द की माँ (खून और खून), गुनिया (अपराधी)।

निष्कर्ष

वर्गीकरण के उपर्युक्त आधार एवं तदनुसार चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रों का वर्गीकृत विभाजन विशद होते हुए भी सर्वांग-सम्पूर्ण कहना कठिन है। नारी-जीवन की अनेकरूपता और चिरन्तन मानवीय सदर्भों के वैविध्य को मात्र कतिपय वर्गों उपवर्गों में सीमित कर देना सम्भव नहीं है और न यह उचित ही होगा। इसके अतिरिक्त उपर्युक्त वर्गीकरण में अनेकत्र विरोधाभासों अथवा मत-वैभिन्य की सम्भावना भी हो सकती है। इन उपन्यासों के अनेक नारी-पात्र एक साथ ऐसे एकाधिक वर्गों में भी परिगणित हुए हैं जिनके आधार सर्वथा भिन्न अथवा विरोधी हैं। उदाहरणत राजदुलारी, केसर, मोती या बी हुमीदन जैसी सामान्या नायिकाओं अथवा वेश्याओं को उदात्त चरित्र नारी-पात्रों के अन्तर्गत रखा गया है। उसी प्रकार रेखा, माया, मालती देवी, मरी स्टुअर्ट और रानी एलिजाबेथ आदि को 'हीन चरित्र नारी पात्र' कहने के साथ ही 'युग परिवेश के प्रति जागरूक नारी-पात्रों' की तालिका में भी समाविष्ट किया गया है। किन्तु, वर्गीकरण की ये असंगतियाँ वास्तव में दोष द्योतक

त्रुटियाँ न होकर आचार्य चतुरसेन के नारी चित्रण की सूक्ष्मता की सूचक हैं। उदाहरणार्थ अम्बपाली, शोभना अथवा बी हमीदन के चरित्र का विकास क्रम देखा जा सकता है।

अम्बपाली प्रारम्भ में पुरुष-मात्र के प्रति प्रतिशोध भावना की ज्वाला में तप्त एवं प्रबुद्ध विद्रोहिणी और उदात्त चरित युवती के रूप में उपस्थित होती है। किन्तु बाद में बिम्बसार और उदयन को शरीर-समर्पण कर वह नारी-सुलभ विवशता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अन्त में उसके बौद्ध-भिक्षुणी बनने में यही आभास होता है कि वह अब तक की अपनी सम्पूर्ण जीवन चर्या को कलुषित मानकर, उसका प्रायश्चित्त कर रही है। शोभना सामान्य-नारी-मर्यादा का उल्लंघन कर, देवा के प्रेम में जब इतनी खो जाती है कि शत्रुपक्ष के हितार्थ धर्म-परिवर्तन कर लेने वाले प्रेमी द्वारा किये गये षड्यन्त्र में सहयोगिनी बनना भी उसे नहीं अखरता। उसके प्रति पाठक के हृदय में घृणा भाव का उदय होना स्वाभाविक है। किन्तु शीघ्र ही उसकी उदात्त मानस-चेतना उसे श्रेष्ठ देश-भक्त नारी ही नहीं, अपितु आदर्श मानवी के रूप में परिणत कर देती है। बी हमीदन एक गायिका से वेश्या बनकर अपन चारित्रिक पतन का साक्ष्य प्रस्तुत करती है। एक सम्भ्रान्त मुस्लिम परिवार की रक्षा-हेतु उसका नारीत्व-समर्पण एवं बाद में राष्ट्र की अखण्डता-हेतु स्वजातीय देश-द्रोहियों का भण्डाफोड़ अनायास उसके व्यक्तित्व को ऊँचा उठा देता है।

एक ही नारी-पात्र के चरित्र-वैविध्य के अनेक उदाहरण विभिन्न उपन्यासों में उपलब्ध हैं। अभिप्राय यह है कि किसी भी नारी-पात्र का एकाधिक वर्गों में परिगणित किया जाना न तो असंगत है और न अस्वाभाविक ही। कारण स्पष्ट है 'मानव में गुण-अवगुण और शक्ति-दुर्बलता का स्वाभाविक मिश्रण है। उसके मनोविकार समय-समय पर और स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप धारण करते रहते हैं। एक स्थिति में नितान्त क्रूर दिखाई देने वाला व्यक्ति दूसरी स्थिति में दया का अवतार भी प्रतीत हो सकता है। यदि किसी एक के प्रति उसकी आसक्ति है तो किसी अन्य के प्रति उसकी विरक्ति भी सम्भव है।'[1] आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रों में मानव-स्वभाव के इन सभी रूपों का सम्यक् समावेश होने के कारण, उनके वर्ग-वैविध्य अथवा वर्ग-सम्मिश्रण की सम्भावना अनुपयुक्त नहीं है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के आधार पर पूर्व पृष्ठों में जो वर्गीकरण

---

१. डॉ० रामप्रकाश, समीक्षा-सिद्धान्त, पृ० ११२।

प्रस्तुत किया गया है, उनके आधारों में बहिरंग और अन्तरंग आधारों में परिवार, समाज, वैयक्तिक जीवन आदि आठ आधार लिये गये हैं। इनमें सामाजिक, पौराणिक तथा ऐतिहासिक कालक्रम के नारी-पात्रों को समाहृत किया गया है। साथ ही समाज के युग-परिवेश के अनुसार भी इस वर्गीकरण में नारी-पात्रों को रखा गया है। इस प्रकार देश-काल की परिधि में जीवन की विविध-पक्षीय अनुभूतियों में अनुस्यूत नारी-पात्रों के चरित्र चित्रण का अध्ययन अगले पृष्ठों में किया गया है।

पंचम अध्याय

आचार्य चतुरसेन के पौराणिक-ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रमुख नारी-पात्रों का चरित्र-विश्लेषण

पात्र-वर्गीकरण

आचार्य चतुरसेन ने प्रागैतिहासिक काल से आधुनिक काल तक की कथाओं को अपने उपन्यासों का आधार बनाया है। उन्होंने उपन्यासों में सम्बन्धित युग और काल का विशद चित्रण किया है। उनके पौराणिक-ऐतिहासिक उपन्यासों के नारी-पात्र प्रायः असाधारण हैं। उनमें स्वच्छन्दता, कर्तव्यपरायणता, साहस, आत्मोत्सर्ग तथा लावण्य की मात्रा विशेष पाई जाती है। ऐसे पात्रों के चयन का कारण रचयिता चतुरसेन की शैलीगत विशेषता है। एक विज्ञ आलोचक के शब्दों में — "पुरातन शौर्य के वर्तमान ध्वस्त चिह्नों को देखकर, उन (लेखक चतुरसेन को) अतीत के गौरव गान की प्रेरणा मिलती है। उनकी दृष्टि इतिहास की चकाचौंध (ग्लैमर) पर केन्द्रित है। इतिहास-पुरुषों के उत्थान पतन की गाथा उन्हें भाती है। देश-नरेश, राजा, सामन्त, मन्त्री, योद्धा, पण्डित, सुन्दरी ये सब उनके वर्ण्य विषय हैं। उनकी टकटकी इतिहास के ऊँचे टीलों, वैभव-गरिमा तथा उसके किनारे चमत्कारमयी चमचमाती बालू पर लगी है। मैदान, पेड़-पौधों, घास फूस के सरल साधारण जीवन रूप, उनकी दृष्टि से ओझल रहते हैं। उसने उपन्यासों में सार्वजनिक जीवनधारा को चित्रित करने का प्रयत्न नहीं किया है।"[1]

चतुरसेन के विषय में विज्ञ आलोचक का यह कथन, उनके नारी-पात्रों के सम्बन्ध में यथार्थ उतरता है। उन्होंने इतिहास रस सृष्टि के लिये अतीत

---

1. डा० शशिभूषण सिंहल, हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ पृ० ३६७।

से सामान्य, साधारण नारी-पात्र न लेकर केवल गौरवमय अथवा असाधारण नारी-पात्रों को चुना है, क्योंकि उनके निकट इतिहास एक उत्तेजना है। उसका अर्थ है—अनुपम शौर्य, सौन्दर्य और ऐश्वर्य, अपूर्व उत्थान और पतन। उनके उपन्यासों में कुतूहल-सृष्टि, अनवरत गति तथा आवेग के तत्व हैं। संस्कृति-चित्रण एवं पूर्व-मान्यताओं की स्थापना के लिये वे आलोचना का पुट, स्वच्छन्दतावादी कल्पना तथा इतिवृत्त का आश्रय लेते हैं। ऐसा करने से वे अपने उद्देश्य में सफल अवश्य होते हैं, किन्तु साधारण नारी-पात्रों का चित्रण, ऐसा करने में, पूरी मात्रा में नहीं हो पाया है। उन्होंने नारी के समस्यात्मक रूप तो प्रायः सब ले लिए हैं। पर समाज के सामान्य नारी-पात्रों, विशेष कर कुरूप, संस्कारहीन नारी पात्रों की प्रायशः उनके द्वारा उपेक्षा हो गई है। कहना न होगा कि ऐसी नारियों का समाज में बाहुल्य है। उनकी अपनी विशेषताएं होती हैं। उनके साधारण, सीधे सादे या रूखे रूप की तह में आन्तरिक सौन्दर्य छिपा रहता है। उसे पहचानने के लिये दृष्टि चाहिए।

आचार्य चतुरसेन के पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों में नारियों के अनेक-विध चरित्र हैं। उन्हें हम सुविधा की दृष्टि से और उनकी युगीन विशेषताओं के कारण वर्तमान-कालीन सामाजिक उपन्यासों के नारी चरित्रों से पृथक् रख रहे हैं और वर्गों में बाँट रहे हैं। इनकी सभी नारियाँ प्रायः असाधारण रूपवती, स्वाभिमानिनी तथा विवेकशीला हैं। इस वर्गीकरण में विरोधाभास तथा मतभेद सम्भव है किन्तु चरित्र की प्रमुख विशेषता को लक्षित करने के लिए उसकी प्रधान विशेषता को शीर्षक-रूप में रखा गया है।

ऐतिहासिक पौराणिक नारी-पात्रों के वर्ग नौ हैं—(१) असाधारण नारियाँ, (२) स्वच्छन्द, विलासिनी नारियाँ, (३) कूटनीतिक नारियाँ, (४) पीड़ित नारियाँ (५) स्वाभिमानिनी नारियाँ, (६) सती नारियाँ, (७) योद्धा नारियाँ, (८) मानवतावादिनी नारियाँ, (९) भक्ति, त्यागमयी नारियाँ।

(१) असाधारण नारियाँ वे हैं, जिनको उपन्यासकार ने चरित्र की विशेष दृढ़ता और उनके जीवन में अधिक उतार-चढ़ाव के कारण असाधारण रूप में चित्रित किया है। वे हैं—

क्रम सं०	पात्र	उपन्यास
१.	चन्द्रभद्रा	वैशाली की नगरवधू
२.	मातंगी	"
३.	कुण्डनी	"
४.	चौला	सोमनाथ

क्रम	पात्र	उपन्यास
५.	म० एलिजाबेथ	सोना और खून-२
६	शोभना	सोमनाथ
७	अम्बपाली	वैशाली की नगरवधू

(२) स्वच्छन्द विलासिनी नारियाँ—जो मनमाने ढंग से जीवन व्यतीत करती हैं। सामाजिक मर्यादाओं की उन्हें चिन्ता नहीं है। जैसे—

१.	दैत्यबाला	वयं रक्षामः
२.	शूर्पणखा	,,
३	मेरी स्टुअर्ट	सोना और खून-२
४.	जहाँआरा	आलमगीर

(३) कूटनीतिक नारियाँ राजनीति में सक्रिय भाग लेकर अपने व्यक्तित्व को उभारती हैं। जैसे—

१.	मादाम लूईस	ईदो
२.	केन	,,

(४) पीड़ित नारियाँ व्यक्तिगत रूप में पुरुष समाज से पीड़ित या उनकी कामवासनाओं का शिकार हुई हैं, अथवा वे अपनी काम-बुभुक्षा न मिट सकने के कारण पीड़ित होती हैं। जैसे—

१	कुदसिया बेगम	सोना और खून-१
२	कमलावती	बिना चिराग का शहर
३.	देवलदेवी	,,
४.	मल्लिका	वैशाली की नगरवधू
५.	नन्दिनी	,,
६.	सुनयना	देवांगना
७.	मंजुघोषा	,,
८	कु० विविआना	सोना और खून-२

(५) स्वाभिमानिनी नारियाँ अपने कर्तव्य और आत्म-सम्मान के प्रति अधिक सजग हैं। चरित्र स्थिरता इनकी असाधारण विशेषता है। इनमें कोई पुत्रवत्सला है, कोई पतिपरायणा है और कोई मुग्धा नायिका है। जैसे—

१.	इच्छनीकुमारी	रक्त की प्यास
२.	सोनावती	,,
३.	नायिकादेवी	,,
४.	कलिंगसेना	वैशाली की नगरवधू
५.	बेगम शाइस्ताखाँ	आलमगीर

क्रम	पात्र	उपन्यास
६.	कैकेयी	वय रक्षामः
७.	संयोगिता	पूर्णाहुति
८.	जीजाबाई	सह्याद्रि की चट्टानें
९.	सीता	वय रक्षामः
१०.	सुभद्रा	सुभद्रा

(६) सती नारियाँ पतिपरायण हैं। ये युद्ध में भी पति के साथ रहती हैं। अन्त में चिता में पति के शव के साथ भस्म होकर ये सतीत्व धर्म का पालन करती हैं। जैसे—

१.	मायावती	वय रक्षामः
२.	मन्दोदरी	"
३.	सुलोचना	"

(७) योद्धा नारियाँ अपने जीवन की चिन्ता न करके देश और जाति के लिए युद्ध करती हैं। ये यश और पुण्यार्जन कर परलोक सिधारती हैं। जैसे—

१.	मगला	सोना और खून-१
२.	म० लक्ष्मीबाई	" ४

(८) मानवतावादिनी नारियाँ अपने जीवन को मानवजाति की सेवा में समर्पित कर देती हैं। जैसे—

१.	साम्राज्ञी-नाशाको	ईदो
२.	फ्लोरेंस नाइटिंगेल	सोना और खून-३

(९) भक्ति, त्यागमयी नारियाँ अपने जीवन को भक्ति या त्याग में लगा देती हैं। जैसे—

१.	ग्राचा	ईदो
२.	शोभा	सोमनाथ

इनके अतिरिक्त कुछ उल्लेखनीय गौण नारी-पात्र हैं। ये उपन्यास में अल्प-काल के लिए उपस्थित होकर भी अपनी चारित्रिक विशेषताओं से पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। ऐसे पात्र प्रमुख पात्रों में ही सम्मिलित कर लिए गए हैं। जैसे—

१. मन्थरा (कुटिल)	वय रक्षामः
२. रोहिणी (नीतिज्ञ)	वैशाली की नगरवधू
३. कैकसी (पितृभक्त एवं प्रेरणामयी माँ)	वय रक्षामः
४. पार्वती (ममतामयी)	लाल पानी

क्रम	पात्र	उपन्यास
५	भोमती (करुणामयी)	शुभदा
६	नन्दकुमारी (प्रेममयी)	लाल पानी
७.	ममछू बेगम (व्यवहार कुशल)	सोना और खून १
८	गुर्जर कुमारी (दर्पमयी)	लाल पानी
९.	म० रामभणि (धर्मपरायण)	शुभदा

असाधारण नारियां

१. चन्द्रभद्रा (वैशाली की नगरवधू)

चन्द्रभद्रा कामुक और विलासी चम्पानरेश दधिवाहन की सुशील कन्या है। पिता के स्वभाव से सर्वथा विपरीत वह सौम्य मर्यादामयी, आस्थावती तथा मानवतावादिनी नारी है। चन्द्रभद्रा रूपवती है। 'वह मूर्तिमयी स्वर्ग मन्दाकिनी-सी शुभ्र मे खोद कर बनाई हुई दिव्यप्रतिमा-सी प्रतीत होती है जैसे धर्मा-धर्मी विधाता ने उसे चन्द्रकिरणों के कूर्चक से धोकर, रक्त रस से आप्लावित करके, सिन्धुवार के पुष्पों की धवल कान्ति से सजाकर प्रतिष्ठित किया हो।'[1]

वह एक सच्ची प्रेमिका है। सोमप्रभ के प्रति उसके हृदय में अनुराग के अंकुर उस समय फूटते हैं, जब वह उसके पिता दधिवाहन की मृत्यु के उपरान्त उसकी रक्षा का दायित्व अपने कंधों पर ले लेता है। उसका प्रेम अनन्य है। सोमप्रभ को मौनभाव से हृदयार्पण कर देने के पश्चात् वह मन ही मन उसे जीवन-मरण का साथी मान लेती है। चम्पा से प्रस्थान करने के बाद जब वे लोग शम्ब दस्यु के जाल में फँसते हैं, तब सोमप्रभ द्वारा उसे बार-बार भाग जाने के लिए कहने पर उसके मुख से अनायास ये शब्द निकल पड़ते हैं—'मैं जीते जी तुम्हें छोड़ नहीं सकती।' इस पर ज्यों ही सोमप्रभ अपने को उसके पिता का शत्रु (मागध) बताता है, तो क्षण भर के लिए वह चौंक कर अलग हट जाती है। किन्तु यह जातीय व्यवधान अधिक समय तक उसके अनुराग को प्रति-बन्धित नहीं रख पाता। सोमप्रभ द्वारा अपना कर्त्तव्य पूर्ण करने के उपरान्त चिर विदा की याचना करने पर वह स्वयं को वश में न रख पाती हुई कह देती है—'मैं, सौम्य प्रियदर्शन, तुम्हारी चिर विरहिणी पत्नी होने में गर्व अनुभव करूँगी।'[2] जब सोमप्रभ योजनानुसार उसे कौशल के युवराज कुमार

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ६५४।
२. वही, पृ० ४३१।

विडूडभ से विवाह कर उसकी राजमहिषी बनने की अनिवार्यता से परिचित कराता है, तब वह स्पष्ट कहती है— किन्तु मैं तुम्हें प्यार करती हूँ केवल तुम्हें।[1]

चन्द्रभद्रा सोमप्रभ के प्रेम मे आपाद मस्तक डूबी होने पर भी विवेक और मर्यादा को हाथ से नहीं जाने देती। साकेत के प्रासाद मे रहते समय उससे जब सोमप्रभ मिलने की कामना करता है तो वह कहती है— जब तक महाश्रमण का आदेश न हो, यहाँ न आएँ।[2] सोमप्रभ के स्वयं आकर आग्रह करने पर वह पुनः कहती है—'यही उत्तम है, धर्म-सम्मत है, गुरु जन अनुमोदित है। साम प्रियदर्शन, तुम जाओ कोई दासी तुम्हें साथ देखे यह शोभनीय नहीं है।' इससे चन्द्रभद्रा की प्राम्या बुद्धि का बोध होता है। वह श्रमण महावीर की अनुगामिनी है। चम्पा मे वह उन्हीं के दर्शनार्थ कुण्डनी और सोमप्रभ के साथ निकलती है। वह हर कार्य करने से पूर्व उन्हीं से आदेश प्राप्त करती है। सोमप्रभ के प्रति हृदय मे अनन्य भाव से अनुरक्त होती हुई भी वह महाश्रमण की अनुमति के बिना उसके अपने पास आने पर उसे तत्काल लौटा देती है।

अन्त मे भगवान् महावीर, सोमप्रभ एवं कुण्डनी आदि के सभी के आग्रह को शिरोधार्य करती हुई वह कोशल-कुमार विडूडभ से परिणय-बन्धन स्वीकार कर लेती है।

२. मातंगी (वैशाली की नगरवधू)

'वैशाली की नगरवधू' उपन्यास के सम्पूर्ण कथाचक्र की प्रच्छन्न सूत्रधारिणी आर्या मातंगी उपन्यास मे प्रायः अप्रकट रहकर भी अपने प्रबल व्यक्तित्व के प्रति पाठकों का ध्यान सदा आकृष्ट किये रहती है। यह ब्राह्मण गोविन्द स्वामी की पुत्री है। इसका लालन-पालन मगध के राजगृह मे बिम्बसार के साथ होता है। यौवन की देहरी पर पैर रखते ही इसका नारीत्व पुरुष समाज के स्वार्थमय विधान और कुत्सित स्वार्थ-साधन से अभिशप्त हो जाता है। युवक वर्षकार के प्रति इसका आन्तरिक अनुराग है। पर पिता द्वारा निषेध कर दिये जाने पर, वह उससे प्रणय-सूत्र मे आबद्ध नहीं हो पाती। वर्षकार उससे अवैध सम्बन्ध स्थापित कर उसे माँ बना देता है। उससे एक कन्या (अम्बपाली) उत्पन्न होती है। सम्राट् बिम्बसार भी उसे अपनी वासना का शिकार बनाता है। इसके परिणामस्वरूप सोमप्रभ का जन्म होता है। नारी दुर्भाग्य का यही अन्त नहीं

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ४३१।
२. वही, पृ० ३७५।

होता । उसे पिता की मृत्यु के तीन वर्ष उपरान्त यह ज्ञात होता है कि वास्तव में वह और वर्षकार एक ही माँ की सन्तानें हैं । यह जानकर उसका हृदय ग्लानि से विदीर्ण हो जाता है ।

मातंगी सदा नारी-रूप में ही छली नहीं गई अपितु माँ के रूप में भी उसका मन आजीवन मौन आँसू बहाता रहा है । सोमप्रभ के प्रति कहे गये उसके शब्द उसकी आहत ममता के द्योतक हैं—'माँ कहो प्रिय ! माँ कहो । जीवन के इस छोर से उस छोर तक मैं यह शब्द सुनने को तरस रही हूँ ।'[1] उसके नारी जीवन की विडम्बना यह है कि वह मगध सम्राट बिम्बसार और मगध महामात्य वर्षकार की वासनाओं तथा सोमप्रभ जैसे महापराक्रमी पुत्र एवं अम्बपाली जैसी लोकविश्रुत कल्याणी की माँ होकर भी आजीवन एकान्त-वास का व्रत लिए एकाकिनी विश्व के सब व्यवहार देखती रहती है । अन्तिम क्षणों में, स्वयं पुत्र के सम्मुख अपने कलंकित जीवन का रहस्योद्घाटन करने के पश्चात् उसका जीवन समाप्त हो जाता है ।

३ कुण्डनी (वैशाली की नगरवधू)

यह एक रहस्यमयी विषकन्या है । जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त इसका सारा जीवन अलौकिक, अनिमानवीय तत्त्व से युक्त दिखाई देता है । यह आचार्य शाम्बव्य काश्यप की पुत्री है । वह मन्त्रपूत सर्पदंशों द्वारा इसके समूचे शरीर को विषधर में परिणत कर देता है ।

इसका मोहक रूप विष संचार के प्रभाव से सच्चे अर्थों में मायावी और घातक बन जाता है । अपने विषैले चुम्बन से वह चम्पा नरेश दधिवाहन और शम्बर असुर का सर्वस्व विनाश कर सोमप्रभ के माध्यम से सभी राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति करती है । इसके पास रूपवैभव भी अनन्त है । 'उसका मुख चम्पे की कली के समान पीतप्रभ है आँखें विलासपूर्ण और मदभरी हैं, होंठ लालिमा से लबालब हैं ।'[2] उसकी सघन श्याम केशराशि चाँदी जैसे मस्तक पर बड़ी मनोहर लगती है । लम्बी चोटी नागिन के समान चरण-चुम्बन करती है । कटि क्षीण, नितम्ब पीन और उरोज सुन्दर हैं । रूपसी के इस मोहक व्यक्तित्व में नर्तकी की कला का सम्मिश्रण हो जाने से उसके प्रभाव का वर्णन नहीं हो सकता । पर यह उसके व्यक्तित्व का एक सामान्य पक्ष है ।

कुण्डनी के व्यक्तित्व की वास्तविक महत्ता उसकी नीतिनिपुणता विवेक बुद्धि,

---

१ वैशाली की नगरवधू, पृ० ६६ ।

२. वही, पृ० ८३ ।

निर्भीकता और व्यवहारकुशलता में है। शम्बर असुर के व्यक्तित्व द्वारा सोमप्रभ के साथ बन्दिनी बना लिये जाने पर उसकी नीतिनिपुणता देखते बनती है। वह सोमप्रभ को आश्चर्य-चकित करती हुई बड़ी चतुराई से पहले शम्बर को वश में करती है और फिर मर्मस्थ उसका अन्त कर देती है। वह भावुक नहीं है, अवसर के अनुकूल विवेक बुद्धि से काम लेना जानती है। उसके विष-चुम्बन से चम्पा-नरेश की मृत्यु हो जाने पर राजकुमारी चन्द्रभद्रा की विपन्नावस्था से भावुक होकर जब सोमप्रभ इस स्थिति का उत्तरदायी स्वयं को मानता है, तब कुण्डनी स्पष्ट करती है—'ये मूर्खता की बातें हैं। हम मगध राजतन्त्र के सेवक हैं। हमें भावुक नहीं होना चाहिये।' वह शरीर बल की अपेक्षा बुद्धिबल को अधिक महत्वपूर्ण मानती है और उसे बार-बार मस्तिष्क को ठंडा रखने तथा निर्भयतापूर्वक आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है।

कुण्डनी की निर्भीकता का परिचय हमें एकाधिक अवसरों पर मिलता है। सर्वप्रथम तो वह पिता द्वारा अपने को बलात् विषकन्या बनाने का विरोध करती हुई निडरता से कहती है—'तो आप मार डालिए पिता, मैं नहीं जाऊँगी।'[1] इसी प्रकार सोमप्रभ के साथ निर्दिष्ट अभियान पर जाते समय घोर वन को पार करते हुए वह अद्भुत साहस का परिचय देती है। सोमप्रभ भी ऐसी निडर और वीरांगना' की संगति प्राप्त कर अपने आपको धन्य मानता है। वह इतनी व्यवहार-कुशल है कि कभी नर्तकी, कभी अंगसेविका, कभी योद्धा, कभी वणिक्पुत्र और कभी वेश्या के रूप में अपने कर्त्तव्य कर्म का संचालन पूरी तत्परता से करती है।

अन्त में दैत्यपूजित श्रीमधान भैरव द्वारा देवजुष्ट सेट्ठिपुत्र पुंडरीक के रूप में इसके विषमय प्राणों का पान कर लिये जाने पर इसकी रहस्यमय ढंग से मृत्यु हो जाती है।

४. चौला (सोमनाथ)

चौला का अनुपम लावण्य सोमनाथ महालय के विध्वंस का मुख्य कारण बनता है, और उसी का आत्मोत्सर्ग महालय के पुनरुत्थान का प्रेरक भी सिद्ध होता है।

निर्माल्य के रूप में लाई गई भेंट-स्वरूप वह षोडशी बाला 'लाज, रूप और यौवन में डूबती-उतराती' जब नौका से बाहर निकलती है, तब उसकी स्वर्ण देह-यष्टि को देखकर सभी आश्चर्य-विमूढ़ रह जाते हैं। प्रथम बार देवप्रतिमा

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ७३।

के सम्मुख रत्न-वीथी के प्रकाश में जब 'वह शतदल श्वेत कमल-सी किशोरी अपना समस्त अनावृत सौरभ' लेकर उपस्थित होती है तब दर्शक-समुदाय मुग्ध मौन अवाक् रह जाता है। उसकी यह अमित रूपमाधुरी पाटन-युवराज भीमदेव और गजनी सुलतान महमूद को अनायास एक साथ अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। महमूद उसी को पाने के लिये सोमनाथ पर अभियान करता है। फलस्वरूप पूरा गुजरात विध्वंस के गर्त में समा जाता है। किन्तु भीमदेव उसके शील और सौन्दर्य के सरक्षण में सफल हो जाता है।

चौला का नृत्य सर्व जन-मोहक है। उसके 'नूपुर शोभित लाल-कमल से चरण' जब श्वेत प्रस्तर के सभा-भवन के विस्तार को छू छू कर ऊधम मचाते हैं, तब घुघरुओं की झकार जैसे लोगों के हृदयों में ज्वार-भाटा उत्पन्न कर देती है। उस सुप्रभात-सी सुकुमार नवल किशोरी का वह अद्भुत परम शुद्ध शैव नृत्य देखकर बड़े-बड़े कलाकार आश्चर्यचकित रह जाते हैं। यहाँ तक कि उसके नृत्य का साथ देने वाले मृदंग-वादक थक कर हाँफने लगते हैं।

चौला वीर पुरुष भीमदेव के प्रति आकृष्ट हो जाती है। बहुत लम्बे समय तक वह 'भीमदेव की सलोनी मूर्ति' को हृदय में छिपाती रही। परन्तु धीरे-धीरे वह प्रेम-ज्योति अनावृत होने लगी। अन्ततः महालय के अधिष्ठाता गंग सर्वज्ञ और प्रधान नर्तकी गंगा के आयोजन में वे दोनों धर्मसूत्र में आबद्ध हो जाते हैं। चौला आजीवन अपने प्रेमी (बाद में पति) के अंग स्पर्श के सुख से वंचित रहती है। जिस दिन कुमार भीमदेव महाराज पद पर अधिष्ठित होकर उसे महाराज्ञी घोषित करने का विचार करता है, उसी दिन राजकीय मद-पुरुषों और सामाजिक मर्यादाओं के व्याख्यानाओं द्वारा आपत्ति कर दी जाती है। चौला प्रेम-पीर को हृदय में संजोए तत्क्षण मन्दिर में देवसेवा के लिये लौट जाती है। वह अपनी चिरकुमारिका होने की स्थिति को शान्त भाव से स्वीकार कर लेती है।

प्रेम, यौवन और सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति यह बाला अवसर आने पर एक निपुण योद्धा और वीरांगना के रूप में प्रकट होती है। सोमनाथ मन्दिर के विध्वंस के उपरान्त यह कुमार भीमदेव के साथ खम्भात दुर्ग में शरण लेती है। दुर्ग का समूचा प्रबन्ध स्वयं हस्तगत कर कुमार, सेनापति एवं अन्य सभी सैनिकों को गुजरात-रक्षा के लिये चले जाने का आदेश देती है—"सेनापति! इसी क्षण महाराज को सुरक्षित, दुर्ग से बाहर ले जाओ। दुर्ग में मुझे एक भी योद्धा की आवश्यकता नहीं। गुजरात के धनी की तलवार मेरे हाथ में है।"[1]

---

1. सोमनाथ, पृ० २०१।

सोमनाथ महालय के विध्वस के उपरान्त आने वाले हर सकट को वह साहस और धैर्य के साथ सहन करती है। खम्भात से निकलने के पश्चात् वह सर्वथा एकाकिनी रहकर सभी विपत्तियों का सामना करती है। वह पुरुष-वेश मे योद्धा का रूप धारण कर, विभिन्न बाधाओं को पार करती हुई अतत कुमार भीमदेव के पास पाटन पहुँचने मे सफल होती है।

५. महारानी एलिज़ाबेथ (सोना और खून, भाग २)

इग्लैंड की 'कुमारी रानी' के नाम से प्रसिद्ध सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ के चरित्र के अन्तरग एव बहिरग पक्ष स्पष्टत भिन्न है। अन्तरग रूप मे वह यौन कुण्ठित, अमुक्त काम-वासना की शिकार, नारी-सुलभ ईर्ष्या और प्रतिशोध भावना से युक्त स्त्री है। बहिरग मे वह अधिकार-प्रिय, दवग, बुद्धिमती, निडर, दूरदर्शिनी तथा समन्वयवादिनी शासिका सिद्ध होती है।

एलिज़ाबेथ के अधेड अवस्था तक अविवाहित रहने का कारण उसकी अधिकार-प्रियता है। 'वह पति ही क्यों, किसी के भी शासन मे रहना पसन्द नहीं करती।' इसके अतिरिक्त उसके सम्मुख यह दुविधा है कि 'यदि वह कैथोलिक पति से विवाह करती है तो प्रोटेस्टेंटो के नाराज हो जाने के कारण 'चर्च आफ इग्लैंड की अधिष्ठात्री' के पद से वचित हो जायेगी और यदि वह प्रोटेस्टेंट पति का वरण करती है तो रोमन कैथोलिक नाराज़ हो जायेंगे।'[1] इस प्रकार उसका कुंवारापन राजनैतिक स्वार्थसिद्धि का आधार है। साथ ही इसी कारण वह प्रेमकुठा का शिकार बनी हुई है। लोकप्रसिद्ध है कि 'उसके कई प्रेमी हैं। उसके प्रेमपात्र विभिन्न प्रेमियो मे कई बार द्वन्द्व-युद्ध भी हो जाता है। वह कभी एक प्रेमी पर कृपा-दृष्टि करती है और कभी दूसरे पर। उसकी मुस्कान से प्रभावित होकर न जाने कितने प्रेमी जान जोखिम मे डाल चुके हैं।' उसके कुठित मन की विद्रूपता उस समय दृष्टिगत होती है, जब उसका नवप्रेमी अर्ल आफ एसैक्स उसकी एक कमसिन सुन्दर सखी के प्रति आसक्त हो उठता है। वह उन दोनों से अपनी कुठा का प्रतिशोध लेने के लिये पहले सार्वजनिक उत्सव में अकस्मात् उन दोनो के विवाह की घोषणा करके उन्हें उल्लसित कर देती है, किन्तु अगले ही क्षण अर्ल आफ एसैक्स को आयरलैंड पर अभियान करने का आदेश देकर उन्हें सुहागरात मनाने से भी वचित कर देती है। इस पर वह मन ही मन कहती है—'ओफ, इस दासी का यह साहस! उसने मेरे शिकार पर हाथ डाला। अपने रूप पर उस दासी को इतना घमण्ड! पर मैंने बदला ले लिया। सुहागरात

---

१. सोना और खून, द्वि० भा० पृ० ४८।

न हुई न होने पाई ! विवाह के क्षण से ही वह अपने को विधवा समझे !" उसकी इस मानसिक विकृति का स्वरूप उसके अपने ही शब्दों मे स्पष्ट हो जाता है—"मैं मूर्ख अपने रानी के रूप को सर्वोपरि समझती रही। अपना औरत का रूप मैंने नहीं देखा। मैं समझती रही, वह रानी को प्यार करता है। पर मर्द प्यार रानी को नही, औरत को करता है। मैं नही जानती कि मैं एक औरत हूँ ! कैसा आश्चर्य की बात है ! रानी की सम्पूर्ण गरिमा को चीर कर यह औरत कहाँ से मेरे अन्दर से निकल आई, मुझे अपमान, निराशा और पराजय मे ढकेलने के लिए।"[1] एलिजाबेथ की यह अन्तर्वेदना एक नारी के आहत नारीत्व का सजीव मनोवैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत कर देती है।

महारानी एलिजाबेथ का बहिरंग व्यक्तित्व विभिन्न गुणों से विभूषित है। लेखक के शब्दों मे वह 'राजनीतिनिपुण, रुआब तथा दबदबे वाली स्त्री है। वह दबंग, बुद्धिमती तथा दूरदर्शिनी भी है।' मेरी स्टुअर्ट तथा उसके सहयोगियो द्वारा बनाई गई विद्रोह-योजना मे अवगत होने पर वह तनिक विचलित नही होती अपितु बडे हाथो सब विरोधियो का दमन करती है। पोप द्वारा पतित घोषित कर दिये जाने पर भी वह अपनी समन्वय-नीति द्वारा सभी की श्रद्धा अर्जित किये रहती है। 'यद्यपि उसके चरित्र-दौर्बल्य की बातें सर्वज्ञात हैं परन्तु उसकी दृढ़ता भी विख्यात है।' कट्टर प्रोटेस्टेंट होते हुए भी, वह प्रजा में व्याप्त धार्मिक वैमनस्य को दूर करने के लिए 'नेशनल चर्च आफ इग्लैंड' की नीव डालती है जिसमे प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक दोनो मतो की क्रियाविधि स्वीकृत है। उसकी उदार नीति से पिछले पचास वर्षों से चले आते धार्मिक झगडे समाप्त हो जाते हैं। लोग धार्मिक मतभेदो से मुक्त होकर अपने-अपने कामों मे जुटते हैं।

यदि 'नारी' के रूप मे एलिजाबेथ दयनीय है तो 'शासिका' के रूप मे वह स्पृहणीय है।

६. शोभना (सोमनाथ)

शोभना के चरित्र को पूर्णतः मानवीय धरातल पर चित्रित करते हुए उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि नारी की महानता को विश्व का बडे से बडा शक्तिशाली पुरुष भी स्पर्श नही कर सकता।

सोमनाथ महालय के अधिकारी एव तान्त्रिक कृष्णस्वामी की यह बाल-विधवा कन्या प्रेम, सेवा, त्याग, करुणा और वीरता की जीती-जागती मूर्ति है।

---

१. सोना और खून, द्वि० भा०, पृ० १३।
२. वही, पृ० ५४।

एक ओर प्रिय के अनुराग की वेदी पर यह धर्म और नैतिकता की बलि चढ़ाने को तत्पर हो जाती है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय-कर्त्तव्य के निर्वाह-हेतु अपने उसी अनुराग का गला घोटने से नहीं हिचकिचाती। किन्तु प्रत्येक परिस्थिति में वह जीवन को प्यार करती है। वह आठ वर्ष की आयु में ब्याही गई और एक ही वर्ष बाद विधवा हो गई थी। फिर भी वह बड़े ठाट-बाट से रहती है। उसके हृदय में जाति, धर्म या समाजगत भेद-भाव के लिए कोई स्थान नहीं है। अपने पिता की शूद्रा दासी के पुत्र को वह प्राणपण से चाहती है। प्रेमी के इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लेने पर वह उसके लिए सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार है। विभिन्न घटनाओं के व्यूह को पार करती हुई जब वह 'चौला' के अभिधान-आवरण में अमीर महमूद को देश से निकालने का उद्देश्य लेकर उसके सम्पर्क में आती है, तब उसके निश्छल प्रेम एवं हृदयार्पण से प्रभावित होकर वह आजीवन उसी की सेवा में रहने की कामना प्रकट करती है।

शोभना के जीवन में एकाधिक बार भीषण अन्तर्द्वन्द्व के अवसर आते हैं। पहले, वह अपने प्रेमी (देवा उर्फ फतह मुहम्मद) की योजनानुसार चौला की कपट-सखी बनकर महमूद के अभियान को सफल बनाती है। किन्तु चौला के सम्पर्क में रहकर वह उसकी इतनी अंतरंग आत्मीया बन जाती है कि उसकी सत्त्व-रक्षा-हित अपने उसी प्रेमी को छल से मार डालती है। वह प्यार का मूल्य पहचानती है, पर प्यार के लिए कर्त्तव्य का बलिदान नहीं कर सकती। वह विधर्मियों के सहायक अपने प्रेमी से कहती है—'निस्सन्देह प्यार तूने भी किया और मैंने भी, पर तुम मनुष्य नहीं, कुत्ते हो। तुम्हारे प्यार का मूल्य एक जूठी रोटी का टुकड़ा है।'[1] प्रेमी वध के अपने इस कृत्य को वह अपने प्रेम का पोषक मानती है। जब चौला उससे पूछती है कि क्यों तूने मेरे लिए अपना ही घात कर डाला? तब उसका उत्तर है—आप के लिए नहीं, अपने प्यार के लिए। उसे मैंने कलंकित होने से बचा लिया।

शोभना वीरांगना है। उसके बल का सम्बल पाकर चौला भीषण विपत्ति-सागर को पार करने में सफल होती है। शस्त्र-संचालन में वह इतनी निपुण है कि एक ही वार में फतह मुहम्मद का सिर काट कर फेंक देती है। विशाल खम्भात दुर्ग में वह और चौला केवल उसी की सूझ-बूझ से सुरक्षित रहकर शत्रु को निरस्त करने में सफल होती हैं। वह चौला से कहती है—'बहिन, यह युद्ध-काल है और हमारी स्थिति सिपाही की है। भावुकता को छोड़िये। आप गुप्त राह जाकर महाराज से मिल जाइये और उन्हें अपने प्यार का बल देकर

१. सोमनाथ, पृ० २०५।

गुजरात की प्रतिष्ठा, धर्म और देवता की रक्षा कीजिये ।" इसके उपरान्त, वह अन्त तक 'चौला' बनकर महमूद को अपने में उलझा कर समूचे गुजरात को संकट से उबार लेती है ।

शोभना अपने को वृहत् समाज का एक सामान्य अंगमात्र मानती है । वह कहती है—जब लोग प्राणों की होली खेल रहे हैं तो यह भी उसी का एक भाग है । मृत्यु को वरण न करके भी वह जीते-जी त्याग और अनन्य कर्त्तव्य निष्ठा की अग्नि में अपने प्यार को जलाकर आत्मोत्सर्ग का आदर्श प्रस्तुत करती है । उसके हृदय में सभी के लिए दर्द है । उसकी यह उक्ति स्वयं उसी के लिए बड़ी सटीक है—"जिसने दर्द सहा है वह पराए दर्द को नहीं देख सकता ।"[1]

शोभना का सशक्त चरित्र अविस्मरणीय है।

७. अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू)

अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू) अवैध सन्तान है । अप्रतिम सुन्दरी होने के कारण वह वैशाली के राज्य-नियमानुसार 'नगरवधू' बनती है । अपने नारीत्व को इस प्रकार सार्वजनिक बना दिये जाने पर उसके हृदय में प्रतिहिंसा की ज्वाला फूट पड़ती है ।

अम्बपाली का व्यक्तित्व चुम्बकीय है । असाधारण रूप, तेज, दर्प, प्रेम, यौवन, विवेक, साहस ज्ञान, कला, त्याग और उत्सर्ग का उसमें अद्भुत समुच्चय है । उसका 'अप्रतिम सौन्दर्य' अनायास किसी को भी मन्त्रमुग्ध कर देने वाला है । "उसकी देह-यष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखंड टुकड़े में यत्नपूर्वक खोद कर गढ़ी थी । उससे तेज, आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था । इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी अपूर्वता कभी किसी ने एक स्थान पर नहीं देखी थी । उसने कण्ठ में बड़े-बड़े सिंहल के मोतियों की माला धारण की थी । कटि-प्रदेश को हीरे जड़ी करधनी उसकी क्षीण कटि को पुष्ट नितम्बों में विभाजित-सी कर रही थी । उसके सुडौल गुल्फ मणि-खचित उपानत में, जिनके ऊपर स्वर्ण पैंजनियाँ चमक रही थीं, अपूर्व शोभा का विस्तार कर रही थीं । मानो वह साकार में रूप, यौवन, मद, सौन्दर्य को बखेरती चली आई थी। जनपद मुग्ध-सा, मूर्च्छित-सा, स्तब्ध-सा खड़ा था ।"[3] उसकी मोहक मन्द मुस्कान, मराल की-सी गति, सिंहनी की-सी

---

१. सोमनाथ, पृ० २०८ ।

२ वही, पृ० २५० ।

३ वैशाली की नगरवधू, पृ० १८-१९ ।

उठान सब कुछ अलौकिक थी। न जाने विधाता ने उसे किस क्षण मे गढ़ा है। कोई चित्रकार न तो उसका चित्र ही अंकित कर सकता है, न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता है।

इस रूपसी का स्वाभिमान अपरिमेय है। वैशाली के परिजन जब इसे नियमानुसार 'नगरवधू' बनाने की घोषणा करते हैं, तब यह सहस्र-सहस्र नारों के मध्य स्पष्ट वाणी से उसे अस्वीकार कर देती है। वह उस नियम का परिषद् के सामने ही 'धिक्कृत कानून' बताती हुई कहती है—मै सहस्र बार इस शब्द को दुहराती हूँ। यह धिक्कृत कानून वैशाली जनपद के यशस्वी गणतन्त्र का कलंक है। मेरा अपराध केवल यही है कि विधाता ने मुझे यह अथाह रूप दिया। इसी अपराध के लिये आज मैं अपने जीवन के गौरव को लांछना और अपमान के पंक मे डुबो देने को विवश की जा रही हूँ। आप जिस कानून के बल पर मुझे ऐसा करने को विवश कर रहे हैं वह एक बार नहीं, लाख बार धिक्कृत होने योग्य है।"[1] अन्त मे, गणपतियों के बहुत आग्रह करने पर वह अपनी शर्तों पर ही नगरवधू बनना स्वीकार करती है।

बलपूर्वक नगरवधू बनाये जाने के कारण अम्बपाली के हृदय मे पुरुषमात्र और सारे समाज के प्रति प्रतिशोध की ज्वाला दहक रही है। उसका स्पष्ट मत है—'जहाँ स्त्री की स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितना लोहू मे डुबोया जाय, उतना ही अच्छा है।"[2]

अपने वाग्दत्त (मंगेतर) हर्षदेव से इस प्रकार छिन जाने पर व्यथित हो वह उससे कहती है—एक तुम्हारा ही हृदय जल रहा है हर्षदेव! यदि यह सत्य है तो इसी ज्वाला से वैशाली के जनपद को फूँक दो और उसकी यह बात सत्य सिद्ध होती है। वह स्वयं ही मगध सम्राट् बिम्बसार की प्रणय-याचना के बदले उससे ऐसा सौदा करती है कि वैशाली ही नही, मगध भी युद्ध की ज्वालाओं मे क्षार क्षार हो जाता है। अपने इस अतिशय आक्रोश पर, बाद मे, उसे स्वयं ही ग्लानि हो जाती है।

फिर भी, अम्बपाली एक नारी है। अतएव वह स्त्रीत्व या पत्नीत्व की आकांक्षा से मुक्त नही है। वह अपने जीवन मे समय-समय पर कई पुरुषों के साथ वास्तविक प्रेम करने का प्रयास करती है। इनमे प्रमुख चार है—हर्षदेव, बिम्बसार, उदयन और सोमप्रभ। हर्षदेव उसके नगरवधू बनने पर अज्ञात हो

---

१ वैशाली की नगरवधू, पृ० २०।
२. वही, पृ० ३१।

जाता है। सोमप्रभ संयोगवश उसका सहोदर ही है। दोनों, सोमप्रभ तथा अम्बपाली, इस वास्तविकता से परिचित होने पर ही सम्भवतः भिक्षु धर्म स्वीकार कर लेते हैं। बिम्बसार के प्रति अम्बपाली का प्रेम भी मात्र प्रतिशोध-कामना का एक माध्यम प्रतीत होता है। किन्तु अन्तत वह उस सम्राट् द्वारा अपने लिए राज्य, वैभव, मान—सब कुछ विसर्जित कर दिये जाने पर, उनके प्रेम की उपेक्षा नहीं कर पाती। वह उनकी प्राण-रक्षा-हेतु अपनी सभी प्रतिज्ञाओं को स्वयं वापिस लेती हुई कहती है—'उनका प्राण मत लो सोम, मैं उन्हें प्यार करती हूँ। मैं कभी भी राजगृह नहीं जाऊँगी। मैं कभी इनका दर्शन नहीं करूँगी। मैं हतभाग्या अपने हृदय को विदीर्ण कर डालूँगी। वे निरीह, शून्य और प्रेम के देवता हैं। उन्हें प्राण-दान दो, मेरे प्राण ले लो।'[1]

यह आर्तनाद, सच्चे स्त्री हृदय की पुकार है। यह पुकार अम्बपाली को वास्तविक प्रेम-मूर्ति और पत्नी-रूप में पाठकों के सामने ले आती है। इससे भी अधिक, कौशाम्बी नरेश उदयन के सम्पर्क में आकर उसका आदर्श प्रेमिका रूप उभरता है। वह अपने सारे जीवन में केवल उसी को सच्चे हृदय से मन-अर्पण करती है। 'वह तुम्हारी है प्रिय, और इस अधम शरीर की खाल, हाड, मांस, आत्मा भी।'[2] केवल उसी के लिए विरहाकुल होकर वह छटपटाती है। उसका सम्पूर्ण नारी-दर्प केवल उसी के सम्मुख नतमस्तक होता है—'अरे, मैं आक्रान्त हो गई मैं असम्पूर्ण हो गई। निरीह नारी मैं कैसे इस दर्पमूर्ति पौरुष के बिना रह सकती हूँ।'[3]

अम्बपाली विविध कलाओं में निपुण है। संगीत और नृत्य की वह साक्षात् मूर्ति है। आखेट, धनुर्विद्या और अश्व-संचालन में भी वह पर्याप्त प्रवीण है। किन्तु उसके ये सारे गुण भी अन्ततः उसे अपने गर्हित गणिका-जीवन से मुक्त नहीं रख सकते। वह रह-रह कर अपनी इस वस्तु-स्थिति से मर्माहत होकर चीत्कार कर उठती है। एक ओर वह भगवान् बादरायण के सम्मुख अपने 'अधम वेश्या' होने की व्यथा व्यक्त कर आत्म-प्रतारणा करती है। दूसरी ओर, एक पूर्ण पुरुष के प्रति समर्पित होते समय उसे अपनी यह विवशता विपण्ण कर देती है—'आह, मैं ऐसे पुरुष को हृदय देकर कृतकृत्य हुई, शरीर भी देती तो शरीर धन्य हो जाता, परन्तु इसे तो मैं बेच चुकी, मुँह-माँगे मूल्य पर, हाय रे वेश्या-जीवन।'[4] उसके मन की यह तड़प अन्ततोगत्वा उसके बौद्ध-भिक्षुणी

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ६०२।
२. वही, पृ० ४३५।
३. वही, पृ० ४.४।
४. वही, पृ० १६४।

बनने पर शान्त होती है। वैशाली और मगध के परस्पर भीषण युद्ध के पश्चात् उसका जीवन, आचरण, व्यवहार, रहन-सहन, सब कुछ बदल जाता है।

वास्तव में उसके चरित्र का यह चरम उदात्त रूप भी, उसके सौन्दर्य और कला-नैपुण्य की भाँति, लिच्छिवियों के लिए स्पर्धा की वस्तु बन जाता है। भगवान् तथागत भोजन के लिए उनका निमन्त्रण अस्वीकार कर वैशाली की नगरवधू (अम्बपाली) का निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं। तब सभी हठात् कह उठते हैं—'ओ, हमें अम्बपाली ने जीत लिया। अरे, हमें अम्बपाली ने वंचित कर दिया।'[1]

इस प्रकार अम्बपाली वास्तव में एक विलक्षण नारी है। समाज द्वारा 'वह महानारी शरीर कलंकित करके जीवित रहने पर बाधित की गई, शुभ-संकल्प से वंचित रही।' वह कितनी व्याकुल, कितनी कुण्ठित, कितनी शून्यहृदया रहकर जीवित रही, यह अवर्णनीय है। अन्त में उसे एक साथ जीवन के दो सुअवसर प्राप्त हुए। प्रथम, बिम्बसार के सम्पर्क से पुत्रवती होने पर मगध की राजमाता बनने का और द्वितीय, भगवान् तथागत की चरणरज लेकर भिक्षुणी बनने का। उसने द्वितीय अवसर को वरेण्य समझा। अम्बपाली सचमुच 'वैशाली की जनपद-कल्याणी' है। उसने आत्मदान करके वैशाली को गृह-युद्ध से बचा लिया और यह सिद्ध कर दिया कि व्यष्टि से समष्टि की प्रतिष्ठा बड़ी है। व्यष्टि का स्वार्थ हेय है परन्तु समष्टि का स्वार्थ उपादेय है।

स्वच्छन्द, विलासिनी नारियाँ

१. दैत्यबाला (वयं रक्षामः)

दैत्यराज-कन्या दैत्यबाला सार्वजनिक मार्ग के चतुष्पथ पर नाच गाकर नर-नाग, देव-दैत्य, असुर-मानुष, आर्य-व्रात्य—सभी को विमोहित करती हुई सबका मनोरंजन करती है। उसके लिए रूप और यौवन सुरक्षित रखने की वस्तु नहीं, आनन्द और उपभोग का माध्यम है। उसे 'नित्य नये तरुणों के समागम के आस्वादन में रुचि है।' वह स्वयं रावण के सम्पर्क में आने पर कहती है—'तू प्यार कर, तुझे अनुमति देती हूँ। किन्तु तू ही कुछ पहला पुरुष नहीं है। तुझ से पहले बहुत आ चुके हैं। तू ही अन्तिम नहीं है, और अनेक आएँगे।'[2] किन्तु समय पाकर उसका यह सार्वजनिक प्रेम रावण के प्रति अनन्य प्रेम में परिणत

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ७०१।

२. वयं रक्षामः, पृ० १६।

हो जाता है। वह रावण के प्रेम-पाश में ऐसी विवश हो जाती है कि अन्तत उसके लिए प्राण तक न्यौछावर कर देती है।

दैत्यबाला में असाधारण बल है। वह सागर की उत्ताल तरंगों में डुबकियाँ खाते हुए निस्सहाय रावण को अपनी भुजाओं में धारण कर तैरती हुई तट पर ले आती है। रावण के प्रति उसका प्रेम उत्तरोत्तर प्रगाढ रूप ग्रहण कर लेता है। वे दोनों स्वच्छन्द विचरण करते हुए दानव-क्षेत्र में जा पहुँचते हैं और बन्दी बना लिये जाते हैं। दानवेन्द्र उन्हें बलि-वेदी में भोक कर क्षार कर देने का आदेश दे देता है। इस अवसर पर दैत्यबाला रावण से पूर्व स्वय को बलि चढाने का आग्रह करती है और दानवेन्द्र के सैनिकों द्वारा अपने शरीर को खड-खण्ड कर दिये जाने पर भी मुख-मुद्रा पर विषाद की छाया नहीं आने देती।

इस प्रकार दैत्यबाला का चरित्र क्रमश भोग से त्याग की ओर तथा वासना से उत्सर्ग की ओर अग्रसर होता दिखाई देता है। सयोगवश बलि-यज्ञ में हुत होने से बचकर रावण, रह-रहकर उसके साहस और उत्सर्ग को स्मरण कर रोमांचित हो उठता है। मन्दोदरी के शब्दों में वह सचमुच 'सुपूजिता' एव 'वन्दनीया' सिद्ध होती है।

२. शूर्पणखा (वयं रक्षाम[1])

शूर्पणखा विदुषी एव भावुक रमणी है। वह विलक्षण व्यक्तित्व की स्वामिनी है। लेखक के शब्दों में—'खूब घने काले बाल, चमकती हुई काली आँखें, एक निराला-सा व्यक्तित्व, गहन अहम्मन्यता से भरपूर, रानी के समान गरिमा, पिघले हुए स्वर्ण-सा रंग, आदर्श सुन्दरी न होने पर भी एक भव्य आकर्षण से ओत-प्रोत, आँखों में भाँकती हुई स्थिर दृढ़-सकल्प प्रतिभा, कटाक्ष में तैरती हुई तीखी प्रतिभा और उत्फुल्ल होठों में विलास करती हुई दुर्दम्य लालसा, ऐसा शूर्पणखा का व्यक्तित्व था। प्रतिक्रिया के लिए सदैव उद्यत और अपने ही पर निर्भर। लम्बी, तन्वंगी, सतर और अचचल। प्रथम रक्ष-कुल, दूसरे राज-कुल, तीसरे प्रतापी भाइयों की प्रिय इकलौती बहिन, चौथे निराला अहम्भाव, पाँचवें स्वच्छन्द जीवन, सबने मिलकर उसे एक असाधारण, कहना चाहिये लोकोत्तर, बालिका बना दिया था।"

शूर्पणखा स्थिर बुद्धि वाली युवती है। रावण एक अवसर पर मन्दोदरी के सम्मुख उसकी प्रशसा करता हुआ कहता है—'शूर्पणखा मूर्ख नहीं है, सच्ची, भावुक और स्थिरमति लड़की है। मैं उसकी ओर से निश्चिन्त हूँ।' उसकी

१. वय रक्षाम, पृ० १६६।

अतिशय भावुकता का विशद रूप से विश्लेषण करती हुई मन्दोदरी कहती है—'वह आत्म विश्वास से भरपूर है। परन्तु उसकी दृष्टि एकांगी है। अभी वह दुनिया के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानती। उसके विचार भावुकता से ओत प्रोत हैं। अभी वह बच्ची ही तो है। उसका हृदय तो अभी सो रहा है।'[1]

यह वस्तु-स्थिति शूर्पणखा को धीरे-धीरे एक आदर्श प्रेमिका का रूप प्रदान करती है। वह विद्युज्जिह्व के प्रति अपने अनुराग को किसी मूल्य पर विस्मृत नहीं करना चाहती। उसके कथनानुसार 'वह और विद्युज्जिह्व दोनों परस्पर सख्य रखते हैं। वे दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। रावण और मन्दोदरी के अत्यधिक विरोध करने पर उसका एक ही उत्तर है—'यह सब व्यर्थ है। मैंने विद्युज्जिह्व से ही विवाह करने का निश्चय कर लिया है।' उसका प्रेम मात्र भौतिक नहीं, उस प्रेम की जड़ें आत्मा की गहराई तक पहुँच चुकी हैं। वह समस्त राज वैभव को त्याग कर, रावण के सभी प्रलोभनों और मन्दोदरी के हर प्रतारण को उपेक्षित करके एकाकिनी विद्युज्जिह्व के पास चल देती है। उसके साहस का प्रमाण यह है कि रावण द्वारा अपने शस्त्र-बल से विद्युज्जिह्व का अन्त कर देने की धमकी देने पर वह भी निर्भीकता से उत्तर देती है—'रक्षेन्द्र, उसके पास भी शस्त्र हैं।' इतना ही नहीं, वह जाते जाते रावण को अपनी समस्त सेना-सहित विद्युज्जिह्व से युद्ध के लिये ललकारते हुए कह जाती है—'तो भाई, हम सब कालिकेय लोग अश्मपुरी में तेरा स्वागत करेंगे।'[2]

३ मेरी स्टुअर्ट (सोना और खून-२)

मेरी स्टुअर्ट स्काटलेंड के जेम्स पंचम की पुत्री है। रूप और लावण्य की स्वामिनी मेरी स्टुअर्ट की उन्मुक्त विलास-प्रवृत्ति उसके जीवन को विषादमय बना देती है। उसका विवाह फ्रांस के राजकुमार से होता है। परन्तु कुछ समय पश्चात् वह विधवा हो जाती है। निःसन्तान होने के कारण, वह फ्रांस छोड़कर स्काटलेंड लौट आती है। यहाँ राज्य प्रबन्ध अपने हाथ में लेते ही वह अपने चचेरे भाई लार्ड डार्नले से विवाह कर लेती है। परन्तु चरित्र की दुर्बलतावश वह इस नव पति के सन्देह और आक्षेप का शिकार बनती है। कुछ दिनों बाद वह रिटजियो नामक एक पुरुष की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उसकी अंकशायिनी बन जाती है। उसका पति उसके इस प्रेमी का जब उसी के सम्मुख वध कर डालता है तो वह क्रोध और क्षोभ में पागल होकर पति से बदला लेने की ठान

१ वय रक्षाम, पृ० २०४।
२ वही, पृ० २२५।

लेती है। वह एक अन्य सरदार अर्ल आफ बोथवेल से आशनाई करके, उनके साथ षड्यन्त्र रचकर पति को उसके मकान में जीवित जला डालती है। कुछ ही दिन पश्चात् वह अपने नये प्रेमी लार्ड बोथवेल के साथ धूमधाम से विवाह कर लेती है।

प्रजा द्वारा दुर्ग में बन्दी होने के उपरान्त मेरी स्टुअर्ट के चरित्र का दूसरा पक्ष उद्घाटित होता है। वह एक साहसी नारी के रूप में प्रकट होती है। बीस वर्ष तक नन्दिनी के रूप में दुर्ग में रहते समय वह बड़ी कुशलता से अनेक लोगों के साथ साँठ-गाँठ करके वहाँ से भाग निकलती है। वह सहयोगियों के साथ मिलकर अपनी चचेरी बहिन, इग्लैंड की रानी एलिज़ाबेथ, की हत्या की योजना बनाती है। किन्तु योजना के असफल रह जाने पर, उसी बहिन के हाथों मृत्यु-दण्ड प्राप्त करती है।

अन्तिम दिनों में मेरी स्टुअर्ट की उदारता एवं धार्मिक कट्टरता के लक्षण देखने में आते हैं। वह अपनी संपूर्ण सम्पदा, अपने विश्वासपात्र सेवकों और दासियों में बाँट देने का आदेश देती है। मरते समय जब उसे पादरी प्रोटेस्टेंट प्रणाली से प्रार्थना करके प्रभु मसीह की शरण लेने का आग्रह करते हैं, तब वह निर्भीकता से कहती है—'पादरी महोदय, मैं एक कैथोलिक हूँ और कैथोलिक की भाँति ही मरना चाहती हूँ। आप मुझे मेरे निश्चय से विचलित करने का व्यर्थ प्रयत्न मत कीजिये। आप की प्रार्थना से मेरा कोई लाभ नहीं होगा।'[1] सूली पर चढ़ते समय वह बड़ी तन्मयता से रोमन कैथोलिक-पद्धति की प्रार्थना का गान इतने उच्च स्वर में करती है कि उपस्थित विशाल जनसमूह का हृदय अनायास उनके प्रति सहानुभूति से उमड़ पड़ता है। अन्त में वह यह कहते हुए अपनी गर्दन सूली की टिकटी पर रख देती है—'प्रभु यीशु जिस प्रकार तुम्हारी बाहें सूली पर लटकाई गई थीं, उसी प्रकार मुझे भी अपनी शरण में लो और मेरे पापों को क्षमा करो।'[2]

मेरी स्टुअर्ट अनुचित काम-वासना की शिकार होकर कितनी पथविचलित होती है, यह बात उनके चरित्र में स्पष्ट है। दूसरी ओर वासनाओं पर नियन्त्रण पाने पर वह सशक्त बन जाती है। ऐसा होने में परिस्थितियों का प्रमुख हाथ रहता है। यह परिवर्तनशील चरित्र नारी-मनोविज्ञान का एक अनन्य उदाहरण है। ईश्वर की शरण पतित आत्माओं का उद्धार करती है। यह भी इसमें प्रमाणित होता है।

---

१. सोना और खून, द्वि० भा० पृ० ६४।
२ वही, वही, पृ० ६५।

४. जहाँआरा (आलमगीर)

यह शाहजहाँ की बड़ी लड़की है। मुगल शाहज़ादी होने के कारण आजीवन विवाह न कर सकने की विवशता उसके दामन से बँधी है। मुगल बादशाहों की प्रतिष्ठा की यह विडम्बना उसके चरित्र को स्वभावत दो भिन्न दिशाओं की ओर विकसित करती है। एक दिशा है—उन्मुक्त और स्वच्छन्द विलासिता भरा जीवन और दूसरी दिशा है—कुटिल राजनीति के दाँव-पेचों और षड्यन्त्रों से भरी दिनचर्या।

मूलत जहाँआरा एक विदुषी, बुद्धिमती तथा रूपसी स्त्री है। उसका स्वभाव स्नेहमय है। वह दयालु और उदार भी है। शाही ऐश्वर्यमय जीवन उसके इन गुणों पर आवरण डाले रहता है। बादशाह ने उसके जेब-खर्च के लिये तीस लाख रुपये वार्षिक नियत कर रखे हैं और पायदान के खर्च के लिये सूरत का एक इलाका दे रखा है। इसकी आय भी तीस लाख रुपये वार्षिक है। भाई दारा शिकोह तथा बादशाह की ओर से मिलने वाली प्रेम भेंट अलग है। बादशाह का उसके प्रति इतना अधिक आकर्षण है कि लोग दोनों के परस्पर अनुचित प्रेम और अनैतिक सम्बन्ध तक की कल्पना करने लगते हैं।

जहाँआरा के चरित्र का प्रथम पक्ष उसकी उन्मुक्त और स्वच्छन्द प्रकृति है। प्रतिरात्रि नियमित रूप से उत्तमोत्तम मदिरा का सेवन उसके लिये अनिवार्य हो चुका है। स्वच्छन्द प्रणय के क्षेत्र मे भी वह बहुत आगे है। उसका प्रथम प्रणयी बलख का शाहजादा नजावतखाँ है। उसके साथ विवाह करने की अभिलाषा वह कई बार प्रकट कर चुकी है। वह अपने भाई दारा से, बादशाह बनने पर अपनी उस इच्छा-पूर्ति का वचन भी ले चुकी है। किन्तु शाही नियम-कानून और कुछ राजनैतिक कारण इस प्रणय की सार्थकता मे बाधक हैं। जहाँआरा के प्रणय का दूसरा क्रीडा-कन्दुक उस्तानी का लडका दुलारा है। उसके साथ वह बचपन से खेली है। पर दुलारा के प्रति उसका प्रेम विनोदमयी तफरीह के अतिरिक्त कुछ नही है। उसके हार्दिक प्रेम का वास्तविक पात्र है—बूँदी का हाडा राव छत्रसाल। उसके कारण, वह नजावत खाँ से अपने विवाह की बात को भी सदा टालने का प्रयास करती है। वह अपने खानदानी अदब-कायदे की तनिक परवाह न करते हुए, उस राजपूत युवक के प्रेम मे दीवानी है। छत्रसाल के प्रति उसका प्रेम इतना प्रबल है कि छत्रसाल द्वारा ठुकरा दिये जाने पर वह प्रतिहिंसा का रूप ले लेता है और जहाँआरा शेरनी की तरह गरज कर कहती है—'तुम्हारी यह हिमाकत कि हमारी आरजू और मुहब्बत को ठुकराओ। क्या तुम नहीं जानते कि हमारे गुस्से मे पडकर बडी से बडी ताकत

को दोजख की आग मे जलना पडता है ?"[1]

व्यावहारिक क्षेत्र मे वह असामान्य नारी मानी जा सकती है। वह 'राज्य के बड़े-बड़े जिम्मेदारी के काम बडी कुशलता म करती है। लोगों की दृष्टि में वस्तुत शाहजहाँ के शासन काल मे वही तमाम साम्राज्य पर शासन करती है। इसीलिए वह राज्य मे 'बडी बगम' के नाम से प्रसिद्ध है। सभी 'अमीर-उमरा' अपने स्वार्थों के लिए प्रत्येक मूल्य पर उसे प्रसन्न रखना आवश्यक समझते हैं। शाही मुहर भी उसी के ताबे मे रहती है और महान् मुगल साम्राज्य मे स्याह-सफेद सब कुछ करने का उसे अधिकार है। लेखक के शब्दो मे—'यह एक बडी ही अनोखी बात है कि पर्दे मे रहने वाली एक महिला किस तरह उस काल मे उस बडे साम्राज्य का शासन-सूत्र चलाती है।'[2]

जहाँआरा की नीतिकुशलता उसके चरित्र की एक अन्यतम विशेषता है। यो तो इतनी बडी मुगल-सल्तनत की राजनीति मे वह सक्रिय भाग लेती ही है, साथ ही उसे अपने निजी भविष्य की चिन्ता भी परेशान किये रहती है। एक ओर उसे अपने खानदान की प्रतिष्ठा का ध्यान है, दूसरी ओर आन्तरिक आकाक्षाओ की पूर्ति की लालसा है। इस द्वन्द्व मे सफलतापूर्वक मुक्ति पाने के लिए वह कूटनीति से काम लेती है। पहले वह बादशाह की हर उचित-अनुचित इच्छा पूरी करके उसे प्रसन्न रखना चाहती है, फिर साम्राज्य के भावी उत्तराधिकारी के रूप मे दारा का समर्थन करती है। किन्तु परिस्थितियाँ उसका साथ नही देती।

कूटनीतिक नारियाँ

१. मादाम लूपेस्कू (ईदो)

मादाम लूपेस्कू रूमानिया के सम्राट् कैरोल की प्रेमिका है। बाह्यत वह सीधी-सादी तथा एकान्तप्रिय स्त्री दिखाई देती है किन्तु वास्तव मे वह कूटनीतिज्ञ एव चतुर महिला है। वह दृढ़प्रतिज्ञ तथा विवेकशील भी है। रूमानिया के सम्राट् से उसके सम्बन्धो के कारण जन-साधारण उसे अच्छा नही समझता। फिर भी उसे इस बात की चिन्ता नही है। उसकी सूझ-बूझ तथा दूरदर्शिता के परिचायक उसके ये शब्द हैं—'चौदह साल से ससार के प्रमुख अखबार-नवीसो ने मुझ से वक्तव्य माँगे हैं, मगर मैंने हमेशा इनकार किया है। मैंने कुछ न बोलना ही बेहतर समझा। मैं जानती हूँ कि मैं यदि बोलूँगी तो लोग गलत अर्थ

---

१. आलमगीर, पृ० ८६।

२. वही, पृ० २६।

लगाएंगे और उससे उलझनें और बढ़ेंगी।

इसी प्रकार रूमानिया का प्रधान मंत्री जब उससे भेंट करने के पश्चात् विदा होते समय दया-भाव रखने का अनुरोध करता है, तब वह स्पष्ट कहती है—ज्यादा की उम्मीद मत रखिए मोशिए, मैं मर्दों के लालच को जानती हूँ।

मादाम लूरेस्कू अपनी कूटनीतिज्ञता से सम्राट् का समय-समय पर पथ-प्रदर्शन भी करती है। एक बार उसका परामर्श न मान सकने के दुष्परिणाम को देखकर सम्राट् स्वयं स्वीकार करता है—तुम्हारी सीख मान कर पहले ही फ़ुहरर से मिला होता तो शायद हालत इतनी खराब न होती।

अपनी जन्मभूमि के हितार्थ वह असीम साहस का परिचय देती हुई सम्राट् को आश्वासन देती है—और मैजेस्टी, मैं स्वयं एक बार फ़ुहरर को देखूंगी, कैसे वह दूसरों को मनमानी करने की छूट देगा। वह स्वदेश छोड़कर विदेशों में अपने कूटनीतिक चक्रों द्वारा अपना मन्तव्य सिद्ध करने का प्रयास करती है। द्वितीय विश्वयुद्ध की विख्यात जासूस-नारी केन अपनी गिरफ्तारी के समय बताती है कि उसने शत्रु-देश की इतनी पर्त तक जासूसी करके उसे जो इतनी क्षति पहुँचाई है, उसकी प्रेरिका मादाम लूरेस्कू है, जो उसकी राजनैतिक गुरु है।

मादाम लूरेस्कू का यह चरित्र दूरदर्शिनी, साहसी और कूटनीतिज्ञ रमणी की असीम कार्यकारी क्षमता का द्योतक है।

२. केन (ईडो)

केन अनिन्द्य सुन्दरी और बुद्धिमती बाला है। हवाई द्वीप समूह के होनोलूलू क्षेत्र में जासूसी का कार्य करते समय केन अपने इन्हीं दो गुणों—रूप और विवेक—के सहारे सफलता प्राप्त करती है। एक बार जब कुछ समय के लिए वह अपने देश के लिए कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं कर पाती तब ग्लानिवश दुःखी दिखाई देती है। अन्त में अमेरिकन अधिकारियों द्वारा बन्दी बना लिए जाने पर वह स्पष्ट स्वीकार करती है कि उसने यह सब कुछ अपनी आराध्या जापान की सम्राज्ञी के लिये किया है।

केन के साहसी और निर्भीक व्यक्तित्व के भीतर हृदय की कोमलता की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। वह अनेक अधिकारियों से प्रणय का अभिनय करती है। नेवी लैफ्टिनेंट के सरल अनुराग पर मुग्ध होकर अपने छद्मपूर्ण आवरण को उतार वह कहती है—विश्वास करो प्रिय, मैं अब झूठ नहीं बोल सकती। तुम्हारा अकपट प्रेम देखकर मैं तुम पर सत्य प्रकट किए बिना नहीं रह सकती। अब तुम अपना प्राप्तव्य प्राप्त करो। मुझसे विवाह करके मेरा प्रेम

प्राप्त करो। मुझे राजनीति से मुझे कुछ लेना-देना नहीं है।" किन्तु लेफ्टिनेंट द्वारा प्रेम की अपेक्षा कर्तव्य को प्रधानता दिये जाने के कारण, जब वह अपने देश अमेरिका के लिए उसके प्राण लेना ही उपयुक्त मानता है, तब वह भी अपने उत्कट देशानुराग का परिचय देती हुई, प्रणय-भाव को तिलांजलि देकर, बलिदान के लिए सन्नद्ध हो जाती है—'तुमने ठीक ही कहा लेफ्टिनेंट, मैं अपने जापान के लिए प्राण दूँगी। बुलाओ पुलिस। और वह जापान की पवित्र भूमि को अन्तिम प्रणाम कर देती है।'

इस प्रकार केन का चरित्र कर्तव्यपरायणता का अद्भुत आदर्श है।

पीड़ित नारियाँ

१ कुदसिया बेगम (सोना और खून १)

बादशाह नसीरुद्दीन हैदर की पत्नी कुदसिया बेगम के चरित्र की एक हल्की सी झलक उपन्यास में मिलती है। प्रथमत कुदसिया बेगम सौभाग्य-शालिनी पत्नी और माँ के रूप में उपस्थित होती है। वह अपने पति की 'चहेती' है। इसका मानसिक उल्लास पुत्र-जन्म के पश्चात् और भी बढ़ जाता है। सुनहरी पालने में पड़े नन्हे बालक को अंगूठा चूसते और किलकारियाँ मारते देख वह फूली नहीं समाती। किन्तु पुत्र-जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में मनाये जाने वाले भव्य समारोह की सामान्य घटना उसके लिए अभिशाप सिद्ध होती है। वह आत्म-हत्या करके मर्यादा को बचा पाती है।

समारोह में एक हज्जाम और एक खवास किसी बात पर परस्पर विवाद करते समय प्रसंगवश बेगम का नामोल्लेख करते हैं। बादशाह 'बेगम का नाम लिए जाने का कारण' जानने के लिए उतावला हो उठता है। हज्जाम बादशाह की कोपाग्नि से बचने के लिये बहाना गढ़ता है—'योर मैजेस्टी, खवास को कई बार बेगम के महल में किसी मर्द के आने का खटका हुआ है। इस वक्त भी वह कुछ ऐसा ही इशारा कर रही थी। वह आलीजाह से अर्ज करना चाहती थी। पर, मैंने कहा जब तक हिज मैजेस्टी खाना खा रहे हैं, वह चुप रहे। इसके पश्चात् कुदसिया बेगम के जीवन का भविष्य अन्धकार-मय हो जाता है। नारी की विवशता का यहाँ प्रकट परिचय मिलता है। पति द्वारा अपने चरित्र पर अविश्वास किये जाने पर स्वाभिमानिनी बेगम हीरे की कनी चाट लेती है। मरणासन्नावस्था की निवार एक पवना अपनी निर्दोषता का इसमें बढ़कर और

वही पृ० १५४।

सोना और खून, प्र० भा०, पृ० २४६।

क्या प्रमाण दे सकती है? मरते समय बादशाह द्वारा भेद प्रकट करने पर, वह काले पड चुके होठों पर मुस्कान लाते हुए कहती है —'एक वफादार बीवी अपने शौहर की शक्की नजर नही बर्दाश्त कर सकती।'[1]

२. कमलावती (बिना चिराग का शहर)

कमलावती का नारीत्व कायर और अफीमची पति के संसर्ग में अतृप्त रह जाता है। यही कारण है कि अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर का आक्रमण होने पर जब उसका पति अपनी युवा पुत्री देवलदेवी सहित देवगिरि के राजा रामचन्द्र की शरण में जाने लगता है, तब वह उसका साथ न देकर वही रह जाती है। परिणामस्वरूप, मलिक काफूर उसे अपहृत कर, अलाउद्दीन को उपहार-रूप मे भेंट कर देता है। यहाँ कमलावती की भौतिक महत्वाकांक्षा खुल खेलती है। बादशाह अलाउद्दीन की बेगम बनकर, वह न केवल अपना जीवन कृतकृत्य मानती है अपितु अपनी पुत्री देवलदेवी को भी शाहजादा खिज्रखाँ की अङ्कशायिनी बनाने के लिए बुलवा भेजती है। कमलादेवी की प्रतिहिंसा की पराकाष्ठा उस समय दिखाई देती है, जब उसकी प्रेरणा से मलिक काफूर उसकी पुत्री देवलदेवी का अपहरण करने के उद्देश्य से, देवगिरि पर आक्रमण करके, राजा की जीते-जी खाल खिचवा डालता है।

इस प्रकार कमलावती का चरित्र उसके अतृप्त नारीत्व की प्रतिहिंसा का निदर्शन है।

३ देवलदेवी (बिना चिराग का शहर)

देवलदेवी मे कौमार्य सुलभ सरलता और चचलता है। वह कभी अफीमची और सनकी पिता का अनादर नहीं करती। वह विवेकवती और मर्यादामयी है। वशमर्यादा और निज नारीत्व की रक्षाहेतु वह पिता के साथ देवगिरि के राजा की शरण म पहुँचती है। वहाँ उसकी महत्वाकांक्षिणी माता का दुर्भाग्यपूर्ण यह सन्देश पहुँचता है कि 'तुम भी बादशाह के हरम मे चली आओ और शाहजादा खिज्रखाँ की बेगम बनकर जीवन का सुख भोगो।' इस पर वह किंकर्तव्यविमूढ होकर रह जाती है।

मलिक काफूर देवलदेवी को अपहृत कर अलाउद्दीन के महलो मे ले आता है। खिज्रखाँ से उसका विवाह भी कर दिया जाता है। परन्तु मलिक काफूर स्वय उसे अपनी काम लिप्सा का शिकार बनाने को आतुर हो उठता है। इस बीच अनसूर्या प्रतिद्वन्द्वी मलिक काफूर को मात्र नीचा दिखाने के लिये उसे अपहृत

---

[1] सोना और खून, प्र० भा०, २४६

कर देवगिरि के नये अधिपति हरपाल की शरण में ले जाता है। मलिक काफूर देवलदेवी को प्राप्त करने के लिये पुनः देवगिरि पर आक्रमण कर, राजा की जीते-जी खाल खिंचवा डालता है। अपने लिये यह लोमहर्षक हिंसा का ताण्डव-नृत्य होते देखकर देवलदेवी स्वयं को पुरुष वर्ग की इस भीषण क्रूरता से सदा सदा के लिये मुक्त रखने के उद्देश्य से किसी अज्ञात स्थान पर चली जाती है। सम्भवतः, वह अज्ञात रूप में अपना अन्त ही कर डालती है।

देवलदेवी के चरित्र का यह अपूर्ण वृत्तान्त उसे स्वाभिमानिनी तथा गौरव-शालिनी स्त्री के रूप में प्रकट करता है।

४,५ मल्लिका एवं नन्दिनी (वैशाली की नगरवधू)

ये दोनों कौशल-नरेश प्रसेनजित् की राजमहिषियां, कलिंगसेना की सपत्नियाँ और पुरुष की कामुकता की साक्षात् प्रमाण हैं। दोनों हीनजाति की कन्याएँ हैं। अपने रूप और गुण के कारण प्रसेनजित् की आँखों में चढ़ कर उसके द्वारा ये बलात् अन्तःपुर में लाई जाती हैं। दोनों सामान्यत पति-परायणा, उदार और स्वाभिमानिनी नारियाँ हैं। किन्तु दोनों का कर्मपथ भिन्न है। मल्लिका भगवान् तथागत की अनुगामिनी है। वह भाग्य की विडम्बना को शान्तभाव से सहन करती हुई पुत्र विडूडभ द्वारा राज्य-बहिष्कृत हो प्रवासित पति के साथ वन वन भटकती हुई परलोक सिधार जाती है। नन्दिनी पति के अन्याय का प्रतिकार, अपने पुत्र विडूडभ को छल-बल द्वारा राज्य दिला कर लेती है।

ये दोनों नारियाँ नारी-गति की दो विभिन्न दिशाओं की सूचक हैं। दोनों पीड़ित नारियां हैं। एक की दिशा पतिपरायणता के साथ परलोक चिन्तन है। दूसरी लौकिकता की ओर अधिक झुकी हुई है। राजनीतिक दाँवपेचों से अपना उल्लू सीधा करना उसका लक्ष्य है। पहली क्षमामयी है दूसरी प्रतिशोधप्रवण सिद्ध होती है।

६ सुनयना (देवांगना)

यह लिच्छिविराज नृसिंहदेव की महिषी सुकीर्तिदेवी है। बौद्ध तथा शैव भिक्षुओं के षड्यन्त्र के परिणामस्वरूप विधवा हो जाने के पश्चात् अपनी नन्ही पुत्री की रक्षा के निमित्त 'सुनयना' दासी के रूप में मन्दिर के अन्त पुर में पतिता और उपेक्षिता नारी का जीवन व्यतीत करती है।

सुनयना के चरित्र का प्रमुख वैशिष्ट्य उसका ममत्व है। वह राजभवन का त्याग, वैधव्य धर्म की चिन्ता न करके, महन्त सिद्धेश्वर की कामना-पूर्ति सी हुई, पुत्री मंजुघोषा की रक्षा के लिये छायावत् सदा उसके साथ रहती है। उसका यह उद्दाम सन्तति-स्नेह मंजुघोषा को कठोर विपत्तियों से बचाता

हुआ प्रशस्त जीवन के पथ पर अग्रसर करने में सहायक होता है।

सुनयना साहसी भी है। भिक्षु वज्रसिद्ध और महन्त सिद्धेश्वर द्वारा कठोर यातना दिए जाने पर वह राज्य-कोश संबंधी बीजक उन्हें नहीं देती और न ही उसके सम्बन्ध में उन्हें कुछ बताती है। दिवोदास को मंजुघोषा के साथ शीघ्र ही स्थान छोड़ देने का परामर्श देती हुई वह कहती है—मेरी चिन्ता मत करो। मुझ में अपनी रक्षा करने की पूरी शक्ति है। तुम मंजु को यहाँ से ले जाओ। दिवोदास और मंजुघोषा को वहाँ से भागने में सहायता देने के अपराध में महन्त सिद्धेश्वर जब उसे मृत्यु-दण्ड देने की धमकी देता है, तब वह कड़क कर कहती है— जिसने प्राण दिया है, वही उसकी रक्षा भी करेगा। तुम जैसे शृगालों से मैं नहीं डरती।"

उसकी यह अचल आत्म निष्ठा सभी विपत्तियों के निराकरण में समर्थ सिद्ध होती है।

७. मंजुघोषा (देवांगना)

यह वज्रतारा देवी के मन्दिर की देवदासी है। इसी में मानो सभी प्रकार के दुःखों के द्वार उसके लिये खुल गये हैं। उसे अपने शरीर और प्राणों पर अधिकार नहीं। उसकी आत्मा बिक चुकी है। उसका रूप-यौवन सबके लिये खुला हुआ है। वह दिखाने को देवता के लिये शृंगार करती है परन्तु वास्तव में उसका शृंगार लम्पटों को रिझाने के लिये है।

सुन्दर मंजुघोषा का मन सात्विक प्रेम पाने को लालायित है। सेठ धनंजय के तरुण पुत्र दिवोदास को भिक्षु रूप में मन्दिर के प्रांगण में पाकर, वह अनायास उस पर मुग्ध हो उठती है। प्रथम भेंट में ही वह श्रेष्ठि-पुत्र दिवोदास को पति रूप में वरण करती हुई कहती है— मैं लिच्छिवि राजकुमारी भगवती मंजुघोषा आज से धर्मपूर्वक तुम्हारी पत्नी हुई।' यदि वासना-पूर्ति ही उसका लक्ष्य होता तो मन्दिर के पीठाधीश महात्मा सिद्धेश्वर की प्रणय याचना को वह यह कहकर न ठुकराती—'प्रभु, मैं आप की पाली हुई पुत्री हूँ। छोड़िये, छोड़िये।" उसका प्रेम मर्यादा-सवलित है। परिस्थिति वश जब वह दिवोदास के साथ मन्दिर से पलायन करने के पश्चात् दस्युओं के जाल में फँस जाती है, तब मृत्यु को सन्निकट देख वह उनसे कहती है—'अरे पातकियो, पहले मेरा वध करो।

---

१. देवांगना, पृ० ६० ।
२. वही, पृ० ५० ।

में अपनी आँखों से पति का कटा सिर नहीं देख सकती।"[1]

मञ्जुघोषा साहस की सजीव प्रतिमूर्ति है। दिवोदास से प्रेम करने के अपराध में काशिराज द्वारा पार्वत दुर्ग में बन्दी बना दिये जाने पर वह सूझ-बूझ से एक सहचरी को अपने स्थान पर नियुक्त कर, वहाँ से निकल भागती है। मन्दिर से एक पग भी बाहर न रखने की अभ्यस्त वह बाला जिस धैर्य से वन-प्रदेश में भटकती हुई कई दिन व्यतीत करती है, वह विलक्षण है। वह, अन्त में, आश्चर्यजनक ढंग से देवी की मूर्ति से प्रकट होकर कदाचारी दुष्टों का भण्डाफोड करती है।

८. कुमारी विविआना (सोना और खून २)

यह इंग्लैंड के एक भले घर की सुसंस्कृत लड़की है। पच्चीस वर्षीया यह शिक्षिता और बुद्धिमती होने के साथ सुन्दरी और हँसमुख भी है। इसमें उच्छृंखल चपलता अथवा परम्पराओं के प्रति कोई अवज्ञा-परक भाव नहीं है वरन् यह अबोध और जिज्ञासु बालिका है। यह अपने समय में प्रचलित धार्मिक प्रवादों की तात्कालिक जानकारी प्राप्त करने के लिये सदैव सचेष्ट रहती है। इसी प्रसंग में यह एक दिन अपनी सखियों से पूछ बैठती है—"पोप मर्द है या औरत? उसके सम्बन्ध में मैंने अजीब अजीब बातें सुनी हैं। मैं समझती हूँ कि वह कोई अति दुर्लभ जीव है।" विविआना के इस भोलेपन पर किसी का भी हँसकर उसे वस्तुस्थिति समझा देना अस्वाभाविक न होता, किन्तु उसके द्वारा सहज-भाव से कही गई उक्त बात को तत्कालीन धर्मसत्ता 'खतरनाक, धर्म-विद्रोही और नास्तिकतापूर्ण' घोषित कर उस युवती पर अनेक अत्याचार करती है।

धर्म-न्यायालय द्वारा उसके पर लगाये गये नास्तिकता, धर्म-विद्रोह और धर्मविरुद्धता के आरोप को सुनकर वह दो-टूक उत्तर देती है—मैं निरपराध हूँ, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहना चाहती। इस पर उसे एक विशाल तिमंजले भवन की सील भरी, अँधेरी कोठरी में बन्द कर दिया जाता है। वहाँ उसे न प्रकाश मिलता है, न हवा। खाने के लिये एक दिन छोड़कर जौ की एक रोटी मिलती है, पर पानी नहीं दिया जाता। सोने के लिये उसे कोई पुआल, घूस या बिछौना नहीं मिलता, नंगी जमीन पर ही लेटे रहना पड़ता है। उसके हाथ हर समय बँधे रहते हैं और पैर नंगे। इस स्थिति में उसे तब तक रखने के लिये

---

१. देवांगना, पृ० ६४।

२. सोना और खून, द्वि० भा०, पृ० २३।

कहा जाता है, जब तक वह अपराध स्वीकार न कर ले या मर न जाए अथवा धर्म-न्यायालय कोई दूसरी आज्ञा न दे। किन्तु वह 'जिद्दी और सख्तदिल' युवती तीन सप्ताह तक उस 'मृत्यु पिंजर' में बन्द रह कर भी स्वयं को अपराधिनी स्वीकार नहीं करती, न ही मर पाती है। यहाँ तक कि कुछ समय पश्चात् उसके हाथ दीवारों में लगे लोहे के दस्तानों में जकड़कर उसे अधर में लटका दिया जाता है, उसकी कलाइयाँ भुजाओं से अलग हो जाती हैं, फिर भी वह अधिकारी के कर्कश प्रश्न का यही उत्तर देती है—मेरे साथ और अधिक जिरह करना निरर्थक है। मुझे जो कुछ कहना था, वह मैं कह चुकी। जब उसे भविष्य में इनसे भीषण यन्त्रणाओं का भय दिलाने के लिये कहा जाता है कि क्या तुम जानती हो कि आगे क्या होने वाला है? तो वह स्थिर स्वर में कहती है—जानती हूँ, आपके कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं। विविधाना घोर यन्त्रणा में प्राण देकर भी अपने निर्भीक निश्चय पर अडिग रहती है।

स्वाभिमानिनी नारियाँ

१ इच्छनीकुमारी (रक्त की प्यास)

आबू चन्द्रावती के परमार राजा जैतसिंह की इकलौती कन्या इच्छनीकुमारी अपनी वंश परम्परा के अनुरूप एक स्वाभिमानिनी युवती है। उसके व्यक्तित्व में रूप, मार्दव और निश्छल अनुराग के साथ साहस, निर्भीकता और दूरदर्शिता के तत्वों का भी समावेश है।

इच्छनीकुमारी असामान्य रूपवती बाला है। उसकी 'तरल आँखें, आग्रही अधरोष्ठ, वीणा विनिन्दित स्वर, कुसुम लता-सी देहयष्टि, चम्पे की कली-सी उंगलियाँ और निखरी चाँदनी-सी मृदु मुस्कान, उसके परिपूर्ण यौवन का सजीव प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करती हैं।'[1] वह पराक्रमी भीमदेव के प्रति आकृष्ट होती है। किन्तु उसका भाव किसी स्वच्छन्द-प्रकृति भावुक रमणी की प्रेम-क्रीडा नहीं, एक वीर बाला के जीवन की सुरक्षित पूँजी है। भीमदेव जब उससे बात करते समय झिझककर शंकित दृष्टि से चारों ओर देखने लग जाता है, तब वह तत्काल कहती है—आप क्षत्रिय हैं, फिर भी डरते हैं। अपने 'बंकिम कटाक्ष' एवं कुमार के वक्ष स्पर्श द्वारा और यह कहकर कि 'बापू से मिलने आए और मुझसे बिना मिले ही चल दिए' वह अपने अनुराग और प्रगाढ़ावेश का परिचय देती है। कुमार भीमदेव ज्यों ही अनुराग से आविष्ट होकर उसे अपने आलिंगन पाश में बाँधने के लिए आगे बढ़ता है, वह 'चार कदम पीछे हटकर' कहती है—'धीरज

---

१ रक्त की प्यास, पृ० ११।

रखिए राजकुमार, मैं मर्यादाशील क्षत्रिय बाला हूँ। अभी न मेरा वाग्दान हुआ है, न कन्या-दान।"[1] जब कुमार उससे प्यार की भीख माँगता है तब उसका उत्तर है—राजपूत-कन्याओं से इस प्रकार प्रेम की भीख नहीं माँगी जाती। वह कुमार के पौरुष को ललकारती हुई कहती है—वीर नर जो असल क्षत्रिय होते हैं, कन्या माँगते नहीं, हरण करते हैं। उसके उत्कट साहस का चरम रूप उस समय दिखाई देता है, जब कुमार उसकी चुनौती के प्रत्युत्तर में उत्तेजनावश कह उठता है—परमार राजकुमारी, मैं तुम्हारा अपहरण करता हूँ, रक्षा के लिये पुकारो। तब वह शान्त गम्भीर किन्तु दृढ़ स्वर में कुमार के स्वाभिमान को एक और चोट मारती है—'वाह, यह कैसा अपहरण? कुमार! निरीह अबला के सामने बातें न बघारिये। आप मुझे यहाँ से बलात् ले भी जाएँ तो इसमें आपका शौर्य क्या है? हरण करना हो तो आइए माता कुमार, अपने जुझाऊ सोलंकी भटों को साथ लेकर।"[2]

इस बीच उसका पिता दिल्ली सम्राट् पृथ्वीराज से उसका वाग्दान कर देता है। यहाँ पुनः इच्छनीकुमारी का शील एवं मर्यादा-प्रेम प्रकट होता है। वह अपने अपहरण हेतु सैनिकों सहित आये हुए कुमार भीमदेव के साथ पाटन जाने से इन्कार कर देती है, क्योंकि 'अब वह वाग्दत्ता है।' कुमार द्वारा उसे बलात् ले जाने का निश्चय प्रकट करने पर अन्ततः वह विवश अबला अनुनय करती है—महाराज, यदि शौर्य ही दिखाना हो तो पिताजी को दिखाइए। पर यदि मेरा कुछ भी ख्याल है तो मेरे शील पर कलुष मत लगाइए।

२ लीलावती (रक्त की प्यास)

भीमदेव की पत्नी लीलावती पतिव्रता वीरांगना है। इसके चरित्र की विशेषता इसका पति-प्रेम है। भीमदेव जब इच्छनीकुमारी के रोमांचक साक्षात्कार के पश्चात्, उसके अनुरागवश आत्म-विस्मृत-सा रहने लगता है तब लीलावती चिन्तातुर हो, उसे हार्दिक सन्तुष्टि उपलब्ध कराने का हर सम्भव प्रयत्न करती है। उसकी यह पति-निष्ठा भीमदेव के मुख से कहलाती है—'मैं यह सोचता हूँ लीला, यदि तू मुझे नहीं मिली होती, तो न जाने मेरी क्या दुर्दशा हुई होती।"[3] वस्तुस्थिति से अवगत होने पर पति के सुख में बाधक बनने की अपेक्षा वह उसकी साधिका बनना अधिक उपयुक्त समझती है।

---

१. रक्त की प्यास, पृ० ३०।
२. वही, पृ० ३२।
३ वही, पृ० १२।

लीलावती के व्यक्तित्व का दूसरा उल्लेखनीय पक्ष उसका वीरांगना रूप है। यह रूप उसके पट्ट राजमहिषी बनने के पश्चात् उभरता है। अपनी जेठानी नायिकादेवी के विधवा हो जाने के पश्चात्, उसके सती होने का निश्चय सुनकर लीलावती विनम्रतापूर्वक उसमें निर्णय बदलने का अनुरोध करती है तथा अन्य कोई उपाय न देख, वह स्वयं भी उसके साथ चिता में कूद जाने को उद्यत हो जाती है। इस पर रानी नायिका देवी को उसका आग्रह स्वीकार करना पड़ता है। बाद में मुहम्मद गौरी के आक्रमण के समय, उसकी शक्ति निरस्त करने के लिये वह स्वयं पति की कमर में तलवार बाँधकर उसे विदा करती है। अब वह सदा हँसने वाली आनन्दमूर्ति लीलादेवी नहीं, गुरु राज्य-भाराक्रान्त राजमहिषी है। वह क्षत्राणी का धर्म जानती है। राजा को विदा कर, वह किले और नगर की रक्षा का दायित्व स्वयं सँभाल लेती है। जब मुहम्मद गौरी के विपुल सैन्य का वेग भीमदेव अवरुद्ध नहीं कर पाता और आक्रान्ता पाटन नगर पर आ धमकते हैं, तब गुर्जरेश्वर महारानी लीलावती वीर वेश धारण कर किले के बुर्ज-बुर्ज पर घूमकर नगर की रक्षा करती है। अन्त में जब नगर का पतन हो जाता है और भीमदेव के सम्बन्ध में कोई सूचना नहीं मिलती, तब लीलावती पति को वीरगति प्राप्त समझकर अग्नि-समाधि लेने के उद्देश्य से महालय को ही अपना चिता-स्थल बना लेती है। इतने ही में संयोगवश भीमदेव के उपस्थित हो जाने पर जौहर-सज्जा-तत्पर वह देवी पुनर्जीवन प्राप्त करती है।

३ नायिकादेवी (रक्त की प्यास)

नायिकादेवी सहृदय और विवेक-शील नारी है। अपने देवर भीमदेव और देवरानी लीलावती के प्रति उसका अगाध स्नेह है। इच्छनीकुमारी द्वारा अपहरण की चुनौती दिये जाने के पश्चात् भीमदेव की मानसिक स्थिति चिन्तनीय हो जाती है। नायिका देवी की सहृदयता का मृदु स्पर्श उस समय उसके लिये उपयोगी उपचार सिद्ध होता है। वह लीलावती की अन्तर्व्यथा का हरण करती है और उसे गृहस्थ जीवन एवं राजनैतिक अनिवार्यताओं का मर्म समझा कर पति के प्रति सहृदय दृष्टिकोण रखने की प्रेरणा देती है।

वह उदार है। गुजरात-राजवंश के इष्टदेव भगवान् सोमदेव हैं। फिर भी वह जैन-धर्मावलम्बियों के प्रति राजा द्वारा अपनाई गई भेद-नीति का विरोध करती है—'धर्म द्वेष राजा को शोभा नहीं देता। हमारे गुजरात में हिन्दू और जैन दोनों हमारे राज्य के दो हाथ हैं। काका जी जैनों का पक्षपात करते थे, आप ब्राह्मणों का करते हैं। यह धार्मिक पक्षपात राज-धर्म को दूषित करता है।

न्यायासन को कलंकित करता है।"[1]

विवेक और व्यावहारिकता नायिकादेवी के स्वभाव के अभिन्न अंग हैं। राजमाता पद्मावती या द्वारा जैनमात्र को शत्रु समझने के कारण, उसे जब राज्य के न्यायासन से अन्याय की आशंका होने लगती है, तब वह तत्काल राजा को सचेत कर स्थिति को बड़ी कुशलता से संभाल लेती है। यही कारण है कि कपर्दि जैसा बुद्धिमान् मंत्री और अमरसिंह (प्रसिद्ध 'अमरकोश का रचयिता) जैसे अध्यवसायी विद्वान् गुर्जरेश्वर का हर संकट में प्राणपण से साथ देते हैं। इस धार्मिक उदारता और न्याय-प्रतिष्ठा के साथ वह राज-प्रतिष्ठा के प्रति भी सतर्क है। राजा को वह स्पष्ट परामर्श देती है कि यदि कोई राज-द्रोह करे तो चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे जैन, चाहे राजकुमार हो चाहे रानी, उसे धर्मासन के आगे खड़ा कर, उस पर अपराध प्रमाणित कीजिए। उसे दण्ड दीजिए, यही आपका धर्म है। अन्यत्र वह पति की स्मृति में मृत पुत्र के साथ चितारोहण करती हुई भीमदेव से कहती है—"मैंने तुम्हारा कहना मानकर पति-सहगमन नहीं किया था। अब मैं तुम्हारी नहीं सुनूँगी। तुम अपना कर्त्तव्य करो, मैं अपना। राजा न किसी का भाई है, न देवर। सावधान हो। मोह में न पड़ो।"[2] उसका कर्त्तव्य-बोध उल्लेखनीय है।

४. कलिंगसेना (वैशाली की नगरवधू)

गान्धार-कन्या कलिंगसेना वैशाली की नगरवधू 'अम्बपाली' की भाँति अपूर्व सुन्दरी, मानवती और विदुषी है। मयासुर-कन्या सोमप्रभा की मित्रता के कारण वह 'प्रलय यौवना' बन चुकी है। उसके रूप-लावण्य के सम्मुख श्रावस्ती (कोशल) की महार्घिक बालाओं की सौन्दर्यभा मन्द पड़ जाती है। वह तक्षशिला की स्नातिका, उच्च शिक्षा प्राप्त और तर्कशील है। उपन्यास में वह केवल एक बार प्रेमिका के रूप में पाठकों के सम्मुख आती है, जब वह महाराज उदयन को अपना हृदय अर्पण कर उसे स्वयंवर में वरण करने का निश्चय करती है। उदयन भी उसके प्रणय निवेदन के सम्मानार्थ, ससैन्य गान्धार-सीमा तक जा पहुँचता है। किन्तु पितृ-भक्ति एवं देशभक्ति के सम्मुख, प्रेमिका कलिंगसेना पराजित हो जाती है। वह पिता और जनपद की आन की रक्षा के लिए कोशलपति प्रसेनजित् के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर आत्मोत्सर्ग का उदाहरण प्रस्तुत करती है। किन्तु इस बलिदान यज्ञ में वह आत्म-सम्मान की स्वाहा

१. रक्त की प्यास, पृ० ४५-४६।
२. वही, पृ० १०३।

नहीं होने देती। उसका कथन है—'मैंने आत्म-बलि अवश्य दी है, पर स्त्रियों के अधिकार नहीं त्यागे हैं।'[1] वह पुरुष को 'पति' न मानकर 'जीवन-संगी' मानती है। उसकी दृष्टि में कौशल-नरेश उसके जीवन-संगी कदापि नहीं हो सकते। वह आजीवन अकेले ही जीवन-यात्रा करने का संकल्प कर लेती है। वह नारी-अधिकारों के रक्षण की केवल मौखिक बात नहीं करती अपितु उसे व्यवहार में लाकर चरितार्थ करती है। राजकुमारी चन्द्रप्रभा जब क्रीता दासी के रूप में कौशल के राजमहल में लाई जाती है, तब वह उसे वहाँ से सुरक्षित निकल जाने में सहायता करती है और उससे क्षमा-याचना भी करती है।

५. बेगम शाइस्ताखाँ (आलमगीर)

बेगम शाइस्ताखाँ अनुपम सौन्दर्यमयी रमणी है। उस पर मुग्ध होकर शाहजहाँ होश-हवास खो बैठता है। किन्तु उसकी पतिनिष्ठा इतनी प्रबल है कि बादशाह के किसी भी प्रलोभन के सामने वह सिर नहीं झुकाती। वह मुगल साम्राज्य के अन्य अमीरों की स्त्रियों के समान नहीं है। वह अपनी अस्मत को सब से बड़ी चीज समझती है। अपने सहज भोलेपन और भावुक स्वभाव के कारण, वह जहाँआरा और बेगम जफरअली की बातों में आकर रंगमहल में चली जाती है। पर, वहाँ बादशाह की वासना का भीषण रूप देखकर उसके प्राण काँप उठते हैं। बादशाह के बलात्कार का पूरा वृत्तान्त वह अपने पति (शाइस्ताखाँ) को कह सुनाती है और बादशाह को अपने शील-भंग का समुचित दण्ड दिलाने के संकल्प से आबोदाना छोड़ कर जमीन पर पड़ जाती है। उसका संकल्प है—'मेरे प्यारे शौहर, इतने ही दिनों में मैंने तुम से वह प्यार पाया कि जिन्दगी का सब लुत्फ उठा लिया। अब मेरी जिन्दगी में किरकिरी मिल गई। मैं नापाक कर दी गई। अब मैं तुम्हारे लायक नहीं रही। प्यारे, मेरे जिस जिस्म को उस नापाक कुत्ते ने छुआ है, मैं उसमें न रहूँगी।'''आह, उस जालिम ने न मालूम मुझ-जैसी कितनी बेबस, कमजोर औरतों को बरबाद किया होगा। मुमकिन है, वे सब अस्मत-फरोश न हों, लेकिन इस मुगल सल्तनत में क्या एक भी ऐसा आदमी नहीं, जो हम बेकसों को उस जालिम भेड़िये से बचाये। मेरे प्यारे मालिक, तुम वादा करो कि बदला लोगे।'[2]

शाइस्ताखाँ द्वारा वादा कर दिये जाने पर वह इन शब्दों के साथ संसार से विदा लेती है—'अब मैं बड़ी खुशी से मर सकती हूँ, इसका मुझे बड़ा फख्र है।'

---

१. वैशाली की नगरवधू पृ० २६६।
२. आलमगीर, पृ० १०१।

६ कैकेयी (वय रक्षाम:)

दशरथ-पत्नी कैकेयी सर्वप्रथम पति-परायणा वीरांगना के रूप में दिखाई देती है। वह दशरथ और शम्बर के युद्ध में अपनी सूझबूझ तथा युद्धनिपुणता का परिचय देती है। दशरथ के घायल एवं उसके रथ के खण्डित होने पर कैकेयी एक हाथ से रथ के चक्र को सम्भाल कर राजा को रथ पर बैठाती है और दूसरे हाथ से शत्रुओं पर बाण वर्षा आरम्भ कर देती है।

कैकेयी स्नेहमयी एवं उदारहृदया माता भी है। मन्थरा द्वारा राम के राज्याभिषेक के प्रति दुर्भावना व्यक्त करने पर वह उसकी प्रताडना करती हुई कहती है—'राम को यौवराज्य मिल रहा है तो तू दुःख क्यों करती है? मैं तो राम और भरत में भेद नहीं समझती। राम और भरत मेरे दो नेत्र हैं। राम का राज्याभिषेक हो रहा है तो मैं प्रसन्न हूँ। यह तो शुभ समाचार है।" किन्तु शीघ्र ही उसका दुग्ध-सा धवल तथा स्वच्छ हृदय मन्थरा के विष-वचनों से फट जाता है। वह मन्थरा के कथनानुसार, दशरथ से राम-वनवास का वर माँग कर अपने अन्तस् में विद्यमान सौतेली माँ के रूप को साकार कर देती है।

७ संयोगिता (पूर्णाहुति)

कन्नौज नरेश जयचन्द की संयोगिता इकलौती पुत्री है। पिता के असाधारण दुलार ने उसे हठी और चंचल-स्वभाव नारी बना दिया है। वह असाधारण सुन्दरी है। दिल्ली नरेश पृथ्वीराज के तेज और पराक्रम की प्रशंसा सुनकर वह उस पर अनायास मुग्ध हो जाती है। यहीं से वह मुग्धा प्रेमिका के रूप में पाठकों के सामने आती है।

पृथ्वीराज के प्रति संयोगिता का प्रेम इतना प्रगाढ है कि वह पिता के भीषण क्रोध और माता तथा सखियों की शिक्षा की तनिक चिन्ता नहीं करती। उसका हृदय प्रिय के कर स्पर्श हेतु इतना व्याकुल है कि अपहरण के समय भीषण युद्ध की घटाएँ घिरी होने पर भी वह 'पृथ्वीराज के मुख का पसीना पोंछने को लालायित है'। प्रिय-विरह में सखियों द्वारा निरन्तर चन्दन-लेप और व्यजन-वायु किये जाने पर भी वह क्षण-क्षण मूर्च्छित हो जाती है। उसका पति प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ इतना प्रगाढ हो जाता है कि पृथ्वीराज जैसा वीर-पुंगव और पराक्रमी नरेश भी कर्त्तव्य विमुख हो अन्तःपुर का बन्दी बन बैठता है। यहाँ तक कि युद्ध के लिए सन्नद्ध पति के प्रस्थान करते ही वह थर-थर काँपती हुई पृथ्वी पर गिर जाती है। उसकी अनन्य प्रेमनिष्ठा का प्रमाण उस

---

१. वय रक्षाम:, पृ० ३१५।

समय मिलता है, जब वह युद्ध में पति की मृत्यु का समाचार सुनते ही प्राण त्याग देती है।

संयोगिता के व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता है उसकी दृढ़ संकल्प-शक्ति और विवेक। एक बार पृथ्वीराज को पति-रूप में वरण करने का निश्चय कर लेने पर फिर वह इससे विचलित नहीं होती। उसका कथन है—'जब तक इस तन-पंजर में प्राण-पखेरू हैं, मैं सम्भरीनाथ को छोड़ और किसी को भी वरण नहीं करूँगी, चाहे इधर से धरती उधर हो जाय। या तो मेरा पाणि-ग्रहण पृथ्वीराज के साथ होगा या मैं गंगा में निमग्न हो जाऊँगी।'[1] नवबुद्धि बालिका होते हुए भी उसका मस्तिष्क विवेक से वंचित नहीं है। वह स्वयं कहती है—क्या मैं किसी के सिखाने से या आग्रह से उस नरश्रेष्ठ को भूल जाऊँगी? कभी नहीं। पृथ्वीराज के प्रति उसकी अनन्य आसक्ति और पिता जयचन्द द्वारा उसका प्रबल विरोध होने पर भी, वह पिता के सम्मान और उसकी प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ नहीं है। वह 'प्रेमी' से स्पष्ट कहती है—'हे नाथ! आपके सब सामन्त मेरे पिता की सेना के सामने दाल में नमक भी नहीं। हे स्वामी! आप कैसे फूंक से पहाड़ उड़ाया चाहते हैं। मैं पल भर भी आपसे पृथक् नहीं रहना चाहती, पर मुझे अन्देशा इतना ही है।'[2]

इस प्रकार संयोगिता मध्ययुगीन सामन्ती परिवार की नायिकाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली, नारी पात्र है।

८. जीजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें)

जीजाबाई का चरित्र पुत्र-वत्सला माँ और वीर नारी के रूप में चित्रित हुआ है। उसकी प्रतिज्ञा है कि वह सुख दुःख में पुत्र के साथ रहेगी। एक बार शिवाजी के औरंगजेब की छल-नीति का शिकार होकर बन्दी बनाये जाने के समाचार से उसका हृदय तड़प उठता है। वह राजगढ़ के महलों में अत्यन्त व्याकुलता से दिन बिताती है और प्रतिदिन प्रातः भवानी के मन्दिर में जाकर पुत्र के सकुशल लौट आने के लिये प्रार्थना करती है। ईश्वर की अपार कृपा और शक्ति पर उसे पूर्ण आस्था है। इसी कारण उसका हृदय क्षणिक स्थितिवश अधीर होते हुए भी असन्तुलित नहीं होता।

जीजाबाई वीरांगना राजमाता है। एक दिन प्रतापगढ़ दुर्ग के एक बुर्ज पर खड़ी होने पर जब उसे सिंहगढ़ पर शत्रु का ध्वज फहराता दिखाई देता है, तब

---

१. पूर्णाहुति, पृ० २८।
२. वही, पृ० ६६।

वह उन्हें प्राप्त करने के विचार से शिवाजी को अपने पास बुला भेजती है। किन्तु इस कार्य का स्पष्ट आदेश न देकर वह चतुराई से अपने पुत्र को प्रेरित करती है। वह शिवाजी से चौसर खेलकर, एक ही दाँव में उन्हें हराकर, जीत की भेंट के रूप में सिंहगढ़ दुर्ग माँग लेती है। शिवाजी द्वारा एक ही दिन में सिंहगढ़ विजय कर लिये जाने के समाचार से उसका मन सन्तुष्ट होता है।

६. सीता (वय रक्षामः)

सीता की देह-कान्ति स्वर्ण-तुल्य, नेत्र अति सुन्दर, दन्तावलि धवल, कटि क्षीण, स्तन पीन और अंग अंग सुगठित, मृदुल एवं लावण्यमय है। राम के वन-गमन की सूचना पाते ही वह क्षणभर में राज्य-वैभव के सभी सुखों को त्याग कर दुःख-कष्टक पूर्ण वन में चलने को उद्यत हो जाती है। वह वैदेही जो हाथ में दर्पण लेने में भी थक जाती थी, अब वन के कष्टों में भी विनोद की रचना करती है। वन में उसे पति-सेवा का सुख प्राप्त है, विविध प्रकार की ज्ञान-वार्ता का सुअवसर सुलभ है। किन्तु अपने व्यक्तिगत सुख-सन्तोष में भी वह भरत के कष्टों का स्मरण कर व्यथित हो उठती है।

रावण द्वारा निरन्तर अनेक प्रलोभन दिये जाने पर वह क्षण भर के लिये भी पति-विमुख नहीं होती। रावण के अशोक-वन में उसके लिये विशेष रूप से सुसज्जित भव्य एवं विशाल हर्म्य समर्पित है। किन्तु वह उस हर्म्य के विलान-कक्ष की ओर पीठ करके सदा अशोक वृक्ष के नीचे उदास, मलिन वेश, अधोमुख किये, भूमि पर बैठी आँसू बहाती रहती है, क्योंकि उसके पति न जाने किस स्थिति में, वन के किस खण्ड में भटक रहे हैं। वह संयमशीला तपस्विनी की भाँति अपने पति के ही ध्यान में मग्न रहती है। उसके आदर्श पातिव्रत्य की प्रशंसा करती हुई वनिता नाम की एक राक्षसी कहती है—'हे सीते, तूने जो पति प्रेम प्रकट किया है, वह ऐसी स्थिति में कष्टप्रद ही है। परन्तु तेरा पत्यनु-राग प्रशंसनीय है। वह राक्षसियों के लिये नई वस्तु है।'[१]

सीता कामुक रावण की सभी युक्तियों को तर्कपूर्ण उत्तरों द्वारा निर्मूल करती हुई कहती है—'क्या आपने मेरे पति को युद्ध में जीत कर मेरा हरण किया है? आपने तो छल करके, भिक्षुक बनकर, चोर की भाँति मुझे चुराया है। आपने पुरुष सिंह राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में मेरा हरण किया। आपका यह कार्य कितना कलंकित था? आपका यह कार्य न धर्मसम्मत है, न शौरोचित।'[२]

---

१. वय रक्षामः, पृ० ४०६।
२. वही, पृ० ३६४।

१० शुभदा (शुभदा)

शुभदा बंगाल के गाँव की बाल-विधवा है। उसे मृत पति की चिता में बलात् सती-पद पर प्रतिष्ठित किये जाने के प्रयास को कुछ साहसी अंग्रेज विफल बना देते हैं। उसके रूप-यौवन और योग्यता को देखकर अनेक अंग्रेज अधिकारी उसके प्रणयाभिलाषी हैं। किन्तु उसका हृदय अपने रक्षक मैकडानल्ड के प्रति समर्पित है।

शुभदा जातीय व्यामोह के अभिशाप से सर्वथा मुक्त है। वह ब्राह्मण है किन्तु ऊँच-नीच, जाति-पाँति को नहीं मानती। उसकी उदार दृष्टि भारतीय गौरव-भाव को कदापि खण्डित नहीं होने देती। उसकी आत्मा हिन्दू है। उसके संस्कार हिन्दू हैं और वह अपने आप को पूर्ण भारतीय मानती है। उसका स्वेच्छापूर्वक अंग्रेज पति का वरण करना अन्य-जातीयता के प्रति उसकी विमुक्तता का परिचायक है। पूर्ण अंग्रेजी वातावरण के बीच रहते हुए भी अपने हिन्दू-संस्कारों को अक्षुण्ण बनाये रखना उसकी भारतीयता के प्रति अचल निष्ठा का सूचक है। वह अंग्रेज अधिकारियों और ईसाई पादरियों के साथ खान-पान करके आभिजात्य वर्ग की भावना से मुक्त होने का प्रमाण प्रस्तुत करती है। क्रिश्चियन संसार में पलने पर भी हिन्दू स्त्रियों के कुलाचार को वह नहीं छोड़ती। वह अपने अंग्रेज पति को उसकी विशाल सरकारी कोठी में अपना ठाकुरद्वारा स्थापित करके और उसकी सभी मर्यादाओं के पालन हेतु सहमत करके हिन्दू संस्कारों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करती है। गोपाल पाँडे जैसे विद्वान् और निष्ठावान् ब्राह्मण की सेवा और मंगलपाँडे जैसे मातृभूमि-भक्त की रक्षा के निमित्त उसकी तीव्र उत्कंठा और तत्परता उसे एक स्वदेशीय आस्थामयी नारी के रूप में प्रस्तुत करती है।

शुभदा मर्यादाशील है। राजा राममोहनराय की उपस्थिति में उसका निरामिष आहार ग्रहण करना तथा महारानी रासमणि के सम्पर्क में आने पर उसी की भाँति व्रत पालन करना इस बात के प्रमाण हैं। अपने पूर्व ससुर राधामोहन द्वारा अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति अनुदान-रूप में देने का प्रबल आग्रह करने पर वह पति की अनुमति के बिना उसे स्वीकार करने से इन्कार कर देती है। उसके हृदय में स्वजाति तथा स्वदेश के प्रति उत्कट अनुराग है। हिन्दू जाति की अकर्मण्यता के प्रति उसे बड़ा क्षोभ है। राजा राममोहनराय के सम्मुख कहे गये उसके ये शब्द उल्लेखनीय हैं—'इतने प्रहार हो रहे हैं, पर हिन्दुत्व की नींद नहीं टूटती। इसी से ईसाई धर्म-प्रचारकों के मनसूबे बढ़ते जाते हैं।'[1] वह अपने अंग्रेज पति मैकडानल्ड की नाराज़गी का विचार किये बिना ही अंग्रेज़ों की दुर्नीति का

प्रबल विरोध करती है। सिपाही-विद्रोह को वह स्वाधीनता-संग्राम बतलाती है और प्रथम स्वाधीनता-सेनानी मंगल पांडे को फांसी से बचाने के लिये कोई उपाय शेष नहीं रहने देती। यहाँ तक कि मंगल पांडे की फांसी के प्रायश्चित्त-स्वरूप वह अपने कर्नल पति को अंग्रेजी सेना से त्यागपत्र देकर जन-सेवा का प्रशस्त पथ ग्रहण करने पर बाध्य कर देती है।

सुभद्रा प्रतिभाशालिनी एवं जागरूक स्त्री है। पादरी जानसन, कर्नल मैकडानल्ड, राजा राममोहनराय तथा गोपाल पांडे जैसे विद्वान् व्यक्तियों के समक्ष विविध सामाजिक राजनैतिक तथा धार्मिक विषयों पर तर्कपूर्ण विचारों की निःसंकोच अभिव्यक्ति उसकी विवेक बुद्धि की परिचायिका है। वह व्यवहार-कुशल, वाक्चतुर एवं मिलनसार भी है। अंग्रेज स्त्री पुरुषों की विशाल भीड़ में विभिन्न अभ्यागतों द्वारा किये गये प्रश्नों और व्यंग्यों का अवसरानुकूल उत्तर देकर वह अपनी व्यावहारिक बुद्धि का परिचय देती है। पादरी जानसन के साथ रहने वाले दो नव-दीक्षित ऐंग्लो-इंडियन ईसाइयों की प्रेम-याचना पर उन्हें बातों से बहला और बहलाकर वह अपने वाक्चातुर्य का परिचय देती है। प्रबल से प्रबल व्यक्तित्व वाले किसी भी स्त्री-पुरुष को पहली ही भेंट में अपना प्रशंसक बनाकर वह अपने मृदुल व्यवहार की अमिट छाप छोड़ देती है।

इस प्रकार सुभद्रा बीसवीं शताब्दी के उदय के साथ अंगड़ाई लेते नये भारत के आत्म विश्वास की सूचक है।

सती नारियाँ

१ मायावती (वयं रक्षामः)

दानवेन्द्र की बड़ी कन्या, मन्दोदरी की बहिन, शम्बर असुर की पत्नी मायावती के चरित्र के तीन रूप उपन्यास में उभरते हैं—(१) अप्रतिम सुन्दरी, (२) मर्यादाशील नारी और (३) अपने अपराध पर पश्चात्ताप करने वाली अनुतप्त स्त्री।

लेखक के शब्दों में 'माया' अपूर्व रूप-सुन्दरी है। उसका रंग तपाये हुए सोने के समान कान्तिमान् है और उसके अंग प्रत्यंग इतने सुडौल हैं कि देखकर उसके रचयिता को धन्य कहना पड़ता है। वह आर्य ललनाओं की भाँति रक्षो नीति तथा स्त्रीधर्म की मर्मज्ञा है। वह स्वभाव की आग्रही और मानवती है। वह अपने सतीत्व की रक्षा के प्रति बड़ी सचेत है। जब रूप-लुब्ध रावण उससे प्रेम-याचना करता है, तब वह बड़े सधे शब्दों में उत्तर देती है—'तुम तो धर्माधर्म को समझते हो, ऋषिकुमार हो, इसलिए ऐसा न करो। जो मेरा पति है, उसी के लिए मैं शृंगार करती हूँ। मैं असुर कुल की स्त्री हूँ, पत्नी हूँ। तुम्हारी रक्ष-

सरस्वती है, मेरे स्वत्व की तुम रक्षा करो।" किन्तु दुर्दम्य रावण बलात् उसे अपनी कामना-पूर्ति का साधन बनाना चाहता है। वह बाज के पंजे में दबी हुई कबूतरी की भाँति छटपटाती है। उसका शृंगार अस्त-व्यस्त हो जाता है। वस्त्र फट जाते हैं। वह केले के पत्ते के समान काँपने लग जाती है। किन्तु उसकी करुण गुहार 'नहीं, नहीं, मत करो, ऐसा मत करो' रावण की बलिष्ठ भुजाओं में दब कर रह जाती है। वह कामाग्नि की ज्वाला से अपने आपको बचा नहीं पाती और कर्तव्याकर्तव्य को भूल कर रावण को आत्म-समर्पण करने पर विवश हो जाती है।

मायावती के चरित्र की यह क्षणिक शिथिलता नारी की परिस्थिति-जन्य परवशता की द्योतक है। बहुत शीघ्र, रावण के बाहु-पाश से मुक्त होते ही, उसे अपनी भावुक मूर्खता का बोध होता है। वह अपने द्वारा की गई पति की अवज्ञा, अपने पाप और रावण के पाप से अभिभूत हो, चैतन्य आते ही, मृत्यु की कामना करने लगती है। वह निश्चय करती है कि पति से दंड की याचना करेगी और फिर अग्नि प्रवेश करेगी। यही उसके चरित्र का तृतीय एवं उज्ज्वल पक्ष सामने आता है। उसे अपने पति शम्बर से क्षमा-याचना करके प्रायश्चित्त करने का अवसर नहीं मिलता। वह दशरथ से युद्ध करता मारा जाता है। वह पति के शव के साथ सती होकर अपने समस्त कालुष्य को क्षार कर डालती है। सती होने से पूर्व वह रावण को बन्धन-मुक्त और क्षमा करके उदारता का परिचय देती है।

२. मन्दोदरी (वयं रक्षामः)

रावण-पत्नी मन्दोदरी में माधुर्य और सौकुमार्य का विचित्र सामंजस्य है। वह अपूर्व सुन्दरी है। उसके शरीर में मानो छहों ऋतुएँ वास करती हैं। उसके नेत्र दर्शकों को बरबस अपनी ओर खींच लेते हैं। पुष्ट नितम्ब, पूर्ण-चन्द्र-सा मुख, धनुष-सी बाँकी भौंहें, गजराज की सूंड-सी सटकारी जंघाएँ और नवपल्लव से भी कोमल उसके हाथ अनायास ही मन को मोह लेने वाले हैं।

मन्दोदरी परम विदुषी है। रावण से प्रथम भेंट के समय वह उससे संस्कृत में वार्तालाप करती है। उसका व्यक्तित्व लोकानुभव और दूरदर्शिता से सम्पन्न है। जब उसकी ननद सूर्पणखा वंश-मर्यादा की उपेक्षा करके अज्ञातकुलशील एक युवक (विद्युज्जिह्व) के प्रेम में अन्धी हो जाती है, तब वह अपने पति रावण को सचेत करती हुई बड़ी गम्भीरता से कहती है—'यौवन का आरम्भ प्रेम से

---

१ वयं रक्षामः, पृ० १३६।

तो होता है, परन्तु युवक और युवतियाँ केवल जीवन को प्यार करना ही जानते हैं, उन्हें संसार का अनुभव कुछ नहीं होता, इससे उनका प्यार खोखला हो जाता है और जीवन निराशापूर्ण। विवाह एक दुःखद घटना हो जाती है। शूर्पणखा को मैं उससे बचाना चाहती हूँ।"

वह आदि से अन्त तक पति-परायणा है। वह अन्तिम दिन रावण को युद्धार्थ जाने से रोकती हुई कहती है—देव! राक्षस-कुल के अन्तिम नक्षत्र आप ही तो शेष हैं। भला हम कैसे आपको उस मायावी राम के सम्मुख जाने दें?

३ सुलोचना (वय रक्षाम)

सुन्दरी सुलोचना के चरित्र का प्रमुख तत्त्व है, उसका पति-प्रेम। उसके शब्दों मे—पति के एक क्षण के सान्निध्य का मूल्य उसका सारा जीवन भी नही है। मेघनाद के युद्ध-व्यस्त होने के कारण जब वह कई दिनो तक पति-मुख के दर्शनों से वंचित रहती है, तब असह्य वेदना से उसका जीवन विषादमय हो जाता है। वह विरह विदग्धा, खंडिता, मानिनी बाला नागिन की भाँति लम्बी-लम्बी साँसें लेती हुई अश्रुपात करने लगती है। उसका केश जाल अस्त-व्यस्त हो जाता है। वह मणिमाल को उतार फेंकती है। उसके विरह-विदग्ध हृदय के हाहाकार को देख प्रमदवन की सभी प्रमदाएँ अधोमुखी हो रोने लगती हैं। अन्त मे, मेघनाद के वीरगति प्राप्त करने पर वह भी काले घोड़े पर सवार होकर वीर-वेश मे पूरे राजकीय गौरव के साथ, पति की चिता के पास जाकर, उसी में समाधिस्थ हो जाती है। वह बड़े शान्त तथा संयत स्वर में दासी से कहती है—'अरी, माता से कहना, जो अदृष्ट में था, वह हो गया। उन्होंने मुझे जिन्हें सौंपा था, उन्हीं के साथ मैं जा रही हूँ।"

सुलोचना रण-कुशल वीरांगना भी है। पति मिलन-हेतु लंका-प्रवेश के अवसर पर वह कहती है—मैं क्या वैरी राम से डर कर प्रिय मिलन की इच्छा छोड़ दूँगी? देखूँगी, आज मैं राम का भुजबल देखूँगी। देखूँगी, कौन मुझे लंका मे प्रवेश करने से रोकता है? उसकी सौ सखियाँ वीर वेश मे सज्जित होती हैं। वे सब धनुष टंकार करती, भालों को हिलाती, अश्वों को नचाती, एवं हाथ मे शूल और दूसरे में जलती हुई मशालें लिए लंका की ओर अग्रसर होती हैं। उस अवसर पर सुलोचना की यह हुंकार उसके वीर रूप को साकार कर देती है—'वीरांगनाओ, आओ, अपने भुज-बल से राम-कटक का छेदन कर हम लंका मे

---

१ वय रक्षाम, पृ० २०३।
२ वही पृ० ५३०।

प्रवेश करें। शत्रु के शोणित में डूब जाना या शत्रु का वध करना हमारा कुल धर्म है।"

योद्धा नारियाँ

१. मंगला (सोना और खून, प्र० भा०)

मंगला अठारहवीं शताब्दी के उत्तर भारत के महान् संगठनकारी चौधरी प्राणनाथ की पोती है। यह सुशिक्षिता मर्यादामयी और वीर बाला है। जब चौधरी प्राणनाथ अंग्रेजों द्वारा मुक्तेश्वर दुर्ग में घेर लिए जाते हैं, तब उनके सबसे छोटे पुत्र (सुखपाल) के साथ अन्य सभी स्त्रियाँ किसी प्रकार मेरठ भिजवा दी जाती हैं। किन्तु मंगला किसी भी स्थिति में दादा को छोड़कर नहीं जाती है। वह क्रुद्ध सिंहनी की भाँति शस्त्र-सन्नद्ध होकर अंग्रेजों के विरुद्ध मोर्चा सम्भाल लेती है। अंग्रेजों की भारी तोपों से लैस विशाल सेना और मुक्तेश्वर के आत्म-बलिदानी युवकों के मध्य दिन भर के भीषण संग्राम के पश्चात् जब चौधरी प्राणनाथ परिस्थितियों को प्रतिकूल देखकर आत्म-समर्पण कर देता है, तब अन्य सभी योद्धा भी उसका अनुसरण करते हैं। किन्तु मंगला गिरफ्तार होने से इंकार कर देती है। वह पिस्तौल हाथ में लेकर गरजती हुई अंग्रेजी में सरकारी लोगों को चेतावनी देती है—'जो मेरे ऊपर हाथ डालेगा, उसे मैं गोली मार दूँगी।' वह अपने बाप दादा की जलती हुई हवेली के द्वार पर अंग्रेजों का मार्ग रोककर, पिस्तौल ताने खड़ी हो जाती है। अन्त में, अंग्रेज मैजिस्ट्रेट, उस पर तोप दागने का आदेश दे देता है और उसके कोमल अंग प्रत्यंग टुकड़े-टुकड़े होकर हवा में उड़ जाते हैं।[1]

२. लक्ष्मीबाई (सोना और खून, चतुर्थ भाग)

लक्ष्मीबाई तेजस्विनी ललना है। अपने गुरुभाई तातिया की प्रेरणा से उसमें स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। उसके चारित्रिक गुणों का क्रमशः उद्घाटन विवाह के उपरान्त होता है। असमय विधवा हो जाने के कारण, एक ओर झाँसी की रियासत की शासन व्यवस्था और दूसरी ओर अंग्रेजों की कूटनीतिक दुरभिसंधि से उत्पन्न अविरत संघर्ष का भार उसके कंधों पर आ पड़ता है। इतने बड़े दायित्व को वह सम्भाल कर अपने 'असाधारण जीवट' का परिचय देती है। लक्ष्मीबाई में महान् सेनानी के गुण विद्यमान हैं। वह सेना संगठन और सेना संचालन में निपुणता का परिचय देती है। वह

---

१ वय रक्षाम, पृ० ४८२।

लोगों को प्रेरणा देनी है—'शरीर को कमा-कमा कर फौलाद बना लो।' उसी के परामर्श से अमीर अली और नज़ीर अली नामक झाँसी के दो विख्यात पहलवान शहर में अखाड़ा स्थापित कर तरुणों को कुश्ती के साथ-साथ छुरी, तलवार, रेकला विद्या और बन्दूक का भी अभ्यास कराते हैं। इससे रानी लक्ष्मीबाई का धर्म निरपेक्ष, उदार और राष्ट्रीय दृष्टिकोण स्पष्ट है। इसकी पुष्टि उसके अनन्य श्रद्धालु उस्ताद मुगलखाँ, कर्नल मुहम्मद जमाखाँ, विख्यात तोपची गौसखाँ तथा गुल मुहम्मद द्वारा उसके लिये किये गये आत्मोत्सर्ग से भी हो जाती है।

रानी लक्ष्मीबाई की कूटनीतिक चतुरता का उदाहरण उस समय सामने आता है, जब वह भीतर ही भीतर अंग्रेज़ों के विरुद्ध संघर्ष की पूरी तैयारी कर के अपने दत्तक पुत्र दामोदर राव के यज्ञोपवीत संस्कार के बहाने स्थान-स्थान से देश भक्त सरदारों, सामन्तों और अपने सहायकों को निमन्त्रित कर उनमें योजना के कार्य-रूप में परिणत करने के सम्बन्ध में विचार विमर्श करती है। रानी के गुप्तचर देश-भर में फैले हैं। वे प्रतिक्षण की राई-रत्ती सूचना उसे पहुँचाते रहते हैं। उसके अतुल पराक्रम और शौर्य का अंग्रेज़ों पर पूरा आतंक है। वे रानी को जीवित या मृत हस्तगत करने वाले व्यक्ति को एक लाख रुपये का पुरस्कार देने की घोषणा सार्वजनिक इश्तहारों द्वारा करते हैं। किन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती।

लक्ष्मीबाई के जीवन के समान उसकी मृत्यु भी महान् है। वह अवसर आने पर मर्दाने वेश में युद्ध क्षेत्र में उतर पड़ती है। भीषण मार-काट के पश्चात् उसके साथी एक एक कर समाप्त हो जाते हैं। वह भी बुरी तरह घायल हो जाती है। परन्तु अपनी वीरता से रोकर, स्मिथ आदि अंग्रेज सेना-नायकों को चकित कर देती है। वह देश के लिए तिल-तिल कर मरती है किन्तु अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होती। आचार्य चतुरसेन ने उसके चरित्र में आत्मोत्सर्ग तथा बलिदान के असाधारण तत्त्व सजोए हैं। उसके बलिदान-स्वरूप भारत में क्रान्ति की लहर दौड़ गई। इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

मानवतावादिनी नारियाँ

१ सम्राज्ञी नागाको (ईदो)

नागाको जापान देश की सम्राज्ञी है। यह तीस वर्षीय युवती महारानी राजमर्यादा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए मानो पूर्णतः समर्पित है। यह बहुधा धीरे बोलती है, मानो बोलने से पहले मन में यह तौल कर देख लेती है कि वह जो कुछ कह रही है, वह ठीक-ठीक उसकी मर्यादा के अनुकूल भी है या

नहीं। कोई भी वाक्य कहकर वह अपनी किसी सहचरी की ओर देखती है, यह जानने के लिए कि उसका वक्तव्य ठीक-ठीक उसकी मर्यादा के अनुकूल तो है। और सहचरी के मुख पर सन्तोष तथा अनुमोदन के भाव देख उसके होठों पर एक मुस्कान फैल जाती है, परन्तु वह भी मर्यादा के ही भीतर।

सम्राज्ञी नागाको देशाभिमानिनी और वीर बाला है। अपने देश की स्वाधीनता तथा प्रतिष्ठा के लिए वह अमेरिका और ग्रेट ब्रिटेन जैसे शक्तिशाली राष्ट्रों से भी टक्कर लेने को उद्यत है। परन्तु उसके इस वीरदर्प में विवेक बुद्धि का भी सन्तुलित सम्मिश्रण है। युद्ध की चुनौती का सामना करने की पूर्ण क्षमता होते हुए भी वह उसे यथासम्भव टालने के पक्ष में है। अपने सेनापतियों के नाम उसका सन्देश है—"मेरे देश के वीरों में प्रचण्ड आत्म शक्ति है, उसे सारा संसार जानता है। किन्तु जब तक युद्ध अनिवार्य न हो जाए, न छेड़ा जाय।"[1]

युद्ध में अमेरिका द्वारा किए गये अणुबम के विस्फोट से जापान में भीषण नर संहार देखकर सम्राज्ञी राजनीति की अपेक्षा मानवता को अधिक महत्त्व देती है—"राजलिप्सा की राजनीति ने जापान को हरा दिया। राजतंत्र की राजनीति ने सब गुणों को आक्रान्त कर लिया है। मैंने अपने देशवासियों के लिए कुछ नहीं किया। अपने अनगिनत युवा पुत्र पुत्रियों का रक्त देश-भक्ति के नाम पर बहाया। तुम यदि देश-देशान्तरों के ज्ञान विज्ञान से ओत प्रोत हो तो तुम मारे जापान में फैल जाओ और मेरे देश के नये रक्त को अपने ज्ञान से आलोकित करो।"[2]

२ फ्लोरेंस नाइटिंगेल (सोना और खून तृ० भा०)

फ्लोरेंस नाइटिंगेल लन्दन के हैम्पशायर उपनगर निवासी विलियम तथा फेनी नाइटिंगेल दम्पती की इकलौती कन्या है। वह दया, ममता और सेवा की प्रतिमूर्ति है। अट्ठाईस वर्षीय पूर्ण यौवना होते हुए भी इसके मुखमण्डल पर बच्चा जैसी प्रसन्नता के साथ साथ विचारों की गम्भीरता प्रकट होती है। अपनी माँ के शब्दों में वह एक 'अजब धुन की लड़की है।' इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री लार्ड पामर्स्टन के शब्दों में वह 'धर्मात्मा तथा शान्तिप्रिय है।' एक रूपवती सुन्दरी तथा पूर्ण यौवन प्राप्त बाला होते हुए भी उसकी प्रवृत्ति अपने रागात्मक सुख की

१ वैशो, पृ० १४५।
२ वही, पृ० २२५-२६।

ओर न होकर अधिकाधिक जन-सेवा की ओर है। उसके शील, सौन्दर्य और मृदु स्वभाव को देखकर 'आधे से अधिक लन्दन निवासी उससे विवाह करने को उत्सुक हैं। किन्तु न जाने उसके दिल में क्या सनक समाई है कि वह नित्य सेल्सवरी अस्पताल में रोगियों के पास जा पहुँचती है।'[1]

आर्तजनों की सेवा का भाव मानो जन्म से उसके रक्त में घुला हुआ है। एक बार माता-पिता ट्रैमैन नामक एक होनहार युवक के साथ उसे इस विचार से भ्रमणार्थ भेजते हैं कि शायद इसमें दोनों एक दूसरे के निकट सम्पर्क में आकर दाम्पत्य सूत्र में बँधने को तैयार हो जायेंगे। किन्तु ट्रैमैन के साथ उद्यान की ओर न जाकर वह उसे अपने उन रोगियों को दिखाने ले जाती है, जो प्रतिदिन उन करुणा और सेवा की देवी के दर्शनार्थ समुत्सुक रहते हैं। उनमें कोई दमा की मारी पोस्ट मास्टर की गरीब बूढ़ी माँ है, कोई घायल किसान है, कोई अनाथ शिशु है। यहाँ तक कि किसी पनिहारे के कुत्ते की टाँग टूट जाने और पिता द्वारा उसे गोली मार कर मुक्ति दिला देने की बात सुनकर भी वह व्याकुल होकर कहती है—'पिता जी, उसे गोली मारने की क्या ज़रूरत है? मनुष्य की हड्डी की तरह उसकी हड्डी भी जुड़ सकती है।'[2]

क्रीमिया के भीषण युद्ध में सहस्रों निरपराध घायलों की सेवा वह जी जान से करती है। वह मानवता की सेवा को हर कानून और अधिकार से ऊँचा मानती है। इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री लार्ड पामर्स्टन इस कदर दबंग हैं कि वे 'हर मजेस्टी' की भी परवाह नहीं करते। वे भी फ्लोरेंस की सेवा-भावना से इतने प्रभावित होते हैं कि उस की प्रत्येक आज्ञा का आदर करते हैं।

भारतीय शान्ति के अग्रदूत अज़ीमुल्ला खाँ क्रीमिया में अंग्रेज़ों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों को देखकर बड़े ही क्षुब्ध होते हैं। किन्तु 'ईश्वरीय दूत' की भाँति जन-सेवा कार्य में तत्पर फ्लोरेंस नाइटिंगेल द्वारा अपने देश के दम्भ और अहम्मन्यता-जन्य कुकृत्यों का परिष्कार होते देख, उसका हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

भक्ति, त्यागमयी नारियाँ

१. हाचा (ईदो)

हाचा देशभक्त, वीरांगना, यहूदी बाला है। हिटलर की युद्ध घोषणा पर वह निर्णय करती है—'मैं अब जर्मन भाषा नहीं बोलूँगी। अपनी भाषा हिब्रू

---

१. सोना और खून, तृ० भा०, पृ० २११।
२ वही, पृ० २१४।

सीखूंगी।' धीरे-धीरे यह 'पालमाच' नामक यहूदी क्रान्तिकारियों के दल की नेत्री के रूप में स्वजातीय युवक युवतियों के लिये प्रेरणा-केन्द्र बन जाती है। यह सैनिक वेश धारण कर भूमिगत समस्त गतिविधियों का वीरतापूर्वक सचालन करती है। उसके असीम साहस का परिचय उस समय मिलता है, जब उसके नेतृत्व में सशस्त्र विद्रोह करने वाली एक 'पालमाच' टुकड़ी अकस्मात् एक जगम में शत्रु द्वारा घेर ली जाती है। वह अपने साथियों को इस झाड़ी से उस झाड़ी तक दौड़-दौड़ कर कारतूसों की पेटियाँ देती हुई उत्साहित करती है। एक अन्य अवसर पर, अपना कार्य-स्थल शत्रुओं द्वारा घेर लिये जाने पर वह बड़ी चतुराई से फर्श के पत्थरों को उखड़वा कर सब हथियार और वर्दियाँ जमीन में छिपा देती है। उसी फर्श पर पुन. पत्थर बिछवा कर सैनिकों को सादा वेश में खड़ा करके वह व्यायाम-सम्बन्धी शिक्षा देने लगती है। अन्त में, एक समुद्री जहाज से यहूदी शरणार्थियों को उतारकर सुरक्षापूर्वक निर्धारित स्थान पर ले जाने के प्रयास में, शत्रु सैनिकों से मुठभेड़ हो जाने के कारण, वह लड़ते-लड़ते बलिदान हो जाती है।

आवा एक कोमल कली है। वह खिलकर फूल बनने की बजाय धधकता अगारा बनकर अपने तेज की असीम ज्योति जाति-वीरों के लियेछोड जाती है। एक बार एक युवक को अपलक अपनी ओर निहारते देखकर वह क्रुद्ध होकर पूछती है—क्या विचित्रता देखी मुझ में, खूबसूरती, गोरा रग?" तो युवक उत्तर में कह उठता है—'नहीं, नहीं, देवी, मेरी दृष्टि उस ओर नहीं थी। मैं तेज और दर्प की सजीव मूर्ति एक देश-भक्त नारी के पवित्र दर्शनों से अपने थकित नेत्रों को तृप्त कर रहा था।'[1]

वास्तव में, आवा के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की यह उपयुक्त व्याख्या है।

२. गगा (सोमनाथ)

गगा के चरित्र में भक्ति और त्याग की प्रधानता है। यह देवालय की प्रधान नर्तकी है। रूप और यौवन इसके शरीर के एक एक अग से छलकता है। वह न जाने कहाँ से एक दिन अचानक अपना छकड़ा भर रूप और बिखरता हुआ यौवन का मद लाकर महालय के प्रागण में नृत्य करने लगी। छरहरा शरीर, उज्ज्वल श्याम वर्ण, गहरी काली आँखें, मध्यम कद और सर्प की-सी चपलता। नृत्य में वह इतनी कुशल है कि प्रथम नृत्य ने ही उसे महालय की सभी नर्तकियों की अधिष्ठात्री बना दिया।

---

१. ईदो, पृ० १२६।

गगा मूक प्रणयिनी और आत्मसमर्पिता नारी है। महालय के पीठाधीश गग सर्वज्ञ तरुण ब्रह्मचारी हैं। वे घटों जाग्रत समाधि की अवस्था में निश्चल-अपलक देव-पूजा-निमित्त किया गया इसका नृत्य निहारते हैं और फिर अपनी कुटी के द्वार बन्द कर अगली पूजा-वेला तक उसी मे साधना-रत रहते हैं। अत उनसे प्रणय-निवेदन करना नितान्त अनुपयुक्त जान गगा मौन-भाव से तन-मन मे अपना अनुराग सजोये रहती है। इसकी झलक केवल एक बार, सोमनाथ महालय के पतन के अवसर पर, गगा की महाप्रयाण-वेला में पाठकों को उसके द्वारा गग सर्वज्ञ को कहे गये इन शब्दो मे मिलती है—'आपका स्थान देवता के चरणों मे है तो मेरा आपके चरणो मे। आप देवता के सेवक हैं और मैं आपकी किंकरी। अब मैं इस काल कौन-सी लाज करूँ, बहुत हुआ, जन्म-भर जलती रही, अब मेरी सद्गति का समय सन्निकट है, सो अब मैं इस सुयोग को छोड़ूँगी नही।'[1] और यह सुयोग क्या है—गग सर्वज्ञ से यह याचना कि वे अपने हाथो मे उसे चन्दन-चर्चित कर जौहर-चिता पर बैठा दें।

गौण पात्र

१. मन्थरा (वयं रक्षाम)

इसका चरित्र उपन्यास मे परम्परानुसार है। यह कुटिल-स्वभावा, ईर्ष्यालु एवं मुँहलगी दासी है। लेखक के अनुसार यह बुद्धिमती है। मानवों की कुल-मर्यादा, पुरुष-प्रधानता तथा स्त्रीदासता से इसे घृणा है। अपनी इन प्रवृत्तियों का उपयोग यह शुभ मार्ग के अनुसरण मे न करके मानव-कुल के विघटन और विखण्डन के लिये करती है।

२. रोहिणी (वैशाली की नगरवधू)

यह उपन्यास मे केवल एक स्थल पर उपस्थित होकर भी अपने व्यक्तित्व की छाप अंकित कर जाती है। रोहिणी वैशाली के वीर योद्धा ज्ञातिपुत्रसिंह की गान्धारी पत्नी है। यह अपने सौन्दर्य के कारण 'वैशाली की यक्षिणी' के नाम से विख्यात है। यह दिव्यांगना है। इसकी रूप-छटा अद्वितीय है। किन्तु इसका हृदय रूप, वैभव या सम्भ्रान्त कुल के दर्प से रहित है। यह ऊँच-नीच का भेद-भाव अनुचित मानती है। अम्बपाली की सेविका भद्रलेखा को यह दासी की अपेक्षा सखी के रूप मे सम्बोधित करना श्रेष्ठ समझती है। यह एक जाति, एक रंग, एक भाषा और सम्भवतः एक राष्ट्र की समर्थिका है। इसे दास-दासी प्रथा

---

१. सोमनाथ, पृ० १२६।

में घोर घृणा है। 'गान्धारगण के दिव्य ठाट-बाट के साथ ही दासों, चाण्डालों और कर्मकारों के टूटे-फूटे झोंपड़े और उनके घृणास्पद, उच्छिष्ट आहार तथा उनके ऊपर पशुओं की भाँति आर्य नागरिकों का शासन देखकर उसका हृदय दुःख से भर जाता है।'[1]

रोहिणी नारी-स्वत्व की रक्षा के प्रति जागरूक है। सम्राटों द्वारा मनचाहे ढंग से अपने अन्त पुरों को सुन्दरियों से भर लेना इसे असह्य है। यह राजनीति और समाजनीति की प्रकाण्ड ज्ञाता है। इसीलिये अम्बपाली की विलास गोष्ठी में अपनी सूक्ष्म प्रतिभा द्वारा विभिन्न समस्याओं की ओर वह सब का ध्यान आकृष्ट कर लेती है।

३ कैकसी (वयं रक्षामः)

यह दैत्य-सेनापति सुमाली की कन्या और रावण की माँ है। यह पितृ भक्त पुत्री है। यह पिता के आदेशानुसार विश्रवा मुनि की अर्धांगिनी बनती है। अपनी कोख से रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण और सूर्पणखा को जन्म देती है।

कैकसी प्रेरणामयी माँ है। यही रावण को अपने प्रेरक वचनों द्वारा रक्ष-संस्कृति के पोषण और रक्षण-हेतु उत्साहित करती है। उसमें विश्व-विजय की अदम्य अभिलाषा जगाने में इसी का प्रमुख हाथ है।

४ पार्वती (लाल पानी)

पार्वती कच्छ के वालाजी पुरुषोत्तम की पुत्री तथा सरदार राम जी की पुत्रवधू है। यह ममता और स्वामिभक्ति की मूर्ति है। अपनी जन्मभूमि के प्रति इसे गहरा अनुराग है। कच्छ के विस्थापित राजकुमार खगार जी और सायब जी को स्थान-स्थान पर भटकते देख यह ममत्व से द्रवित हो जाती है।

पार्वती व्यवहारकुशल तथा सुघड़ स्त्री है। खगार जी और सायब जी को अपने गाँव में आया देख यह तुरन्त अपने ससुर द्वारा उनके भोजन, आवास की उपयुक्त व्यवस्था कराती है। इसके मृदुल व्यवहार से प्रभावित होकर खगार जी इसे धर्म बहिन' मानकर एक मोहर प्रदान करता है। इस पर इसका उत्तर सच्ची बहिन के अनुरूप है—'हे वीर! मेरे लिये यह लाल मोहर के समान है। जब आप कच्छ के सिंहासन पर विराजमान होंगे, तब आपके राजतिलक के अवसर पर मैं इसी मोहर को आप पर न्योछावर करूँगी।' अन्त में उसकी

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० १२५।

मनोकामना पूर्ण होती है और स्मृति-स्वरूप खगार जी से आठ गाँव पाती है।

५ गोमती (शुभदा तथा सोना और खून-३)

यह सेठ भद्दूशाह की पत्नी है। पातिव्रत्य की आभा उसके मुख पर जगमगाती है। ममता एवं करुणा की यह सजीव मूर्ति है। डाकुओं द्वारा इसके पति की हत्या और लोभी देवर द्वारा दिखाई गई घृणित उपेक्षा की प्रतिक्रिया-स्वरूप इसका व्यक्तित्व अकस्मात् उदात्त रूप ग्रहण कर लेता है। अन्त में, यह अपने परिवार के अहेतुक शुभचिन्तक सेंट जान नामक सन्त को आत्मसमर्पण कर देती है और आजीवन उसी के साथ रह कर सेवा-व्रत पालन करने का अटल निश्चय कर लेती है।

६ नन्दकुमारी (लाल पानी)

झालावाड़ दरबार के सामन्त ठाकुर जालिमसिंह की पुत्री नन्दकुमारी का चरित्र प्रेम और कर्त्तव्य का पुनीत सगम-स्थल है। यह रूपवती बाला है। कच्छ का विस्थापित राजकुमार खगार जी सयोगवश उसके पिता द्वारा घर लाया जाता है। वह इसके दिव्य सौन्दर्य को देखकर मुग्ध हो उठता है। 'दीपक के मन्द प्रकाश में यह परम सुन्दरी बाला ऐसी प्रतीत होती है, जैसे स्वर्ग की कोई दिव्यरूपिणी अप्सरा हो। उसका अज्ञात यौवन से मुग्ध स्निग्ध उज्ज्वल चन्द्र बिम्ब-सा मुखमण्डल, सुचिक्कण केशराशि कोमल अलसी-पुष्प के समान नासिका, प्रवाल की आभा वाले अधरोष्ठ, कम्बु-ग्रीवा और कमान-सी भौंहों के नीचे मीन युगल से नयन तथा नवीन यौवन का उकसता सा वक्ष स्थल अपूर्व शोभा विस्तार करता है। खगार जी जैसे सुन्दर किशोर का प्रणय प्राप्त कर अपने को सौभाग्यवती अनुभव करना इसके लिये स्वाभाविक है।

नन्दकुमारी कर्त्तव्यपरायण भी है। मधुरात्रि के प्रारम्भिक क्षणों में खगार जी को परिस्थितिवश प्रवास करना पड़ता है। यह अपने प्रणय को उनके मार्ग में बाधा नहीं बनने देती। अन्त में खगार जी द्वारा कच्छ पर पुनर्विजयी होने के पश्चात् यह प्रिय-मिलन-सुख का पूर्ण लाभ प्राप्त करती है।

७. समरू बेगम (सोना और खून, प्र० भा०)

समरू बेगम दूरदर्शिनी, व्यवहारकुशल नारी है। पजाब के चौधरी प्राणनाथ इससे फिरंगियों के विरुद्ध सहायता माँगते हैं और होल्कर का समर्थन करने को कहते हैं। यह उनसे पूरी सहमति प्रकट करती हुई भी जागरूकता से सभी सभावनाओं पर विचार कर लेना चाहती है। इसकी पहली शंका है—'यदि

श्रीमन्त (राव सिंधिया) का पासा उल्टा पड़ा तो मेरी रक्षा कैसे होगी ? चौधरी प्राणनाथ द्वारा विदेशी लुटेरों और हत्यारों की तुलना में मराठों की देश भक्ति और श्रेष्ठता का विश्वास दिला दिये जाने पर यह न केवल स्वयं सहयोग करने को उद्यत होती है अपितु सहारनपुर के नवाब बन्नू खाँ और नवाब गुलाम मुहम्मद को भी फिरंगियों के विरुद्ध होल्कर का साथ देने के लिए सहमत करने का वचन देती है। इसके अतिरिक्त वह चौधरी प्राणनाथ को परामर्श देती है कि यदि आप सहारनपुर आ रहे हैं तो इस बात का ध्यान रखिये कि वहाँ के सभी गूजर सरदार श्रीमन्त का साथ दें, साथ ही कहती है—'एक बात और, जब तक वक्त न आए, सब बातें पोशीदा रहे तथा श्रीमन्त इस बात का ध्यान रखें कि मेरे इलाके में मराठे कुछ नुकसान न करने पाएँ।' एकाकिनी विधवा होते हुए भी वह अपनी जागीर की सारी व्यवस्था पूरी दक्षता से करती है।

८ गुर्जरकुमारी (लाल पानी)

यह गुजरात के बीहड़ वन-प्रदेश की भील कन्या है। इसका रूप और दर्प अमित है। यह एक अल्हड़ बछेड़ी की भाँति कानन में निर्द्वन्द्व घूमती हुई साबरमती के विमल जल में किलोल किया करती है। गुजरात का तत्कालीन सुलतान अहमदशाह अपने चचा फ़िरोज़शाह के विद्रोह का दमन कर, भड़ोच से लौट रहा होता है, तब मार्ग में विजन वन में इस विवस्त्रा रूपसी को निर्द्वन्द्व जल-क्रीड़ा करते देख विमोहित हो जाता है। सुलतान के अनुनय पर भिल्लराज उसे अपनी कन्या देना स्वीकार कर लेता है। किन्तु 'स्वच्छन्द विचरण करने वाली' मानवती गुर्जरकुमारी सुलतान से कहती है—'मैं अपने पिता के गाँव को छोड़कर पाटन नहीं जाऊँगी। तुम्हें रहना है तो यहीं मेरे साथ रहो।' और काम मुग्ध तरुण सुलतान अहमदशाह उस जंगली बिल्ली की शर्तें स्वीकार कर तत्काल वहीं नगर बसाने की आज्ञा दे देता है। यही नगर अहमदाबाद के नाम से गुजरात की राजधानी का गौरव प्राप्त करता है।

गुर्जरकुमारी का चरित्र शक्ति पर रूप की विजय का निदर्शन है।

६ महारानी रासमणि (शुभदा तथा सोना और खून, २, ३)

रासमणि कहने को महारानी है। इसके श्वसुर अंग्रेजों की सेवा के फलस्वरूप 'महाराजा पद' और अतुल सम्पत्ति के अधिकारी बन गये थे। जाति से कैवर्त होने के कारण बंगाल के सम्भ्रान्त हिन्दू समाज में इसका स्थान बहुत तुच्छ है। लाखों रुपये के व्यय से यह एक भव्य मन्दिर बनवाती है। किन्तु उसमें किसी कुलीन विद्वान् को पुजारी रखने की इसकी उत्कट अभिलाषा केवल

इसलिये पूर्ण नहीं हो पाती कि समाज तथा धर्म के तथाकथित उत्तरदायी लोग इससे धर्म का पतन मानते हैं।

महारानी रासमणि धर्मपरायण सेवाव्रती और विनम्र भारतीय नारी है। इसके मन में काशी जाकर विश्वनाथ दर्शन की प्रबल इच्छा है। समाज-मर्यादा वश यह उत्तरपाड़ा गाँव में ही मन्दिर बनवा कर देवता की प्रतिष्ठा करवाती है। मूर्ति प्रतिष्ठा से पूर्व यह कठोर तपस्या करती है। यह अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति धर्म, जाति तथा विद्वान् ब्राह्मणों की सेवा में लगा देना अपना कर्त्तव्य मानती है। यह आयु में अपने से छोटी शुभदा के सम्मुख भी सदा शालीनता एवं मृदुता का व्यवहार करती है।

शुभदा के शब्दों में 'रासमणि एक दिव्यरूपिणी स्त्री है। तुम जैसी साध्वी की जहाँ भी चरण-रज पड़ेगी, वह भूमि एक योजन तक पवित्र हो जायगी।'[1]

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन के पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों में महत्त्वपूर्ण नारी-पात्र उनचास हैं। इन पात्रों को इनकी प्रमुख विशेषताओं की दृष्टि से निम्नलिखित नौ वर्गों में रखा गया है—

१ असाधारण नारियाँ, २ स्वच्छन्द, विलासिनी नारियाँ, ३ कूटनीतिक नारियाँ, ४ पीड़ित नारियाँ, ५. स्वाभिमानिनी नारियाँ, ६. सती नारियाँ, ७ योद्धा नारियाँ, ८ मानवतावादिनी नारियाँ, ९ भक्ति, त्यागमयी नारियाँ।

इस वर्ग-विभाजन में कहीं-कहीं विरोधाभास की प्रतीति सम्भव है, क्योंकि प्रत्येक वर्ग के नारी-पात्रों में अपने प्रमुख गुण के साथ अन्य गुण साधारणतया उपलब्ध हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, असाधारण नारियों का वर्ग यहाँ विचारणीय है। इस वर्ग की सभी नारियों में चरित्र की विशेष दृढ़ता है। इनके जीवन में उतार-चढ़ाव अधिक आते हैं। चरित्र की असाधारणता इन्हें अडिग और साहसी बनाये रखती है। इनका अनुपम सौन्दर्य, ऐश्वर्य, रहस्यात्मक गतिविधियाँ, उत्थान या पतन इसका कारण हैं। इस वर्ग में सात नारियाँ हैं—चन्द्रभद्रा, मातंगी, कुंडनी, चौला, म० एलिजाबेथ, शोभना और अम्बपाली।

चन्द्रभद्रा के जीवन में सोमप्रभ की प्रेमिका से लेकर विडूडभ की परिणीता रूप में आने तक अनेक उतार चढ़ाव आते हैं। इसलिये यह असाधारण नारी पात्र

———

१ शुभदा, पृ० २११।

है। साथ ही यह नारी विशेष आस्थामयी, विवेकशील तथा मर्यादामयी है। अन्य नारी, मातंगी, अम्बपाली तथा सोमप्रभ की जननी होकर भी आजीवन अनेक उतार-चढ़ाव देखती है। इसका चरित्र असाधारण तो है किन्तु यह अभिशप्त तथा माँ-रूप में प्रवंचिता है। रहस्यमयी विषकन्या के रूप में कुंडनी असाधारण है, फिर भी नीतिनिपुणता, व्यवहार-कुशलता, निर्भीकता आदि उसमें अतिरिक्त गुण हैं। चौला का जीवन सोमनाथ महालय के निर्माल्य के रूप में भेंट से लेकर पाटन में भीमदेव के पास पहुँचने तक असाधारण है। निपुण नर्तकी होना और युद्धकुशलता उसमें अतिरिक्त गुण हैं। महारानी एलिजाबेथ नीति-निपुण और उदार है। इसके साथ उसमें नारी-सुलभ ईर्ष्या का अतिरिक्त गुण है।

असाधारण पात्रों में शोभना प्रेम, सेवा, त्याग, करुणा एवं वीरता की सजीव मूर्ति है। उसमें राष्ट्रीयता की भावना का अतिरिक्त गुण है। बालविधवा होकर भी वह ठाट-बाट में रहती है। जाति, धर्म, समाज के भेद-भावों से वह ऊपर है। प्रेमी के इस्लाम स्वीकार कर लेने पर भी वह उसी पर मुग्ध है। परन्तु कर्त्तव्य का प्रश्न आ पड़ने पर उसका वध तक कर डालती है। यह वीरांगना लेखक द्वारा उदात्त नारी-रूप में चित्रित हुई है। इसी प्रकार अम्ब-पाली प्रारम्भ में पुरुषमात्र के प्रति प्रतिशोध-भावना की ज्वाला से तप्त, प्रबुद्ध विद्रोहिणी और उदात्त-चरित्र युवती के रूप में है। बाद में, बिम्बसार और उदयन को शरीर समर्पण कर नारी-सुलभ विवशता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अन्त में सिद्ध होता है कि उसे अपने विगत पर ग्लानि है और वह उसका प्रायश्चित्त करती है। वह विलक्षण नारी है। उसका व्यक्तित्व बहुत ऊँचा उठ जाता है।

स्वच्छन्द, विलासिनी वर्ग की नारियों में असाधारण सुन्दरता, साहसिकता आदि गुण पाये जाते हैं। इनमें कामुकता तथा स्वच्छन्दता की विशेष मात्रा है। इस वर्ग में दैत्यबाला, शूर्पणखा, मेरी स्टुअर्ट, जहाँआरा प्रमुख पात्र हैं।

दैत्यबाला रूप और यौवन लुटाने वाली उच्छृंखल काम-प्रतिमा नजर आती है। वह शक्ति की सजीव मूर्ति भी है। बलि-यज्ञ में हुत होने से बचा रावण तक उसके साहस को स्मरण कर रोमांचित हो उठता है। इसी प्रकार, शूर्पणखा स्वच्छन्द विलासिनी होने पर भी विदुषी, तर्कशील तथा विलक्षण रमणी है। मेरी स्टुअर्ट रूप-लावण्यवती है। उसकी उन्मुक्त विलास-प्रवृत्ति उसके जीवन को विषादमय बना देती है। जहाँआरा के जीवन के दो पक्ष हैं। एक, वह उन्मुक्त स्वच्छन्द विलासिनी है। दूसरे, उसकी दिनचर्या कुटिल राजनीति के षड्यन्त्रों

से भरपूर हैं।

तीसरे वर्ग में कूटनीतिक नारियाँ हैं। ये राजनीति में सक्रिय भाग लेकर अपने व्यक्तित्व को उभारती हैं। इनकी दिनचर्या दूसरे वर्गों की नारियों में सर्वथा भिन्न है। ये स्वार्थ सिद्धि के लिए चालें तक चलती रहती हैं। देखने में ये सुन्दर, साधन सम्पन्न तथा मधुर हैं, किन्तु स्वार्थ-साधन में सदा तत्पर हैं। इनमें मादाम लूपेंस्कू तथा केन दो नारियाँ प्रमुख हैं।

मादाम लूपेंस्कू बहुत सीधी-सादी तथा एकान्तप्रिय स्त्री है, किन्तु वह स्वदेश छोड़कर विदेशों में कूटनीतिक षड्यन्त्रों द्वारा अपना मन्तव्य सिद्ध करने का पूरा यत्न करती है। इसी प्रकार, जापान की अनिन्द्य सुन्दरी केन बुद्धिमती जासूस है। वह द्वितीय विश्वयुद्ध की भीषण विस्फोटक गति-विधियों में निर्णायक सहयोग देती है।

पीड़ित वर्ग में कुदसिया बेगम, कमलावती, देवलदेवी, मल्लिका, नन्दिनी, सुनयना, मंजुघोषा और कु० विविमाना ये आठ नारी-पात्र हैं। ये व्यक्तिगत रूप में पुरुष समाज से पीड़ित हैं। इनमें कुछ नारियाँ अपनी काम-बुभुक्षा से भी पीड़ित हुई हैं। कुदसिया बेगम पति द्वारा अपने चरित्र पर अविश्वास किये जाने पर पीड़ित होती है। कमलावती महत्त्वाकांक्षिणी है। वह दुर्व्यसन-ग्रस्त पति से सन्तुष्ट न होकर कर्त्तव्य-च्युत होने को विवश है। वह स्वयं विषम परिस्थितियों का शिकार बनती है और अपनी पुत्री देवलदेवी को उसी आग में झोंकना चाहती है। सुनयना, मंजुघोषा, कु० विविमाना इस वर्ग की अन्य नारियाँ हैं। इनका भी कुछ ऐसा ही हाल है।

अपने कर्त्तव्य और आत्म सम्मान के प्रति अधिक सजग नारियाँ, स्वाभिमानिनी नारियों के वर्ग में हैं। इस वर्ग की नारियों में अपने वर्गगत विशेष गुण के साथ अन्य गुण पाये जाते हैं। इच्छनीकुमारी, संयोगिता, बेगम शाइस्ताखाँ, सीता, जीजाबाई, सुभद्रा जैसी महिमामयी नारियाँ इस वर्ग में हैं।

इच्छनीकुमारी असाधारण रूपवती है। वह कोमलता तथा कठोरता, अनुराग एवं मर्यादा, लावण्य और शौर्य जैसे विरोधी तत्त्वों के सामंजस्य की प्रतिमा है। लीलावती स्वाभिमान के साथ पतिप्रेम को सर्वस्व समझने वाली वीरांगना है। नायिकादेवी में सहृदयता, विवेक तथा उदारता के गुण हैं। कलिंगसेना नारी-अधिकारों के प्रति अधिक सचेत है। बेगम शाइस्ताखाँ नारी-सर्वस्व, अस्मत, के लुट जाने के कारण सहर्ष प्राण त्याग देती है। कैकेयी पतिपरायणा आदर्श नारी है। किन्तु सौतेली माँ की आत्मा उसमें स्वाभिमान जगा देती है। वह अपने पुत्र भरत को राजतिलक तथा सपत्नी कौशल्या के पुत्र राम को वनवास दिलाने को बाध्य हो जाती है। सीता अनन्य सुन्दरी, पतिव्रता और त्याग मूर्ति

है। वह राजमहलों को छोड़ पति के साथ सहर्ष वनगमन करती है। शुभदा जातीय व्यामोह से सर्वथा मुक्त, मर्यादाशील नारी है। अपने सद्‌गुणों से वह नये भारत के आत्मविश्वास की सूचक सिद्ध होती है।

सती नारियाँ अनुपम गुण-युक्त हैं। वे युद्ध तक में पति का साथ देती हुई सानन्द चितारोहण करती हैं। मायावती, मन्दोदरी, सुलोचना ऐसी सती नारियाँ हैं।

योद्धा नारियों के वर्ग में मगला तथा लक्ष्मीबाई हैं। ये वीरांगनाएँ जीवन-मोह-मुक्त तथा कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर हैं। इनके लिए जीवन क्रीडा-मात्र है। ये हथेली पर प्राण रख देश-धर्म के लिए आत्माहुति दे देती हैं।

मानवतावादिनी नारियों में सम्राज्ञी नागाको तथा फ्लोरेंस नाइटिंगेल हैं। मानव-मात्र की सेवा में सर्वस्व समर्पण इनका लक्ष्य है।

अन्तिम वर्ग भक्ति, त्यागमयी नारियों का है। इसमें गंगा तथा आचा हैं। इनका जीवन भक्ति तथा त्यागमय है। गंगा मूक प्रणयिनी भी है। वह आजीवन अन्तर्वेदना के ताप में उज्ज्वल हो जाती है। आचा देशभक्त यहूदी वीरबाला है। इसे अपनी भाषा और धर्म से अनन्य प्रेम है। क्रान्तिकारियों का सफल नेतृत्व करती हुई यह आत्म-बलिदान करके अपने तेज की असीम ज्योति जाति-वीरों के लिये छोड़ जाती है।

पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों के उल्लेखनीय गौणपात्र सुन्दर, सुकुमार एवं महिमामण्डित हैं। इनमें केवल मन्थरा कुरूप तथा कुटिल है। ईर्ष्या तथा विघटन उसकी प्रवृत्ति है।

शेष गौण पात्रों में रोहिणी, कैकसी आदि नौ नारियाँ हैं। ये पात्र उपन्यासों में कुछ ही काल के लिये उपस्थित होकर अपने चरित्र की छाप पाठकों के मन पर छोड़ जाते हैं। इसीलिये ये उल्लेखनीय हो गए हैं। उदाहरणार्थ, रोहिणी सामन्ती वातावरण की उपज होकर भी जातीय भेद-भाव से ऊपर, दास-दासी-प्रथा के विरुद्ध, एवं राष्ट्र की समर्थिका है। अम्बपाली की विलास-गोष्ठी में वह अपनी सूक्ष्म प्रतिभा से सबका ध्यान आकृष्ट कर लेती है। अनुपम सौन्दर्य के कारण वह 'वैशाली की यक्षिणी' कहलाती है। कैकसी प्रेरणा-दायिनी माँ तथा पितृभक्त पुत्री का आदर्श है। वह रावण की माता है। वह रावण को रक्ष-संस्कृति के संरक्षण की प्रेरणा देती है। उसे प्रबुद्ध वीर और अनुपम योद्धा बनाने में इसका वरद हाथ है। पार्वती ममता तथा स्वाभिमान की प्रतिमा है। इसका स्वभाव स्निग्ध और व्यवहार मृदुल है। इन्हीं गुणों से कच्छ के विस्मापित राजकुमार खंगार जो इसे 'धर्मबहिन' बनाकर अपने राजतिलक के प्रथम रपर

आठ गाँवों की जागीर प्रदान करते हैं। गोमती का व्यक्तित्व साधु-स्वभाव तथा धर्मभीरुता के कारण उभरता है। पति के मारे जाने पर लोभी देवर की उपेक्षा की प्रतिक्रिया स्वरूप सेंट जान की शरण में पहुँचकर यह ममता और करुणामूर्ति बन जाती है। नन्दकुमारी सुन्दरी है। कच्छ के विस्थापित राजकुमार खंगारजी इस पर मुग्ध होते हैं। यह कर्त्तव्य-परायण और प्रणयमूर्ति बन जाती है। समरू बेगम विधवा है। यह दूरदर्शिनी और व्यवहार-कुशल है। यह पर्दानशीन नारी सरधना जागीर की व्यवस्था पूरी दक्षता से करती है। गुर्जरकुमारी भीलकन्या है। यह गुजरात के सुलतान महमदशाह को आकृष्ट कर लेती है। सुलतान पाटन की अपेक्षा, गुजरात की नई राजधानी, महमदाबाद को इसी के प्रेम के फलस्वरूप बनवाता है। महारानी रासमणि केवल जाति की स्त्री है। रूढ़िवादिता का शिकार होती हुई भी यह धर्मपरायणता का आदर्श है।

आचार्य चतुरसेन की प्रवृत्ति आरम्भ से ही महिमामय नारी-पात्रों के चित्रण द्वारा नारी-महिमा को व्यक्त करने की रही है। आदिकाल से आधुनिक काल तक अतीत के गर्भ में छिपे असाधारण नारी-पात्रों को वे ढूंढ-ढूंढकर पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। इस उद्देश्य में वे सफल हुए हैं। महारानी सीता, अम्बपाली, शोभना, संयोगिता, जीजाबाई, बेगम शाइस्ताखाँ, लक्ष्मीबाई तथा शोभना आदि के चरित्र इस तथ्य के प्रमाण हैं।

षष्ठ अध्याय

आचार्य चतुरसेन के सामाजिक उपन्यासों के प्रमुख नारी-पात्रों का चरित्र-विश्लेषण

पात्र-वर्गीकरण

आचार्य चतुरसेन के बत्तीस में से उन्नीस सामाजिक उपन्यास हैं। इन सामाजिक उपन्यासों में पचपन नारी-पात्र प्रमुख हैं और छः उल्लेखनीय गौण पात्र हैं। लेखक ने समाज में वर्तमान नारी-समस्याओं को इन पात्रों के माध्यम से उठाया है। इन समस्याओं में विवाह-सम्बन्धी, प्रेम और काम-सम्बन्धी, आर्थिक स्वाधीनता एवं अन्य अधिकार-सम्बन्धी तथा कुछ स्फुट समस्याएँ हैं। समस्याओं के अनुसार विभिन्न प्रकार की नारियों का चित्रित होना स्वाभाविक है। आधुनिक काल में हमारे समाज में जागरूक नारियाँ हैं। यहाँ परम्परावादिनी एवं प्रवंचिताओं की भी कमी नहीं है। अतएव इन नारियों को विभिन्न उपवर्गों में बाँटना आवश्यक है। ये उपवर्ग दस हैं। जैसे—१ प्रवंचिता नारियाँ, २. विधवा नारियाँ, ३ वेश्याएँ, ४. परम्परावादिनी नारियाँ, ५ कर्मठ नारियाँ, ६ स्वाभिमानिनी नारियाँ, ७. प्रगतिशील, समाज सुधारक नारियाँ, ८. विवेकमयी नारियाँ, ९. आधुनिकाएँ तथा १०. स्वच्छन्द नारियाँ।

(१) पुरुष समाज से, व्यक्तिगत रूप में पीड़ित नारियाँ प्रवंचित नारियों के उपवर्ग में हैं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं—

क्रमसंख्या	पात्र	उपन्यास
१.	गुलिया	अपराधी
२.	चन्द्रमहल	गोली
३.	कुँवरी	"
४.	ज़ीनत	धर्मपुत्र

क्रम	पात्र	उपन्यास
५.	भगवती की बहू	हृदय की प्यास
६.	शशिकला	हृदय की परख
७	अनाम नारी	नरमेघ
८	पद्मा	बगुला के पंख
९	सरला	हृदय की परख

(२) सामाजिक व्यवस्था के कारण वैधव्य दु:ख भोगने वाली नारियाँ दूसरे वर्ग में हैं—

१.	नारायणी	बहते आँसू
२.	भगवती	"
३.	मालती	"
४.	सरला	आत्मदाह
५.	केशव की माँ	खून और खून
६.	सुशीला	बहते आँसू
७.	कुमुद	"

(३) वेश्याएँ अपने घृणित व्यवसाय और सामाजिक अनैतिकता की प्रतीक होने के बावजूद पाठकों के सामने सहृदय और सौम्य रूप में आती हैं। ये हैं—

१.	केसर	दो किनारे (दादा भाई)
२.	जोहरा	मोती
३.	चम्पा	गोली
४.	बी हमीदन	खून और खून

(४) चौथे उपवर्ग में परम्पराशील, मर्यादावादिनी नारियाँ हैं—

१.	लेडी शादीलाल	नरमेघ
२.	नीलमणि की सास	नीलमणि
३.	नीलमणि की माँ	"
४.	अरुणा	धर्मपुत्र
५.	सुधीन्द्र की माँ	आत्मदाह
६	सुखदा	हृदय की प्यास
७.	शारदा	हृदय की परख

(५) पाँचवें उपवर्ग में कर्मठ नारियाँ हैं। ये जीवन-संघर्ष में जी-जान से जूझती हुई कर्त्तव्यपरायण रहती हैं—

१.	मालती	दो किनारे (दो सौ की बीवी)
२.	विमला देवी	अदल बदल

(६) स्वाभिमानिनी नारियाँ छठे उपवर्ग में हैं। ये राजपूती परम्परा की देन कही जा सकती हैं—

क्रम	पात्र	उपन्यास
१.	रानी चन्द्र कुँवरि	अपराधी

(७) सातवें उपवर्ग में प्रगतिशील तथा समाज-सुधारक नारियों का समावेश है—

१.	राधा	अपराजिता
२.	रुक्मिणी	"
३.	नीलम	मोती
४.	रमाबाई	अपराधी
५.	राज	अपराजिता

(८) आठवें उपवर्ग में विवेकमयी नारियाँ हैं। ये जीवन की समस्याओं में उलझकर भी अपने विवेक द्वारा आदर्श नारियाँ सिद्ध होती हैं—

१.	लीलावती	पत्थर युग के दो बुत
२.	चन्द्रकिरण	नरमेध
३.	माया	आत्मदाह
४.	हुस्नबानू	धर्मपुत्र
५.	सुधा	आत्मदाह

(९) इस उपवर्ग में आधुनिक नारियाँ हैं। ये तथाकथित सभ्यता एवं विकास की चकाचौंध में कर्तव्य-भ्रष्ट हो जाती हैं। लेखक ने अन्त में इन्हें सद्गृहिणियाँ दिखाकर इनका जीवन सत्पथ की ओर प्रवृत्त होता दिखाया है। विज्ञान तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में नारी सफलता का आदर्श इस उपवर्ग की नारियों में द्रष्टव्य है। ये हैं—

१.	मालती देवी	बदल बदल
२.	सुधा	दो किनारे (दादा भाई)
३.	प्रमिला रानी	उदयास्त
४.	रेणुकादेवी	"
५.	पद्मा	"
६.	शारदा	बगुला के पंख
७.	लिली	सप्रास
८.	प्रतिभा	"
९.	माया	धर्मपुत्र

क्रम	पात्र	उपन्यास
१०.	रतन	खून और खून
११.	आभा	आभा
१२.	नीलमणि	नीलमणि

(१०) अन्तिम उपवर्ग स्वच्छन्द नारियों का है। ये उच्छृंखल नारियाँ अन्त में सत्पथ की ओर प्रवृत्त दिखाई गई हैं। ये हैं—

१.	मायादेवी	अदल बदल
२.	नाया	पत्थर युग में दो बुत
३.	रेखा	,,

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित छः नारीपात्र गौण हैं। ये अपनी विशेषताओं के कारण उल्लेखनीय हो गये हैं—

१.	भगवती (फूहड)	आत्मदाह
२.	कुमुदिनी (मुग्धा)	नीलमणि
३.	मणि (कर्मठ कन्या)	,,
४.	सरला (स्वाभिमानिनी)	उदयास्त
५.	केसर (स्वामिभक्त)	गोली
६.	अन्नपूर्णा (फूहड)	अपराजिता

आगे इन पात्रों का चरित्र-विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रवंचित नारियाँ

१. गुनिया (अपराधी)

गुनिया धानीराम वैश्य परिवार की बहू है। वह बहुत छोटी उम्र में विवाहित होकर उस घर में आती है। सास शीघ्र ही परलोक सिधार जाती है, ससुर क्षयरोग का रोगी हो जाता है। पति निखट्टू और व्यसनी है। यहाँ तक कि वह लुच्चे, बदमाश यारों के लिए पत्नी तक पहुँचने का मार्ग सुलभ कर देता है, किन्तु सयोगवश गुनिया 'सुरक्षित' रह जाती है। इस प्रकार गुनिया का जीवन-विकास अत्यन्त विषम परिस्थितियों में होता है। फिर भी वह कर्मठ और सुघड़ है। पति के घर से दूर अल्प वेतन पर मजदूरी करते समय वह लोगों का सूत कात कर या अनाज पीसकर घर का निर्वाह करती है। पति के चोरी के मामले में फँसकर, घर से भाग जाने पर, वह और भी कठोर परिश्रम करके बूढ़े ससुर और नन्ही पुत्री का पालन करती है।

गुनिया मर्यादा की सजीव मूर्ति है। विकट परिस्थितियों में रहती हुई वह अनुचित ढंग से न तो अर्थोपार्जन की समर्थक बनती है और न ही किसी प्रकार

अपने परिवार पर आँच आने देना चाहती है। उसका पति चोरी का बहुत-सा माल घर पर ले आता है। वह स्पष्टरूप से उसकी प्रताडना करती है। किन्तु पति के हिंसक स्वभाव को देख उसे चुप रहना पड़ता है। पुलिस सन्देह का सूत्र प्राप्त कर, उनके घर की तलाशी लेने पहुँचती है। गुलिया साफ झूठ बोलकर पति की आन को बचाने का प्रयास करती है। वह मुहल्ले की स्त्रियो के बार-बार पूछने पर यही कहती है—'मां जी, वे आये ही कहां हैं ? कई महीने हो गए, न चिट्ठी, न पतरी।' किन्तु ससुर को पुलिस द्वारा घोर यातना दिये जाने पर उसका कोमल स्त्री हृदय चीत्कार कर उठता है। वह पुलिस को सब कुछ बता देती है।

उपन्यास के अन्तिम अश मे गुलिया के चरित्र का दूसरा पक्ष प्रकट होता है। वह युवा पुत्री के साथ अनैतिकता के व्यवसाय मे ग्रस्त दिखाई देती है। वर्षों की लोक-प्रतारणा तथा उपेक्षित जीवन की विभीषिकाएँ धकेलते हुए उसे इस कुपथ पर ला फेंकती हैं। परिस्थितियो की विषम तरगें उसके पति को पुन उसके द्वार पर ला पटकती हैं। वह औपचारिक मर्यादा-पालन के अतिरिक्त, उसकी कोई सेवा नही कर पाती। मां पुत्री को कुपथ पर देखकर उसका पति घर से जाने लगता है। वह एक बार भी उसे रोकने का आग्रह नही करती।

गुलिया पुरुष-समाज के कुचक्रो मे फँसी सामान्य नारी है।

२. चन्द्रमहल (गोली)

महाराजा की नई रानी चन्द्रमहल नारी-जीवन की कुत्सा का जीवन्त रूप है। विलास उसका धर्म है। दास-दासियो पर अमानुषिक अत्याचार करना उसका कर्म है। राजसी ऐश्वर्य का अधिकाधिक उपभोग उसका लक्ष्य है। वह दुष्ट गगाराम के षड्यन्त्र-पूर्ण प्रेम-जाल मे उलझ जाती है। उसके इशारो पर वह असत्य वादिनी, क्रूर दानवी का रूप धारण कर लेती है। नारी होकर भी वह नारी के प्रति निर्दय बन जाती है। राज्य का उत्तराधिकार हथियाने के लिये वह कुछ समय मायके रहकर गगा राम के पुत्र को झूठ-मूठ अपना पुत्र घोषित कर राजमहल मे लौट आती है। वहाँ वह किसुन और चम्पा पर भीषण अत्याचार कर उनकी बडी पुत्री को गगाराम की विलासभोग्या बनाने का प्रयत्न करती है। उसे शीघ्र ही उसके कुकृत्यो का फल मिलता है। वह दर-दर की ठोकरें खाती हुई अन्तत दिल्ली में चम्पा के सौजन्य से मुक्तिलाभ करती है। उसके चरित्र की यह कुत्सा पुरुष द्वारा स्वार्थपूर्ति की प्रक्रिया का प्रतिरूप है। अपने दुष्कर्म का निराकरण वह अन्त मे चम्पा के सम्मुख पश्चात्ताप के आँसू

वहा कर देती है।

३. कुंवरी (गोली)

ठाकुर-कन्या कुंवरी बाल्यकाल से मितभाषिणी और एकान्तप्रिय है। वह अपने सौभाग्योदय के दिन से ही दुर्भाग्य अन्धकार मे ऐसी खो जाती है कि जीवन पर्यन्त फिर नही उभर पाती। यह पवित्र, मर्यादाशील और साध्वी नारी है। पुरुष की स्वार्थलिप्सा उसे सदा के लिए मूक वेदना की ज्वाला मे जलने पर बाध्य कर देती है। महाराजा उससे वाग्दान के लिए आकर गोली चम्पा के रूप-जाल मे उलझ जाता है। इस पर वह अपनी 'कमल-सी बडी-बडी आँखें उठा कर चम्पा को केवल देखती ही रह जाती है, जैसे होठो ही होठो म कुछ कहती है। सुहागरात के दिन उसका राजा-पति, उसकी उपेक्षा कर गोली चम्पा को उसकी राज-शय्या प्रदान करता है। वह सूनी दृष्टि, सूखे होठ और पीला मुख लिए मन ही मन रो कर रह जाती है। वह स्वय को मूर्खा, भीरु और चिर-रुग्णा कहती है।

कुंवरी स्वाभिमान की सजीव प्रतिमा है। पति के विश्वासघात का वह प्रत्यक्षत भले ही कोई प्रतिकार नही कर पाती, किन्तु स्वय को अत्यधिक यातना देकर, वह राजा के लिए अपने द्वार सदा के लिए बन्द कर देती है। अंग्रेज रेजीडेंट द्वारा हस्तक्षेप करके इस मामले को सुलझाना चाहने पर वह कहती है—'यह मेरा अपना मामला है, इसमे मैं किसी को दखल न देने दूंगी। हाँ, मैं जिस तरह चाहूंगी, रहूँगी। कोई मेरे साथ जबरदस्ती किसी प्रकार की नहीं कर सकता।'[1] उसका पिता क्रुद्ध होकर महाराज से अपनी पुत्री के अपमान का बदला लेने पहुँचता है। वह उसे, स्वाभिमान पर आँच समझकर, यह कहकर वापिस लौटा देती है—'आप जिन्हें मुझे दे चुके हैं, वही जिस तरह चाहेंगे, मेरा भरण-पोषण करेंगे और मुझे जो कुछ लेना-देना होगा, उन्ही से लूंगी-दूंगी। वह मेरे धर्म के पति और मैं उनकी पत्नी हूँ। मेरे उनके बीच धर्म का युद्ध ठन गया है। सो मेरा भाग्य है। अब मैं स्वय ही अपने भाग्य से निपट लूंगी।'[2] किन्तु खेद ! भाग्य से लड़ने का साहस रखने वाली यह अबला पुरुष के कुकर्मों का प्रतिकार न कर सकी। विवाह के बाद के उन्नीस वर्ष के जीवन म उसने अपनी कोठरी से बाहर नहीं झांका। एक दासी को छोड़ कोई स्त्री-पुरुष कभी उसकी झलक न पा सका। केवल महाराज की अन्तिम क्षण चरणोदक लेन के

१ गोली, पृ० १२०।

२ वही, पृ० १२०।

लिए उसने अपने निकट बुलाया, उसकी गुणगरिमा, पवित्रता, दृढ़ता एव एकान्तता की गाथाएँ कवियो और चारणो की वाणी का विषय बनकर रह जाती हैं।

कुँवरी के चरित्र की महानता इस बात मे है कि अपने सुहाग-सिन्दूर से होली खेलने वाली चम्पा के प्रति भी वह अतिशय उदारता का व्यवहार करती है। वह उसे अपना सबसे बड़ा सहारा समझती है। आत्म ग्लानि की ज्वाला मे जलती चम्पा को पहले स्वय अपने सामने खाना खिलाकर, तब वह उसके आग्रह से भोजन ग्रहण करती है। इतना ही नही, चम्पा को हृदय से निर्दोष मानकर, वह अपनी भाग्य-विडम्बना के लिए उसी से क्षमा माँगती है। कुँवरी मन से सबला एव स्वयसिद्धा नारी है।

४. ज़ीनत (धर्मपुत्र)

बेगम ज़ीनतुन्निसा अपने बाप की इकलौती बेटी है। लाखों की सम्पत्ति, कोठी और नगदी उसे उत्तराधिकार मे मिली है। देखने सुनने और रहन-सहन में वह 'ठाठदार' है। खानदानी शान उसे प्रतिष्ठित नवाब की बेगम बनने का अवसर प्रदान करती है। किन्तु वह विवाह के उनतीस वर्ष बाद भी वैसी ही क्वाँरी रहती है, जैसे शादी की दुलहिन होने की वेला मे थी। उसका पति 'नाकाबिले-मर्द' और आपाद-मस्तक कुष्ट विगलित है। शानदार वस्त्रो का आवरण उसे एक बा-रोब आदमी बनाए रखता है। आजीवन अभुक्त रहने के कारण इस परिस्थिति-वचिता नारी का अक्खड, बदमिजाज और आत्माभिमानी होना स्वाभाविक है। खानदानी पर्दे की मर्यादा का वह उल्लघन नही करती है। फिर भी अपने अन्य अधिकारो की रक्षा के लिए वह नवाब के नाक मे दम किए रहती है। नवाब द्वारा समझौते के लिए लाये गये अग्रेज़ अधिकारी को वह स्पष्ट करती है—' मर्दों की गुलामी करने की मैं आदी नही, इसके अलावा मैं नवाब का वजीफा भी नहीं खा रही।' नवाब-पति के रूप मे अपने गले में बँधे एक पत्थर से टकराकर जब तब उसे ठोकर लग जाती है। वह चोट खाकर घायल भी हो जाती है, किन्तु है वह भी एक नवाबजादी, कोई मामूली औरत नही।

बेगम ज़ीनतुन्निसा का हृदय अब भी सर्वथा स्नेह शून्य नही हुआ। हुस्न बानू जैसी सहृदया, मिलनसार और आत्मीय युवती को सौत के रूप मे पाकर उसका मिजाज एकदम बदल जाता है। उसे पहली बार ही मिलकर वह ठगी-सी रह जाती है। फिर जीवनभर उसे वह अपने कलेजे का टुकडा बनाकर

रखती है। वह जीवन के अड़तीस सुनहरे वर्ष नारकीय जीवन के अघकूप में इस तरह व्यतीत कर परलोक सिधार जाती है।

५. भगवती की बहू (हृदय की प्यास)

यह प्रवीण के मित्र भगवती की पत्नी है। पूर्ण विकसित पुष्प के समान उसका छलकता यौवन अनायास नेत्रों को मन्त्रमुग्ध कर देता है। इसका रंग मोती-सा, आँखें रस-भरी, अंगुलियाँ चम्पे की कली-सी, वक्ष संगमरमर-सा, गर्दन सुराही-सी और मुख स्वर्ण कमल-सा है। उसे स्वयं अपने रूप पर गर्व है। मुखदा के मुख से अपने शरीर को 'चाँद का टुकड़ा' और 'कुन्दन जैसा' सुनकर यह खुशी से फूली नहीं समाती। किन्तु इसका यह रूप इसके लिए अभिशाप बन जाता है। इसके पति का अन्तरंग मित्र प्रवीण इसके सौन्दर्य-रस का पान करने के लिए इसे अपनी कामवासना का शिकार बनाना चाहता है। प्रवीण के आकर्षण की आग में इसकी चंचलता और अल्हड़पन घी का काम करते हैं।

भगवती की बहू रूपवती, चंचल युवती होते हुए भी नारीत्व मर्यादा के प्रति सचेत है। प्रवीण की आसक्ति का अपने प्रति आभास पाते ही यह सतर्क हो उठती है। यह पत्र लिखकर प्रवीण को अपने घर आने का निषेध करती है। किन्तु दुर्भाग्यवश पत्र प्रवीण तक पहुँचने से पहले ही वह स्वयं एकान्त पाकर वहाँ आ धमकता है। प्रवीण को अनेक तर्कों से प्रताड़ित कर अपने विवेक का परिचय देती हुई यह उसके शपथ देने पर, उसे वहाँ से टालने के लिए उसके निकट चली जाती है। तभी अकस्मात् पति के आ जाने पर यह पतिता और कलंकिनी का नाम अपने मस्तक पर अंकित करा बैठती है। पति दुत्कार देता है। यह मरना चाहती है। पर परिस्थितियाँ इसे अपने नन्हे शिशु सहित प्रवीण के द्वार पर ले आती हैं। यहाँ से यह अज्ञात स्थान को चली जाती है। प्रवीण अपने पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए इसे धर्म बहिन मानकर इसकी सेवा में जीवन समर्पित कर देता है।

यहीं से भगवती की बहू का कर्मठ और उदात्त रूप व्यक्त होता है। यह एक सन्यासी के आश्रम में रहकर साध्वी का जीवन व्यतीत करती है। यह प्रातः उठकर चक्की पीसती है, कुएँ से पानी भरती है, गाय को चारा खिलाती है। वह सब कुछ यह अपने शिशु के लिए करती है। परिस्थितिवश यह आदर्श पत्नी रूप में प्रतिष्ठित न हो सकी, पर माँ के रूप में इसका व्यक्तित्व स्पष्ट निखर आता है। यह मृत निर्वासिता होकर भी जीने को बाध्य है। प्रवीण की लिखित पत्र तथा इसके अज्ञातवास के सात्त्विक जीवन से इसका पति वास्तविकता से परिचित होता है। यह फिर से आदर्श गृहिणी के रूप में प्रतिष्ठित हो जाती

है। प्रवीण की पत्नी सुखदा के प्रति उसकी आत्मीयता और निश्छल व्यवहार उसकी हार को जीत में बदल देते हैं।

६. शशिकला (हृदय की परख)

शशिकला पुरुष-समाज द्वारा प्रवंचित नारी है। वह सहज अनुरागमयी है। किशोरावस्था में उसे भूदेव जैसे विद्वान्, सहृदय शिक्षक का सान्निध्य मिलता है। वह उसे अपना जीवन सर्वस्व समझकर भावुकता से भर जाती है। फलस्वरूप, मर्यादा पथ से हटकर भूदेव के साथ घर से भाग जाती है। अविवाहित अवस्था में ही माँ बनकर वह पुत्री (सरला) को जन्म देती है। कुछ समय पश्चात् सरला को लेकर भूदेव कहीं चला जाता है। शशिकला घर लौट आती है। इसका अन्य पुरुष से विवाह हो जाता है। यह बाद में गृहस्थ जीवन का पत्नी-रूप में पालन करती है।

नए परिवार में शशिकला माँ-रूप में अपनी ममतामयी प्रकृति का परिचय देती है। वह निश्छल है। अपनी अवैध पुत्री सरला को बीस वर्ष पश्चात् देखकर भी उसका हृदय स्नेह से भर जाता है। वह उसके मुँह से 'माँ' शब्द सुनने को आतुर है, और उसे स्थायी रूप से अपने साथ रहने का आग्रह करती है। शशिकला का हृदय उदात्त है। वह अपनी भूल सुधारने का उपयुक्त मार्ग खोज निकालना चाहती है। किन्तु सरला की कुंठित बुद्धि और विपरीत परिस्थितियाँ उसे इसका अवसर नहीं देतीं। अन्त में वह पति-चरणों में क्षमा के लिए निवेदन कर परलोक सिधार जाती है।

समाज में शशिकला जैसी भूल करने वाली निरीह नारियों की यही अन्तिम परिणति निश्चित है।

७. अनाम नारी (नरमेध)

यह अनाम नारी सर ठाकुरदास की परिणीता सम्भ्रान्त गृहिणी है। संयोगवश यह एक अन्य पुरुष के प्रेम में ग्रस्त है। यह जानती है कि इसका पति देवोपम है। अतएव उसकी मर्यादा की रक्षा करना इसका कर्त्तव्य है। किन्तु अपनी रागात्मक आसक्ति के वशीभूत होकर यह प्रेमी से सम्बन्ध-विच्छेद नहीं कर पाती। प्रेमी द्वारा बाद में अपने प्रति उपेक्षा दिखाने और इसे मात्र काम-वासना तथा धन-वैभव की लिप्सु समझने पर भी यह उसे सच्चे हृदय से प्यार करती है। यह पति-मर्यादा की रक्षा-हेतु प्रेमी की हत्या करते समय भी उसी के प्यार में ओत-प्रोत रहकर फाँसी चढ़ जाना चाहती है। इस प्रकार इसके चरित्र में

ऐकान्तिक प्रेम और लोक-मर्यादा का अद्भुत सम्मिश्रण है। फिर भी इसमें पर-प्रेम-लिप्सा की तुलना में परिणीत पति के प्रति आस्था अधिक बलवती है। इसीलिए यह स्वयं को कलंक कालिमा से मुक्त करने के उद्देश्य से अपना 'नरमेध' रचती है। इसके द्वारा यह आत्मनिष्ठा और जीवनोत्सर्ग की घोषणा करना चाहती है। यह अपने प्रेमी को गोली मार कर पुलिस के सम्मुख आत्मसमर्पण कर देती है। समाचारपत्रों में इसके उन कृत्य का समाचार पढ़ कर इसका आजीवन प्रतीक्षक पति निराश होकर परलोक सिधार जाता है।

यह अपने क्षणिक पतन से बहुत ऊँची उठकर आत्मगौरव प्रदर्शित करती है। इसमें पाप के प्रायश्चित्त की भावना प्रबलतर है। विनोद बाबू के शब्दों में 'वह घृणा विरक्ति और विद्रोह सब कुछ अचल अचल में बाँधकर अपने को अर्पित करती आई है। तो यह क्या उसका भारी चरित्र नहीं है? इस संयम, धैर्य और सहन शक्ति की सामर्थ्य का भी कहीं ओर-छोर है।'[1] समाज की दृष्टि में यह पतित, भ्रष्टाचारिणी और पागल है। यहाँ तक कि इसका अपना पुत्र त्रिभुवनदास, संयोगवश इसका वकील बनने पर, इसे नीच समझकर घृणा करता है। पर यह सदा शान्त और स्थिर-चित्त रहकर वस्तु-स्थिति का सामना करती है।

यह अनाम नारी पति-प्रणय-वंचित होने के साथ स्व-कर्म वश पुत्रस्नेह से भी वंचित रह जाती है। अपने प्रेमावेश में कई वर्ष पूर्व यह पति और नन्हे पुत्र को छोड़ जाती है। कारागार में इसका पुत्र युवक वकील के रूप में इसके सामने आता है। इसकी तप्त कोख जैसे इस अतिशय आर्द्रता को सहन नहीं कर पाती। माँ पुत्र का यह अद्भुत साक्षात्कार एक नये आत्मीयतापूर्ण वातावरण की सृष्टि करता है। यह सब लोक-लाज छोड़ लौह-सींखचों में से भुजाएँ पसार कर वकील पुत्र को आलिंगन में बाँध लेती है। यह इसकी पुत्र-वत्सलता का सूचक है।

अन्त में यह अपने प्रेम, वात्सल्य, पश्चात्ताप, धैर्य और विवेक को हृदय में संजोए सहर्ष फाँसी का दण्ड अंगीकार करती है।

८. पद्मा (बगुला के पंख)

पद्मा दिल्ली के कांग्रेसी नेता शोभाराम की सरल-हृदया, कर्मठ पत्नी है। प्रकृति ने उसे अप्रतिम लावण्य प्रदान किया है। उसकी आयु छब्बीस वर्ष की है। रंग गोरा है, उसमें से खून टपका पड़ता है। उसके लावण्य में स्वास्थ्य की

---

[1] नरमेध पृ० ३७।

कोमलता का अद्भुत मिश्रण है। उसकी आँखें काली और बड़ी बड़ी हैं। कोये उज्ज्वल श्वेत हैं। उन आँखों में तेज और आकांक्षा—दोनों ही कूट-कूटकर भरे हैं। अनुराग और आग्रह जैसे उनमें से झाँकते हैं। उसके बाल गहरे काले और आपादचुम्बी हैं। भौहें पतली और कमान के समान सुकुक हैं। कान छोटे, गर्दन सुराहीदार और उरोज उन्नत हैं। शरीर उसका छरहरा है। किन्तु उसका रूप सौन्दर्य पति-समर्ग से अभुक्त रहने के कारण भीतर ही भीतर घुटता सा दिखाई देता है। उसका पति गठिया का दायमी मरीज है। वह विवाह के पश्चात उसे कभी भी कुछ नहीं दे पाता।' कोमल कली-सी पद्मा उस सदा के रोगी के साथ बँध कर दुर्भाग्यग्रस्त हो जाती है। वह पति के स्वभाव-गत गुणों का ध्यान करके स्वयं को धन्य भी समझती है। इस प्रकार पद्मा मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुण्ठित, प्रेम-रस वंचित होती हुई भी अपनी स्थिति से पूर्णतया सन्तुष्ट है। उसकी पति परायणता एवं उसके प्रति ऐकान्तिक प्रेमनिष्ठा अक्षुण्ण है। चिररोगी पति के लिये 'मंगलकामना' उसके जीवन का एक मात्र व्रत है।

पति के अतिरिक्त, पद्मा अन्य व्यक्तियों के प्रति अपनी सरलता और सहज आत्मीयता का परिचय देती है। शोभाराम द्वारा मित्र रूप में अपनाए गए मुंशी जगनप्रसाद का वह इतना ही ध्यान रखती है, जितना पति का। उसके लिए मुंशी की सेवा और देखभाल पति को उसके कार्य व्यापार में सहायता देने के बराबर है, क्योंकि नगर में और कांग्रेस संस्था में शोभाराम की स्थापित प्रतिष्ठा का वाहक अब यही मुंशी है। किन्तु मुंशी लम्पट, कामुक और स्वार्थ-लिप्सु व्यक्ति है। समाज-सेवा या संस्था कार्य उसके लिये वासनापूर्ति का उत्तम साधन है। शोभाराम की मित्रता के सोपान पर पाँव रखकर वह पद्मा का शरीरमर्दन करना चाहता है। पद्मा इसके वाग्जाल में उलझकर परिस्थितियों के सामने अपनी विवशता स्वीकार कर लेती है। इस घटना का प्रमुख कारण उसका अभुक्त नारीत्व है। वह सच्चरित्र अवश्य है पर शारीरिक भूख उसे भी है। उसका मन शान्त और शुद्ध है। उसका हास्य-विनोद निर्दोष है। फिर भी वह जुगनू की प्यासी आँखों को पहचानती है। यह भीषण अन्तर्द्वन्द्व उसके व्यक्तित्व की दुरूहता का प्रमुख कारण है। उसका बाहर से संकोच करना और भीतर से दुर्दम्य लालसा-वश आन्दोलित हो उठना उसके चेतन और अचेतन मानसिक स्तरों की समानान्तर गतिशीलता का सूचक है। शरीर-सुख की उत्कट आकांक्षा अन्तत: उसे अचेतन मन के सम्मुख नत कर देती है। ऐसा होने में परिस्थितियाँ भी बड़ी तीव्रता से सहायक होती हैं।

एक दिन घर में पूर्ण एकान्त की स्थिति में अनायास उसके पैर मुंशी

(जुगनू) के कमरे की ओर बढ़ जाती हैं। वह भावावेश में आत्मसमर्पण करने को आतुर हो उठती है। फिर अकस्मात् अज्ञात आत्म-प्रेरणा वश वह उस समय जुगनू के बाहुपाश से छूटकर भाग जाती है। उनका यह आचरण आगे के लिए मुंशी की उन्मुक्त वासना-क्रीडा के लिए द्वार खोल देता है। इसकी चरम परिणति शोभाराम की मृत्यु के उपरान्त होती है। शोभाराम एकदम बहुत रुग्ण हो जाता है। जुगनू पद्मा को पर्याप्त धनराशि देकर पति की चिकित्सा के लिए मसूरी भेज देता है। वहाँ शोभाराम की मृत्यु हो जाने से पद्मा अपने आप को असहाय अनुभव कर जुगनू के पैरों में डाल देती है। जुगनू उसे स्वास्थ्य सुधारने के बहाने कुछ दिन वहीं रहने का परामर्श देता है। वह उसे विवाह का आश्वासन देता है और उसके नारीत्व का पूर्ण उपभोग कर दिल्ली वापस चला आता है। पद्मा लुटी-पिटी-सी अपने भाग्य को कोसती रह जाती है।

इस प्रकार परिस्थितियों में पड़कर पद्मा अपने जीवन को अपने ही हाथों नष्ट कर देती है। सौन्दर्य, प्रतिभा, शील, मर्यादा और धैर्य—कुछ भी उसके काम नहीं आता। पति की मृत्यु के उपरान्त, सहारे के रूप में, प्राप्त पुरुष ही उसे कुचल डालता है।

९. सरला (हृदय की परख)

सरला मृदेव और शशिकला के अवैध सम्बन्धों का प्रतिफल है। अज्ञात-कुलशील सरला उदार लोकनाथ के घर पलती है। "उसका रूप ऐसा दिव्य है कि उसे देखने को सभी आकुल रहते हैं। उसे प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विचरण करना विशेष प्रिय है। किसी से बात करने और खेलने की अपेक्षा उसे जंगल में चुपचाप किसी कुंज में बैठे रहना अधिक अच्छा लगता है।"[1] उसका एकाकीपन और वृद्ध लोकनाथ की संगति उसे एकान्तप्रिय बना देते हैं। उस में आत्मविश्वास का उदय हो जाता है। इससे उसका व्यक्तित्व विलक्षण बन जाता है।

उसे अपने पालक पिता लोकनाथ के गाय, भैंस, बछड़ों, फुलवारी और लहलहाते हरे भरे खेतों से बहुत प्रेम है। वह बहुत स्वाध्याय-शील है। अक्षर-अक्षर जोड़कर निरन्तर अभ्यास से पालक पिता के घर रखी पुरानी पुस्तकों का वह पूरी तरह पढ़ डालती है। गाँव का कोई भी व्यक्ति उससे आँख नहीं मिला सकता और न किसी को उसका अपमान करने का साहस होता है।

सरला विवेकमयी है। उसके विचार सन्तुलित हैं। लोकनाथ के जीवन की

१. हृदय की परख, पृ० १४।

अन्तिम वेला में वह धैर्य और निष्ठा से संसार की नश्वरता और जीव द्वारा आनन्द की प्राप्ति के लिये किये जाने वाले प्रयत्नों की व्याख्या करती है। उसे सुनकर लोकनाथ कह उठता है— सरला बेटा, तुझे आज पहिचाना। पहले से जान लेता तो मरती बार मेरी आंखों में आँसू की जगह हँसी होती। तुम इतनी ऊँची दुनिया में हो बेटा।"[1]

लोकनाथ के मरने पर उसका निकट सम्बन्धी युवक सत्यव्रत सरला के साथ खेतों आदि की देखभाल करता है। वह सरला की प्रतिभा पर मुग्ध हो जाता है। एक बार प्राकृतिक सुन्दरता के विषय में सरला उसे समझाती है—जिसे लोग मूक और निर्जीव सौन्दर्य कहते हैं, उसे हम अपनी भाषा में स्थिर और निश्चल सौन्दर्य कह सकते हैं। जो सौन्दर्य चाहक की कामना करता है, वह ऐसा स्थिर नहीं रह सकता।

सत्यव्रत सरला के संसर्ग से बहुत प्रभावित होता है। उसे कालेज की भारी-भारी पोथियों में जो कुछ न मिला था, वह उसे झरने की बूँदों पर लिखा दिखाई देने लगा। उसके जी में ऐसा होने लगा कि उसे इस देवी के चरणों में अपने हृदय के सारे पुष्प बिखेर देने चाहिएँ। सत्यव्रत उसकी ओर आकर्षित होता है और उसके प्रति अपनी प्रेम-आकांक्षा प्रकट कर देता है। वह उसे स्पष्टतः तिरस्कृत न करती हुई भी अपने मन का भाव यों व्यक्त करती है—'चाहना बुरी नहीं है सत्य, जिनका हृदय सुन्दर होता है, वे ही चाहना करते हैं। पर चाहना में वासना बुरी है। हमें उसी का उन्मूलन करना चाहिए।"[2]

सरला के व्यक्तित्व की यह गरिमा शशिकला (जननी) से अपने जन्म का रहस्य जान लेने पर सहसा स्खलित हो जाती है। शशिकला का घर चलने का आग्रह वह स्वाभिमान-वश अस्वीकार कर देती है। अपनी अवैध उत्पत्ति के सम्बन्ध में जानकर वह दिन प्रतिदिन गम्भीर और क्षुब्ध रहने लगती है। परिणामस्वरूप वह एक दिन घर से ही निकल पड़ती है। संयोगवश उसे उसके अवैध पिता की वैध पत्नी शारदा के घर शरण मिलती है।

सरला शारदा की अगाध ममता पाकर अपने जीवन की विडम्बना भूल जाती है। सरला के विचारोत्तेजक, विवेकपूर्ण लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर, उसकी ज्ञान-गरिमा की धूम मचा देते हैं। एक बार शशिकला अपने पुत्र के विवाह में अपनी बालसहचरी शारदा को आमन्त्रित करती है। सरला पुत्री रूप

१. हृदय की परख, पृ० २६।
२. वही, पृ० ३२।

मे उसके साथ जाती है । वहाँ अवैध माता शशिकला को पहचानकर सरला के हृदय का घाव पुन: हरा हो जाता है । वह सबकी अनुनय विनय को ठुकराकर तुरन्त वापस आ जाती है । अपने जन्म के अभिशाप की ग्लानि मे उसका शान्त जीवन दु:खी हो उठता है ।

धीरे-धीरे, वह विद्याधर चित्रकार से चित्रकला का अभ्यास करने लग जाती है । उसके सम्पर्क मे उसके प्रेम की शुष्क वल्लरी पुन: विकसित होने लगती है । वह अपने प्रति अनन्य अनुरक्त विद्याधर के साथ स्थायी प्रणय बन्धन चाहती है । पर विद्याधर का पिता जातीय मर्यादावश विद्याधर को इस सम्बन्ध की अनुमति नही देता । विद्याधर नतमस्तक हो सरला से साफ कह देता है—'मैं तो कैसी परवाह नही करता, पर पिता जाति वालों से डरते हैं ।'' यह सुन कर सरला अवाक् रह जाती है ।

पुरुष समाज द्वारा अकारण प्रताडित हतभाग्या प्रेमिका सरला चित्त-विक्षिप्ति के कारण उन्मादिनी-सी हो जाती है । एक दिन वह उन्माद की स्थिति मे, भीषण वर्षा और तूफान मे, अपने अतृप्त हृदय की तृप्ति के लिए लम्बी पैदल यात्रा के बाद आधी रात के समय सत्यव्रत के पास पहुँचती है । उसकी मानो जन्म-जन्म की प्यास बुझ जाती है । वह सत्य को अगले दिन विवाह अनुबन्ध का वचन देकर प्रकृतिस्थ हो, चिरनिद्रा मे लीन हो जाती है ।

सरला के पीडित जीवन स सिद्ध होता है कि यह ससार उस जैसी सरल आत्माओं के अनुकूल नही है ।

विधवा नारियाँ

१. नारायणी (बहते आँसू)

नारायणी निम्न मध्यवर्ग-परिवार की अभागी कन्या है । इस अबोध-बालिका का सात वर्ष की आयु मे विवाह कर दिया जाता है । दुर्दैव-वश कुछ ही दिनो मे इसके पति की अकाल मृत्यु हो जाती है । एक पत्थर से इसके हाथ की चूड़ियाँ तोड दी जाती हैं । हाथो से बहती खून की धारा देखकर यह 'मैया-मैया' चिल्लाती है । उसे पता नहीं कि वास्तव मे हुआ क्या है ? केवल घर-पडोस की स्त्रियो के 'राँड, अभागिनी, हत्यारी, मायाविनी' आदि शब्द उसके कान मे टकराते हैं और वह रो-रोकर अचेत हो जाती है । पुरोहित का निर्णय है कि वह अभागिनी है । बस, घर की सभी स्त्रियाँ पुरोहित कथन के प्रमाण जुटा-जुटाकर उसे अपने वाग्बाणो से बींधने लगती हैं । सास का मत है कि जब

---

१. हृदय की परख, पृ० १२६ ।

से यह अभागिनी आई है, उसके घर की सारी श्री उड गई है। डायन ने आते ही लडके को खा लिया। मोसी कहती है— हम तो इसके कुलच्छन तभी दीख गए थे, जब यह ब्याह कर आई थी। पैर के चपटे तलुए और भारी कमर जिस औरत की होगी, वह कभी सुहागिन रहेगी ही नही।"

अभिशप्ता नारायणी वैधव्यदोष के कारण श्वशुर गृह से नित्य प्रताडित होती है। पितृ-गृह मे भी उस सिवाय दुत्कार और फटकार के कुछ नही मिलता उसकी बडी बहिन भगवती भी विधवा है। वह भी भाभी के दुर्व्यवहार का शिकार बनती है। वह नारायणी के घर आने से पहले ही यह सोच कर शकित है कि उसे तो भाभी कच्चा ही खा जायेगी।

नारायणी का जीवन वास्तव म क्रीता दासी से भी दयनीय है। पहले वह झिडकी या गाली खाकर रो उठती थी, पर अब चुपचाप सुन लेती है। उसका स्वभाव सहनशील है। वह नित्य सबसे पहले प्रात चार बजे उठती है और रात को बारह बजे सोती है। सर्दी, गर्मी या वर्षा—कभी भी उसका परित्राण नही किन्तु उसकी सहनशीलता निरुद्देश्य है। वह सास ससुर, जेठ जेठानियाँ सबकी सेवा करती है किन्तु बदले म डायन और अभागिनी आदि के मौखिक पुरस्कारो के साथ धक्के और लातें खाती है। सर्दी मे ठिठुरने के कारण प्रात उठ न पाए तो मकर फरेब बताकर डॉट-फटकार पाती है। आखिर ज्वर, खाँसी, दस्त सभी रोग उसे आ घेरते हैं। उसके पिता को पत्र लिखकर उसे वहाँ से ले जाने के लिये कह दिया जाता है।

पितृ-गृह मे लौट आने पर नारायणी को सुख शान्ति का एक क्षण भी उपलब्ध नही होता। अन्त मे समाज-सुधारक रामचन्द्र की प्रेरणा स उसका पुन विवाह हो जाने पर उसके जीवन मे नया मोड आता है।

२ भगवती (बहते आँसू)

नारायणी की बडी बहिन भगवती बाल विधवा है। इसका चरित्र दयाधाम हिन्दू धर्म के पवित्र पर्दे मे छिपी उग्र तपस्या-लीन असहय बालिकाओ के निरस्कृत और उपेक्षित जीवन का परिचायक है। पितृ-गृह मे इसे माता पिता का मूक स्नेह प्राप्त है, पर भाभी के कटु व्यग्य-बाणो के आघात इसे प्रतिदिन सहने पडते है। चम्पा नामक सहृदय सखी के साहचर्य से इसका सूना जीवन कभी-कभी कुछ हरा हो उठता है।

---

१ बहते आँसू, पृ० ११।

भगवती स्वभाव से भोली है। किन्तु यौवन की दहलीज पर खड़ी होने के कारण कुछ चचलता का समावेश उसके व्यक्तित्व मे है। एक ओर उसके हृदय की नैसर्गिक उमग और दूसरी ओर जीवन का अभिशप्त वातावरण उस भीषण अन्तर्द्वन्द्व में ग्रस्त कर देते हैं। इनमे मुक्ति पाने के लिए यह कुटिनी नाइन के बहकावे मे आकर अपने पूर्व-मगेतर गोविन्दसहाय से यौन-सम्पर्क स्वीकार कर लेती है। उसकी दशा लज्जा, भय, अनुताप और दुख के मारे शोचनीय हो उठती है। वह बारम्बार कुपथगमन से डरती और हिचकती है। किन्तु उसके पैर अनायास घोर पाप मे निमग्न होने के लिए बढ ही जाते हैं।

गोविन्दसहाय के सहवास से भगवती को गर्भ ठहर जाता है। भीषण तूफान की ज्वालाएँ उसे और उसके पूरे परिवार को जलाने को लपकती हैं। भाई निर्दयता से उसकी धुनाई करता है। पिता नीम हकीम से गर्भपातक औषधि दिलवाता है। इससे होने वाली घोर यन्त्रणा को वह रो-रोकर सहती है। किन्तु रोज-रोज माँ-बाप, भावज-भाई की मार, झिडकी और अपमान उसे सहसा विद्रोहिणी बना देते हैं। वह सोचती है—आखिर इन लोगों को यह सब कहने का अधिकार ही क्या है? माँ द्वारा बार बार कुलच्छनी, कुलबोरनी कहने पर वह उन्मत्त सिंहनी-सी गरज उठती है। 'क्यों दिन-रात मुझे कोसा करती है? मैं हाड-मांस की थोडे ही हूँ। ईंट-पत्थर की हूँ न! तुम लोग खुशी से जीओ, गुलछर्रे उडाओ और मैं मर जाऊँ? मैं बदनाम हुई। नाम, मान, इज्जत, सुख सब चला गया। गाँव में मुँह दिखाने को जगह नहीं रही। अब कसर ही क्या रही जो मैं कुछ सोचूँ—समझूँ? अपने पेट की बेटी को तुम लोगों ने जिस तरह दुरदुराया है, उस तरह मैं भी सब का खून पीऊँगी। मुझे भगवती नहीं, राक्षसी समझना।'[1] उसका यह आक्रोश उसके पिता को जाति-च्युत कर देने पर और भी उग्र रूप धारण कर लेता है। उसका सगा भाई उसे साध्वी के रूप मे काशी छोड आता है। किन्तु वहाँ वह साध्वियों के बजाय वेश्याओं के चक्कर मे जा फँसती है। वह वहाँ से भाग कर हरगोविन्द की परिणीता बनकर रहने के लिये उसकी शरण मे जाने पर ठुकरा दी जाती है। इस पर वह क्रोध से सचमुच पागल हो उठती है। कितने दिनों की भूखी-प्यासी, आत्म हत्या करने पर उतारू, असहाय अवस्था मे वह इतनी दूर से जिस कच्चे धागे के सहारे आस लगाए आती है, वह इस तरह दगा दे जाता है। इस पर वह बेकाबू होकर उसका गला घोंट, घर को आग लगा कर वहीं अन्धकार मे खो जाती है।

अन्त मे पागलों के हस्पताल मे वह कुत्ते की मौत मर कर सदा के लिए

---

[1] बहते आँसू, पृ० २००-१।

शान्त हो जाती है।

३. मालती (बहते आँसू)

मालती एक वकील की विधवा कन्या है। इसका स्वभाव चपल है। इसके पास रूप और आयु है, पीहर का निर्विरोध वातावरण है, तिस पर नई शिक्षा। इसे वैधव्य धर्म पर अश्रद्धा है। इसकी आँखों में सुन्दर जगत् समाया रहता है। इसकी इन्द्रियाँ चेतन और भोग की अभिलाषिणी हैं। संयोगवश चचल वाग्-विलासिनी लता की संगति में आकर चाहती हुई भी भोगपथ से पृथक् नहीं रह पाती। फिर भी यह अपनी पसन्द के बिना किसी व्यक्ति का सम्पर्क स्वीकार नहीं करती। लता की सहायता से व्यभिचारी कालीप्रसाद अपहृत कर इस पर बहुत अत्याचार करता है। किन्तु यह अपनी शील मर्यादा पर आँच नहीं आने देती। इसकी चचलता कठोरता में और रसिकता वीरता में परिणत हो जाती है। यह कालीप्रसाद को घायल कर चादर और कम्बल के सहारे मकान से उतर कर भाग जाती है। दुर्भाग्यवश यह वहाँ एक अन्य लम्पट द्वारा सहानुभूति और सहायता प्रदान के बहाने बहकाकर विधवाश्रम में भेज दी जाती है। वास्तव में यह नारी-व्यापार का कुख्यात केन्द्र है। यहाँ यह असीम साहस और विवेक का परिचय देती है। यह अठारह घंटे तक एक कोठरी में भूखी प्यासी रह कर भी अधीर नहीं होती। इसकी आत्मा की दुर्बलता भाग जाती है। इसमें सिंहनी का-सा पराक्रम आ जाता है। यह आश्रम के अधिष्ठाता द्वारा कोठरी के किवाड़ खोलते ही उसपर टूट पड़ती है। यह उसे बाँधकर किवाड़ पुन अन्दर से बन्द कर लेती है। काफी हलचल के अनन्तर पुलिस के आने पर यह किवाड़ खोलती है। इसकी जागरूकता वरदान सिद्ध होती है और नारी सम्मान के रक्षक सुशीला के धर्म भाई प्रकाश के साथ इसका विवाह इसके जीवन को नव-पथ प्रदान करता है।

४ सरला (आत्मदाह)

सरला एक ग्रामीण ब्राह्मण की षोडशी कन्या है। यह अपने सरल सौम्य उदात्त चरित्र की गरिमा की छाप थोड़े समय में ही पाठकों के हृदय पर अंकित कर जाती है।

एक बार सुधीन्द्र निरुद्देश्य घर-बार छोड़कर अज्ञातवास धारण कर लेता है। संयोगवश वह सरला के पिता के घर आकर ठहरता है। वहाँ वह सरला की दिनचर्या से बहुत प्रभावित होता है। लेखक के शब्दों में 'सरला' को कमल के उस फूल की उपमा दी जा सकती है, जो प्राकृतिक पुष्करिणी के बीच

नैसर्गिक रूप से खिलता है, जिसमें विधाता के हाथ की असली कारीगरी होती है। वह तप्त कंचन के समान आभायुक्त और चम्पे की कली के समान गौराङ्ग है। किन्तु उसकी इस रूप छवि को बाल्यकाल में ही वैधव्य का राहु ग्रस लेता है। सात वर्ष की आयु में सरला का विवाह होता है और दो ही वर्ष पश्चात् वह विधवा हो जाती है। तब से वह पिता के पास रह कर साधना का जीवन व्यतीत करती है। प्रभात से लेकर सायंकाल तक घर के सभी कार्य करती हुई वह अवसर मिलने पर स्वाध्याय में संलग्न रहती है।

सरला विदुषी, विवेकशील और उदारहृदया है। सुधीन्द्र के साथ विभिन्न विषयों पर वह बड़ा तर्कपूर्ण वाद विवाद करती है। उसके विवेक बुद्धि का परिचय उस समय मिलता है, जब वह सुधीन्द्र की आपबीती सुनकर तुरन्त उसे अपने घर लौट जाने का आग्रह करती है। वह सुधीन्द्र द्वारा व्यक्त किये गये जातीय भेद भाव का केवल सैद्धान्तिक विरोध नहीं करती अपितु उसे अपने हाथों भोजन बनाकर खिलाने को बाध्य करके उसका व्यावहारिक प्रमाण उपस्थित करती है।

सरला अपने यौवन और उसकी स्वाभाविक गति से अपरिचित नहीं है। किन्तु वह उसकी ऊष्मा को सहन करने में समर्थ है। वह उसके ताप में गल जाने वाली दुर्बल नारी नहीं है। सुधीन्द्र का कुछ दिनों के लिए उसके जीवन में आ जाना उसके हृदय को चंचल एवं स्त्रीत्व को विचलित अवश्य करने लगता है, फिर भी वह अपार संयम और सहनशीलता का परिचय देकर उसे घर लौट जाने का आग्रह करती है। वह यौवन-सुलभ दुर्बलता को क्षणभर के लिए भी प्रकट नहीं होने देती। वह बालयोगिनी की सजीव प्रतिमूर्ति है।

४ केशव की माँ (खून और खून)

यह अपने यौवन और गृहस्थ जीवन के द्वार पर पैर रखते ही विधवा हो जाती है। इसका असली नाम गाँव में एक दो वृद्धा स्त्रियों को छोड़ कर और कोई नहीं जानता। इसका शरीर कृश, मुख-मुद्रा गम्भीर, नेत्र स्थिर और स्वभाव अत्यन्त कोमल है। यह अल्पभाषिणी और सत्यवादिनी प्रसिद्ध है। यह यथा-सम्भव सबका उपकार करने की चेष्टा में रहती है। यह आस्थावती और कर्मठ नारी है। नित्य चार घड़ी रात रहे उठ कर यह घर को साफ करती है, गौ को सानी लगाती है और स्नान करके तुलसी के सम्मुख पूजा करने बैठ जाती है। पूजा, प्रातःकृत्य आदि से निबट कर यह चर्खा कातती है। दिन भर खाने लायक आटा यह सूर्योदय से पूर्व ही पीस लेती है। भोजन के बाद कुछ देर रामायण पाठ कर लेना इसके लिए विश्राम है। दिन भर में काता गया आध सेर-ढाई पाव सूत

ही इसके गुजारे का स्रोत है। इस प्रकार निर्धनता के घने कुहासे में ढकी इसके व्यक्तित्व की लौ पूरी गरिमा से देदीप्यमान है। इसका मौन स्वभाव इसकी चिर गतिशील क्रियाओं के माध्यम से सदा मुखरित रहता है। घर में इसकी एकमात्र परिजन और अन्तरंग सखी—माँ—इसकी उस मौन भाषा को अच्छी तरह समझती है।

केशव की माँ स्थिरमति और शान्तस्वभाव स्त्री है। इसका पुत्र केशव वार्षिक परिक्षा देकर नगर से लौटता है। एक दिन वह गाँव की एक बालविधवा युवती के प्रति उसकी सास का निष्ठुर व्यवहार देखता है। केशव द्वारा इसका विरोध करने पर वह बुढ़िया (गोविन्द की माँ) अपनी विधवा पुत्रवधू तथा केशव के सम्बन्ध में अनाप शनाप बकती हुई गाँव भर में तूफान खड़ा कर देती है। केशव इसका प्रतिकार करने के लिए अपनी माँ से कुछ कहना चाहता है। यह उसे तत्काल रोक कर समझाती है—'बेटे, जब तक मैं यहाँ बैठी हूँ यहीं बैठ रहो। खबरदार, एक शब्द भी न बोलना। किन्तु इसकी इस शान्त प्रकृति के पीछे उसके दृढ़ आत्मिक बल का सम्बल है। गोविन्द की माँ के अपनी विधवा पुत्रवधू पर नित्यप्रति निर्मम अत्याचार बढ़ते देख केशव की माँ उसे अपने घर शरण दे देती है। केशव की यह डाँट कर कह देती है—'खबरदार, जो तूने इसकी ओर आँख उठाकर देखा या बात की। अब यह इसी घर में रहेगी।' और बहू के लिए भी उसका स्पष्ट निर्देश है—'खबरदार, जो तू इस घर से निकलकर उस घर में गई।'[1]

गोविन्द की माँ असंगत प्रलाप करती हुई कई बार बहू को लिवाने आती है पर केशव की माँ की मौन दृढ़ता के सामने उसकी एक नहीं चलती। केशव की माँ से दूसरों के मामले में दखल देने का कारण पूछने पर यह कहती है—'प्रत्येक मनुष्य जो अत्याचार से युद्ध कर सकता है, अत्याचारी के सम्मुख आकर खड़ा हो सकता है।'[2] अन्त में केशव के मित्र हमीद की प्रेरणा से वह विधवा बहू केशव के हाथ में राखी बाँधकर उसकी धर्म-बहिन बन जाती है। इस पर गोविन्द की माँ निरुत्तर हो जाती है क्योंकि अब उसकी बहू पराए घर न होकर अपने भाई के घर है।

केशव की माँ परम्परावादिनी एवं मर्यादानिष्ठ हिन्दू स्त्री है। फिर भी वह जाति-गत सकीर्णता से सर्वथा मुक्त और उदार है। अपने पुत्र केशव के अंतरंग

---

१ खून और खून, पृ० १२३।
२ वही पृ० १२७।

मित्र हमीद को पुत्रवत् अपने घर रखती है। संयोगवश हमीद की बहिन हमीदन काश्मीर में एक लम्पट नवाब के चंगुल से बचकर भागती हुई पठानकोट स्टेशन पर रेल में सवार होती है। वहीं वैष्णोदेवी की यात्रा से लौटती हुई केशव की माँ से उसकी भेंट होती है। दिल्ली स्टेशन पर केशव तथा हमीद से उनके मिलने का दृश्य अद्भुत उल्लास का विधायक सिद्ध होता है। इस अवसर पर केशव की माँ के ये शब्द उसके उदात्त व्यक्तित्व के परिचायक हैं—'मेरे एक ही बेटा था केशव, हमीद के आने से दो हो गए। अब ईश्वर ने बेटी भी दे दी। अब घर सम्पन्न हो गया। उसमें सौरभ खिल उठा। आओ चलें।'[1]

केशव की माँ आदर्श भारतीय नारी की प्रतिमूर्ति है।

६ सुशीला (बहते आँसू)

सुशीला दरिद्र और अनाथ युवती है। एक बुढ़िया की कोठरी किराये पर लेकर सिलाई आदि की मजदूरी करके वह अपना पेट पालती है। रात-रात भर दीये के धुंधले प्रकाश में वह धनिकों के वस्त्र सीती है। किन्तु पारिश्रमिक के रूप में उसे मिलते हैं केवल चौथाई पैसे। तीन भाग सम्भ्रान्त सद्गृहिणी हड़प कर लेती है क्योंकि वह उसे काम दिलवाती है।

सुशीला केवल भाग्यवंचिता नहीं, समाज शोषिता भी है। फिर भी वह स्वाभिमानिनी और मर्यादाशील है। किसी अपरिचित युवती के रूप-व्यापार द्वारा सुख-समृद्धि के संसार में प्रवेश निमन्त्रण को वह किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं करती। मकान-मालकिन द्वारा किराये के लिए बार-बार तंग किये जाने पर वह विवश होकर सिलाई के पैसे लेने वस्त्र के स्वामी राजा साहब के घर चली जाती है। वह उसके रूप लावण्य का ग्राहक बनकर उसे 'भारी इनाम' देने का प्रलोभन देता है। इसपर इसकी स्पष्ट उक्ति है—माँ की आज्ञा है कि सिवाय मजदूरी के और किसी से कुछ लेने में कुल-मर्यादा जाती है। राजा साहब बलात् उसे अपने बाहुपाश में आबद्ध करना चाहते हैं, किन्तु वह साहसपूर्वक इसका विरोध करती है। इसी बीच प्रकाश नामक युवक की तत्परता से उसकी शील-रक्षा हो पाती है। कुछ समय उपरान्त परिस्थितिवश एक बार पुनः वह उसी लम्पट के जाल में फँस जाती है। पर वह बड़े साहस और पराक्रम से राजा की बुरी तरह घायल कर वहाँ से बच निकलती है।

सुशीला शिक्षिता और जागरूक नारी है। उसका रक्षक और धर्मभाई प्रकाश राजा से उसकी नीचता का प्रतीकार लेने के लिए राजा की हत्या करके जेल चला

---

1. खून और खून, पृ० १७०।

जाता है। इस समय सुशीला स्त्रियों का 'डेपूटेशन' लेकर वायसराय से मिलने जाती है तथा प्रकाश को मुक्त कराकर चैन लेती है। अन्त में प्रकाश के मित्र श्याम से उसका ससम्मान विवाह हो जाता है। सच्चरित्र और विवेकमयी नारी होने के कारण वह जीवन की जटिलताओं को सरल बना लेती है।

सुशीला का चरित्र आजीवन निर्धनता और दुराचारियों की लम्पटता का कर्मठता और धैर्यबुद्धि से सामना करके अपना पथ स्वयं निर्माण करने वाली नारियों का स्मारक है।

७. कुमुद (बहते आंसू)

कुमुद डिप्टी कलैक्टर बाबू दीपनारायणसिंह की पत्नी है। यह पतिपरायणा स्त्री है। इसका पति इलाके में प्लेग फैल जाने के कारण, जन-सेवा की व्यवस्था में जुटा रहने के कारण, स्वयं प्लेग-ग्रस्त हो जाता है। यह अन्न-जल की चिन्ता छोड़ उसकी सेवा में दिन-रात एक कर देती है। पति की मंगल-कामना के लिए यह रात-भर परमेश्वर से लौ लगाए बैठी रहती है। किन्तु दुर्दैव इसके मस्तक का सिन्दूर पोंछ, इसे विधवा बना देता है। यहां से इसके जीवन का नया अध्याय आरम्भ होता है और इसका व्यक्तित्व और भी निखर आता है।

कुमुद उदार तथा मिष्टभाषिणी होने के साथ कार्यकुशल एवं कर्मठ है। दास-दासियों के रहते यह सास-ससुर, जेठानी तथा ननदों की सेवा अपने हाथ से करती है। ननद-जेठानी इससे कुछ प्राप्त करने के लालच में इसकी लल्लो-चप्पो में लगी रहती हैं। नौकर, दासी आदि इनाम-कपड़ा पाने के लोभ में इसकी खूब सेवा बजाते हैं। किन्तु वैधव्य का अभिशाप शीघ्र हास्य और मधुरता की इस फुलझड़ी को मूक-साधिका बना देता है। इसकी एकान्तप्रियता तथा मौन-प्रवृत्ति घर-परिवार वालों को खटकने लगती है। वे इसकी उपेक्षा करते हैं, बात-बात पर अपशब्द कहते हैं, बासी और रूखा भोजन देते हैं। किन्तु यह धैर्यपूर्वक सब कुछ सहन करती है। वैधव्य के कारण इस पर पड़ने वाली तिरस्कार और लाञ्छना की मार मानो इसे अग्नितापित खरा सोना बना देती है।

कुमुद सुशिक्षिता, विदुषी और मर्यादाशील स्त्री है। यह अपनी विधवा किन्तु चंचल सखी मालती को सदा सत्परामर्श देती है। एक बार इसका विधुर जेठ इसे अपनी वासनापूर्ति का शिकार बनाना चाहता है। किन्तु यह बड़ी शालीनता से उसे समझाने का प्रयास करती है। वह बलात् इसे अपने अंकपाश में लेना चाहता है। कुमुद उसे पूरी शक्ति से धकेलकर, आंगन में आकर चिल्लाने लगती है। इस पर कुमुद का लम्पट जेठ इस पर किसी अन्य पुरुष से प्रणय-लीला करने

का आरोप लगाकर, उलटे उसी को समाज की दृष्टि में कुलटा सिद्ध कर देता है। परिस्थितिवश कुछ समय के लिए उसके मन में भाई के घर जाकर रहने का विचार आता है। पर भाभी के 'साखा रच आई बीबी जी' कहते ही इसका स्वाभिमान जाग उठता है। यह क्षण भर भी वहाँ न रुक कर, भाई के घर का अन्न-जल स्वीकार न कर, तत्काल काशी की ओर चल देती है। भाई के आग्रह करने पर यह कहती है—'भाई, हम रक्त और हृदय से एक हैं, हमी जब एक दूसरे को न समझेंगे तो कौन समझेगा? तुम हठ न करो। मैं जरा भी नाराज नहीं, पर आत्म-प्रतिष्ठा का अवश्य ख्याल रखूंगी। मैं एक प्रतिष्ठित पुरुष की पत्नी और एक होनहार बच्चे की माता हूँ, यह मैं नहीं भूल सकती।'[1]

कुमुद संयम और त्याग की सजीव मूर्ति है। इसने इन्द्रिय-वासना को इतना जीत लिया है कि यह प्रकाश जैसे जागरूक तथा नारी-प्रतिष्ठा पक्षपाती युवक के बार-बार आग्रह करने पर पुनर्विवाह के लिए तैयार नहीं होती। इसका कथन है कि 'पुष्प की सार्थकता केवल विलास की सजावट में ही नहीं, देव-पूजा में भी सम्भव है। मेरे लिए वासना के जीवन से त्याग और तप का जीवन कहीं अधिक सरल है।'[2]

कुमुद के विचार इसके उदात्त चरित्र के परिचायक तथा नारी-मात्र के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

वेश्याएँ

१. केसर (दो किनारे-दादा भाई)

केसर वेश्या है। पच्चीस वर्ष की इस युवती के बदन में छरहरापन, नेत्रों में वेदना, मस्तिष्क में उलझन तथा प्रकृति में गम्भीरता है। किन्तु यह सामान्य वेश्याओं से भिन्न है। यह शरीर विक्रय नहीं करती, केवल गायन से खास-खास लोगों का मनोरञ्जन करती है। यह अपने पास आने वाले शौकीनों को शराब के पैग पर पैग भरकर पिलाती है किन्तु स्वयं कभी प्याला मुंह से नहीं लगाती। यह सब कार्यक्रम केवल उसकी बाहरी बैठक में चलता है। उसके घर के भीतर का वातावरण नितान्त सात्विक और भक्तिपूर्ण है। उसका निजी कमरा देव-मन्दिर की भाँति सुसज्जित रहता है। दीवारों पर देवताओं के चित्र हैं। बीच में देवमूर्ति फूल, फल, धूप, दीप आदि से चर्चित है। यह प्रतिदिन प्रभात में उठकर स्नानादि के पश्चात् देवार्चन करके भाव-मग्न होकर भक्ति के पद गाया करती है।

केसर अपने घृणित व्यवसाय और सामाजिक अनैतिकता की प्रतीक होने

---

१ वहते आँसू, पृ० १६१।

२ वही, पृ० २५०-५१।

पर भी सहृदय और सौम्य नारी है। एक बार दो रईसो के साथ जाते हुए एक युवक (उपन्यास का नायक नरेन्द्र) उनकी मोटर से टकराकर घायल हो जाता है। दोनों सम्भ्रान्त नागरिक इस अप्रत्याशित घटना को अपने नशे मे व्यवधान मानकर खीझ उठते हैं। किन्तु वेश्या केसर उसे यह कहकर अपने घर लिवा लाती है—अस्पताल मे मनुष्य के जीवन का कोई मूल्य नही समझा जाता। हमे स्वय इसकी सेवा करनी चाहिए। नरेन्द्र कुछ सचेत और स्वस्थ होने पर उसके घर से जाने लगता है। यह आग्रहपूर्वक उसे रोक लेती है। नरेन्द्र की जीवन गाथा सुनकर उसे स्थायी ठिकाना न मिलने तक यह अपने पास ठहरने का आग्रह करती है। माता-पिता और परिवार-हीन इस युवती को नरेन्द्र के रूप मे स्नेही भाई के दर्शन होते हैं। यह अन्त तक प्राणपण से इस स्नेह बन्धन का निर्वाह करती है। यह भ्रातृस्नेह इसके चरित्र मे निहित कर्तव्यनिष्ठा और व्यवहार-कुशलता के गुण को उजागर करता है। नरेन्द्र के सुधा की मिल मे काम करते हुए कैलाश और रमेश के षड्यन्त्र में फँसकर जेल पहुँचने पर केसर अपनी सूझ-बूझ से उन धूर्तों से महत्त्वपूर्ण दस्तावेज प्राप्त कर, सारे मुकदमे का पासा पलट देती है।

केसर का चरित्र उसके अपने शब्दो मे इस पंक्ति मे समाहित है—'नारी की एक कहानी, आँचल मे दूध, आँखो मे पानी।'[1]

२. जोहरा (मोती)

जोहरा कलकत्ता की वेश्या है। यह दिल्ली के शाह-दिल किन्तु बिगडे रईस खान बहादुर नवाब नियाज अहमद की रखैल है। जोहरा के इस सत्तर वर्षीय अभिभावक के अतःपुर मे अनेक स्त्रियाँ हैं। सभी तवायफें या रखैल हैं। उसकी तीनो पत्नियाँ मर चुकी हैं। दूसरी पत्नी से एक युवा पुत्री नीलम परिवार मे है। छिछले स्तर के ऐशो-आराम के सिवाय वहाँ कोई जीवन स्तर नही है। केवल जोहरा कर्म-निष्ठ तथा विवेक-शील है। यह अपनी सूझ बूझ से कूड़े के ढेर-सरीखे इस परिवार को त्याग और बलिदान की गौरवमयी परम्परा मे प्रतिष्ठित कर देती है।

जोहरा अज्ञातकुलशील हिन्दू बाला है। वेश्यापन उसे माँ से विरासत मे मिला है। किन्तु यह अन्य वेश्याओं मे भिन्न है। इसकी आँखो मे किसी विशिष्ट पुरुष की तलाश है। इस के हृदय मे पति-पत्नी के सुखी ससार मे रहने की

---

१. दो किनारे, पृ० १२५।

आकांक्षा है। अतएव इसके यहाँ हर कोई नहीं आता। यह जीवन में केवल दो व्यक्तियों को अपनाती है—प्रेमी के रूप में क्रांतिकारी युवक हसराज को, सरपरस्त के रूप में नवाब नियाज अहमद को।

जोहरा का हृदय प्रेम का अक्षय भण्डार है। प्रेमी, अभिभावक तथा भाई-तीनों के प्रति इसकी अप्रतिम आत्मीयता है। हसराज से उसकी भेंट एक दिन अकस्मात् उसके कोठे पर होती है। उसका अनोखा प्यार पाकर जोहरा अपने को धन्य मानती है। इसे अज्ञात है कि हसराज गदर-पार्टी का सदस्य है और केवल स्वयं को पुलिस की नज़रों से बचाने के लिए इसके पास आता है। एक दिन सहसा हसराज के चले जाने पर इसकी प्रणयासक्ति प्रकट होती है। जोहरा रात-दिन उसकी प्रतीक्षा करती हुई पाँच वर्ष बिता देती है। नवाब के सम्पर्क में दिल्ली आकर इसका जीवनक्रम बदल जाता है। किन्तु इसके हृदय से प्रेम का वह अंकुर सर्वथा समाप्त नहीं हो पाता। सात वर्ष पश्चात् इसके भाई मोती के, इसके कमरे में हसराज को छिपाकर, स्वयं जेल जाने पर इसके प्रेम का परिचय पुनः मिलता है। यह अपने हृदय के देवता को पलकों पर बैठा कर घर में रखती है। किन्तु देश हित आत्म-बलिदान का लक्ष्य ज्ञात होने पर यह उसके मार्ग की बाधा नहीं बनती। प्रेमी को हँसते-हँसते बलि-पथ पर जाने के लिए विदा करना इसके प्रेम को और भी उज्ज्वल बना देता है।

जोहरा का नवाब के प्रति सच्चा आत्मीय भाव है। नवाब के हरम में रखैल की भाँति रहती हुई यह मन से उसकी शुभचिन्तिका है। अपने सेवा-भाव से यह उसके बहुत निकट पहुँच जाती है। नवाब केवल इसी के सम्मान में कुछ नर्म होता है। वह इसकी प्रत्येक इच्छा पूरी करने के लिए तत्पर रहता है। खाली समय में नवाब को बीड़े बनाकर खिलाना और बिना गुसल किए और बिना खाए-पिए घर से बाहर न जाने देना इसकी सहृदय आत्मीयता के परिचायक हैं। तभी नवाब अपनी बेटी से इसे माँ कहकर सलाम करने को कहता है।

जोहरा का बहिनरूप उज्ज्वलतम है। इसका छोटा भाई मोती मामा के पास गाँव में था। यह माँ की मृत्यु के उपरान्त उसे अपने पास कलकत्ता बुला लेती है। यह स्वयं अधिक नहीं पढ़ पाती किन्तु मोती को उच्च शिक्षा दिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ती। यह मोती को अच्छा इन्सान बनाने के लिए जी-जान से प्रयत्न करती है। एक बार मोती मित्र हुसैनी के साथ सैर-सपाटा कर बहुत रात गए घर लौटता है। मोती बहिन का क्रोधाविष्ट चेहरा देख प्रातः उठते ही अध्ययन-मग्न हो जाता है। एक बार मोती रामप्रकाश से लिए रुपये न लौटा कर, अदालत में झूठ बोलकर उल्टे खर्चे के तीन रुपये लेकर उड़ा जाता

है। जोहरा उसे इतना डांटती है कि मोती रो रोकर क्षमा मांगने पर विवश हो जाता है। यह अपने भाई को ईमानदार स्वावलम्बी तथा कर्मण्य व्यक्ति बनाना चाहती है। इसीलिए मोती के क्रान्तिकारी हसराज के बदले स्वयं को पुलिस के हवाले कर देने पर, उसे छुड़ाने में लगे नवाब को रोककर कहती है—कोई जरूरत नहीं, हुजूर। मोती नालायक है, आवारागर्द है, भोगे अपनी करनी। इतना कहा कि कोई धंधा कर ले, पर सुनता ही नहीं। अच्छा हुआ, पकड़ा गया। अब कुछ सूझेगा।[1] जोहरा के इन कटु शब्दों के पीछे एक बहिन का अपार मधुर स्नेह छिपा हुआ है।

जोहरा के भ्रातृ स्नेह की छाप मोती के हृदय पर अंकित है। वह इस बहिन नहीं, माँ की भांति मानकर पूजता है और इससे कभी कुछ नहीं छिपाता। वह बहिन से हर बात पर खूब तक वितर्क करता है। पर, जोहरा सौ की एक ही कहती है—मैं तुझ से मगजपच्ची नहीं कर सकती। पर याद रख, मैं तुझे यों आवारागर्द नहीं घूमने दूंगी। जोहरा के इस व्यवहार का मोती पर पूरा प्रभाव पड़ता है। क्रान्तिकारी हसराज के स्थान पर, जेल में जाते समय, मोती अपने इस श्रेष्ठ आचरण का श्रेय जोहरा को देते हुए कहता है—'मुझे पहले अपनी जीजी की चिन्ता थी, परन्तु अब मैं सोचता हूँ कि तुम्हारी चिन्ता मैं क्यों करूँ? तुम तो सदैव मेरी पथ-प्रदर्शक रही हो और देश की स्वतन्त्रता के पथ पर जाने की खुशी-खुशी मुझे इजाजत दोगी।'[2] जोहरा वीर भाई की वीर बहिन लक्षित होती है।

जोहरा का व्यक्तित्व महान् है। समाज के सर्वसामान्य जीवन में यह आदर्श सिद्धान्तवादिनी स्त्री प्रकट होती है। अदालत में गगाजली उठाकर झूठ बोलना इसकी दृष्टि में जघन्य पाप है। मानवीय प्रतिष्ठा की रक्षा के प्रति यह अत्यन्त सजग है। मोती के आचरण पर व्यथित होकर यह कहती है—'अभागा, बदनसीब, न कहीं नौकरी करेगा, न कोई रोजगार। अदालत में जाकर झूठी गगाजली उठा लेगा? इज्जत, आबरू, इन्सानियत, शर्म, लिहाज, सभी भूल कर खा गया।'[3] इसी भाई के देश हित कारागार में यातनाएँ सहने पर यह दुखी होने की बजाय गर्व से कहती है—यह तो मनुष्य का कर्तव्य है। जो अपने कर्तव्य का पालन करता है, उसी का मनुष्य जीवन सफल होता है।

---

१ मोती, पृ० ७३।
२ वही, पृ० ६५।
३ वही, पृ० २६।

जोहरा का चरित्र सामाजिक कुत्सा की गुदड़ी में छिपे नारी-रत्न की आभा से मण्डित है।

३ चम्पा (गोली)

चम्पा गौर वर्ण और सुडौल नाक-नक्श वाली नाजुक युवती है। उसके रूप की ख्याति सारे ठिकाने में फैली हुई है। जब सद्यःस्नाता चम्पा दर्पण देखती है तो उसमे सोने के रंग की अनावृत देह से मोतियों की लड़ी की भाँति झर-झर कर गिरती पानी की बूँदें और अपना सम्पूर्ण जागृत यौवन देखकर वह स्वयं अपने आप पर मुग्ध हो उठती है। यदि कुँवरी को ब्याहने आये राजा का मन उसपर आसक्त हो गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। इस पर भी वह भोली तथा चचल है। उसकी भोली भाली बातो से सभी खुश होते थे। अकारण, उसके मन मे एक अजीब गुदगुदी होती और वह हँसने लगती। राजा द्वारा अचानक देख लिए जाने और विलास कक्ष मे आमन्त्रित किए जाने पर उसका सहज कुतूहल अग-अग में फूटा पड़ता है। उसका अल्हड़पन धीरे-धीरे उसे राजा की भोग-लिप्सा मे डुबा कर वारविलासिनी का रूप दे देता है। किन्तु शीघ्र ही उसका हृदय ग्लानि से भर उठता है। अपनी स्वामिनी कुंवरी के प्रति उसके पति द्वारा किये गये घोर अन्याय मे वह भी सहभागिनी है, यह सोचकर वह कुँवरानी के सम्मुख जाने से पहले मर जाना चाहती है। पर, जब उसे वहाँ जाना ही पड़ता है, तो वह आर्तनाद कर उठती है—'अन्नदाता, मेरी तक़सीर माफ करना। माई-बाप, मेरा अपराध नहीं है। अपनी कृपा और सेवा मे मुझे दूर न करना, दुहाई महारानी जी की।'[1]

उसकी स्थिति बड़ी विचित्र है। शरीर सुख उसे निरन्तर राजा की विलास-सामग्री के उपभोग की ओर खींचता है। मन का दुःख कभी-कभी उसे इतना उन्मत्त बना देता है कि वह अपने सब अलकार नोच-नोचकर फेंक देती है। उसका जी आत्म-हत्या के लिए मचलने लगता है। किन्तु परिस्थितियाँ उसे जीवन के और कटु अनुभव कराने के लिए आगे धकेलती हैं।

चम्पा के तन और मन की स्थिति की यह भिन्नता उसके प्रेमिका-रूप मे भी दिखाई देती है। *राजमहल में अपने किसून के साथ उसका विवाह कर दिया* जाता है। इतनी आयु तक अपने वैध पति के अग-स्पर्श से दूर रहते हुए वह मानसिक रूप से अपने पातिव्रत का विलक्षण ढग से पालन करती है। वह पति को परमेश्वर मानती है। राजा के अन्तःपुर के दारविलासिनी रूप मे नाचा

---

[1] गोली, पृ० ७५।

ड्योढ़ियों के नारकीय जीवन से मुक्ति पाते ही वह तन-मन प्राण से पति-सेवा में तन्मय हो जाती है। इक्कीस वर्ष तक चाकर के रूप में जिस व्यक्ति ने उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन किया, सब अधिकारों से वंचित होकर उसी की पाद-पूजा में अपार तृप्ति का अनुभव करना, चम्पा के नारीत्व के मनोवैज्ञानिक पक्ष को स्पष्ट करता है। उसने राजा की अकशायिनी बनकर पाँच सन्तानों को जन्म दिया। किन्तु उसकी आत्मा अपने पति (किसुन) में केन्द्रित रही। अन्त में राजमहलों के षड्यन्त्रों से बचती हुई वह सुरक्षित दिल्ली पहुँच जाती है। अपने पुत्र पुत्रियों की सुरक्षा-व्यवस्था कर वह पुन पति की रक्षा के लिए उसी यातना-कुण्ड में जा कूदती है। वह निश्चय कर लेती है कि या तो अपने पति को दासता से मुक्त करेगी या मर मिटेगी। वह नई रानी चन्द्रमहल के सेवकों की मार से पति को बचाते बचाते लहू-लुहान हो जाती है, पर अपने निश्चय से नहीं डग-मगाती। एक दिन अकस्मात् किसुन के मृत्यु का ग्रास बन जाने पर वह यह कहकर सन्तोष कर लेती है कि अब कोई उसके पति को परलोक में गोला गुलाम नहीं कह सकता।

चम्पा के विविधोन्मुखी व्यक्तित्व में ममता और वात्सल्य का सम्मिश्रण है। माँ बनने का आभास होते ही, वह उसके नैतिक या सामाजिक पक्ष का विचार न कर, अनिर्वचनीय आनन्द और आशा से उल्लसित हो उठती है। अपनी कोख से उत्पन्न बालक के नेत्रों में अपने प्रति स्नेह, प्यार और आत्मीयता की झलक देखकर उसके अन्धकारपूर्ण मन मन्दिर में बिजली-सी कौंध जाती है। अवसर मिलते ही वह अपने पुत्रों और पुत्रियों के लिए उच्च शिक्षा तथा सुख-सुविधा की पूर्ण व्यवस्था कर अपने आपको कृतकार्य मानती है। नई रानी चन्द्रमहल के अत्याचार करने पर भी वह अपनी पुत्री को गोली बनने नहीं देती।

विभिन्न विषम परिस्थितियाँ चम्पा के जीवन को कसौटी पर कसे स्वर्ण-सा खरा बना देती हैं। राजा के साथ विदेश-यात्रा करने के पश्चात् उसके मन में नारी-स्वाधीनता के विचार उभरने लगते हैं। विलायत का पानी पीकर और अंग्रेज महिला से शिक्षा पाने पर वह जीवन के सच्चे स्वरूप को समझने में समर्थ होती है।

चम्पा अपनी अनोखी सूझ-बूझ से चन्द्रमहल, गंगाराम आदि द्वारा अपने विरुद्ध किये सभी षड्यन्त्रों को निरस्त कर देती है। ड्योढ़िया के नारकीय वाता-वरण में यातना-ग्रस्त, असहाय स्त्रियों को संगठित कर वह आततायी प्रबन्धक के अन्याय का विरोध करती है। उसकी प्रेरणा से नये राजा इस अमानुषिक प्रथा को समाप्त कर देते हैं। चम्पा ड्योढ़ियों से मुक्ति पाने वाली महलों दु खी-दीन

स्त्रियों की सेवा में तत्पर हो अपने को धन्य मानती है। पाखण्डपूर्ण दिखावटी धर्मकृत्यों के प्रति उसके हृदय में घृणा है। वैसे तो वह बचपन से ही दबंग तथा सतेज प्रकृति की है। किन्तु परिस्थितियाँ उसे और भी निर्भीक वीरांगना बना देती हैं। राजा के विकृत-मस्तिष्क बड़े भाई द्वारा अपने सतीत्व पर आक्रमण होते देख, वह उसे उसी की बन्दूक से घायल कर भाग जाने पर विवश कर देती है।

आजीवन विषपायिनी चम्पा का परिचय उसी के शब्दों में इस प्रकार है—'मैं चाह रही थी कि धरती फट जाए और मैं उसमें समा जाऊँ। परन्तु धरती फटी नहीं, मैं मरी नहीं, जीवन मुझे ठगता गया। कभी हँसकर और रोकर, मैंने विधाता के सारे लेख पढ़ डाले। दर्द मैं सह गई, जैसे नीलकण्ठ ने हलाहल पीकर सह लिया था।'[1] लेखक के शब्दों में वह 'ऐसी नारी है, जिसकी ममता की स्त्री हम ससार के पर्दे पर नहीं ढूँढ सकते। उसका व्यक्तित्व निराला है, आदर्श भी निराले हैं जीवन निराला है, धर्म निराला है सुख-दुःख और ससार निराला है।'[2]

चम्पा विलक्षण नारी है। उसमें अनेक गुणों का समन्वय है।

४. बी हमीदन (खून और खून)

बी हमीदन अमृतसर की प्रसिद्ध वेश्या है। पहले यह गायिका के रूप में अपने भाई हमीद के साथ रहकर सुख शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत कर रही थी। परिस्थितियाँ धीरे-धीरे इसे वेश्यापथ पर डाल देती हैं। बहुत छोटी उम्र में अनुज के साथ असहायावस्था में भटकते हुए इसे किसी वृद्धा गायिका की शरण प्राप्त हुई थी। नृत्य-गायन में इसकी तल्लीनता के कारण इसका सार्वजनिक जीवन अन्य कुरसाओं की ओर बढ़ नहीं पाता। इस कला-साधिका को भारत विभाजन के समय साम्प्रदायिक उन्माद से बचने के लिए लाहौर जाना पड़ता है। इसका भाई अमृतसर में कहीं रह जाता है। टैक्सी-ड्राईवर इसे दो हजार रुपये लेकर लाहौर पहुँचाने का वचन देता है। उसी ड्राईवर को पाँच हजार रुपये देकर एक हाजी साहब अपना परिवार लाहौर ले जाना चाहते हैं। किन्तु वे लोग इस 'रजील और बाजारू' औरत के साथ टैक्सी में बैठने को तैयार नहीं होते। हमीदन ये अपमान-जनक शब्द सुनकर भी खून का घूँट पीकर टैक्सी में चुपचाप पड़ी रहती है। हाजी साहब को ड्राईवर की वचनबद्धता के आगे झुकना पड़ता है। छः मील चलने पर आक्रान्ता लोग आकर टैक्सी को घेर लेते हैं और कहते हैं—

---

१. गोली, पृ० १६८।
२. वही, पृ० ३।

'या तो सभी मरें या औरतों में से एक को हमारे पास छोड़ कर चले जाएं। औरत सुबह लाहौर पहुँच जायेगी।' हाजी अपनी पत्नी और पुत्रियों को जीते-जी उन लम्पटों की वासना की भट्टी में कैसे झोंकता। इस अवसर पर वो हमीदन टैक्सी से उतर कर सम्भ्रान्त परिवार की आबरू को बचाने के लिए, आक्रान्ताओं को आत्म समर्पण कर देती है। यह अपनी गठरी हाजी साहब को सौंपती हुई हाजी साहब से कहती है—'मेरी सारी रकम इस गठरी में है। आप एक शरीफ बुजुर्ग मुसलमान हैं। आपकी और आपके खानदान की इज्जत बचाना मेरा फर्ज है। मैं एक रजील बाजारू औरत जरूर हूँ, मगर इन्सानी फर्ज से बेखबर नहीं। यह गठरी खुदा के सामने आपको अमानत सौंपती हूँ। अगर जिन्दा लाहौर पहुँच गई तो ले लूंगी।'[1] आत्मोत्सर्ग की यह मूर्ति लाहौर तो पहुँच जाती है, किन्तु हाजी साहब के सर्वथा अपरिचित बन जाने पर, सारी पूँजी गँवा कर वेश्या के रूप में रहने पर विवश हो जाती है।

हाजी साहब का दामाद नवाब ननकू शराफत का लबादा ओढ़ इसे शरण देने के बहाने, अपने घर ले जाता है। वहाँ से यह भाई की खोज में श्रीनगर ले जाई जाती है। किन्तु वहाँ नवाब के रंग-ढंग, उसकी विलासिता तथा भारत-विरोधी गतिविधियाँ देखकर हमीदन का आत्म सम्मान और देशाभिमान जाग उठते हैं। नवाब द्वारा इसके शरीर को वासना का ग्रास बनाने का प्रयत्न करने पर यह उसे फटकारती हुई कहती है—'यह क्या बदतमीजी है। मैं मछली नहीं हूँ, काँटा हूँ। आप जैसे नवाबों को फँसाना और बाजार में खड़े करके बेच देना मेरा काम है। दमड़ी का भी नहीं छोड़ूंगी। अगर तनिक भी जोर-जबर किया तो जिबह हो जाऊँगी या कर दूंगी।'[2]

यहाँ से बचकर यह किसी प्रकार हिन्दू नारी के वेष में दिल्ली पहुँचती है। बाद में इसी की सूचना पर नवाब ननकू देश-द्रोह के अपराध में मृत्यु-दण्ड पाता है।

हमीदन स्नेह शील बहिन भी है। अमृतसर में स्वयं नाच गाकर यह निर्वाह करती है। किन्तु अपने अनुज की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध करती है। भाई के व्यक्तित्व को भारतीय संस्कारों के अनुरूप ढालने में यह पूरा प्रयास करती है। उसकी खोज में लाहौर की खाक छानती हुई यह नवाब ननकू के जाल में फँसती है। भाई से मिलने की उमंग में यह श्रीनगर तक चली जाती है। अन्त में केशव

---

१. खून और खून, पृ० १२१।
२. वही, पृ० १६५।

की माँ के साथ पठानकोट से लौटने पर केशव के साथ हमीद को देखन पर आनन्द विभोर हो जाती है।

हमीदन सर्वत्र आत्म अस्तित्व की रक्षिका समर्थ नारी सिद्ध होती है।

परम्पराशील, मर्यादावादिनी नारियाँ

१. लेडी शादीलाल (नरमेध)

यह सर शादीलाल की पत्नी है। कुल प्रतिष्ठा तथा वाह्य-सम्मान के प्रति यह विशेष सतर्क है। प्रतिष्ठित धनी-मानी सर ठाकुरदास का इकलौता पुत्र होने के कारण यह त्रिभुवन के साथ अपनी पुत्री किरण का वाग्दान स्वीकार करती है। ठाकुरदास सारी सम्पत्ति किरण के नाम लिखकर त्रिभुवन को अकिंचन कर देता है। इस पर एक ओर लड़की को अतुल सम्पत्ति मिलने पर यह प्रसन्न होती है, दूसरी ओर त्रिभुवन के वंश पर लगे कलंक से इतनी क्षुब्ध है कि उससे पुत्री का सबंध विच्छेद करने को तत्पर है। उधर किरण त्याग और उत्सर्ग का पथ अपनाना चाहती है तो लेडी शादीलाल चिल्ला उठती है—'अब यह सम्पत्ति लौटाई नहीं जाएगी।' साथ ही यह किरण को चेतावनी देती है कि 'यदि यह लड़की उस खानदान से सम्बन्ध रखेगी तो हमारा इससे कोई सम्बन्ध नहीं रह सकता।'[1] किन्तु स्वाभिमानिनी और आत्मनिर्भर पुत्री के दृढ़ निश्चय के सामने यह लाचार रह जाती है।

वास्तव में ऐसी पुरानी पीढ़ी की स्त्रियों की नई पीढ़ी के सामने पराजय स्वाभाविक है।

२. नीलम की सास (नीलमणि)

यह सहज वात्सल्य और ममता की सजीव मूर्ति है। उच्चशिक्षा प्राप्त, स्वाभिमानिनी एवं विद्रोहिणी प्रकृति वाली अपनी पुत्रवधू नीलमणि को यह प्रथम साक्षात्कार में अनन्य आत्मीय बना लेती है। पुत्र तथा पुत्रवधू के सुखमय जीवन में इसका चरम आनन्द निहित है। नीलमणि तथा महेन्द्रकुमार सुहागरात की रसपूर्ण घड़ी में तर्क एवं अहभाव में जड़ बुद्धि हो जाते हैं। यह अपनी स्नेह-मयी बातों से उन्हें विगलित करके उनके हृदयों में पश्चात्ताप की भावना उत्पन्न कर देती है। इससे इसकी कुशल व्यावहारिक बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है।

३. नीलम की माँ (नीलमणि)

यह परम्परावादिनी, रूढ़िग्रस्त, किन्तु मर्यादामयी नारी है। अपनी इकलौती

---

१ नरमेध, पृ० ७२।

पुत्री की उच्चशिक्षा तथा उन्मुक्त प्रकृति के कतिपय स्वाभाविक परिणामों से यह परेशान है। नीलम का विवाहोपरान्त भी विनय से मेलजोल इसे पसन्द नहीं।

नीलम की माँ का स्वभाव कुछ कर्कश है। तर्क मे पुत्री और पति को परास्त न कर सकने के कारण यह वाणी की कर्कशता द्वारा अपना रोष व्यक्त करती है। नीलम की दराज की वस्तुएँ निकाल कर बाहर फेंक देना अथवा किताबों को आग लगा देने की घोषणा करना इसके प्रमाण हैं किन्तु इसकी इस प्रवृत्ति के पीछे पुत्री-स्नेह और उसकी शुभकामना निहित है। नीलम पर नाराज होने के पश्चात् उस प्रेममयी जननी का मन क्षुब्ध हो उठता है। इसके हृदय में नीलम के सुखमय भविष्य की उत्कट लालसा है। इसीलिए यह पति के विरोध करने पर भी पुत्री को दामाद के साथ भेजने के लिए तत्पर है। कुछ दिन बाद नीलम के अकस्मात् मायके लौट आने पर इस का मन पुत्री और दामाद की मानसिक दूरी की कल्पना करते ही विषाद से भर जाता है। अन्तत नीलम के पश्चात्ताप मे इसका ममत्व धन्य हो जाता है।

नीलम की माँ व्यवहार-कुशल एव पारिवारिक मर्यादा की अनुगामिनी है। पुत्री के सुशिक्षित एव अपने प्रति क्षुब्ध होने पर भी यह उसे समझाती है—'तुम बच्ची हो, पति को शायद तुमने अभी नहीं पहचाना है, पर माँ की बात ध्यान मे रखो। रस मे विष कभी न घोलना। तुममें विद्या-बुद्धि बहुत है। विवेक और विनय भी उत्पन्न करना। इसी से तुम्हारा नारी-जन्म धन्य होगा।'[1] नीलम के मायके लौटने पर यह पहली दृष्टि मे जान लेती है कि उसकी आँखें सौभाग्य-रेखा से रिक्त हैं। यह पुत्री के हृदय मे भलीभाँति अकित करा देती है कि ज्ञान को सार्थक बनाने के लिए अनुभूति की नितान्त आवश्यकता है।

४. अरुणा (धर्मपुत्र)

अरुणा डॉ० अमृतराय की सुशील पत्नी है। सन्तान-लालसा तथा दया-भाव इसके मे स्वभावत व्याप्त हैं। इसीलिए नवाब मुश्ताक अहमद द्वारा अपनी पोती हुस्नबानू की अवैध सन्तान को निज सन्तान के रूप मे लेने का आग्रह करने पर यह तत्काल मान जाती है। किन्तु यह घटना इसकी सुखी गृहस्थी मे चिन्ता और विषाद के बादल घेर लाती है। इसका पति हुस्नबानू के अनुपम हुस्न पर आसक्त हो जाता है। पति की यह अन्यमनस्कता अरुणा को व्यग्र तथा कालान्तर

[1] नीलमणि, पृ० २३-२४।

में नारी-सुलभ ईर्ष्या से ग्रस्त कर देती है। यह मूक व्यथा के ताप में घुलने लगती है। हुस्नबानू का हीरे-सा सुन्दर बालक अपनी गोद में पाकर भी इसकी नारी-कुण्ठा उस निरीह निर्दोष शिशु के प्रति इसके मन में विरक्ति का उदय कर देती है।

सहज ईर्ष्यागत यह मनोव्यथा अरुणा को अव्यावहारिक नहीं होने देती। हुस्नबानू प्रेम और भक्ति का अन्तर स्पष्ट कर देती है। डॉ० अमृतराय अरुणा के सम्मुख अपने मन के क्षणिक पाप को व्यक्त करते हुए क्षमायाचना करता है। फिर यह किसी प्रकार का सशय अथवा अरोचक व्यवहार न कर कहती है—'तुम क्षमा कैसे माँग सकते हो भला! मेरे तुम्हारे बीच इतना अन्तर है, इतना द्वि-भाव है कि तुम अपराधी बनो और मैं क्षमा करूँ? न, न, इस नाटक की जरूरत नहीं है। तुम अपराध करोगे तो भी, पाप करोगे तो भी, पुण्य करोगे तो भी, सब में मेरा हिस्सा है। हम-तुम दो थोड़े ही हैं?'[1] यह कथन इसकी पति-परायणता का प्रमाण है।

अरुणा व्यवहार-कुशल नारी है। यह हुस्नबानू से मिलने पर उसके मन में किसी प्रकार की हीन भावना या दुराव का आभास नहीं होने देती। हुस्नबानू के ससुराल जाने से पूर्व यह उसे सादर घर में निमन्त्रित कर अपने हाथ से खाना खिलाकर स्वय उसके हाथ से खाती है। हुस्नबानू द्वारा जातीय भिन्नता का भय व्यक्त करने पर अरुणा का उत्तर पठनीय है—'दुलसो मत, यह पवित्र काम है, पुण्य है। जब तक मैं तुम्हारे साथ नहीं खाऊँगी, तुम्हारे बेटे को अपनाऊँगी कैसे?'[2] कालान्तर में अरुणा पति और हुस्नबानू के स्नेह-सूत्र में स्वय को भागीदार बना लेती है। अन्त में कट्टरपन्थी दिलीप द्वारा रगमहल को आग लगाने का निश्चय कर लेने पर यह अपने परिवार की बलि देकर भी हुस्नबानू को बचाने के लिए तत्पर दिखाई देती है।

अरुणा स्नेहमयी सखी के साथ ममतामयी माँ भी है। इसे अपने बच्चो से प्यार है। डाँट-डपट करना इसके स्वभाव में नहीं है। बच्चो के तरुण तथा समझदार हो जाने पर भी यह उनसे शिशुओ का-सा व्यवहार करती है। सुशिक्षित तरुण बच्चे भी इसकी गोद में बैठकर आन्तरिक स्नेह प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं। दिलीप अपने मुस्लिम-सन्तान होने का रहस्य खुलने पर इस परिवार को छोड़ने के लिए उद्यत हो जाता है। इस पर अरुणा स्नेह-विह्वल हो पछाड़ खाकर गिर पड़ती है।

---

१. धर्मपुत्र, पृ० २८।
२. वही, पृ० ३३।

५ सुधीन्द्र की माँ (आत्मदाह)

सुधीन्द्र की माँ ममता और स्नेह की सजीव मूर्ति है। यह अपनी लोकोत्तर आभा को पुत्रों और पुत्रवधुओं में वितरित करती अघाती नहीं। इसका हृदय कुसुम-कोमल तथा शरीर वज्र कठोर है। घर के सब काम यह अपने हाथ से करती है। यह गाँव-भर की प्यारी, अन्नपूर्णा चाची है। बहुओं के प्रति इसकी अपार ममता है। बड़ी पुत्रवधू माया की मृत्यु पर यह जीवन भर उसका गुण-गान करती रही। उसके स्थान पर आई सुधा इसे प्रेम और त्याग की नई मूर्ति के समान देखती है। पुत्रों के प्रति इसका स्नेह असीम है। पुत्र वीरेन्द्र की मृत्यु का आघात यह सहन नहीं कर पाती और मूक व्यथा को हृदय में लिए परलोक सिधार जाती है।

यह आजीवन असीम धैर्य और विवेक बुद्धि का परिचय देती है। माया के वियोग में व्याकुल पुत्र सुधीन्द्र को इसकी सान्त्वना पागल होने से बचा लेती है। घर में झगड़ालू पुत्रवधू (रामजस-पत्नी भगवती) के आने पर पूरे परिवार में हाय-तोबा मच जाती है। इस समय सुधीन्द्र की माँ संयम और विवेक से स्थिति को सभालने का प्रयत्न करती है। सुधीन्द्र प्रथम पत्नी माया को न भुला सकने के कारण नई बहू सुधा से दूर-दूर रहता है और कहीं-कहीं की यात्रा के कार्यक्रम बनाता है। ऐसे समय सुधीन्द्र की माँ अपनी सूझ-बूझ से धीरे-धीरे सुधा को उसके सामीप्य का अवसर देकर उसके कुंठित मन को स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करती है।

सुधीन्द्र की माँ पूरी आदर्श भारतीय नारी है।

६ सुखदा (हृदय की प्यास)

सुखदा गरीब घर की अशिक्षित लड़की है। वह घर के वातावरण में शान्त-भाव से रमी रहती है।

सुखदा पतिपरायणा है। पति के मुख पर तनिक भी मालिन्य देखकर, वह व्याकुल हो उठती है। वह पति द्वारा उपेक्षित है, फिर भी उसपर जी-जान से न्योछावर है। उसका पति प्रवीण मित्र भगवती की बहू पर आसक्त है। पर सुखदा के हृदय में पति के प्रति अटूट निष्ठा है। भगवती के मुख से उसकी पत्नी के साथ प्रवीण के अवैध सम्बन्ध की बात सुनकर भी उसे विश्वास नहीं होता।

---

१ धर्मपुत्र, पृ० ३३।

सुखदा का पति (प्रवीण) परिस्थितिवश भगवती की बहू और बच्चे के साथ घर से निकल जाता है। वहीं से वह घर पत्र लिखकर सारी स्थिति स्पष्ट करता है कि उसका भगवती की बहू के साथ भाई-बहिन का सम्बन्ध है। सुखदा पति की इस सच्चरित्रता पर गर्व से फूल उठती है। फिर पति के रुग्ण विक्षिप्त होकर घर लौटने पर वह उसकी सेवा मे दिनरात एक कर देती है। सुखदा की सेवा के फलस्वरूप उसका पति (प्रवीण) मौत के मुँह से बच निकलता है।

सुखदा अपनी न्यूनताओं से परिचित है। वह जानती है कि रूप और गुण में वह पतितुल्य नही है। फिर भी वह सुन्दर पतिचरणों के आश्रय को अपना सौभाग्य मानती है। परिस्थितियाँ उसे सुघड गृहिणी बना देती हैं। सदा की रोगिणी सास को तनिक भी शिकायत का अवसर न देती हुई वह ब्राह्म मुहूर्त मे लेकर आधी रात तक झाड़ू, बर्तन, भोजन, कपडे का सब काम समेटती है। परन्तु उस अकेली जान से सब सभल नही पाता, इसलिए घर गन्दा दिखाई देता रहता है। इसी कारण पति उससे प्रसन्न नहीं हो पाता। फिर भी, वह निराश या अकर्मण्य नही होती। पति के व्यग्य-वचन सुनकर वह विचलित नही होती। वह उसम कुछ पढ कर और सभ्य बनने को सदा तत्पर रहती है।

सुखदा मिलनसार और हँसमुख है। वह अपने सद्व्यवहार के कारण भगवती की बहू की क्षण भर मे अन्तरग सखी बन जाती है और अन्त तक उसे प्राणवत् रखती है। भगवती की बहू से प्रथम बार मिलने जाते समय उसका पति उससे, बहू को मुंह दिखाई के रूप मे कोई बहुमूल्य वस्तु देने का आग्रह करता है। इस पर वह हँसकर जवाब देती है—'हमे क्या उसका मुह मोल लेना है? देखने को दो रुपये बहुत हैं!' किन्तु उसका पति उसे अपना कोई आभूषण भेंट करने का आदेश देता है। वह बिना ननु-नच किए यह बात मान जाती है। इससे, उसकी त्याग-भावना और आज्ञाकारिता के गुण स्पष्ट हैं।

सुखदा वाक्चतुर है। भगवती द्वारा उसके पति पर दुराचारी होने का आरोप सुनकर वह उसे यह कहकर निरुत्तर कर देती है—"जिसने तुम्हारी स्त्री का धर्म नष्ट किया है, तुम उसकी स्त्री का धर्म नष्ट करो।"[1]

सुखदा को अपनी और अपने परिवार की मर्यादा का बहुत ध्यान है। भगवती के मुख से पति के पर-स्त्री-प्रेम की बात सुनते ही वह उग्र होकर कहती है—'स्त्री पति का आधा अग है। पति के पाप-पुण्य सब में उसका आधा हिस्सा है। आधा दण्ड मुझे दो। मेरा प्राण-नाश करो। फिर जहाँ वह मिलें, तुरन्त

1. हृदय की प्यास, पृ० १८१।

मार डालना। मैं नहीं चाहती कि दुनिया मेरे पति को लम्पट रूप में देखे।"[1] विधि-विडम्बना-वश कुछ समय पश्चात् उसको आन पर आँच आने लगती है। वह तत्काल आत्महत्या का निश्चय कर लेती है।

इन विशेषताओं के कारण सास उसे 'साक्षात् लक्ष्मी' कहती है। अन्त में पति अपने दुर्व्यवहार पर ग्लानि प्रकट करता है।

सुखदा सचमुच आदर्श कुलवधू है।

७ शारदा (हृदय की परख)

शारदा, सरला के अवैध पिता भूदेव की पत्नी है। विवाह के कुछ दिन पश्चात् भूदेव इसे छोड़ जाता है। पति के आगमन की प्रतीक्षा में यह अपने भाई के घर रहने लगती है।

शारदा मूक प्रणयिनी है। किशोरावस्था में भूदेव से पढ़ते समय यह उसे अपना हृदय अर्पित कर देती है। फलस्वरूप दोनों का विवाह हो जाता है। भूदेव अपनी सहपाठिनी शशिकला के प्रति आसक्त है। वह गुप्त रूप से शशिकला से सम्पर्क बनाये रखता है। शशिकला एक पुत्री (सरला) की माँ बन जाती है।

लगभग बीस वर्ष पश्चात् अकस्मात् सरला के आने पर शारदा का हृदय पति प्रणय की अपेक्षा पुत्री-स्नेह की ओर उन्मुख हो जाता है। सरला के प्रति उसकी अगाध ममता सरला को सगी माँ की गोद का-सा अनुभव देती है। कुछ समय बाद अपनी बालसहचरी शशिकला के पुनर्विवाह के अवसर पर पति के लुप्त होने और सरला के जन्म का रहस्य शारदा को ज्ञात होता है। नारी-सुलभ ईर्ष्या के कारण क्षणभर के लिये उसका हृदय सोचता है—क्या यही मेरी सखी मेरा सर्वनाश करने वाली डायन है? पर शारदा शशिकला द्वारा पश्चात्ताप करते ही द्रवित हो जाती है। वह उसे 'प्यारी बहिन' कहकर हृदय से लगा लेती है। अब शारदा सरला को यह कहकर पहले से भी अधिक प्यार करने लग जाती है—"मेरी प्राण, अब तुम्हीं तो मेरी आशा की छड़ी हो, अब तक गैर की तरह रही, मुझे क्या खबर थी बेटी कि तू मेरी ही है।"[2]

अन्ततः उसकी साधना सफल होती है। संयोगवश एक दिन शारदा का भाई सुन्दरलाल बाजार में चित्र बेचते हुए भूदेव को पहचान कर घर ले आता

१ हृदय की प्यास, पृ० १८१।
२ हृदय की परख पृ० ६५।

है और शारदा चालीस वर्ष की अवस्था में फिर सौभाग्यवती हो जाती है।

अपने पति की विवाह पूर्व की अवैध सन्तान के प्रति प्रगाढ़ स्नेह शारदा को ममतामयी सिद्ध करता है। वह पुरुषवर्ग द्वारा प्रवंचित होने पर भी आजीवन सती धर्म पर अडिग रहने वाली आदर्श भारतीय नारी है।

कर्मठ नारियाँ

१. मालती (दो किनारे दो सौ की बीवी)

मालती अज्ञातकुलशील युवती है। यह एक गाँव के अनाम गृहस्थ की भानजी के रूप में उसके पास रहती है। गोरे रंग, छरहरे बदन, काले नेत्र और घुंघराले बालों वाली यह बाईस वर्षीय युवती कई वर्ष पहले ब्याही जाकर अपने पति द्वारा छोड़ी जा चुकी है। उसके 'सनकी' और मनमौजी होने के कारण उसका तथाकथित मामा कहीं उसका विवाह नहीं कर पाता। उपन्यास का सैंतीस वर्षीय विधुर नायक मालती को दो सौ रुपए में खरीद कर पत्नीरूप में अपने घर लाता है। वास्तव में वह उस गृहस्थ से घोड़ी खरीदने गया था, किन्तु ले आया मालती को। क्षण भर में गृहस्थ द्वारा मालती को दो सौ रुपये में देने का प्रस्ताव और मालती द्वारा उसकी मूक स्वीकृति इस बात के द्योतक हैं कि मालती अबला, निरीह और भोली युवती है।

इसका मनोवैज्ञानिक कारण भी है। उसका अभी तक सारा जीवन विफल, अन्धकारमय बीता था। उसके वैवाहिक सौभाग्य पर प्रारम्भ में ही बिजली पड़ गई। उसका पति चण्डू का दम लगाकर बहुत रात बीते घर आता और उसे गालियाँ दे कर मार-पीट करता था। अन्त में मालती ने वहाँ से भाग कर जान छुड़ाई। ऐसी स्थिति में कोई भी सहारा पाकर अपना लेना मालती के लिए स्वाभाविक है। फिर भी वह अपनी असहायावस्था तथा विवशता के लिए अबोध नहीं है। रमाशंकर के घर जाकर उसका पुत्र राजीव घोड़ी के स्थान पर खरीदी वस्तु कहकर उसे तिरस्कृत करता है तो वह सोचती है कि कोई क्रीता स्त्री भला विवाहिता पत्नी और माँ के गौरवपूर्ण पद को कैसे पा सकती है?

मालती नये घर में जीवन से विरक्त नहीं होती। रमाशंकर के गोदाम सरीखे घर को वह कड़ी मेहनत से सुव्यवस्थित रूप दे देती है। पति और पुत्र के प्रति उसके हृदय में अपार आत्मीयता है। रमाशंकर दोपहर को काम से लौटकर तुरन्त खाना माँगता है तो वह कहती है—खाना तैयार है, परन्तु पहले जाकर स्नान कर लो। यह तेल है, यह धोती गमछा है। पति के मित्र रामनाथ द्वारा सहृदयता का सम्पर्श मिलने पर पति के प्रति उसकी आत्मीयता और भी बढ़ जाती है। पति के मित्र रामनाथ की सहृदयता पर मुग्ध होने पर पति उस

परामर्श मानकर अपमानित करता है। वह विवश होकर रामनाथ के घर शरण लेती है। उसके अभाव में रमाशंकर और राजीव की स्थिति बहुत बिगड़ जाती है। अन्त में मालती का सच्चा पति प्रेम रमाशंकर को रामनाथ के द्वार पर क्षमायाचना के लिए खींच ले जाता है।

मालती ममतामयी नारी है। रमाशंकर के घर, राजीव का इतना ध्यान रखती है जैसे वही उसका जीवन-सर्वस्व है। आते ही वह रमाशंकर को काम पर जाने से रोक कर सानुरोध कहती है—पहले राजीव को स्कूल में दाखिल कर आओ, मैं उसके कपड़े बदलती हूँ। राजीव बार-बार उसकी अवमानना करता है। किन्तु, मालती का हार्दिक स्नेह आखिर उसे प्रभावित कर लेता है। रामनाथ के घर पिता के साथ वह भी मालती को लेने जाता है। राजीव उसकी गोद में बड़ी नम्रता से बैठकर हलवा खाता है। वह रामनाथ के सामने स्वीकार करता है कि मालती उसके स्कूल जाने पर बहुत खुश होती है, प्यार करती है, कलेवा बनाती है, मिठाई देती है। अब वह उसका कोट सी रही है।

मालती व्यवहार-कुशल है। वह अवसर के अनुरूप उपयुक्त व्यवहार द्वारा परिस्थितियों को बदलने में सफल होती है। उसका दृढ़ स्वभाव, प्रच्छन्न स्नेह और आग्रहपूर्ण प्रयत्नभाव राजीव को उसकी अधीनता स्वीकार करने पर बाध्य कर देते हैं। रमाशंकर के रूखे स्वभाव को मालती शान्तिपूर्वक सहन करती है। पति के मित्र रामनाथ के प्रति शिष्ट व्यवहार उसके सुघड़पन का परिचायक है। उसकी व्यवहारकुशलता पर मुग्ध रामनाथ कहता है—'अरे भाई रमाशंकर! भाभी लाए हो या रसायन। घर की काया पलट हो हो गई और दोनों बाप-बेटे कैसे चिकना गए हो? भाई वाह!' शंकालु रमाशंकर मालती के सहृदय व्यवहार को पर-पुरुष-प्रेम समझ बैठता है और रामनाथ के चले जाने पर वह मालती को उसे चाय हलवा खिलाने का उपालम्भ देता है। इस पर मालती उत्तर देती है—'चाय पीने की तुम्हें आदत नहीं, वह कुछ अच्छी चीज भी नहीं। वे मेहमान थे, शहरी थे, शहर में वे चाय पीते थे। इसी से उनके लिए चाय बनती थी; हलवा खातिरदारी के लिए। मेहमान की खातिरदारी अपनी मर्यादानुसार करना गृहस्थ का धर्म है।'[1]

मालती सच्चे अर्थों में पूर्ण नारी है। अपने खरीदार पति को पुरुष-साथी के रूप में स्वीकार कर वह पूर्ण समर्पण का प्रयास करती है। किन्तु, रमाशंकर भ्रमवश उसे गृह त्यागने को विवश करता है। वह अनिच्छया उससे मिन

१. दो किनारे, पृ० ४०।

रामनाथ का दामन थामती है, इसलिए कि वह स्त्री है और उसे एक पुरुष की प्रकृत आवश्यकता है, केवल पुरुष के खोल की नही। रमाशंकर भूल स्वीकार करता है। रामनाथ मालती को घर लौट जाने के लिए कहता है—भाभी, रमाशंकर अनपढ है पर है हीरा। इस पर मालती कहती है—'यदि मर्द मर्द हो तो हीरा है देखूंगी मैने नामर्द समझकर ही उसे त्यागा था। तुम प्रकृत मर्द हो राम भैया, मैं तुम्हारी बात नही टाल सकती।'[1]

रमाशंकर के एक बार उसे 'खरीदी हुई औरत' कहकर सीमा म रहन क आदेश पर मालती का उत्तर है—तुम्हारे मोल भाव की बात मुझे मालूम है। पर तुम और तुम्हारा लडका जो मुझे अपनी सवारी की घोडी समझते हो, वह मैं नही हूं। तुम्हारी ही तरह एक इन्सान हूँ। तुम भले ही भूल जाओ, पर मैं नही भूल सकती कि मैं तुम्हारी ब्याहता पत्नी हूँ। अन्त म उसके नारीत्व की विजय होनी है। वह अपन धर्म-भाई रामनाथ के घर से माथे पर कुकुम लगाए, पैरो मे महावर मले, नए खरीदे सैंडल पैरो मे डाले इन्द्रधनुष के रग की रामनाथ की दी हुई साडी पहने, श्री बिखेरती हुई राजीव का हाथ पकडकर रमाशकर के पीछे-पीछे चलती है। उस समय उसका नारीत्व पूर्णतया झलकता है।

२ विमलादेवी (अदल-बदल)

विमला देवी डॉ० कृष्णगोपाल की उपेक्षिता पत्नी है। वह सहनशील और कर्तव्यपरायण नारी है। इसका पति वैभव, विलास और आधुनिकता के नाम पर पर-स्त्री-गामी तथा दुराचारी है। यह बात आत्माभिमानिनी विमलादेवी के लिए असह्य है। यह अपने नारी-अधिकारो के प्रति सजग है। किन्तु विलासी पति की प्रताडना के सम्मुख विवश है। पति द्वारा घायल कर दिए जाने पर यह होश रहते उसे सेफ से रुपये निकालने नही देती। यह पति के अत्याचार का डटकर मुकाबला करती है। यह अपने कर्तव्यो और अधिकारो से सुपरिचित है।

विमलादेवी पति-परायणा है। यह महिला सघ की अध्यक्षा मालतीदेवी द्वारा पति का भेजा हुआ तलाक-सन्देश तथा आर्थिक अनुदान निर्भीकता से लौटा देती है। इसकी विवेकबुद्धि इस कथन से स्पष्ट है—'अपने पति के साथ कोई समझौता करने के लिए पत्नी को किसी तीसरे की आवश्यकता नही होनी चाहिए। पति-पत्नी तो अपने दुःख सुख के साथी, साझीदार हैं। किसी बात पर यदि विवाद है तो वह आपस मे मिलकर ही निर्णय कर सकते हैं, किसी मध्यस्थ

---

१. दो किनारे, पृ० ८२-८३।

के द्वारा नहीं।"[1] पति द्वारा किये गये विश्वासघात को वह यह कहकर सहन कर लेती है कि पति चाहे उसे त्याग भी दे, वह अपना कर्त्तव्यपालन करती रहेगी। उसकी दृष्टि मे पति-पत्नी का मतभेद उसी प्रकार विच्छिन्न होने का कारण नहीं बनना चाहिए, जिस प्रकार पिता-पुत्र या माता-पुत्र का मतभेद उनके पितृत्व, मातृत्व तथा पुत्रत्व के अस्तित्व को समाप्त नहीं कर सकता।

सारांश यह है कि विमलादेवी आदर्श हिन्दू महिला है। वह अधिक शिक्षित तो नहीं, परन्तु शील, सहिष्णुता, परिश्रम और निष्ठा मे वह अद्वितीय है। वह जैसी आदर्श पत्नी है, वैसी ही आदर्श माता गृहिणी और रमणी भी है।

स्वाभिमानिनी नारी

१ रानी चन्द्रकुँवरि (अपराधी)—

रानी चन्द्रकुँवरि फूलपुर जागीर की विधवा स्वामिनी है। वह स्वाभिमानी और ठसक की औरत है। बुढ़ापे तक पर्दे मे रही, किसी ने अगुलि की पोर तक नहीं देखी। मगर रुआब है सारे अमले पर। कचहरी के ऊपर चिक मे बैठकर रियासत का काम देखती है।

रानी चन्द्रकुवरि कर्मठ, व्यावहारिक और उदार स्त्री है। पैंतीस वर्ष की आयु मे ही विधवा होने पर उसका जीवन शून्य और नीरस हो गया। किन्तु उसने निजी उदासी को जागीर की व्यवस्था मे बाधक नहीं होने दिया। सारा प्रबन्ध पूरी कर्मठता से चलाकर वह पति की प्रतिष्ठा को कायम रखती है। व्यावहारिकता उसके स्वभाव मे रमी है। विवाह से पूर्व ही नवलसिंह नामक पड़ोसी युवक से उसका अगाध सात्विक प्रेम है। किन्तु माता पिता द्वारा अन्यत्र विवाह-सम्बन्ध निश्चित कर दिये जाने पर वह उस टीस को मन मे सजोए सच्ची मन प्राण नारी की भाँति पति-परिवार मे रम जाती है। ठाकुर बलदेव-सिंह से पुश्तैनी शत्रुता होते हुए भी वह उसके पुत्र अजीतसिंह का सौम्य रूप और शील आचरण देख कर, उससे अपनी कन्या का सम्बन्ध करती है। यह बड़ा-प्रतिष्ठा के झूठे दिखावे को छोड़ इस काम के लिये ठाकुर के द्वार पर स्वयं उपस्थित होती है। उस की यह व्यावहारिकता अक्खड़ ठाकुर बलदेवसिंह के हृदय को द्रवित करती है।

रानी चन्द्रकुँवरि का व्यक्तित्व सौजन्य, औदार्य एव स्वाभिमान मण्डित है। इन्हीं गुणों के कारण अंग्रेज हाकिम भी उसका सम्मान करता है। इस के

---

१ अदल बदल (नीलमणि मे सयुक्त), पृ० १६८।

आधार पर वह अजीतसिंह को हत्या के अभियोग से मुक्त कराती है। अपने इस कार्य से वह ठाकुर के साठ हजार के ऋण से भी मुक्त हो जाती है। इसमें उसकी दूरदर्शिता भी प्रकट है। रानी चन्द्रकुँवरि हर दृष्टि से महान् नारी है।

प्रगतिशील, समाजसुधारक नारियाँ

१ राधा (अपराजिता)

राधा 'अपराजिता' की नायिका राज की सखी है। यह सौम्य विनम्र एव सुशील नारी है। इसमे रूप, गुण और प्रतिभा का अद्भुत सम्मिश्रण है। यह एडवोकेट जनरल जे० पी० सिन्हा की इकलौती पुत्री है। यह नटखट चपल और सुन्दरी है। किन्तु पिता के लिए पुत्र के समान है।

राधा स्वावलम्बी किन्तु मर्यादाशील है। उसकी अन्तरग सखी राज अकस्मात् ब्रजराज से उसके विवाह की स्थिति उपस्थित कर देती है। ऐसी परिस्थिति मे उसे पिता से अनुमति लेने तक का अवसर नही मिलता। फिर भी वह समझ-सोचकर स्वय सारे निर्णय ले लेती है। परन्तु वह कोई अनुचित अथवा मर्यादा-विरुद्ध आचरण नही करती। ब्रजराज के प्रति उसका सच्चा, सात्विक अनुराग है।

राधा हँसोड तथा विनोदी स्वभाव की है। उसकी विनोदप्रियता छिछली न होकर विवेक-मण्डित है। विधवा मौसी के जेठ के पुत्र माधव के भोलेपन को वह हँसी-विनोद मे गम्भीर दायित्व-बोध मे बदल देती है।

राधा प्रगतिशील विचारो की सुशिक्षिता युवती है। विवाह के सम्बन्ध मे वह अपनी पसन्द और इच्छा को सर्वोच्च मानती है। उसकी इस विवेक बुद्धि को उसका पिता भी, उसकी तेजस्विता के रूप मे स्वीकार करता है।

२- रुक्मिणी (अपराजिता)

रुक्मिणी 'अपराजिता' की नायिका राज द्वारा स्थापित अष्ट-मगल दल की 'आनरेरी सेक्रेटरी' है। यह मध्यम श्रेणी के हैड क्लर्क की पुत्री है। यह गम्भीर, लजीली और एकान्तप्रिय है। इसकी बुद्धि सामान्य स्तर की है। यह न देखने मे आकर्षक है, न बातचीत और रग-ढग मे मोहक। पिता की दहेज देने मे असमर्थता इसके सुखमय भावी जीवन के मार्ग मे बहुत बडा व्यवधान है। किन्तु, राधा और राज जैसी सहेलियो के सम्पर्क मे आने मे इसके विचारो मे क्रान्ति आ जाती है। इसमे पिता द्वारा अनमेल वर से इसका विवाह करने की योजना सफल नही होती। यह अविवाहित रहकर स्त्री-जाति की सेवा का सकल्प ले लेती है। किन्तु राधा के उद्योग से इसका विवाह माधव से हो जाता है। यह

आदर्श पत्नी सिद्ध होती है।

३ नीलम (मोती)

नीलम दिल्ली के ऐश्वर्यजीवी, मस्त नवाब नयाज़ अहमद की इकलौती पुत्री है। यह सन् चालीस के आसपास अगड़ाई लेती नई सभ्यता की सजीव प्रतिमा है। पिता के तवायफों तथा रखैलों से भरपूर हरम में, मुसाहिबों और जी-हुजूरियों के झुरमुट में इसके व्यक्तित्व का विकास होता है। इसमें घर-परिवार की अपेक्षा दिल्ली के सामाजिक और राजनैतिक परिवेश का अधिक हाथ है। यह साहित्यिक अभिरुचि-सम्पन्न, प्रगति विवेकशील जागरूक युवती बन जाती है।

नीलम शिक्षिता किशोरी है। कालेज-जीवन में यह विभिन्न साहित्यिक गतिविधियों में सोत्साह भाग लेती है। विशेषतः मुशायरों के आयोजन में इसका पूरा हाथ रहता है। इसका पिता मोती की जोशीली गजल को हेय बताकर अपनी शायरी का राग अलापता है। तब यह स्पष्ट कहती है—'अब्बाजान, अब आपकी गजलों का जमाना नहीं रहा। नया खून नई चीजें चाहता है। गरम खून और गरम बातें।

नीलम के हृदय में देश के लिए बलिदान होने वाले बहादुर नौजवानों के प्रति पूर्ण सम्मान है। मोती के जेल चले जाने पर यह अपने पिता से साग्रह कहती है—'प्यारे अब्बा, मोती बहादुर जवान है, उसे बचाना होगा।' यह देश-भक्त नवयुवकों के महान् उद्देश्य की सार्थकता के लिए कानूनी सहायता को आवश्यक मानती है। इसका कथन है—'मैं यह कब कहती हूँ कि वे अपने बयान को बदलें या यह कहें कि मैंने पहले झूठ बोला है। उन्होंने वायसराय की ट्रेन को उड़ाने का जुर्म किया है तो वे इन्सान से फरिश्ते बन चुके। मुल्क और मुल्क की तवारीख उनके गुण-गान करेगी। आप किसी बड़े कानूनदाँ वकील को उनकी पैरवी में खड़ा कीजिए।' इतना ही नहीं, वह कौम का नाम रोशन करने वाले बहादुर नौजवान को बचाने के आग्रह से पिता से कहती है—'मेरी माँ ने मरते वक्त जो जेवर और रुपया मुझे दिया था, वह सभी इसमें खर्च कर दीजिए। वे फाँसी से जरूर बच जाएँगे।'[1]

नीलम प्रगतिशील तथा जागरूक नारी है। नवाब मोती को तवायफ का आवारागर्द भाई समझकर उपेक्षा व्यक्त करता है। नीलम मर्मविता नारी और नेकदिल इन्सान की इस अवमानना पर तड़पती है—तब क्या आपने तशरीहन

---

१. मोती, पृ० ८८।

उनके साथ बीवी का सलूक किया है? वे मुझे बेटी कहती हैं और आपने ही मुझे उन्हें माँ कहकर सलाम करने को कहा है। मैं तो यही समझती हूँ कि जो औरत आपके साथ में रहती है वह मेरी माँ के दर्जे पर है। हर औरत का इन्सानी फर्ज उनके दामन में है। फिर इस रिश्ते का मोती से क्या ताल्लुक? इसान की बहादुरी और मार्यादनी ही उसका सबसे बड़ा गुण है।"[1]

अन्त में उसकी कामना पूरी होती है। मोती के कारागार से लौटने पर, वह सबसे आगे बढ़कर मोती का स्वागत करती है। नवाब मोती से नीलम के निकाह की घोषणा करता है। उसका मूक प्रणयभाव सर्वथा सार्थक हो जाता है।

४ रमाबाई (अपराधी)

रमाबाई विदुषी समाज-सुधारिका है। वह संस्कृत की प्रकाण्ड पण्डिता महाराष्ट्रीय ब्राह्मण-कन्या है। शिक्षा ने उसे विचारशील मानववादिनी बना दिया है। वह बंगाली कायस्थ युवक से विवाह करके जाति पाँति के बन्धन का सक्रिय विरोध करती है। परिणामस्वरूप उसे गृह-निष्कासन स्वीकार करना पड़ता है। इस स्थिति में स्वामी दयानन्द को संस्कृत में पत्र लिखकर मार्गदर्शन की याचना उसकी दूरदर्शिता की प्रदर्शिका है।

स्वामी जी की ओर से आजीवन ब्रह्मचर्य द्वारा समाज-सेवा के आग्रह पर वह कहती है—गृहस्थ-जन भी परोपकार के कार्यों में संलग्न रह सकते हैं। मैं जिस युवक को वचन दे चुकी हूँ, मुझे उससे विवाह करना होगा। उसी युवक की प्रेरणा और सहायता से मैं इतना अध्ययन कर सकी हूँ। स्वामी जी उसके इस हठ से कुछ समय के लिए अप्रसन्न होते हैं। किन्तु वह अपनी वचन बद्धता और समाज-सेवा से नारी-वर्ग के लिए आदर्श उपस्थित कर देती है।

रमाबाई का जीवन समाज कल्याण के लिए समर्पित है। उसके भाषण से धनपति और उच्चशिक्षा-प्राप्त युवक सत्प्रेरणा प्राप्त करते हैं। परिणामस्वरूप वे देश, समाज, धर्म, शिक्षा एवं नारी वर्ग के प्रति श्रद्धालु बन जाते हैं। ठाकुर बलदेव सिंह का पुत्र अर्जुनसिंह उन्हीं में से एक है। साठ वर्षीय प्रौढ़ा रमाबाई का वात्सल्यमय मधुर भाषण इनके अवरुद्ध ज्ञान कपाट खोल देता है। रमाबाई बरेली में महिला विद्यालय का संचालन कर अपने शिक्षा प्रेम का परिचय देती है। नारीवर्ग तथा ग्रामीणों के प्रति उसके विचार रचनात्मक हैं।

अर्जुनसिंह द्वारा अपनी भावी पत्नी के अशिक्षित होने की बात सुनकर वह

---

१ मोती, पृ० ८६।

कहती है—'जीवन-साथी कम पढ़ा हो या न पढ़ा हो, पर उसमें यदि शुभ संस्कार हैं तो वह सुगृहिणी गृहलक्ष्मी है। और भी साहस करो तो उसको विवाह के बाद पढ़ा सकते हो। स्मरण रखो इन निर्मलहृदयी ग्रामीणों के मुख में बिना पढ़े ही मानवता और ज्ञान के स्रोत झरते हैं।'[1]

५ राज (अपराजिता)

राज ठाकुर गजराजसिंह की इकलौती पुत्री है। वह कुशाग्रबुद्धि, हँसमुख और परिश्रमी है। उसमें पिता की आन, खानदानी मान, बड़े भाई की देश-भक्ति, मझले की शान-शौकत छोटे भाई का विद्या-व्यसन और माता की धर्मभीरुता आदि गुण एकत्र हो गए हैं।

राज स्वावलम्बी स्वभाव की नारी है। अपने सहपाठी तथा कृषक-परिवार के होनहार युवक व्रजराज के प्रति उसके हृदय में असीम अनुराग है। इससे उसका वाग्दान हो चुका है। किन्तु पिता को सात लाख रुपये के ऋण से मुक्त करने के लिए वह ऋण-दाता ठाकुर राघवेन्द्रसिंह के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार कर सबको विस्मय में डाल देती है। वह हिम्मत और बुद्धिमत्ता से सभी को अपने निश्चय से सहमत कर लेती है। खानदानी शान के घमण्ड में चूर पति और ससुर के अहंकार से वह अकेली डट-कर लोहा लेती है। विषम परिस्थितियों में वह अपने सामर्थ्य पर पूरा भरोसा रखती है। वह पुरुषों की किसी भी प्रकार की दासता स्वीकार करने को तैयार नहीं है। इलाके भर में रौब-दाब के लिए प्रसिद्ध उसके ससुर चकित हैं कि वह अपराजिता न किसी से सहायता लेती है न किसी की आन मानती है, फिर भी उसका विनय, शील, चरित्र, विद्वत्ता, दृढ़ता और कष्ट-सहिष्णुता अपरिसीम है।

त्याग भावना और सहनशीलता राज की अन्यतम विशेषता है। पिता और परिवार की आन के नाम पर, वह जीवन के सभी सुख-स्वप्नों को न्यौछावर कर देती है। पूर्व-प्रेमी व्रजराज को सुखी करने के लिए वह अपना सारा बहुमूल्य दहेज, व्रज की भावी पत्नी राधा को दे डालती है। ससुर और पति के अपमान-जनक व्यवहार पर वह उनके समृद्ध घर में विरक्त तथा सादा जीवन बिताती है। ससुर द्वारा पिता के प्रति कहे गए अपशब्द के विरोध में अनशन करने पर वह सप्ताह-भर भूख-प्यास धैर्य से सहन करती है। यह अनशन गाँव भर के लिए आदर्श बन जाता है। वह लगातार बीस वर्ष तक पितृ-गृह तथा पति से विच्छिन्न रहती है।

---

१. अपराधी, पृ० १४६।

राज के चरित्र में विवेक दूरदर्शिता तथा सूझबूझ विशेष रूप में पाए जाते हैं। ससुर द्वारा पिता के प्रति कहे अभद्र शब्दों का विरोध करती हुई भी वह क्रोध वश विवेकशून्य नहीं हो जाती। श्वसुर की प्रत्येक बात का तर्कपूर्ण उत्तर देकर वह उन्हें अपने शब्द वापस लेने का आग्रह करती है। वह अपने विवाह और दहेज-सम्बन्धी निर्णयों के सम्बन्ध में पिता भाई, प्रेमी तथा पति द्वारा की गई आपत्तियों का निराकरण सूझबूझ से करती है। वह प्रेमी ब्रजराज से स्वयं विवाह करने की स्थिति में न होकर उसके जीवन को सुखमय बनाने के लिए बुद्धिमत्तापूर्वक अपनी अन्तरंग सखी राधा के साथ उसके विवाह का आयोजन करने में सफल होती है। उसका मैजिस्ट्रेट पति दुर्घटना वश नेत्रहीन तथा पूँजी के दुर्व्यसनों में नष्ट करने के कारण असहाय हो जाता है। राज उसे कानूनी सलाह देकर स्वाभिमानपूर्वक जीविकोपार्जन का मत्परामर्श देती है। इससे उस दुरभिमानी ठाकुर की काया पलट जाती है।

राज स्वाभिमानिनी नारी है। वह स्त्री जाति के अधिकारों के प्रति जागरूक है। दहेज न लाने के कारण ससुर द्वारा 'चमार की बेटी' कहने पर उसका स्त्रीदर्प दमक उठता है। वह विरोध में अन्न-जल त्याग कर, गाँव भर को अपना अनुगामी बना लेती है। पति तथा ससुर भी उसके आगे नतमस्तक हो जाते हैं।

राज सच्चे अर्थों में अपराजिता है। वह अपनी बनाई रसोई ससुर द्वारा स्पर्श न करने पर अपने खर्च से अलग भोजन बनाती है। वह सेवा शुश्रूषा द्वारा रुग्ण पति को नीरोग कर लौटते समय पति के आग्रह पर भी वहाँ नहीं रुकती, क्योंकि पति ने उसे अभी तक अर्धांगिनी रूप में स्वीकार नहीं किया।

राज पति और ससुर की हर अनीति का विरोध सम्पूर्ण स्त्रीजाति के सम्मान के लिए करती है। उसका सत्याग्रह अपने अपमान के विरोध में न होकर उस जैसी लाखों बहिनों की दासता और अपमान से रक्षा के निमित्त है। अपना दहेज राधा को दिये जाने के विरोध का उत्तर वह यों देती है—'जो कुछ पिता ने दहेज में दिया, वह पुत्री-धन है, और जो आपने विवाह-समय पर दिया, वह स्त्री-धन है। दोनों पर मेरा ही अगाध अधिकार है। मैं उसका जैसा भी चाहूँ, उपभोग कर सकती हूँ।'[1]

राज स्त्रियों की आर्थिक दासता का विरोध व्यवहार द्वारा कार्य रूप में कर दिखाती है। उसका पति उसे ऋण के बदले जीता समझता है, और ससुर अस्पृश्य मानता है। उसकी हैरत यह स्वीकार नहीं करती कि इन परिस्थितियों में वह उनका अन्न खाए। स्त्रियों में जागृति लाने के लिए वह ठाकुर की हवेली

---

१. अपराजिता, पृ० ३०।

में ही महिला शिक्षणालय चलाने लगती है। उसका विवाह से पूर्व अपने कालिज की सात सहेलियों के सहयोग से 'अष्ट-मगन-दल' की स्थापना उसके जागृत नारी-रूप का परिचायक है। इस दल का उद्देश्य वह 'प्रेम और कर्त्तव्य' के आदर्शों पर चलना घोषित करती है।

राज मर्यादावादिनी है। पितृगृह का मर्यादापालन वह वाग्दत्त प्रेमी से विवाह का निर्णय बदल कर करती है। श्वसुरगृह में उपेक्षा होने पर भी, वह उस परिवार की मर्यादा पर आँच नहीं आने देती। अपनी अधिकार-रक्षा के लिए राज संघर्ष अवश्य करती है किन्तु स्त्री-स्वातन्त्र्य-आन्दोलन चलाने में गाँव के युवकों की प्रार्थना पर वह कहती है—मैं हवेली के पर्दे की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करूँगी। वह मर्यादा की रक्षा-हेतु रुग्ण ससुर की सेवा कर उसे मौत के मुँह से बचाती है। दुर्घटना ग्रस्त पति की सेवा में वह दिन-रात एक कर देती है। अन्त में पति की असहायावस्था का समाचार पाकर, अभिमान छोड़, अंधे की लकड़ी के समान उसका हाथ थाम लेती है।

राज सुघड़, व्यवहारकुशल तथा मिलनसार है। अवसर आने पर वह हवेली की व्यवस्था का संचालन ऐसी निपुणता से करती है कि सभी उसे स्वर्ग की देवी कहने लगते हैं। उसका व्यवहार सभी से स्नेहपूर्ण है। विरोधी के प्रति भी वह सम्मानसूचक शब्दों का प्रयोग करती है। उसकी सहृदयता सखियों, परिजनों, सेवकों में सर्वत्र उसके प्रति श्रद्धा-सम्मान से प्रमाणित है।

राज पतिपरायणा भी है। पति के मिथ्या अहंकार और जातीय अभिमान से घृणा करती है, उसके व्यक्तित्व से नहीं। अनेक प्रश्नों पर पति का विरोध करती हुई भी वह उसके प्रति कोई अनुचित शब्द नहीं कहती। पति के मोटर दुर्घटना में घायल होने पर ससुर उसे देखने नहीं जाना चाहता किन्तु राज उसे सानुरोध साथ लेकर पति-सेवा-निमित्त तुरन्त अस्पताल पहुँचती है। स्वस्थ होने पर वह भले ही पति के पास नहीं रुकती, किन्तु उसकी सुख-सुविधा के प्रति सतर्क अवश्य है। कुछ समय पश्चात् सपत्नी द्वारा पति दुर्दशा का समाचार पाकर तत्क्षण उसकी सेवा में जा पहुँचती है। उसकी अपराजेयता पति-प्रेम के सम्मुख पराजित हो जाती है। जीवन के स्वर्णकाल में वह समृद्ध किन्तु दुरभिमानी पति से विच्छिन्न रहती है, पर अधेड़-अवस्था में नेत्रहीन-असहाय किन्तु सच्चा मानव बन जाने पर उसे आत्मसमर्पण कर देती है।

राज पुत्री, प्रेमिका, पत्नी, गृहिणी, सामान्य स्त्री—सभी रूपों में आदर्श नारी है।

विवेकमयी नारियाँ

१ लीलावती (पत्थर युग के दो बुत)

लीलावती माया और दिलीपकुमार राय की पुत्री है। वह माता-पिता के सात्विक प्रेम का परिणाम न होकर देह भुक्ति का फल प्रतीत होती है। होश सम्भालते ही वह घर के वातावरण को देखकर विक्षिप्त हो जाती है। उसकी माँ मिस्टर वर्मा से अनैतिक सम्बन्ध बनाए हुए है। उसका पिता मिसेज दत्त (रेखा) के रूप-पान में मुग्ध है। कहने को वह बच्ची है पर है समझदार। वह माँ-बाप और उनके सम्पर्क में आने वाले पुरुष-स्त्रियों की मनोदशा को भली-भाँति भाँप लेती है। पिता उसे सर्वथा अबोध समझता है। किन्तु वह उनके और माँ के आचरण का अभिप्राय समझती है। पिता की अनुपस्थिति में मिस्टर वर्मा के आने पर वह अपने अस्तित्व को उनके प्रेम व्यापार में व्यवधान नहीं बनने देती। माँ की अनुपस्थिति में उनके पिता के पास रेखा के आने पर वह जान-बूझकर इधर उधर हो जाती है। किन्तु मन ही मन वह घुटती अवश्य रहती है। उसका अध्ययन भी ठीक नहीं चल पाता। पर वह क्या करे? वह विवश पराधिन बालिका ही तो है!

माँ बाप के गर्हित आचरण से परिचित होते हुए भी लीला के हृदय में उनके प्रति नैसर्गिक स्नेह है। उसका स्नेह-पिपासु मन माँ-बाप के दुलार का कोई अवसर नहीं जाने देना चाहता। माँ के घर छोड़ जाने के पश्चात् उन्नीस वर्षीय लीला का पिता से निपट आलंबन्दन, उसके निरीह हृदय का परिचायक है। माँ की अनुपस्थिति में वह पिता की सेवा में कोई कसर नहीं रहने देती। वह उन्हें आफिस भेजकर कालिज जाती है। वहाँ से लौटकर सदन पहले उनके लिए नाश्ता बनाती है। वह किसी भी स्थिति में पिता को निराश्रित नहीं रहने देना चाहती। माँ-बाप के प्रति उसका सम्मान तब प्रकट होता है, जब वह मातृ-परित्यक्ता होने पर, पिता से अनुमति लेकर माँ से मिलने जाना आरम्भ कर देती है।

लीला स्पष्टवादिनी है। वह माँ के अनैतिक आचार की सूचना पिता को और पिता की प्रेमलीलाओं की सूचना माँ को देना अपना कर्त्तव्य समझती है। किन्तु प्रत्यक्षतः स्वयं किसी के आड़े नहीं आती।

२ चन्द्रकिरण (नरमेध)

चन्द्रकिरण नगर प्रतिष्ठित सर शादीलाल की इकलौती पुत्री है। वह उच्च शिक्षा प्राप्त लावण्यमयी युवती है। वह उन्मुक्त स्वभाव, विनोदी प्रकृति तथा स्पष्टदर्शी वाली है। वह रंगीन तितली है। किन्तु इसके इस चापल्य के पीछे किसी

है—गहन प्रेम निष्ठा, कठोर आत्म-साधना और विलक्षण विवेक-बुद्धि।

चन्द्रकिरण का त्रिभुवन के प्रति अटूट प्रेम है। इसका त्रिभुवन से वाग्दान हुआ है और ये दोनों निसर्गत: एक दूसरे के प्रणय में आबद्ध है। चन्द्रकिरण के प्रेम का उज्ज्वल रूप त्रिभुवन के जीवन की समस्त आकांक्षाएँ छोड़ एकाकी विरक्तिपथ पर चले जाने पर दृष्टिगोचर होता है। यह वेदना से असंयत हो भूमि पर गिर कर मूर्च्छित हो जाती है। इसकी दुर्दशा देख नौकर गोवर्धन भी रोने लगता है। किन्तु इसकी यह विकलता शीघ्र धैर्य निष्ठा मे परिणत हो जाती है। प्रेम के अमल-धवल प्रकाश से इसकी आत्मा देदीप्यमान हो जाती है। यह बुद्धिमती स्त्री बडी मुस्तैदी से अपने साथ युद्ध करने में जुट जाती है।

यहाँ से चन्द्रकिरण के चरित्र का साधनापक्ष प्रकट होने लगता है। वह धैर्य, विवेक और संयम से त्रिभुवन की सेवा कर प्रणय की इस अग्नि-परीक्षा मे खरी उतरती है। माता पिता के त्रिभुवन को दुराचारिणी, हत्यारी माँ का बेटा समझ उससे पुत्री परिणय वश प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझने पर चन्द्रकिरण स्पष्ट कहती है— पिता जी, यह मेरा व्यक्तिगत मामला है। मान मर्यादा और कुल प्रतिष्ठा को खतरे में डालने की कोई आवश्यकता नहीं।[1] माँ को फाँसी हो जाने के पश्चात् त्रिभुवन सहसा बीमार पड जाता है। चन्द्रकिरण उसकी सेवा शुश्रूषा मे दिन रात एक कर देती है। त्रिभुवन द्वारा स्वस्थ होकर उसका हाथ पकडने पर वह निहाल हो जाती है। आनन्द और उत्साह से उसका नाच उठना उसकी अचल प्रेमनिष्ठा का परिचायक है।

३ माया (आत्मदाह)

माया 'आत्मदाह' के नायक सुधीन्द्र की स्वर्गवासिनी पूर्व-पत्नी है। उसकी स्मृति उसके पति और सास को उन्मत्त किए हुए है। उन दोनों द्वारा माया का मरणोपरान्त गुणानुवाद उसके व्यक्तित्व का उद्घाटन करता है। उसने सारा स्नेह, तन मन परिवार, पति सास आदि की सेवा में अर्पित कर दिया। अन्त मे सब कुछ निश्शेष हो जाने पर वह स्वयं भी नामशेष हो गई।

माया स्त्रीत्व की कोमल छाया थी। कवि यदि अपनी सभी स्वाभाविक कल्पनाओं की प्रतिमा गढे, तो वह माया से कदाचित् मिल जाय। वह सोने की पुतली की भाँति घर-भर की सेवा में निरालस्य घूमती आलोक की देवी प्रतीत होती थी। वह चतुर, बुद्धिमती, गम्भीर और स्निग्ध गृहिणी थी। गृहिणीत्व

---

१ नरमेध पृ० ७२

उसका व्यक्तित्व था।

माया सेवा की साक्षात् प्रतिमा थी। चिररोगिणी सास को उसने सेवा द्वारा नवजीवन दिया। वीरेन्द्र और राजेन्द्र देवरों को उसने सदा पुत्रों का-सा स्नेह दिया। वे भी उसे मातृ-तुल्य समझते थे। ससुर को वह ईश्वर-तुल्य श्रद्धा और सम्मान देती थी। वे माया को घर की वास्तविक स्वामिनी मानते थे। प्रभा (ननद) के रुग्ण होने पर उसने सेवा में दिन-रात एक कर दिया। पति (सुधीन्द्र) की तो वह सर्वस्व थी। पुनर्विवाह करके सुन्दरी, सुशील, सेवा-परायण पत्नी पाकर भी सुधीन्द्र उसे आजीवन न भुला पाया।

माया परिवार की ही नहीं, मुहल्ले भर की रानी थी। वह सूर्य के समान तेजस्विनी, अखंड सौभाग्य को अचल में बाँध कर गई। मुहल्ले की सुहागिनों ने उसकी उतरी चूड़ियाँ पहनकर अपने को धन्य माना। मुहल्ले के बच्चे उसके चले जाने पर अपने को माँ विहीन समझने लगे। पड़ोस की बहुएँ और बेटियाँ एक सखी को खो बैठीं।

माया को लेखक ने महिमामयी नारी के रूप में अंकित किया है।

४ हुस्नबानू (धर्मपुत्र)

हुस्नबानू रगमहल के नवाब मुश्ताक अहमद की पोती है। उसके माता-पिता उसे अल्पायु में छोड़ परलोक सिधार जाते हैं। वह अतिव सुन्दरी है। उसका यौवन आजीवन प्रच्छन्न बना रहता है। जीवन में उसे किसी पुरुष का साहचर्य नहीं मिलता, जिसे वह अपना तन-यौवन अर्पित कर पाती। शिक्षा-समाप्ति के अनन्तर उसके जीवन में एक प्रोफेसर का प्रवेश वरदान और अभिशाप का अद्भुत सम्मिश्रण उपस्थित कर देता है। वे दोनों आजीवन एक होने का उपक्रम करते हैं। किन्तु नवाबी खानदान की आन उनके मार्ग की अचल दीवार बन जाती है। इस बीच उसे पत्नी बनने से पहले मातृत्व का अनुभव प्राप्त होता है।

अब हुस्नबानू के जीवन में, उसके दादा के जिगरी दोस्त का पुत्र डॉ० अमृतराय आता है। वह उसके अवैध मातृत्व को अप्रकट रखने में सहायक होता है। डाक्टर राय निस्सन्तान है। वह नवाब के आग्रह पर हुस्नबानू की सन्तान को ही नहीं अपनाता अपितु उसे भी अपने हृदय में उपास्य मूर्ति की भाँति प्रतिष्ठित कर लेता है। हुस्नबानू अपनी विवेक-बुद्धि से अपने पुत्र के उस धर्म पिता को अपना धर्म भाई के रूप में स्वीकार करती है।

हुस्नबानू के जीवन में आने वाला तीसरा पुरुष है नवाब वज़ीर अलीखाँ। उसकी वह विवाहिता पत्नी बनती है। किन्तु पुरुषत्व का आवरण ओढ़े,

नपुंसकता और कोढ़ का वह पुतला आठ वर्ष तक हुस्नबानू की छाया से भी दूर रहकर संसार से विदा हो जाता है। इस प्रकार हुस्नबानू अल्पवय में ही प्रेमिका, माँ, पत्नी और विधवा सभी नारी रूपों का विचित्र अनुभव प्राप्त कर लेती है।

हुस्नबानू सुशिक्षिता एवं विवेकमयी स्त्री है। उसने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में एम० ए० परीक्षा उत्तीर्ण की है। जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बहुत सुलझा और स्वस्थ है। विचारधारा से वह प्रगतिशील है। प्रेम, विवाह आदि के सम्बन्ध में वह नारी-स्वाधीनता की समर्थिका है। किन्तु, उसकी यह प्रगतिशीलता उसे सामाजिक मर्यादा और पारिवारिक आदर्शों से पलभर के लिए स्खलित नहीं होने देती। वह अपने प्रेम से अपने खानदान की प्रतिष्ठा को अधिक महत्त्व देती है। दादा के आदेश को शिरोधार्य कर वह परिणीत प्रेमी को त्याग कर खून के आँसू पी लेती है। डॉ० अमृतराय की अपनी ओर प्रणयासक्ति देख, वह बड़ी सूझबूझ से, स्वयं को तथा डॉक्टर को मर्यादित कर लेती है। उसके ये शब्द उल्लेखनीय हैं—'मैं प्यार और प्यार से भी ज्यादा लख्ते-जिगर तक की परवाह नहीं करती। मैं पहले अपने फर्ज को देखती हूँ।'[1] उसकी बुद्धिमत्तापूर्ण व्यावहारिक बातें डॉ० अमृतराय की आँखों पर पड़े वासना के पर्दे को हटा देती हैं।

हुस्नबानू सहृदय, उदार तथा मिलनसार है। डॉक्टर की पत्नी अरुणा के हृदय में, अपने और डॉक्टर के आत्मीय भाव के कारण व्याप्त ईर्ष्या को वह पहली भेंट में धो डालती है। उसका स्नेही व्यवहार आजीवन उन दोनों को ननद-भाभी के पवित्र बन्धन में बाँधे रखता है। नवाब मर्जोर अलीखाँ की पत्नी बनने पर वह अपनी सौत जीनत को भी बातों बातों में बड़ी बहिन और माँ के तुल्य आत्मीय बना लेती है। उसके प्रति जीनत के ये शब्द उद्धरणीय हैं—'तुम्हें कलेजे में लगाकर कितनी राहत मिलती है। आज पहली ही बार मिली और मुझे ठग लिया, बहिन।'[2] वह बाईस वर्ष पश्चात् दिल्ली लौटने पर रंगमहल के बूढ़े खिदमतगार रहमत मियाँ को पिछले कई वर्षों की बेकारी का वेतन एक साथ देकर अपनी उदारता का परिचय देती है।

हुस्नबानू धैर्य और साहस की सजीव मूर्ति है। अपने नपुंसक, कोढ़ी तथा सनकी पति की बसुर की रागिनी को वह धैर्यपूर्वक सुनती है। प्रेमी और पुत्र के वियोग को वह जिस धैर्य से सहन करती है, उसे देखकर वज्रहृदया जीनत महल

---

१ धर्मपुत्र पृ० २३।
२ वही, पृ० ५५।

भी 'आफरीं' कह उठती है। अपने दादा के सम्मान-हेतु वह अट्ठाईस वर्ष तक अपने को जीवित ही चिता में झोंक कर झुलसती रहती है। अपने जिगर के टुकड़े पुत्र दिलीप के निकट रहती हुई, उसके सामने न जाकर, वह अपनी अद्भुत सहनशीलता का परिचय देती है। किन्तु उसका हृदय सर्वथा ममता-शून्य नहीं है। डॉ० अमृतराय के घर से ससुराल जाते समय वह नन्हे शिशु को हृदय से लगाकर करुण आर्तनाद करती है। अट्ठाईस वर्ष पश्चात् दिल्ली लौटने पर एक बार परिस्थितियाँ उसे और दिलीप को मौत के मुँह में धकेल रही होती हैं। वह अपने प्राणों की परवा न कर दिलीप को खिड़की की राह निकल कर बच जाने का आग्रह करती है। उस समय उसका मातृ हृदय जैसे आकुल होकर उसकी वाणी में व्याप जाता है।

५ सुधा (आत्मदाह)

सुधा पंजाब के एक प्रतिष्ठित रायसाहब की कन्या है। यह सुधीन्द्र की दूसरी पत्नी है। इसे सुधीन्द्र की पहली पत्नी माया का अवतार कहा जा सकता है। सुधा स्त्रीत्व का कोमल अवतरण है। बहुत ही नन्हा-सा हृदय अपने स्वर्ण-शरीर में छिपाये वह स्वामी के घर आती है। यह भोली, मुग्धा और लजीली है।

सुधा पति परायणा है। पतिगृह में आते ही वह प्राण-पण से उनपर न्योछावर हो जाती है। उसके प्राण और चेतना पति में संलग्न हैं। यह विवाहोपरान्त कुछ समय के लिये मायके जाते ही सास की सेवा के बहाने पति के पास आने को आतुर है। सुधीन्द्र मन-प्राण में पूर्वपत्नी माया की मूर्ति छाये रहने के कारण पहले-पहल इसकी उपेक्षा करता है। वह इससे दूर हटने के लिए स्थान-स्थान पर भटकता है। अन्त में उसे मानना पड़ता है कि यदि सुधा उसके जीवन में न आई होती तो वह कभी न बचता। यह पति के सैनिक बनकर द्वितीय विश्व युद्ध में भाग लेने के लिए जाने पर, उसके लौटने तक एक समय भोजन-करने, जमीन पर सोने, उपवास करने तथा प्रभु से उसके सकुशल लौटने की प्रार्थना करते रहने की *मन ही मन प्रतिज्ञा करती है। बाद में, पति द्वारा स्वदेश*-सेवाव्रत लेने पर यह भी साथ जेलयात्रा करती हुई परलोक सिधार जाती है।

सुधा बुद्धिमती और चतुर है। विवेक और कर्तव्य के सम्मिश्रण से इसका मस्तिष्क परिष्कृत है। सुधीन्द्र के अपने आप में खोया रहने पर यह स्त्रीसुलभ जागरूकता का परिचय देती हुई पति से पूछती है—'क्या स्त्रियों के प्रति पुरुषों को ऐसी ही बेपर्वाही का बर्ताव रखना चाहिए? क्या पुरुषों को अपने दुःख-सुख और चिन्ता की बातें अपनी स्त्रियों से कहनी ही नहीं चाहिएँ? तुमने मुझे इतना

पढ़ाया-सिखाया, सो क्या इसीलिए ?"[1] यह सुधीन्द्र का पूरा सम्मान करती हुई भी स्त्री-अधिकारों के प्रति सजगता का परिचय देती है।

पारिवारिक तथा सामाजिक क्षेत्र में सुधा नारी-जाति का नाम उज्ज्वल करती है। ससुराल आते ही यह तत्परता से गृहस्थी सभालती है। स्नेह भावना इसके रोम-रोम में बसी है। देवर रामजस पर झूठा मुकदमा बनने पर यह अपने सारे आभूषण बेचकर मुकदमे में लगाने को कहती है। राजेन्द्र (देवर) के अप्रसन्न होकर घर से चले जाने पर यह पहले पति को उसकी खबर लेने का आग्रह करती है फिर स्वय ससुर के साथ उसे लिवाने चला जाती है। इसके देवर-स्नेह से उसकी देवरानियाँ इससे ईर्ष्या तक करने लगती हैं। यह ईर्ष्या धीरे-धीरे झगड़े का रूप धारण कर लेती है और सुधीन्द्र तथा सुधा को घर से दूर बम्बई जाने को विवश कर देती हैं। किन्तु मझले देवर वीरेन्द्र के रुग्ण होते ही यह तत्काल उसकी सेवा के लिए लौटकर मथा मे दिन रात एक कर देती है। यह पति, सास और ससुर की सेवा जी-जान से करके उन्हे सदा प्रसन्न रखती है।

सुधा का स्वाभिमान और कर्मठ स्वभाव इसे ओजमयी नारी बना देते हैं। पूरे परिवार की सेवा मे लीन रहने पर भी, इसकी देवरानियाँ इससे सन्तानहीन होने के कारण कुछ अभद्र व्यवहार करती हैं तो इसका स्वाभिमान तड़प उठता है। यह उस घर मे अन्न-जल ग्रहण न करने का निश्चय ठान कर पति को तुरन्त वहाँ से चलने का आग्रह करती है। पूर्ण पतिपरायणा होती हुई भी यह पति की ओर से उपेक्षा सहन नहीं कर पाती।

सुधा मे अपार धैर्य है। मझले देवर वीरेन्द्र की दुखद मृत्यु पर हृदय से हाहाकार करते हुए भी यह धैर्यपूर्वक घर के कार्य व्यवहार मे सलग्न रहती है। स्वाधीनता आन्दोलन मे बन्दी बनाए जाने पर यह स्वय साहस से काम लेकर पिता, पति तथा अन्य परिजनों को ढाढस बँधाती है।

सुधा का सतेज व्यक्तित्व अनुपम देश भक्ति तथा सगठन-कुशलता मे प्रकट होता है। यह पति द्वारा सत्याग्रह मे भाग लेने पर, स्वय भी नारी-कार्यकर्त्ताओं मे अग्रणी बन जाती है। यह 'देश की जोगिन' बनकर हर नारी मे जागरण-मन्त्र फूँकती है। इससे ईर्ष्या करने वाली देवरानी सुमित्रा तथा विधवा भाभी यशोदा भी इसके कधे से कधा मिलाकर देश-सेवा-पथ पर चल पड़ती हैं।

सुधा सुन्दर, सौम्य और तेजोमयी होने के साथ सूर आत्म बलिदान द्वारा

---

1. आत्मदाह, पृ० २६३।

बरबस समाज की श्रद्धा और भक्ति की अधिकारिणी बन जाती है।

आधुनिक नारियाँ

१. मालती देवी (अदल बदल)

मालती आज़ाद महिला-सघ की अध्यक्षा, चालीस साल की विधवा है। पति के रहते यह उसके साथ तीन बार यूरोप का भ्रमण कर चुकी है। इसका शरीर और व्यक्तित्व पर्याप्त आकर्षक हैं। इसका मिलनसार स्वभाव सहज ही दूसरो को प्रभावित करने मे समर्थ है। पति द्वारा छोडी विपुल सम्पत्ति इसकी स्वतन्त्र प्रकृति के विकसित होने मे सहायक है। पाश्चात्य देशो के प्रभाववश यह भारत मे स्त्री-स्वाधीनता का सकल्प पूर्ण करना अपना कर्त्तव्य समझती है। किन्तु इसकी उच्च शिक्षा, प्रचुर सम्पत्ति और परिस्थिति-सुलभ स्वाधीनता सर्व-साधारण भारतीय स्त्रियो के अनुकूल नही है। यह व्यावहारिक एव पारिवारिक जीवन के अनुभव से शून्य है। इसका स्त्री-सुधार आन्दोलन मात्र मौखिक योजना है।

मालती देवी डॉ० कृष्णगोपाल तथा मायादेवी की सर्वथा विपरीत पारिवारिक परिस्थिति मे पूर्णत अवगत हुए बिना दोनो के तलाक का जोरदार समर्थन करती है। इसकी तथाकथित प्रगतिशीलता सीधी-सादी अनपढ, किन्तु साध्वी विमलादेवी की अनुभव सिद्ध, निष्कपट वाणी के सम्मुख धरी की धरी रह जाती है। मायादेवी जैसी सुशिक्षिता रमणी का तलाक दिए हुए पति के पास पुनः लौट आना इसकी स्त्री-सुधार-योजनाओ की अव्यावहारिकता सिद्ध करता है।

२ सुधा (दो किनारे—दादा भाई)

सुधा मिल मालिक जगदम्बा बाबू की इकलौती कन्या है। यह बाल्यकाल मे मातृ-वचिता है। यह सौन्दर्य और माधुर्य की सजीव प्रतिमा है। सहृदयता इसके स्वभाव का अभिन्न अग है। नायक नरेन्द्र से प्रथम अप्रत्याशित भेंट होने पर, उसके अशिष्ट व्यवहार मे अप्रसन्न होते हुए भी, इसकी मोहमयी मूर्ति नरेन्द्र की आँखो मे गड जाती है। सुधा की सहृदयता अपने से भिन्न विशेषत निम्न वर्ग के दीन-हीन जनो के प्रति प्रकट होती है। यह मिल के स्वार्थी मैनेजर रमेश को सचेत करती हुई कहती है—'मजदूरों का सुख-दुःख देखना भी तो हमारा काम है। वे जी तोड कर मेहनत करते है।'[1] एक बार यह मजदूरा की

---

1 दो किनारे, पृ० १४५।

बस्ती में उनके नारकीय जीवन की झलक देखने जाती है। मजदूरों की दरिद्रता का नग्नरूप इसे मर्माहत कर देता है। यह तत्काल अपना कीमती शाल मजदूर ता मटरू की पत्नी राधा को ओढा देती है। इसकी यह सहृदयता कई बार व्यंग्य-विनोद के रूप में भी व्यक्त होती है।

सुधा एक ओर भावुक एवं दूसरी ओर सशक्त नारी है। परिस्थितियाँ इसे अकस्मात् पितृविहीन कर जीवन के कर्मक्षेत्र में एकाकी छोड देती हैं। मिल की व्यवस्था का सारा बोझ उसके कधों पर आ जाता है। यह धैर्य और विवेक से अपने दायित्व का वहन करती है और संघर्षों की आग में तप कर और भी खरी हो जाती है। सर्वप्रथम उसे धूर्त मैनेजर और उसके दुष्टपिता कैलाश से निपटना पडता है। वे सुधा को गृहवधू बनाने के षड्यन्त्र द्वारा जगदम्बा बाबू की सारी सम्पत्ति हथियाना चाहते हैं। यह मजदूरों के प्रति रमेश के अभद्र व्यवहार का विरोध करती है और उसके पिता की बातों में बहके बिना उसकी स्पष्ट उपेक्षा कर देती है। मिल की स्वामिनी बनने पर यह सारे कागजात स्वयं पढकर वस्तु-स्थिति को समझने तथा हर उलझन को धैर्यपूर्वक सुलझाने का सफल प्रयास करती है। कैलाश तथा रमेश के षड्यन्त्र स्वरूप नरेन्द्र के कारागार में बन्द हो जाने पर यह सूझ-बूझ और कर्मठता से सबला सिद्ध होती है। इस षड्यन्त्र के कारण इसे अचानक बहुत बडी धनराशि भुगतानी पडती है। यह पावनेदारों से धन उगाह कर नरेन्द्र और मटरू के सक्रिय सहयोग से अपनी साख और मान-मर्यादा बचा लेती है।

सुधा का चरित्र इस बात का द्योतक है कि व्यावहारिक क्षेत्रों में भी नारी अपने दायित्व का निर्वाह करने में सर्वथा समर्थ है।

३. प्रमिला रानी (उदयास्त)

रियासत रामगढ के कुँवर सुरेशसिंह की पत्नी प्रमिलारानी अन्तःपुर की नारियों में अपवाद है। वह नवयुग के उदय तथा सामन्ती जीवन के अस्त का आदर्श है। यह सुशिक्षिता, संगीतज्ञा तथा अध्ययनशीला युवती है। उसका स्वभाव हँसमुख तथा हृदय उदार है। उसका उज्ज्वल, सांवला, सलोना रूप, चेहरे की आकर्षक बनावट, बडी-बडी आँखों में छाया मद, लावण्य की प्रभा से देदीप्यमान मुख मण्डल, सुडौल और मांसल अग और अगों की उभारदार गोलाइयाँ, ये सब मिलकर उसे आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं।

प्रमिला रानी सम्भ्रान्त राजपरिवार की पुत्री और प्रतिष्ठित रियासत की पुत्रवधू होने पर भी राजसी नाज-नखरों से सर्वथा मुक्त है। वह उच्च आधुनिक

शिक्षा प्राप्त पति के आग्रह पर भी पर्दा प्रथा का उल्लंघन नहीं करती। फिर भी वह अन्य रानियों की भाँति रूढ़िवादिनी नहीं है। वह विदुषी, किन्तु शील-सकोच युक्त है। सादगी, भोलापन एवं सहज आत्मीयभाव इसके स्वभाव की विशेषताएँ है। वह पति के साथ पहली बार अन्त पुर के बन्द कमरे से बाहर दिल्ली के स्वच्छन्द वातावरण मे कदम रखती है तो बड़ी-बड़ी फैशनेबल, प्रगतिवादिनी, सम्भ्रान्त रमणियों के बीच बैठकर उनके व्यक्तित्व से अभिभूत नहीं होती। उसके हृदय में क्षण भर के लिए भी हीन-भाव नहीं आता है।

प्रमिलारानी सादगी पसन्द है। दिल्ली यात्रा की तैयारी के समय यह शृंगार सामग्री को अनावश्यक बताती है। दिल्ली के ठाठ-बाट देखकर उसके हृदय मे हर नई बात के प्रति जिज्ञासा है। वह निम्नवर्ग की निर्धनता और मजबूरी भरी जिन्दगी को अत्यन्त निकट से देखने को लालायित है। एक ओर वह पति के आग्रह पर भव्य सिनेमा हाल में अग्रेजी फिल्म देखने से इन्कार नहीं करती, दूसरी ओर वहाँ से निकलते ही शरणार्थियों और मजदूरों की गन्दी बस्तियों मे उनके जीवन को देखने-समझने के लिए जाती है।

प्रमिला रानी यथार्थता से परिचित हो जाने पर विचार तथा व्यवहार दोनों मे प्रगतिशील हो जाती है। सेठ पुरुषोत्तम की कामरेड-पुत्री पद्मा एवं उसके कम्युनिस्ट प्रेमी कैलाश के मजदूर आन्दोलन सम्बन्धी कार्यों मे वह गहरी दिलचस्पी लेती है। वह उनकी यथासम्भव सहायता करती है। अवसर पड़ने पर वह गरीब झुग्गी वालों तथा मजदूरों की भी आर्थिक सहायता करती है।

प्रमिला रानी चिन्तनशील युवती है। दिल्ली मे जीवन के विविध विचित्र रूप देखकर वह अनेक विषयों पर गम्भीरता से विचार करती है। उनके सम्बन्ध मे पति तथा उसके मित्रों से वाद-विवाद करती है। हर समस्या के समाधान के लिए वह आतुर सी दिखाई देती है। प्रमिला रानी मिलनसार सगी और व्यवहार कुशल गृहिणी है।

४. रेणुकादेवी (उदयास्त)

रेणुकादेवी आभिजात्य वर्ग की समृद्ध एवं प्रगतिशील नारी है। वह स्वयं को सोशलिस्ट कहती है। वह अपने पति सेठ पुरुषोत्तम के धन का कुछ भाग सोशलिस्ट पार्टी की सहायतार्थ प्रदान करती है। सोशलिस्ट पार्टी का सेक्रेटरी प्राणनाथ रेणुकादेवी द्वारा महिला सघ मे सोशलिस्ट प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न करता है और उसकी उन्मुक्त प्रकृति का लाभ उठाकर कभी-कभी काव्य और शरीर-रस-चर्चा का आस्वादन कर लेता है।

रेणुकादेवी को क्लब गोष्ठियों में बैठ गपशप करने, देश-विदेश घूमने,

सज सँवर कर पुरुषों के मध्य रूप-श्लाघा सुनने का बड़ा चाव है। राजा हरबख्शसिंह, कुँवर सुरेशसिंह तथा काँग्रेसी-सोशलिस्ट नेता प्राणनाथ के प्रति उसकी मुस्कुराती दृष्टि, उसकी चंचलता का प्रमाण है। उसकी यह स्वेच्छा चारिता उसके पति और पुत्री के लिए कष्टदायक है। पुत्री को तो यह अपने रौब और आतंक में नहीं बाँध पाती किन्तु पति को उल्लू बनाने में वह सफल है। वह सेठ को सठियाया हुआ समझकर उसकी पसन्द, न पसन्द की परवा नहीं करती। पति से अपनी और पार्टी की आवश्यकताओं के लिए रुपया हथियाना, देर गए रात तक क्लबों में रहना उसकी प्रवृत्ति है। पुत्री का विवाह कर लेने पर अपने पति को एकाकी रुग्णावस्था में तड़पता छोड़, वह अधिकांश समय क्लब में बिताती है। इसमें सौतेली माँ की स्वाभाविक कर्कशता तथा घृणा-भावना भी है।

रेणुकादेवी स्वतन्त्र विचारों वाली, आमोद प्रमोद प्रिय, स्वच्छन्द नारी है।

५ पद्मा (उदयास्त)

पद्मा सेठ पुरुषोत्तम की इकलौती पुत्री है। अपनी सौतेली माँ रेणुका के अंकुशपूर्ण आतंक के कारण इसे उसके प्रति अश्रद्धा है। यह अपूर्व सुन्दरी है। इसके चेहरे पर तरुणाई की कोमलता, तेज एवं ताजगी रहती है। इसकी आँखों में उज्ज्वल प्रकाश है। किशोरावस्था के कारण इसमें चपलता है। किन्तु, इसकी साधारण वेष भूषा तथा लापरवाही से बने बाल इसकी सादगी तथा प्रभावशाली व्यक्तित्व के सूचक हैं।

पद्मा विवेकमयी कर्मठ युवती है। सबकी सुनना, उसमें से श्रेष्ठ को चुनना, उपयोगी भाव पर अमल करना इसके मूल मन्त्र है। सौतेली माँ की विरक्ति के कारण यह स्वयं अपने जीवन के निर्माण का संकल्प कर लेती है। इसका आत्म-कथन है—'मेरे जीवन ! तुम रुको मत, बहते रहो, चलते रहो।'[1] और यह जुट जाती है अध्ययन में। उच्च शिक्षा में सफलता प्राप्त कर यह जन-सेवा को जीवन-लक्ष्य बना लेती है।

पद्मा स्वावलम्बिनी और स्वाभिमानिनी है। सभी बातों के सम्बन्ध में यह उचितानुचित सोच कर, स्वयं किये निर्णय को दृढ़ता से पूर्ण करके दिखाती है। अपने प्रेमी कम्युनिस्ट कैलाश से मिलकर मजदूर सेवा करने में यह सौतेली माँ का हस्तक्षेप सहन नहीं करती। अपने पिता की मिल में मजदूरों की हड़ताल से विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो जाने पर यह विवेक से काम लेती हुई मजदूरों की

---

१. उदयास्त, पृ० १८५।

सब माँगें स्वीकार करने की घोषणा कर देती है। इसके दबंग स्वभाव को देख कर निम्न उच्चवर्ग के सभी व्यक्ति प्रभावित है।

पद्मा विनम्र तथा सिद्धान्तवादिनी है। स्वयं को अभिजात कुल की कन्या कहलाने में यह अपना अपमान समझती है। 'पद्मा रानी' सम्बोधित करने पर यह कहती है—मैं पद्मा हूँ रानी नहीं। सिद्धान्तों के नाम पर यह अपने पिता के विरुद्ध मोर्चा लेकर मजदूरों का साथ देती है। सार्वजनिक क्षेत्र की भांति यह व्यक्तिगत जीवन में भी स्वच्छन्दवादिनी है। अपने माँ बाप और मित्रों को बताये बिना यह कामरेड कैलाश से विवाह कर लेती है। पिता के बहुत आग्रह पर भी उसकी सम्पत्ति का लाभांश स्वीकार नहीं करती। यह अपने परिश्रम की कमाई खाना ही पसन्द करती है।

आभिजात्य समाज में पद्मा का चरित्र नारी-जाति के लिए नव-दिशा का संकेत है।

६ शारदा (बगुला के पंख)

शारदा नगर प्रतिष्ठित डॉ० खन्ना की इकलौती पुत्री है। उसने एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की है। संगीत और नृत्य कला में वह निपुण है। साहित्य में उसकी गहरी अभिरुचि है।

शारदा अज्ञातयौवना भावुक युवती है। उसका अबोध हृदय अचेतन रागात्मक आसक्ति से कामी कुकर्मी मुंशी जगनपरसाद की ओर उन्मुख होने लगता है। उसके भोलेपन की स्थिति यह है कि मुंशी द्वारा 'इश्क' सम्बन्धी गजल पर यह उसका अर्थ समझे बिना ही जी जान से उसपर मुग्ध है। मुंशी घुमा फिराकर उससे उसकी 'मुहब्बत' के हकदार का नाम पूछता है, उसका उत्तर है—मम्मी, पापा। उसकी निर्दोष दृष्टि उसके अबोध निर्मल हृदय की परिचायक है।

धीरे धीरे पवित्रात्मा शारदा लम्पट जगनपरसाद के कामुकता जाल को जानने लगती है। मुंशी जब उससे 'विवाह का वादा' लेता है तब उसकी निष्कपट सहृदयता तथा सयमशीलता स्पष्ट झलकती है। वह शरमा कर रह जाती है। जगनपरसाद उसे सारी बात माता पिता से छिपाने को कहता है तो उसका कथन है—परन्तु ये सब बातें तो वे ही करते हैं। उसका हाथ पकड़ कर मुंशी के प्रणय प्रलाप करने पर शारदा का मुँह पीला पड़ जाता है। वह काँप उठती है और झटका देकर अपना हाथ छुड़ा लेती है।

सरला रातभर सो नहीं पाती। उसके मुख पर खेलता हुआ सरल हास्य सर्वथा लुप्त हो जाता है। वह भीत हरिणी के समान त्रसित और व्यथित-सी रह जाती है। यह स्थिति उसके चरित्र का दर्पण है। उसकी भावुकता किसी

प्रकार की कामना से प्रेरित नहीं। किन्तु परिस्थितियाँ उसे मुँशी के साथ विवाह करने की ओर ले जाती हैं। वह माता पिता द्वारा मुँशी के साथ आयोजित विवाहावसर को अंगीकार करती है। किन्तु एक अप्रत्याशित घटना उस भोली युवती को उस कापुरुष की प्रवचना में आजीवन उलझे रहने से बचा लेती है और उसे उसके शुभचिन्तक शिक्षक परशुराम तक पहुँचा देती है।

अकस्मात् मुंशी पर पड़ा हुआ नेतागिरी का उज्ज्वल मुखौटा उतरकर, उसका कुत्सित रूप निरावरण हो जाता है। डा० खन्ना शारदा को विवाहवेदी से उठाकर कोठरी में बन्द कर देते हैं और उसके मूक हितैषी परशुराम से अनुनय कर, उसे वेदी पर ला बैठाते हैं। इस आकस्मिक घटना से निरीह शारदा मर्माहत हो जाती है। किन्तु शारदा बुद्धिमती लड़की है। परशुराम इस मामले में स्वयं को अलिप्त सिद्ध कर क्षमा याचना का पत्र लिखता है। शारदा उत्तर में केवल एक शब्द 'आओ' लिखकर अपने व्यक्तित्व की गरिमा को सार्थक कर देती है।

७ लिज़ा (खग्रास)

रूसी बाला लिज़ा नवयुग-चेतना की सजीव मूर्ति है। यह अपनी कर्तव्य-परायणता के सहारे स्वराष्ट्र रूस की प्रतिष्ठा में अपूर्व सहयोग प्रदान करती है। यह नव-अनुसन्धान के साहसिक अभियान में सक्रिय भाग लेकर नारी-समाज के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है।

लिज़ा रूस द्वारा आयोजित मानव की चन्द्रयात्रा की सफलता का समाचार पाने वाली पहली स्त्री है। यह इस क्षेत्र की प्रमुख जासूस तथा चन्द्रयात्री ज़ोरोवस्की की प्रेमिका है। लिज़ा की कार्यकुशलता ज़ोरोवस्की के अन्तरिक्ष से धरातल पर लौटने से पहले ही उसके स्वागत, सुरक्षित आवास तथा आवश्यक वैज्ञानिक उपकरणों की व्यवस्था में प्रकट होती है। यह दिल्ली से गोपनीय सूचनाएँ बड़ी निपुणता से मास्को भेजती है। यह ज़ोरोवस्की के साथ दक्षिणी ध्रुव की यात्रा के समय, बर्फील सागर पर, विभिन्न खोजों की जानकारी के निमित्त, सन्देशों का आदान-प्रदान तथा चित्र-संकलन अत्यन्त व्यस्त भाव से करती है।

लिज़ा दूरदर्शिनी है। यही पग-पग पर इसे संकटों से बचाकर सफलता की ओर अग्रसर करती है। उसके पीछे पृथ्वी और आकाश में जासूसों का जाल बिछा होने के कारण यह ज़ोरोवस्की को हर स्थिति में सतर्क किए रहती है। अपना सूक्ष्म वायरलेस यन्त्र यह सदा अपने वक्ष में छिपाए रखती है। पुलिस के

पंजे मे यह कई बार फँसती है, किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण न मिलने के कारण साफ छूट जाती है।

लिज़ा निर्भीक है। किसी भी विकट परिस्थिति मे यह विचलित नही होती। यह सार्वजनिक भोजनालय मे, यात्री विमान में तथा अन्य विशेष स्थलों पर अनेक व्यक्तियो के सम्पर्क मे आती है, उन्हें प्रभावित करती है, उनके साथ विभिन्न कार्यक्रमो मे भाग लेती है। किन्तु यह उनके चगुल में कभी नही फँसती अपितु निर्दयतापूर्वक उन्ही का अन्त कर देती है। हांगकांग के वायुयान-अड्डे के भोजन-गृह मे ज़ोरावस्की का मित्र उसका चुम्बन लेने की चेष्टा करता है। लिज़ा उसे एक करारे थप्पड से धरती पर लिटा देती है। वास्तव मे वह शत्रु देश का जासूस है। वह वैज्ञानिक यन्त्रो की सहायता से किसी अज्ञात स्थान पर लिज़ा के वायरलैस सन्देश सुनने का प्रयास करता है। लिज़ा एक विशेष यन्त्र द्वारा उसे विद्युत् झटका देकर मार डालती है।

लिज़ा के कठोर, यान्त्रिक व्यक्तित्व के भीतर सरस, अनुरागी हृदय विद्यमान है। अन्तरिक्ष से लौटने मे ज़ोरोवस्की की क्षण भर की देर भी इसे असह्य हो उठती है। दिल्ली के अशोक होटल मे ज़ोरोवस्की का एक रानी के प्रति झुकाव देखकर लिज़ा नैसर्गिक नारी-ईर्ष्या से अभिभूत हो जाती है। ज़ोरोवस्की से चन्द्रयात्रा का रोमाचक वृत्तान्त सुनते हुए यह कई बार कांपते हाथों मे उसका हाथ पकड लेती है और अनायास सिसकारी उसके कण्ठ से निकल पडती है। ज़ोरोवस्की का हृदय भी लिज़ा के पुनीत अनुराग मे सिक्त है।

लिज़ा आधुनिक महिला है। यह जीवन के हर क्षेत्र में प्रगतिपथ पर अग्रसर है।

८ प्रतिभा (खग्रास)

प्रतिभा रहस्यमय गूढ-पुरुष तथा उद्भट भारतीय वैज्ञानिक की इकलौती युवा-पुत्री है। यह उन्मुक्त स्वभाव, सहृदय और विनोदी युवती है। तिवारी उसके अज्ञातनामा, गुरुपुरुष के रूप मे प्रख्यात पिता के दर्शनार्थ साहस करके उसके भवन के द्वार पर पहुँच जाता है। वह बडे निस्सकोच भाव से उसका स्वागत करती है। तिवारी द्वारा सुन्दर प्रभात तथा फूलो भरे बगीचे में इसकी उपस्थिति को और शोभा-वर्धक कहे जाने पर यह मुस्करा कर कहती है—अच्छा तो आप व्यवसाय से शिकारी, दृष्टि से कलाकार और हृदय से भावुक साहित्यकार भी हैं। पहले कभी पार्वत प्रदेश मे न दीखने की बात पूछने पर यह तिवारी से कहती है—'देखते कैसे ? आपकी दृष्टि तो अपने शिकार पर ही रहती है। मैं तो आपका शिकार हूँ नही।'

प्रतिभा रूपसी तरुणी है। उसका अंग-प्रत्यंग साँचे में ढला-सा प्रतीत होता है। उसमें अगाध ज्ञान की गरिमा भी है। वह अपने पिता की समस्त वैज्ञानिक गतिविधियों में पूर्ण सहयोग देती है। विज्ञान के नव्यतम, आश्चर्यजनक यन्त्रों का सचालन करने में वह पूर्णतया दक्ष है। उसका मत है— विज्ञान मानव के लिए मुक्तिदूत है, मृत्युदूत नहीं।[1] उसे रूस और अमेरिका के वैज्ञानिकों पर आपत्ति है। वे, उसके मत में, विज्ञान को मनुष्य का मृत्युदूत बना रहे हैं। उसके अनुसार मनुष्य का जीवन सर्वोपरि है और जीवन की शक्ति बनाये रखने के लिए भोजन तथा ईंधन की प्राप्ति हेतु परमाणु, सौर तथा समुद्री शक्तियों का उपयोग करना समीचीन है। वह चाहती है कि 'जन-जीवन का नतृत्व राजनीतिज्ञों के हाथ से छीनकर वैज्ञानिकों और साहित्यकारों के हाथ में सौंप देना चाहिए।'[2]

प्रतिभा स्वदेशानुरागिणी है। भारतभूमि के प्रति उसके हृदय में गौरव-भावना है। उसे इस बात का गर्व है कि भारत रचनात्मक शान्ति-सहयोग का प्रसार करने में ससार का नेतृत्व कर रहा है और विश्व की विध्वंसक शक्तियों से त्रस्त जातियाँ भारत की शान्ति शक्ति की छत्रछाया में आने को लालायित हैं।

प्रतिभा आदर्श पुत्री भी है। वह पिता की सुख सुविधा का हर क्षण ध्यान रखती है। वह हर काम पिता की दिनचर्या के अनुरूप करती है। तिवारी से वार्तालाप में निमग्न रहने पर वह निश्चित समय पर उस संकेत से चुप करा देती है और निर्देश करती है कि अब पापा को मेरी आवश्यकता होगी। एक दिन अकस्मात पिता को गम्भीर देखकर, उसका स्नेही हृदय पिता की विदा वेला की अनुभूति कर गम्भीर हो उठता है। वह आँखों में आँसू भर अगुलियों से पिता के बाल सहलाने लगती है। अन्त में पिता के आदेश स वह तिवारी से विवाह कर गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है।

प्रतिभा जागरूक, विवेकमयी और कर्मठ भारतीय महिला है।

६ माया (धर्मपुत्र)

माया राय राधाकृष्ण बैरिस्टर की युवती कन्या है। इसने विलायत से एम० ए० पास की है। जाति-पाँति, बिरादरी आदि में इसकी कोई आस्था नहीं। यह हर दृष्टि से 'माडर्न' है। सहेलियों के साथ घूमना फिरना, पिकनिक

---

१. सग्राम, पृ० २६१।
२ वही, पृ० २७३।

मनाना, पिक्चर देखना इसकी अभिरुचि है। यह आत्माभिमानी है। पिता इसे दिलीप के साथ विवाह-वार्ता-हेतु दिल्ली चलने के लिए कहता है। यह तेवर बदल कर कहती है—डाक्टर साहिब की अब खुशामद करनी होगी हमें बाबू-जी ? आप जाइये, मुझ से यह न होगा।

माया का बहिरंग व्यक्तित्व उसके स्वच्छन्द, परम्परा विरोधिनी होने का आभास देता है। किन्तु, उसका अन्तरंग उसे मान्यामयी, सहृदया तथा प्रेम-प्रतिमा सिद्ध करता है। वह दिलीप द्वारा जातिगत कट्टरता के कारण विवाह सम्बन्ध से इन्कार करने के पश्चात् उससे मिलने जाती है। वहाँ निस्संकोच भाव से दिलीप से बातें करना, माँ द्वारा प्रेषित घड़ी दिलीप को लौटाना, व्यंग्य-विनोद-मय वाक्यों से उसे निरुत्तर कर देना माया की व्यवहार-बुद्धि का परिचायक है। प्रगतिशील दृष्टिकोण रखती हुई भी वह परिवार और समाज के संस्कारों से वंचित नहीं। उसके लखनऊ जाते समय डॉ० अमृतराय का सारा परिवार अपने को अधूरा और खोया-खोया-सा अनुभव करता है।

माया का प्रेम-भाव अनन्य है। दिलीप के रूप में अपने स्वप्न को साकार होते टूटता देख उसका हृदय मर्माहत हो उठता है। उसके रक्त की प्रत्येक बूँद होने से दिलीप की मूर्ति बन जाती है। अपने ही चलाये कुचक्र में दिलीप के उलझकर घायल हो जाने पर माया के प्रेम की अनन्यता चरम सीमा तक पहुँच जाती है। वह पिता को लेकर तत्काल दिल्ली आकर पांच दिन तक मर्मशून्य दिलीप के पास बैठकर सेवा-मग्न हो जाती है। दिलीप के होश में आ जाने पर जैसे वह नया जीवन पा जाती है।

अन्त में दिलीप अपने को मुस्लिम-सन्तति जानकर घर से जाने लगता है। उसके सभी परिजन रो-धोकर रह जाते हैं। दिलीप तेजी से बाहर खड़ी टैक्सी की ओर कदम बढ़ाता है। टैक्सी के भीतर अकस्मात् एक आकृति दिखाई देती है और वह है माया। माया की प्रेम-निष्ठा की लौ जातीय भेद-भाव की भीषण आँधी में भी बुझ नहीं पाती। वह कहती है—'सबने मुँह मोड़ लिये हो, लेकिन मुझसे भी मुँह मोड़ चले ! सो मैंने पत्थर के देवता को रोम-रोम में बसाकर उसकी पूजा की। सुनते तो हैं कि पत्थर के देवता भी सच्ची उपासना से प्रसन्न हो जाते हैं, अभीष्ट वर देते हैं लेकिन तुम पत्थर से भी निष्ठुर निकले।'[1]

माया का बहिरंग और अन्तरंग सम्पूर्ण नारी का आदर्श है।

१० रत्तन (खून और खून)

रत्तन बम्बई के पारसी रईस दिनशा पेटिट की पुत्री है। यह पाश्चात्य

---

१ धर्मपुत्र, पृ० १८४।

सभ्यता के उन्मुक्त प्रवाह में हिलोरें लेती हुई भी स्वदेशी संस्कारों को अपने जीवन से विच्छिन्न नहीं होने देती। यह अत्यन्त सुकुमारी, गरिमापूर्ण षोडशी बाला है। दीवान चमनलाल के शब्दों में—'पृथ्वी पर अन्य कोई स्त्री उस सौंदर्य दीप की समता करने में असमर्थ है।'

रतन देश के उस समय के युवा मुस्लिम-नेता मुहम्मद अली जिन्नाह पर प्राण पण से आसक्त हो जाती है। यह एक सभा में जिन्नाह की वक्तृता शक्ति से प्रभावित होकर आजीवन उसके साथ रहने का निर्णय कर लेती है। पिता द्वारा जाति-बिरादरी और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का ध्यान दिलाने पर यह स्पष्ट कहती है—'श्रेष्ठ व्यक्तित्व तो सभी बन्धनों से ऊपर है। बन्धनों का विचार श्रेष्ठ पुरुष कभी नहीं करते।'[1] यह उपयुक्त अवसर देखकर, घर वालों से विदा ले, एकाकी जिन्नाह के घर चली जाती है और इस्लाम धर्म स्वीकार कर उससे विवाह कर लेती है। अठारह वर्षीय पारसी युवती का बयालीस वर्षीय मुस्लिम नेता से प्रेम विवाह इसकी उदात्त जीवन दृष्टि का परिचायक है।

रतन ने इस उदात्तता का विकास स्वाध्याय और विवेक के बल पर किया है। इसके सम्बन्ध में उसका कथन है—विद्याध्ययन तो मेरा जीवन है, उसे कैसे छोड़ूंगी। मैं पढ़ूंगी भी और अपने जीवन-साथी का हाथ भी पकड़ूंगी। आगे यह अपनी दृढ़ निश्चयात्मकता का परिचय इन शब्दों में देती है—मुझे जो निर्णय करना था, वह मैं आप पर प्रकट कर चुकी। मेरे सुख और जीवन-उत्कर्ष का मार्ग मेरे सामने उपस्थित है। आप यदि इसमें बाधा देंगे तो मैं अपने बलिदान से आपकी इच्छा और मर्यादा की रक्षा करूंगी।

रतन के स्वाभिमान की छाप उसके सामाजिक और व्यावहारिक क्षेत्र में दिखाई देती है। उसके हृदय में स्वदेश के प्रति उत्कट अनुराग है। एक बार जिन्नाह से प्रणयालाप करते समय, फूलों की सुन्दरता के सम्बन्ध में चर्चा चलने पर यह अनायास कह उठती है—मुझे वही फूल पसन्द हैं, जो सुन्दर और मन-मोहक होने के साथ भारतीय भी हों। यह प्रायः शरीर पर शुभ्र भारतीय परिधान धारण करती है। उसकी भारतीयता के प्रति अनन्य निष्ठा बाद में जिन्नाह से उसके मतभेद का कारण बनती है। लार्ड चेम्सफोर्ड द्वारा दिये गये डिनर में गवर्नर-जनरल को उसका भारतीय शिष्टाचार के अनुरूप सम्मानपूर्वक हाथ जोड़कर नमस्कार करना जिन्नाह को क्षुब्ध कर देता है। इस पर रतन कहती है—'मैं अपने देश भारत की सन्तान हूं। मुझे अपने देश के शिष्टाचार पर

१. खून और खून, पृ० ३६।

आचरण करने मे गर्व है।'

रतन भावुक और सेवानिष्ठ भी है। वह जीवन भर जिन्नाह से अपने लिए आत्मार्पण, स्वदेश तथा भारतीय संस्कृति के प्रति निष्ठा की अपेक्षा करती रहती है। किन्तु उसकी यह आशा पूर्ण नही होती। वह लोकमान्य तिलक को आदर्श मानती है और उनके गीता-ज्ञान से अपना मन प्रकाशित करती है।

अन्त मे व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्षेत्रो मे अविरत सघर्ष करती हुई यह आत्माभिमानिनी, कर्मठबाला अपने अन्यतम प्रेमी द्वारा हृदय तोड दिए जाने के कारण लम्बी बीमारी के बाद महाप्रयाण कर जाती है। लोकमान्य तिलक के ये शब्द इस की गरिमा के परिचायक हैं—'स्वदेश तुम्हे स्मरण रखेगा, जिन्ना को नही। तुमने जो कुछ किया, एक भारत की पुत्री को वही करना चाहिए।'[1]

११ आभा (आभा)

आभा डॉ० अनिल की पत्नी है। वह उच्च शिक्षा-प्राप्त, मनोविज्ञान-विदुषी और अप्रतिम सुन्दरी है। पति के मित्र रमेश के प्रति उसके हृदय मे शरीर-सबध की परिधि से अपगत आसक्ति जाग उठती है। पति की सशयदृष्टि उसे बलात् गृह-त्याग और रमेश के साथ आजीवन रहने के सकल्प की ओर अग्रसर करती है।

आभा पत्नी और माँ होते हुए भी 'नारी' अधिक है। स्त्री-सुलभ आत्माभिमान एव अधिकार-रक्षण की भावना उसे अनपेक्षित रूप से पतिसे विमुख कर देती है। एक दिन रमेश और आभा को एकान्त मे इकट्ठा देखकर डॉ० अनिल सन्तुलन खो बैठता है। आभा और रमेश के प्रति डॉ० अनिल के कटु शब्द तथा दुर्व्यवहार की प्रतिक्रिया होती है। आभा रमेश को स्वय अपने को आकर ले जाने के लिए आमन्त्रित करती है।

आभा का नारीत्व उसे पति और प्रेमी दोनो के प्रति आत्मीयतावश अन्तर्द्वन्द्व मे ग्रस्त कर लेता है। उसका पत्नीत्व तथा मातृत्व उसे गृहत्याग पर कोसता है। किन्तु स्वाधिकार तथा स्वाभिमानवश वह इस आचरण को उचित समझती है। रमेश के साथ रहने मे उसे समाज के अपवाद का भय है, पर रमेश को छोड उसे अन्य कोई आश्रय नही दीखता। मानसिक द्वन्द्व की इस ज्वाला को शान्त करने के लिए वह रमेश के साथ अनेक तीर्थों की यात्रा करती है किन्तु उसके मन को कहीं शान्ति नही मिलती। अन्त मे वह अपनी भूल का प्रायश्चित

१. खून और खून, पृ० ५४।

करती है। वह न केवल पुन पति गृह मे शरण लेना श्रेयस्कर समझती है अपितु रमेश के प्रति अपने प्रेम को पवित्र स्नेह के उदात्तीकरण का स्पर्श देकर, हर कठिनाई का समाधान खोज निकालती है।

आभा का बहिरग स्वरूप उदात्त है। उसमे साहस विवेक, ममत्व और सहृदयता का प्राधान्य है। वह अपने निश्चय को हर मूल्य पर कार्यान्वित कर दिखाती है। अचेतन मन का विरोध होते हुए उसका पति और पुत्री को त्यागना इसका प्रमाण है। वह रमेश प्रेम निवेदन का सक्षम प्रतिकार कर उसे अपनी योजनानुसार चलने पर विवश कर देती है। भावुकतावश वह प्रेमी के साथ चल तो देती है, किन्तु उसकी चिन्तनशील प्रकृति उसे क्षण भर भी चैन नही लेने देती। प्रेम, वासना, विवाह आदि के सम्बन्ध मे वह तर्कपूर्ण ढग से विचार-मन्थन करती है। विवेक बल से वह अपने नारीत्व को अनैतिकता की कालिमा से मुक्त रखने मे समर्थ होती है। वह प्रेम को जीवन का अनिवार्य तत्त्व मानती हुई उसमे सयम का महत्त्व प्रदर्शित करती है।

आभा मर्यादाशील स्त्री है। उसकी रमेश के प्रति आसक्ति है, किन्तु वह पति के प्रति निश्छल आस्था बनाए रखती है। पर-पुरुष से शरीर-सम्बन्ध उसकी दृष्टि मे हेय है। पति द्वारा आग्रह करने पर भी वह उसकी धन-सम्पदा अस्वीकृत कर आत्म-सयम का परिचय देती है। वह अपनी या पति की निन्दा किसी भी रूप मे सहन नही कर सकती। यही कारण है कि रमेश को छोड पुन पति-गृह मे लौटने का निश्चय करने पर भी वह नही लौटती, अकस्मात् अपने गर्भवती होने का बोध उसके रोम-रोम मे भय का सचार कर देता है।

आभा परिस्थितियो की दास नही है। घटनाएँ उसे 'पत्नी' और 'माँ' के स्थान से च्युत कर देती हैं किन्तु उसका हृदय पत्नीत्व और मातृत्व से रिक्त नही हो पाता। रमेश के घर रहती हुई वह स्वप्नावस्था मे अपने पति अनिल को आलिगन-बद्ध करने को आतुर दिखाई देती है। नींद मे पडे-पडे उसका हाथ अपने अगल-बगल मुन्नी को टटोलने लगता है। दूसरी सन्तान (पुत्र) होने पर मातृत्व मानो मूर्तिमान् हो उठता है।

अन्त मे आभा के सभी भाव, विचार, गुण पति प्रेम मे विलीन हो जाते हैं। वह स्वीकार करती है—"अभी तक ससार मे उस नारी का जन्म ही नही हुआ है जो ऐसे पुरुष की इस प्रकार की प्रणयाभिलाषा को सुनकर उसके प्रेम की आग से पिघल न जाय, सिंहासन से नीचे उतरकर उसके सामने हाथ जोड़कर खडी न हो जाए।"[1]

---

१. आभा, पृ० ११२।

ग्राभा ग्राधुनिका है। वह नवयुग की नई चेतना के प्रचण्ड प्रकाश में चौंधियाकर भटकने लगती है। किन्तु उसका प्रदीप्त नारीत्व शीघ्र ही उसे दायित्वबोध करा देता है।

१२ नीलमणि (नीलमणि)

नीलमणि ग्राधुनिका नारी है। यह ग्रेजुएट है। तर्कशास्त्र पढ़ने के कारण दलीलों में उसे कोई पा नहीं सकता। 'राइडिंग' का इसे बेहद शौक है। परिस्थितियाँ इसे भटकी तितली बना देती हैं। यह रूढ़िविरोधिनी, स्त्री-स्वाधीनता तथा समानाधिकारों की प्रबल समर्थिका है।

नीलमणि स्वाभिमानिनी है। उसे बिना पूछे ससुराल भेजने का आयोजन उसे क्षुब्ध कर देता है। महेन्द्र उसे सैकंड क्लास के डिब्बे में बैठाकर स्वयं तीसरे दर्जे में जा बैठता है। नीलमणि इसे अपना घोर अपमान समझती है। अपने कुल और परिवार की श्रेष्ठता के सामने यह महेन्द्र को तुच्छ बतलाती है। यह अपने ग्रहम्भाव में स्वयं सुरक्षित है। अकस्मात् पितृगृह चले जाने पर माँ उससे पति के साथ एक न होने का कारण पूछती है। यह अपने घमण्ड को इसका दोषी बतलाती है।

नीलमणि के व्यक्तित्व में रूप और मस्ती, सहृदयता और उग्रता का समिश्रण है। महेन्द्र यूरोप की लाखों सुन्दरियों के मुक्त सहवास में रहकर भी नीलमणि की शोभन मूर्ति को नहीं भुला पाता। उसका पलंग, तकिया, बिछौना सब हमेशा अस्त व्यस्त रहते हैं। इससे उसकी मस्ती का ग्राभास होता है। उसकी सहृदयता उसकी सास को पहली भेंट में ही उसकी प्रशंसिका बना देती है। ननद के प्रति उसका ऐसा स्नेह-सौहार्द है कि एक ही दिन में दोनों जन्म-जन्मान्तर की सखियाँ प्रतीत होती हैं।

नीलमणि का मन ग्रचेतन और ग्रवचेतन के भीषण द्वन्द्व में ग्रस्त है। नारी मनोविज्ञान की यह सजीव प्रतिमूर्ति है। मन और मस्तिष्क, प्रेम और ग्रधिकार, भावना और संस्कार की युगल प्रवृत्तियाँ इसके व्यक्तित्व में सफलता से कार्यशील हैं। सहपाठी विनय के प्रति उसका सहज स्नेह है। पति महेन्द्रनाथ के प्रति प्रतिफलित प्रेम इस द्वन्द्व का मूल है। विवाहोपरान्त भी यह विनय से मेलजोल कम नहीं करती। माँ द्वारा ग्रापत्ति करने पर इसका ग्रात्मसम्मान फुंकार उठता है। इसी ग्रावेश में यह ग्रपने उदार, सुशिक्षित पति के प्रति उपेक्षा का प्रदर्शन करती है, फिर चाहने पर भी उसे नियंत्रित नहीं कर पाती। प्रथम भेंट में तिरस्कृत पति के कमरे से बाहर जाने पर नीलमणि के रक्त में ग्राग लग जाती है। इसका हृदय उसे ग्रात्मनाथ स्वीकार करता है किन्तु उसका मुख खुल नहीं

पाता। पति के साथ ससुराल पहुँचने पर दिन भर वह उससे एकान्त मिलने की प्रतिक्षा करती है। किन्तु रात को पति से भेंट होते ही विवाद कर उसे लौटने पर विवश कर देती है। नीलमणि के होंठो की मुस्कराहट तथा आँखो का मधु-रस बार बार महेन्द्र को एक सम्पूर्ण परिरम्भण के लिए निमन्त्रित करता है। किन्तु तर्कशील मस्तिष्क तुरन्त इसके पति को निरुत्तर कर चिर-अपरिचित-सा बना देता है। कभी-कभी यह अचेतन के वश होकर अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करती है। एक अज्ञान आकर्षण उसे महेन्द्र के निकट ले आता है और यह महेन्द्र के प्रेममय आलिंगन को निर्विरोध स्वीकार कर लेती है। किन्तु इसका चेतन मन पुनः पत्रव्यवहार के प्रश्न पर पति से उलझ कर तत्क्षण मायके जाने का निश्चय करा देता है।

इस प्रकार नीलमणि सदैव आत्म ज्वर से भस्मसात् होती रहती है। यह ज्वाला उस समय शान्त होती है, जब उसका सहृदय मित्र विनय वासना और प्रेम का अन्तर स्पष्ट कर उसके मन मे भली भाँति यह बात बैठा देता है कि परिचय के पश्चात् विवाह की अपेक्षा विवाह के पश्चात् परिचय ही क्यों श्रेष्ठ है। और तब नीलमणि का सम्पूर्ण नारीत्व पतिचरणों में समर्पित हो जाता है। उसकी आत्मा जैसे विदेह होकर महेन्द्र मे लीन हो जाती है।

स्वच्छन्द नारियाँ

१ मायादेवी (अदल बदल)

मायादेवी अप टू-डेट एवं ऊँचे ख्यालो की स्मार्ट लेडी है। वह स्वच्छन्द प्रकृति तथा वैभव-विलास मे मस्त रहने वाली नारी है। उसकी दृष्टि मे स्वतन्त्रता-सूर्य ने सबको समान अधिकार दिए हैं। उसके प्रगतिशील विचार होटलो और क्लबो की भीड़-भाड़ का उसे प्रमुख अंग बना देते हैं। वह आधुनिक विचार-गोष्ठियो के नाम पर आयोजित 'वार्ड देत' पार्टियो में भाग लेने मे अपने नारीत्व का गौरव मानती है। पुत्र और पति की उपेक्षा उसके लिए बहुत साधारण बात है। पुत्र के भीषण ज्वरग्रस्त होने पर भी वह उसकी देखभाल की अपेक्षा 'आज़ाद महिला संघ' की तथाकथित मीटिंग मे जाना अधिक उचित समझती है।

मायादेवी की नारी-अधिकार-भावना एवं जागरूकता पर पुरुष-आसक्ति की आड़ बनकर रह जाती है। गरीब अध्यापक पति के लिए उसके पास विद्वत्ता-पूर्ण भाषण या फटकार के अतिरिक्त और कुछ नहीं। किन्तु क्लब मे विवाहित तथा अधेड़ आयु के मद्यप डॉ० कृष्णगोपाल के लिए वह चमचमाती जारजेट

की साड़ी में मूर्तिमान् मदिरा-सी बनकर उपस्थित होती है। घर में बीमार पुत्र की देखभाल का अवकाश उसके पास नहीं है। किन्तु क्लब में वह डॉ० कृष्ण-गोपाल के विलम्ब से आने पर अपनी बड़ी बड़ी कटीली आँखें मटकाकर कहती है—ओफ, अब आपको फुर्सत मिला है, मर चुकी मैं तो इन्तज़ार करते करते।

मायादेवी को अपने रूप, यौवन का गर्व है। यही उसे अविवेक और वासना-गर्त की ओर अग्रसर करता है। वह अधिकारों के नाम पर पति और पुत्र को छोड़कर तत्काल डॉ० कृष्णगोपाल के साथ रहने के लिए चल देती है। घर में रहती हुई भी रोग के बहाने डॉ० कृष्णगोपाल की डिस्पेंसरी में जाकर, वह प्रेमालाप करती है। उसका साहस धृष्टता में तथा स्त्री-स्वातन्त्र्य वासनापूर्ति में बदल जाता है।

फिर भी मायादेवी का नारीत्व सर्वथा लुप्त नहीं है। क्लब की गोष्ठियों में वह अपनी प्रवुद्धता तथा नारी प्रतिष्ठा के प्रति आस्था का परिचय देती है। वह पति हरप्रसाद तथा प्रेमी कृष्णगोपाल के आधिपत्य को क्षण भर के लिए सहन नहीं कर पाती। पति से वह कहती है—'नारी पुरुषों के बन्धन से मुक्त होकर रहेगी।' और प्रेमी से कहती है—'मैं पुरुषमात्र पर तनिक भी विश्वास नहीं करती।' अन्यत्र भी वह अपनी विवेक-बुद्धि का परिचय देती है। तलाक के मुक-दमे में वकील उसे सहायता की आड़ में वासनापूर्ति का साधन बनाना चाहता है। पर वह बड़ी सूझबूझ से उसे टाल कर मानसिक स्थिरता प्रकट करती है। तलाक स्वीकृत हो जाने के बाद उसका सुप्त विवेक पुन जाग उठता है। वह सोचती है—'पत्नी का पति तो एक ही है। क्या उसके जीवित रहते मैं दूसरे पुरुष को अपना अंग दिखलाऊँ? स्वाधीन होने की आग में मैं अवश्य जल रही हूँ—पर इस से शरीर को अपवित्र करूँ? नहीं, यह मैं न कर सकूँगी।'[1]

मायादेवी अन्ततः नए पति के साथ सुहागरात मनाने के लिए सजे-सजाए कमरे से एकदम बाहर निकल कर सीधी पति और पुत्र के पास आ जाती है। उसके हृदय के अनुताप को पति के प्रति कहे गए ये शब्द भली भाँति व्यक्त कर देते हैं—आप अपनी पत्नी का अपराध क्षमा न भी कर सकें तो भी अपने पुत्र की माँ पर दया कीजिए।

मायादेवी आधुनिकता के व्यूह में भटकने के पश्चात् पुनः परम्परागत पथ खोजने में सफल हो जाती है।

२ माया (पत्थर युग के दो बुत)—

माया दिलीपकुमार राय की पत्नी है। वह स्वच्छन्दप्रकृति, दिलदार औरत

१. अदल बदल (नीलमणि से संयुक्त), पृ० १३३।

है। यह अपने माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध राय से प्रेम-विवाह कर लेती है। यह अपने भरे-पूरे सम्भ्रान्त परिवार को जानवरों के बाड़े के समान समझती है। उसे चाहिये किसी तरुण, गठीले और सबल पुरुष का गर्मागर्म प्यार। उसकी प्यार की भूख पहले उसे राय की ओर फिर उसके पति के अधीनस्थ कर्मचारी वर्मा की ओर आकृष्ट कर उसे पथ-भ्रष्ट कर डालती है।

माया को अपने रूप तथा प्यार पर गर्व है। यह उनका मनचाहा मूल्य पाना चाहती है। यह प्यार और देह-सौन्दर्य को पर्याय मानती है। पत्नी से माँ बनने के पश्चात् इसकी यह भूख और अधिक प्रचण्ड हो जाती है। यह बाईस वर्षीय दाम्पत्य जीवन तथा उन्नीस वर्षीय पुत्री को छोड़ वर्मा के घर रहने चली जाती है।

माया के इस समाजगर्हित कृत्य का पर्याप्त मनोवैज्ञानिक कारण है। उसका पति प्रथम सन्तान होते ही पत्नी के शरीर-सौन्दर्य को न्यून समझ अन्यान्य स्त्रियों से संसर्ग रखता है। रूपगर्विता तथा स्वाभिमानिनी माया के लिए यह कदापि सह्य नहीं। इसकी देह-पिपासा पति की 'तलछट' में तृप्त न हो, ताजा और अछूता प्रेम-रस-पान करना चाहती है। इस इच्छा को यह वर्मा के संसर्ग से पूर्ण करती है।

माया के चरित्र का कृष्णपक्ष इसके अंतरंग का दुर्बल पक्ष है। इसका बहिरंग अधिक सतेज और सबल है। वर्मा के शब्दों में—'माया औरत है, मगर चट्टान की तरह सख्त और अविचल।'[1] माया हर प्रकार की स्थिति में अपना मार्ग स्वयं चुनने में समर्थ है। अपने बाईस वर्ष के दाम्पत्य जीवन में यह समझदारी, विश्वासपात्रता, आत्म-त्याग, साहस, हिम्मत और निष्ठा का परिचय देती है। यह अपनी सखी की विवाहोपरान्त वर्ष भर के बीच दुर्दशा देख तड़प उठती है। पुरुष-दासता के आगे यह नतमस्तक होने को कभी उद्यत नहीं होती। पति से तलाक निश्चित हो चुकने पर यह पतिगृह की कोई वस्तु साथ नहीं ले जाती। जिस आत्म-सम्मान के नाम पर यह राय को छोड़ रही है, वही इसे वर्मा के पास रहने में संकुचित करता है, वस्तुतः यह संसार में सबसे अधिक अपने को प्यार करती है। इसका निश्चय है कि यह समाज के सर्वोच्च शिखर पर रहेगी, प्रतिष्ठा और आनन्द के सर्वोच्च आसन पर बैठेगी और जीवन के सब प्राप्तव्यों को प्राप्त करेगी।

माया धैर्यवती है। परिस्थितियों की विडम्बना से यह चिन्तित है किन्तु

---

१. पत्थर युग के दो बुत पृ० ५८।

विचलित नही। अपने और वर्मा के सम्बन्धो के प्रति पति के कटु शब्दो की बौछार मे यह चुप रहती है। परिस्थितिवश पति गृह त्यागने पर यह अन्तर्मन मे व्यथित अवश्य है। किन्तु पति, पुत्री या अन्य किसी के सम्मुख यह अधीरता व्यक्त नही होने देती।

अन्त मे सात्विक प्रेम तथा कलुषित वासना के अन्तर को पहचान कर यह पश्चाताप की आग मे झुलसती हुई अपने मानसिक विकार को गलाने का प्रयास करती है। तलाक के पश्चात् वर्मा के घर रहते हुए भी, अपनी पुत्री से पिता की अवस्था का समाचार प्राप्त कर यह आंसू बहाये बिना नही रहती है।

माया का जीवन नारी, पत्नी और माता के प्यार की त्रिवेणी से आप्लावित है।

३ रेखा (पत्थर युग के दो बुत)

रेखा साधारण गृहस्थ की कन्या है। उसे माता पिता के रूप मे उसकी आत्मा के आधार और जीवन के निर्माता प्राप्त होते हैं, पर कन्या से पत्नी बनते ही पति के रूप प्रेम म निमग्न हो वह उन्हें भूल जाती है। अपने सौभाग्य-मद में वह उनकी आकस्मिक मृत्यु के अवसाद को भी टाल जाती है। प्रारम्भ से ही उसका मन रूप प्रेम के ज्वर मे ग्रस्त है। सौन्दर्य छवि मे वह लाखो मे एक है। उसका छरहरा बदन, उछलता यौवन, प्यासी आंखें और दान को उतावले होंठ, चम्पे की कली के समान कमनीय अंगुलियां एडी तक लटकती घुंघराली लटें, चांदी सा उज्ज्वल माथा, अनार की पंक्ति के समान दांत और चांदनी-सा हास्य— यह देखकर किसी की भी आंखो मे नशा-सा छा जाना स्वाभाविक है। रेखा का चचल स्वभाव उसके रूप को और भी निखार देता है। वह पांच वर्ष तक पति को छोड अन्य किसी की ओर आंख तक उठाकर नहीं देखती। पति का तीन दिन का वियोग भी उसे मरण-तुल्य घातक प्रतीत होता है। किन्तु उसकी एक छोटी सी हृदय-ग्रन्थि उसे अपने कमनीय पति से विमुख कर देती है। उसे पति के मद्यपान से अत्यन्त घृणा है, फलस्वरूप वह अपने को उसके प्रगाढ आलिंगन-पाश से मुक्त करके अनग हो जाती है और दिलीपकुमार राय की तृप्ति का माध्यम बना लेती है।

रेखा स्वाभिमानिनी है। उसके निषेध करने पर भी पति का मद्यपान उस पर अमर जाता है। एक बार उसका पति, अपने ही जन्म दिन पर, घर न आकर मित्रो के साथ होटल मे शराब-पार्टी देने चला जाता है। इस पर रेखा का आत्माभिमान तड़प उठता है। पुरुष के अहं के सम्मुख नारी-जीवन की यह निरर्थकता उसे विद्रोहिणी बना देती है। वह पुरुषमात्र और विशेषत भारतीय

धर्मशास्त्रों के विरुद्ध भटक जाती है। स्त्रियों की सामाजिक दासता उसके हृदय को गहरे विषाद से आच्छन्न कर देती है। किन्तु संयोगवश इससे मुक्ति के लिए वह कोई प्रकृत पथ नहीं अपना पाती। पतिविरोध उसकी वासना-पूर्ति का बहाना-मात्र बनकर रह जाता है और वह पत्नीत्व से वेश्यात्व की ओर अग्रसर होने लगती है। पति से विश्वासघात कर वह राय से समर्क बढ़ाती है। राय की पुत्री लीला, उसका ड्राइवर, नौकर—सभी की घृणा-पात्र बन तथा नन्हे पुत्र प्रद्युम्न की कोमल स्नेह-रज्जु को तोड़ वह यौवन लिप्सा की दास बन जाती है।

वास्तव में रेखा वासना और प्रेम, भावना और संस्कार, नारीत्व और पत्नीत्व के द्वन्द्व की शिकार है। वासना उसे राय की ओर खींचती है पर प्रेम बार-बार पति की मूर्ति सामने लाकर हृदय को ग्लानि से भरता है। भावनाएँ उसे विद्रोहिणी बना डालना चाहती हैं, पर संस्कार उसे अपने को ही गर्हित सिद्ध कर पश्चात्ताप के लिए विवश करते हैं। नारीत्व उसे पति के विरुद्ध घसीटता है किन्तु पत्नीत्व उसे राय को कोसने की प्रेरणा देता है। इसी द्वन्द्व में वह अपने सोने के घर को राख बना बैठती है। वह जीवन भर विक्षिप्त विधवा बन, अनाथ पुत्र को गोद मे लिए प्रिय-स्मृति मे आहें भरने को शेष रह जाती है।

रेखा निष्ठा-शीलवती होकर भी कामोन्मादवश जीवन के वरदान को अभिशाप मे बदल लेने वाली नारी है।

गौण पात्र

१. भगवती (फूहड़) (आत्मदाह)

भगवती 'आत्मदाह' के नायक सुधीन्द्र के भाई रामजस की पत्नी है। यह अविवेकशील होने से सुधीन्द्र के परिवार-रूपी उज्ज्वल सौर-मण्डल मे 'ग्रह' है। यह ईर्ष्यालु तथा विघटन प्रवृत्ति की नारी है।

भगवती का रामजस के साथ विवाह किसी सोची-समझी योजना के अनुसार नहीं हुआ। रामजस के पिता जिस गाँव मे जिस कन्या के लिए उसकी बारात लेकर गए थे, वह अपने लोलुप पिता की नीचतावश आत्म-हत्या कर लेती है। रामजस के पिता की कोपाग्नि से बचने के लिए गाँव वाले भगवती को वधू-रूप में अर्पित कर देते हैं।

भगवती साधारण पढ़ी-लिखी कन्या है। ससुराल आने पर यह अपनी माँ को परिवार की आलोचना से भरे पत्र लिखती रहती है। घर के काम-धन्धे से उसे कोई सरोकार नहीं। पड़ोस की लड़कियों और स्त्रियों में बैठकर सास, ननद जेठानी की आलोचना करना, अपनी माँ की डींगें हाँकना, इस बेरंग घर में

आने के लिए अपनी किस्मत को कोसना, यही इसका काम है। मिथ्या अहंकार वश यह बात-बात पर सबसे झगड़ती और जली-कटी सुनाती है। एक बार मायके जाकर यह माँ को साथ ले आती है और रही सही कसर पूरी कर लेती है।

अन्त में सुधीन्द्र माँ-बेटी को दो हजार रुपये के जेवर, एक हजार रुपया नकद, पन्द्रह रुपये मासिक वृत्ति का वचन देकर अपने परिवार पर आये इस 'ग्रह' को टालने में सफल हो जाता है।

भगवती हीन स्तर की नारी है।

२. कुमुदिनी (मुग्धा) (नीलमणि)

कुमुदिनी नीलमणि की छोटी बहिन है। यह अज्ञातयौवना मुग्धा है। यह अपने जीजा के सम्मुख आने पर लज्जाशील प्रकृति, उन्मुक्त रागात्मक आसक्ति तथा आत्मीयता का परिचय देती है। पाठक इसके इन गुणों से प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

३ मणि (कर्मठ कन्या) (नीलमणि)

मणि नीलमणि की ननद है। यह उपन्यास में स्वल्प समय के लिए उपस्थित होकर सुघड़, भोली, स्नेहमयी और कर्मठ कन्या की झलक उपस्थित करती है। यह अपने मधुर व्यवहार से पहले ही दिन नीलम को अपना बना लेती है। इसका शिष्टाचार तथा कार्य-कुशलता देख नीलमणि की उच्च शिक्षा तथा आभिजात्य-दर्प जैसे छोटे पड़ जाते हैं।

४. सरला (स्वाभिमानिनी) (उदयास्त)

सरला अनाथ शरणार्थी युवती है। यह उपन्यास के सीमित अंश में उपस्थित होती है। पाठक इसकी सहिष्णुता, कर्मठता, स्नेहशीलता तथा स्वाभिमान से सहज प्रभावित हुए बिना नहीं रहता।

पाकिस्तान बनने से पहले इसकी सगाई युवक रमेश से होती है। विभाजन के पश्चात् संयोगवश इसे उसके अधीन नौकरी करनी पड़ती है। वह सेठ पुरुषोत्तम की मिल का प्रधान मैनेजर एवं सम्भ्रान्त गृहस्थ बन चुका है। उसकी पत्नी द्वारा दयाभाववश दिये दो रुपये यह तत्काल लौटाकर स्वाभिमान का परिचय देती है। अपने और बुढ़िया माँ के उदर-पोषण के लिए निरन्तर परिश्रम तथा नौकरी करना इसकी कर्मठता के द्योतक हैं। अपने दरिद्र जीवन के शुभ-चिन्तक 'कवि भैया' से इसका सरल वार्तालाप इसके भोलेपन का निदर्शक है। संयोगवश बाद में खोये हुए डाक्टर भाई के मिलने पर इसका भ्रातृप्रेम व्यक्त होता है।

सरला मिलनसार और व्यवहारकुशल है। सेठ पुरुषोत्तम की मिल मे नौकरी करते समय मैनेजर तथा अपने पूर्वमंगेतर रमेश एव सेठ की पुत्री पद्मा से इसका अवसर के अनुकूल सौजन्य इसके प्रमाण हैं।

५. केसर (स्वामिभक्त) (गोली)

केसर चम्पा की माँ की विशेष विश्वासपात्र दासी है। स्वामि भक्ति उसका एकमात्र धर्म और कर्म है। चम्पा को महाराजा के उपहार-स्वरूप सजा-सँवार कर भेजने का दायित्व चम्पा की माँ उसी पर डालती है। उसका मुख्य-कार्य महाराजा के लिए भोग्या गोली की सेवा करना है। वह इस काम को अन्त तक निभाती है। छाया की भाँति सदा चम्पा के साथ रहने के कारण वह उसे अपनी जीवन नैया की खिवैया मानती है।

केसर परिश्रमी और कर्मठ है। राजमहल की सम्पूर्ण सेवाचर्या का पालन करती हुई समय निकालकर वह चम्पा के बच्चो की ऐसी देखभाल करती है, जैसी कोई माँ भी अपनी सन्तान की न कर पाएगी। उसके श्रम तथा बुद्धिमत्ता-पूर्ण आयोजन से वे बच्चे माँ के कुत्सित जीवन की दूषित वायु से सर्वथा दूर रहकर उच्च-सस्कार प्राप्त सुशिक्षित तरुण-तरुणियों के रूप मे पल्लवित होते हैं। उसकी दूरदर्शिता पग-पग पर चम्पा को सबल प्रदान करती है। चम्पा के ये कृतज्ञतापूर्ण शब्द उपयुक्त ही हैं—'मैं यह नही जानती थी कि केसर इस प्रकार मेरे बच्चो को नए जीवन के सस्कार देगी, जबकि वह एक गोली, जन्म-जात गोली थी और जिसने मेरे गोली जीवन का अपने हाथो श्रीगणेश किया था। आज मेरी आँखो की कृतज्ञता देखने को वह जीवित नही। मेरे बच्चो की कल्याण कामना मे उसने अपने को होम कर डाला। भाग्यवती थी वह, स्वर्ग की देवी थी वह।'[1]

६ अन्नपूर्णा (फूहड) (अपराजिता)

अन्नपूर्णा राधा की बालविधवा मौसी है। राधा की माँ के मरणोपरान्त राधा का पिता गृहस्थी की देखभाल का दायित्व इसे सौंपता है। यह रूढि-वादिनी सकीर्ण विचारो की स्त्री है। विघटन इसकी प्रवृत्ति है। इस राधा की प्रगतिशीलता तथा उसके पिता की उदारता नही भाती। राधा का विवाह यह अपने जेठ के अल्पमति पुत्र माधव से चाहती है, किन्तु सफल नही हो पाती।

अन्नपूर्णा का चरित्र भारतीय सयुक्त-परिवार-प्रथा के लिए कलक है।

---

१ गोली, पृ० २६३।

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन के सामाजिक उपन्यासो मे महत्त्वपूर्ण नारीपात्र इकसठ हैं। इनमे छ उल्लेखनीय गौण पात्र भी सम्मिलित हैं। ये पात्र दस वर्गों में विभक्त किये गये हैं। यह वर्गीकरण पात्रो मे पाये जाने वाले प्रमुख गुणों के आधार पर है। फिर भी इनमे अन्य गुण भी मिल जाते हैं। अतएव इस वर्ग-विभाजन मे कही विरोधाभास की प्रतीति सम्भव है। उदाहरणार्थ, प्रवंचित नारियों का वर्ग यहाँ विचारणीय है। इसमे गुलिया (अपराधी), चन्द्रमहल (गोली) आदि नौ प्रवंचिता नारियाँ हैं। सभी की अपनी अपनी समस्याएँ हैं। इनमे से गुलिया (अपराधी) पुरुष समाज के विभिन्न कुचक्रों मे फँसी सामान्य नारी है। चन्द्रमहल (गोली) नारी जीवन की करुणा का जीवन्त रूप है। वह किशुन और चम्पा पर भीषण अत्याचार कर उनकी बडी पुत्री को गगाराम की विलास-भोग्या तक बनाने का प्रयत्न करती है। प्रवंचित नारियाँ होते हुए भी इनकी विचारधारा तथा परिस्थितियो मे मौलिक अन्तर है। कुँवरी (गोली) प्रवंचित है। किन्तु वह स्वाभिमान की सजीव प्रतिमा प्रतीत होती है। उदारता उसका विशेष उल्लेखनीय गुण है। ज़ीनत (धर्मपुत्र) मे परिस्थिति-वंचिता होने के कारण आत्माभिमान और अक्खडपन मात्रा स बढ-चढकर हैं। भगवती की बहू (हृदय की प्यास) रूपवती तथा चचल युवती होने पर भी उदात्त तथा कर्मठ है। वह सन्यासी के आश्रम मे अनुकरणीय साध्वी-जीवन बिताती है। शशिकला (हृदय की परख) भूल करने वाली निरीह नारी है तो पद्मा (बगुला के पख) परिस्थितियों मे पडकर अपने हाथो अपने जीवन को नष्ट कर डालती है। सरला (हृदय की परख) भूदेव और शशिकला के अवैध सम्बन्धो का प्रतिफल होने के कारण विवेकमयी होकर भी प्रताडित, हतभाग्या एव सच्चे अर्थों मे अरला है। इन कारणो से इन नारीपात्रो के चरित्रो मे भिन्नता प्रतीत होना स्वाभाविक है। किन्तु किसी न किसी रूप म प्रवंचित होन के कारण इन नारी-पात्रों को एक वर्ग में रखना उचित समझा गया है।

विधवा नारियों का दूसरा वर्ग है। ये सामाजिक व्यवस्था के कारण वैधव्य दुःख भोगती हैं। इनमे नारायणी (बहते आँसू) का जीवन सोना दासी से भी दयनीय है। ससुराल तथा मायके मे कहीं उस सुख का क्षण नहीं मिलता। केवल पुनर्विवाह होने पर उसके जीवन मे नया मोड आता है। स्वभाव से भोली भगवती (बहते आँसू) परिस्थितियो की लपेट मे आ जाने के कारण, गर्भ ठहर जाने पर कुलच्छनी कहलाती है। परन्तु परिस्थितियों से सताई हुई अन्त म उन्मत्त सिहनी-सी विद्रोहिणी बनकर वह अपने आपको राक्षसी समझी जाने के

लिए ललकारती है। वह पागलों के हस्पताल में कुत्ते की मौत मरने को विवश है। मालती (बहते आँसू) आदि विधवाओं की परिस्थितियाँ इससे भी भिन्न हैं। अतएव इन विधवाओं को जीवन में अनेक प्रकार के उतार-चढ़ाव देखने पड़ते हैं। लेखक ने इस समस्या का समाधान एकमात्र पुनर्विवाह दर्शाया है।

तीसरे वर्ग में वेश्याएँ हैं। केसर (दो किनारे), ज़ोहरा (मोती) चम्पा (गोली) तथा बी हमीदन (खून और खून) का चरित्र सामान्य से असामान्य, अनुदात्त से उदात्त दिखाते हुए लेखक ने इन्हें पाठकों के सामने सहृदय तथा गौरवमयी नारियों के रूप में प्रस्तुत किया है। चाहे इनका व्यवसाय सामाजिक दृष्टि से अनैतिक है, फिर भी इनमें मानवता का अतिरिक्त गुण सर्वसाधारण रूप से पाया गया है। बी हमीदन का चरित्र तो उभरकर सच्ची राष्ट्रीयता का प्रतीक बन जाता है।

चौथे वर्ग में परम्पराशील-मर्यादावादिनी नारियाँ हैं। इनमें से कुछ नारियाँ आधुनिक सामाजिक परिवेश में विवश-सी प्रतीत होती हैं। उनका चरित्र निरीह नारियों का-सा है। लेडी शादीलाल और नीलमणि की माँ जैसी नारियाँ इनका प्रतिनिधित्व करती हैं। दूसरी ओर उदात्त और सुशिक्षित नारियाँ इस वर्ग में हैं। ये परिवार तथा समाज में सम्माननीय स्थान पाती हैं। सुधीन्द्र की माँ (आत्मदाह) तथा सुनन्दा (हृदय की प्यास) जैसी नारियाँ इनका उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

पाँचवें वर्ग में कर्मठ नारियाँ हैं। ये जीवन संघर्ष में जी-जान से जूझती है। इनमें कर्त्तव्य-परायणता विशेष रूप से पाई गई है। मालती (दो किनारे) का जीवन उसकी असहायावस्था से आरम्भ होता है। किन्तु ममतामयी एवं व्यवहारकुशल होने से वह अपने जीवन की कठिनाइयों को हटाने में समर्थ हो जाती है। मालती सच्चे अर्थों में पूर्ण नारी है। विमला देवी (अदल बदल) परिस्थितियों का डटकर मुकाबला करके अन्त में आदर्श पत्नी, माता एवं गृहिणी सिद्ध होती है।

छठे वर्ग में, स्वाभिमानिनी रानी चन्द्रकुँवरि (अपराधी) है। यह राजपूती परम्परा की देन कही जा सकती है। सौजन्य एवं औदार्य, इसकी स्वभावगत विशेषताएँ हैं। यह अन्तिम दम तक अपनी ठसक कम नहीं होने देती।

सातवें वर्ग में, समाज-सुधारक तथा प्रगतिशील नारियाँ हैं। इनमें राधा, रुक्मिणी (अपराजिता), नीलम (मोती), रमाबाई (अपराधी), राज (अपराजिता) जैसी महान् नारियाँ हैं। ये अपने कर्त्तव्य-पथ पर अटल चलती हुई समाज की पथप्रदर्शिका बनती हैं। लेखक ने इनका चरित्र परम उदात्त

दर्शाया है। ऐसी नारियों की समाज के लिए आज भी अतिशय आवश्यकता है।

आठवें वर्ग में विवेकमयी नारियाँ हैं। ये जीवन की समस्याओं में उलझ कर विवेक बल द्वारा आदर्श सिद्ध होती हैं। लीलावती (पत्थर युग के दो बुत), चन्द्रकिरण (नरमेध), माया (आत्मदाह), हुस्नबानू (धर्मपुत्र), सुधा (आत्मदाह) इन नारियों में प्रमुख हैं। लीलावती के लिए माँ-बाप का गहित आचरण एक समस्या है। वह बच्ची है, पर समझती सब है। चन्द्रकिरण त्रिभुवन के प्रति आकृष्ट है। त्रिभुवन जीवन की समस्त आकांक्षाएँ छोड़ विरक्त हो जाता है। उस समय चन्द्रकिरण के प्रेम का उज्ज्वल रूप प्रकट होता है। यह प्रणय की अग्नि-परीक्षा में खरी उतरती है। सदा विवेक का सबल लेती है। हर परिस्थिति में त्रिभुवन का साथ देकर अन्त में उसका हाथ पकड़ने पर निहाल हो जाती है। सुधीन्द्र की पूर्वपत्नी माया का चरित्र आदर्श विवेकशील नारी का है। यह सेवा की साकार प्रतिमा है। परिवार की ही नहीं, यह मुहल्ले भर की रानी है। यह जीवनपथ में विवेक-बल से अग्रसर रहकर पति की प्रशंसा-पात्र बनती है। हुस्नबानू धैर्य और साहस की सजीव मूर्ति है। यह अपने जिगर के टुकड़े दिलीप के निकट रहती हुई उसके सामने न जाकर अपूर्व सहनशीलता का परिचय देती है। नपुंसक, कोढ़ी, सनकी पति की येमुर की रागनी को आश्चर्यकारी धैर्य से सुनती है। उसके विवेक के आगे वज्रहृदया उसकी सपत्नी जीनतमहल मन्त्र-मुग्ध हो जाती है। इस वर्ग की अन्तिम नारी सुधा है। इसका चरित्र आदर्शतम है। अपने विवेक-बल से यह सुधीन्द्र की बुद्धि पर छाये पूर्वपत्नी के वियोग-मोह को भुला देती है। अन्त में पति के साथ देश-सेवा में सर्वस्व लगाकर यह अपना जीवन सफल बना लेती है।

आधुनिक नारियाँ नौवें वर्ग में हैं। ये तथाकथित सभ्यता तथा विलास की चकाचौंध में कर्तव्यभ्रष्ट होकर अन्त में सत्पथप्रवृत्त सद्गृहिणियाँ दिखाई देती हैं। विज्ञान तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में सहयोग देने वाली नारियाँ भी इस वर्ग में हैं। सुधा (दो किनारे), लिज़ा, प्रतिभा (खग्रास), रतन (खून और खून) आभा (आभा), नीलमणि (नीलमणि) जैसी विशिष्ट नारियाँ इस वर्ग में हैं।

दसवें वर्ग में मायादेवी (अदल बदल), माया, रेखा (पत्थर युग के दो बुत) जैसी स्वच्छन्द नारियाँ हैं। उच्छृंखलता इनकी प्रवृत्ति है। अन्त में ये सब सत्पथ की ओर प्रवृत्त दिखाई गई हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ गौण पात्र अपने चारित्रिक गुणों के कारण उल्लेखनीय हो गए हैं। भगवती (आत्मदाह) तथा अन्नपूर्णा (अपराजिता) में पृहड़पन अधिक है तो कुमुदिनी, मणि (नीलमणि), केसर (गोली), सरला (उदयास्त) में क्रमशः मुग्धता, कर्मठता, स्वाभिमान तथा स्वामिभक्ति के विशेष गुण पाये

जाते हैं। पाठक इनके चरित्रों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

आचार्य चतुरसेन समाज के लगभग सभी वर्गों से नारीपात्रों को लेकर उनका चरित्र यथार्थ धरातल पर चित्रित करते हैं। वे अपने पात्रों को अन्त में, सत्पथ की ओर प्रवृत्त दिखाकर उन्हें आदर्श बना देते हैं। वास्तव में वे समाज में नारी-महिमा के समर्थक हैं। अतएव वे समाज की दुर्व्यवस्था के शिकार असाधारण नारी पात्रों को ढूंढ-ढूंढ कर पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। यथार्थ-संगत आदर्श समाज की स्थापना उनका लक्ष्य है।

सप्तम अध्याय

आचार्य चतुरसेन की नारी-चित्रण-कला

'क' भाग

(१) चित्रण-कला से तात्पर्य

मुन्शी प्रेमचन्द का कथन है—'मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र समझता हूँ।'[1] 'चरित्र' का अभिप्राय यहाँ नैतिक शब्दावली का 'सदाचार' नहीं, वरन् उपन्यास में वर्णित पात्रों के रागात्मक मनोवेगों के आधार पर निर्मित उनका स्वभाव है। पात्रों के इस स्वभावगत वैशिष्ट्य का सम्यक् उद्‌घाटन किसी उपन्यासकार की चित्रण-कला का प्रमुख कार्य है। 'यदि उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र है तो इसका सबसे बड़ा गुण है—पात्रों की सजीवता। उपन्यास-कार की मन कल्पित सृष्टि में यदि हम अपनी वास्तविक सृष्टि की अनुरूपता न पा सकें, यदि इस नवीन सृष्टि के पात्र हमें किसी अनजाने देश के लगें और उनके साथ हमारी वैसी ही सहानुभूति न हो सकी, जैसी अन्य मानवों के साथ होती है तो वे मानव-सृष्टि के चित्र नहीं, किसी अन्य सृष्टि के भले ही हों।'[2] उपन्यास के पात्रों का चित्रण 'मानव-सृष्टि के सजीव' चित्रों-जैसा लगे इसके लिए आवश्यक है कि उपन्यासकार उनका सर्वांग—सूक्ष्म—रेखांकन करे। वे रेखाएँ केवल पात्रों के आकार-प्रकार, रंग-रूप अथवा वेश-विन्यास का प्रत्यक्षा-भास कराकर ही न रह जाएँ, अपितु उस बाह्य कलेवर के भीतर विद्यमान और सतत क्रियाशील चेतना-जगत् का भी साक्षात्कार करा सकने में सक्षम हों। इस

---

१. मुन्शी प्रेमचन्द : कुछ विचार पृ० ४७।
२ शिवनारायण श्रीवास्तव हिन्दी उपन्यास, पृ० १३।

तरह उपन्यासो मे निर्मित पात्र-चित्र किसी पटाम्बर, काष्ठ-फलक अथवा भित्ति-फलक पर निर्मित 'अनुकृति-रूप' चित्रो से सर्वथा भिन्न कोटि और भिन्न पद्धति के होते हैं। वे 'कैमरे' द्वारा गृहीत 'प्रतिकृति'—रूप छायाचित्र भी नही, क्योकि 'कैमरा' मुख-मुद्रा और बाह्य अंग-विन्यास-मात्र को श्वेत-फलक पर श्याम-रूप मे अंकित कर लेता है। औपन्यासिक चित्र 'अनुकृति' और 'प्रतिकृति' से भी परे वह नैसर्गिक कृति है जो 'सदेह' होने के साथ-साथ 'स-जीव', 'स-हृदय' और 'स-चेतन' भी होती है। विधाता की सृष्टि के समान ही कलाकार की यह सृष्टि एक बार सृष्ट होकर कार्य कारण के नियमो से स्वय सचालित हो जाती है।

इस विवेचन के आधार पर उपन्यास मे पात्रो की चित्रण-कला के दो पक्ष स्पष्ट हैं, प्रथम—रेखाएँ, एव द्वितीय रग। रेखाकन का तात्पर्य है—पात्रो का बाह्य व्यक्तित्व-चित्रण और रग योजना से अभिप्रेत है—पात्रो का अतरग-मनोवैज्ञानिक-चित्रण और इन दोनो पक्षो के समुचित समोजन के लिए उपन्यासकार जिस पद्धति-विशेष का अवलम्बन ग्रहण करता है, वही उसकी चित्रण-कला को मूर्त्त-रूप प्रदान करने वाली तूलिका है। इस प्रकार किसी उपन्यासकार की चित्रण-कला के विवेचनार्थ उक्त दोनो पक्षो के विश्लेषण से भी पहले, उसके द्वारा प्रस्तुत तूलिका अर्थात् चित्रण-पद्धति पर दृष्टिपात कर लेना आवश्यक है, तभी हम उसकी चित्रण-क्षमता का सही मूल्याकन कर सकेंगे, क्योकि किसी भी उपन्यास की सफलता इस बात मे है कि पुस्तक बन्द कर देने तथा सूक्ष्म विवरण भूल जाने पर भी उसके पात्र हमारी स्मृति मे जीवित रह सकें। यह सजीवता तभी आ सकती है, जब उपन्यासकार मानवता की सामान्य पीठिका पर अपनी कल्पना की कूँची से रग उरेहे, रग भरे, जिसमे न तो अतिरजन हो और न अव्याप्ति हो।

(२) आचार्य चतुरसेन की नारी चित्रण-शैलियाँ

'पात्रो के चरित्र-चित्रण की दो विधियाँ प्रचलित हैं, *प्रत्यक्ष या विश्लेषणात्मक* तथा परोक्ष या अभिनयात्मक।'[1] इन्हीं के अपर नाम 'वर्णनात्मक शैली', 'नाटकीय शैली' भी हैं। प्रथम पद्धति या शैली के अन्तर्गत लेखक स्वय किसी पात्र के गुणो-अवगुणो 'उसकी आदतो, प्रवृत्तियो और उसके भावों विचारों आदि का वर्णन विश्लेषण करता है। दूसरी शैली के अन्तर्गत पात्र के क्रिया-कलाप, आचार-व्यवहार द्वारा स्वतः ही उसकी चारित्रिक विशेषताएँ झलकने लगती हैं। पात्र विभिन्न परिस्थितियो और घटनाओ के सन्दर्भ मे क्या सोचता

१. डॉ० शशिभूषण सिहल, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० ११८।

है, क्या चाहता है, क्या कर पाता है और क्या नही कर पाता—यह सब कुछ उसकी अपनी गतिविधियो से आभासित होता है। लेखक केवल लेखनी की नोक घुमाता हुआ पाठक को उधर घुमा-भर देता है, वह स्वय दूर बैठकर मानो केवल 'आँखो देखा वृत्तान्त' सुनाता चलता है, उस पर कोई टीका-टिप्पणी नही करता। पाठक पात्रो के कार्य-कलाप और वार्तालाप आदि से ही उसके स्वभाव को परख लेता है।

इन शैलियो मे से, नाटकीय शैली कलात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जाती है, क्योकि प्रत्यक्ष शैली के अनुसार पात्रो के चरित्र सम्बन्धी छोटी छोटी तथा अनावश्यक बातो का विवरण देने से उपन्यास मे नीरसता आ जाने की आशका रहती है। साथ ही लम्बा-चौडा व्याख्यात्मक वर्णन आकर्षण को कम करके कथा प्रवाह को मन्द कर देता है। इसके विपरीत नाटकीय शैली अधिक सजीव और अधिक वास्तविक होती है। लेखक द्वारा पाठक को पात्रो के सान्निध्य मे छोडकर उन्हे स्वय समझने का अवसर देना अधिक सगत और समीचीन है। यद्यपि प्रथम शैली द्वारा चित्रित पात्र को समझने मे पाठक को अपेक्षाकृत सरलता का अनुभव हो सकता है, तथापि लेखक के रूप मे एक 'अन्य व्यक्ति' के हर समय उपस्थित रहने के कारण, 'पाठक तथा पात्र के मध्य एकाग्रता, सामीप्य और निजत्व के भग हो जाने की पूरी आशका है।"[1] अत प्रथम शैली का प्रयोग जितना कम तथा द्वितीय शैली का प्रयोग जितना अधिक होगा, उपन्यासकार की चरित्र चित्रण-कला उतनी ही सफल मानी जाएगी। परन्तु यहाँ इस तथ्य को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता कि 'प्रथम पद्धति को सर्वथा बहिष्कृत करने पर हम नाटक की अपेक्षा औपन्यासिक क्षेत्र मे अभिव्यक्ति के एक नवीन साधन से अनायास हाथ धो बैठेंगे। नाटक रचना मे विश्लेषणात्मक पद्धति का कोई स्थान नही है जबकि उपन्यासकार इसका प्रयोग करने के लिए स्वतन्त्र है। अत उपन्यासकार को इस स्वाभाविक देन से वचित करने का अर्थ होगा, उस की स्वतन्त्रता का हनन तथा उस पर नाटककार को बलपूर्वक थोपना।"[2]

उपन्यासो मे चरित्र चित्रण की एक अन्य शैली है—'आत्मकथात्मक।' इसके अन्तर्गत उपन्यास का कोई एक प्रमुख पात्र, अथवा एक से अधिक पात्र आत्मकथा के रूप मे पूरा कथा-वृत्त प्रस्तुत करते हुए, अपने मानसिक ऊहापोह का विश्लेषण करते हैं। किन्तु केवल इस शैली के माध्यम से उपन्यासकार की चित्रणकला का सर्वांग-सम्पूर्ण-निदर्शन सम्भव नही है। कोई व्यक्ति स्वय अपने

---

१ डॉ० शशिभूषण सिहल, उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा, पृ० १४०।
२. दि स्टडी आफ लिट्रेचर, पृ० १६४।

मुख से अपनी सभी प्रवृत्तियों का वर्णन पूरा नहीं कर सकता।

चरित्र-चित्रण की इन तीनों विधियों में से किसी एक विधि को सर्वथा उपयुक्त तथा दूसरी को किसी कारण से सर्वथा असगत नहीं कहा जा सकता। उपन्यास के कथा-सूत्र के अनुकूल लेखक किसी पात्र के चरित्र चित्रण के लिए इनमें से किसी एक या एकाधिक विधि को अपना सकता है। कई उपन्यासों में तीनों विधियों का समन्वित प्रयोग देखा जाता है। किसी उपन्यासकार की चित्रण कला की कसौटी यह नहीं कि उसने किस पद्धति का प्रयोग किया है, अपितु देखना यह चाहिए कि वह किसी चित्रण विधि का निर्वाह सम्यक् कर पाया है या नहीं।

(क) वर्णनात्मक अथवा प्रत्यक्ष शैली

चतुरसेन का नारी-चित्रण उक्त तीनों पद्धतियों में उपलब्ध है। फिर भी उनके अधिकांश उपन्यासों में नारी-चरित्र वर्णनात्मक अथवा विश्लेषणात्मक शैली के माध्यम से चित्रित हुए हैं। सरला और शारदा (हृदय की प्यास), सयोगिता (पूर्णाहुति), माया (आत्मदाह), अनाम नारी और किरण (नरमेघ), लीलावती (रक्त की प्यास), मालती (दो किनारे), जहाँआरा (आलमगीर), शोभना (सोमनाथ), करुणा और अरुणा (धर्मपुत्र), शूर्पणखा (वय रक्षाम), प्रमिला रानी और पद्मा (उदयास्त), 'लाल पानी' के सभी नारी पात्र, जीजाबाई (सह्याद्रि की चट्टानें), कमलावती और देवलदेवी (बिना चिराग का शहर), 'सोना और खून', 'ईदो' तथा 'अपराधी' के भी अधिकांश नारी-पात्र प्राय. चतुरसेन द्वारा प्रत्यक्ष विधि से चित्रांकित हैं। कहीं कहीं इनके स्वकथन अथवा इनके सम्बन्ध में किसी अन्य पात्र द्वारा व्यक्त मताभिमत भी इनके बहिरग और अन्तरग स्वरूप की कतिपय रेखाओं को उभारने में सहायक हुए हैं। ऐसे स्थल स्वल्प हैं। अधिकांशत', लेखक ने स्वय इन्हें पाठकों से परिचित कराने का दायित्व वहन किया है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१. सरला ('हृदय की परख')

'सरला थी तो बालक, पर न जाने उसने कैसी रुचि पाई थी। उसका स्वभाव बड़ा विलक्षण था। किसी से बात करने और खेलने की अपेक्षा उसे जगल में चुपचाप किसी कुज में बैठ रहना अधिक अच्छा लगता था—गाँव वाले सभी उससे बात करना चाहते थे, पर बातचीत उसे पसन्द नहीं थी। फिर भी उससे जो कोई बोलता, वह बड़े ही मधुर और सरल स्वर से ऐसे भरनावे के साथ बातें करती कि बातें करने वाला मन्त्र मुग्ध हो जाता।'''क्या जाने उस

का कैसा मस्तिष्क था। उसने अक्षर-अक्षर जोडकर—कुछ ऐसा अभ्यास कर लिया कि वह प्राचीन लिपि को अच्छी तरह पढ़ने और समझने लगी।"[1]

२. शारदा ('हृदय की परख')

'शारदा की आयु अधिक तो अवश्य थी, पर उसके मुख पर जो तेज, जो छवि, जो लावण्य था, उससे घर भर दिप रहा था।'[2]

३. सयोगिता ('पूर्णाहुति')

'कन्नौज-राज-कन्या सयोगिता को तेरहवाँ वर्ष लगा था। ' वह पूर्ण चन्द्रमा के समान निर्मल, दीप्तिमान् मुखारविन्दावलि, कुलक्षणो से हीन, सुलक्षणो से लसित, लक्ष्मी के समान शीलवती बाला । वह पिता की एकमात्र हुलसी कन्या थी और पिता के असाधारण दुलार ने उसे हठी बना दिया था।...'[3]

४. माया ('आत्मदाह')

'माया स्त्रीत्व की एक कोमल छाया थी। कवि यदि अपनी सभी स्वाभाविक कल्पनाओं की एक प्रतिमा गढे तो वह माया से कदाचित् मिल जाय। माया ने अनायास ही गृहिणी का स्थान ग्रहण कर लिया। गृहिणी की तो मानो प्यास बुझ गई। माया सोने की पुतली की भाँति घर भर की सेवा मे निरालस्य घूमती, मानो कोई आलोक की देवी आ बैठी हो।'' विश्व-प्रेम, सवा-धर्म, निरालस्य-जीवन और प्रकृति स्नेह, माया के रोम-रोम मे था।"[4]

५ अनाम नारी ('नरमेध')

'हमारी कहानी ऐसे ही एक ठीकरे से सबध रखती है। लेकिन इस ठीकरे मे ठीकरा होते हुए भी कुछ मानवी गुण बाकी रह गए हैं'''और यह ठीकरा है एक अभागी स्त्री, जिसकी आयु आज चालीस को पार कर गई है। कभी उसका रंग मोती की भाँति आबदार होगा, आज वह कोयले की राख के समान धूमिल है।...'[5]

---

१. हृदय की परख, पृ० १५, १६।
२. वही, पृ० ४७।
३. पूर्णाहुति, पृ० ६।
४. आत्मदाह, पृ० २५-२६।
५. नरमेध, पृ० ५।

६. किरण ('नरमेध')

'इस अधेड़ दम्पती के साथ एक चम्पकवर्णी बाला भी थी। उसका नवीन केले के पत्ते के समान उज्ज्वल सौन्दर्य और उगते हुए सूर्य के समान विकसित यौवन, उसके शरीर पर धारण किए हुए रत्नों से होड़ ले रहा था'''।'[1]

७. लीलावती ('रक्त की प्यास')

'वह चौहान सरदार समरसिंह की इकलौती लाडली बेटी थी। आयु अभी सत्रह की दहलीज पर थी। हँसना और हँसाना उसका काम था। प्रेम की पीर से उसका परिचय न था। यौवन के उदय के साथ ही उसे ढेर-सा प्यार मिला था।'''रंग तपे हुए सोने के समान था। उसका हास्य शरद् की चाँदनी के समान था।'''बिना ही महावर लगाए उसके चरण, कमल-दल के समान रक्त वर्ण थे।'[2]

८. मालती ('दो किनारे')

'वह कड़ी मेहनत करने की अभ्यस्त थी। गन्दगी और अव्यवस्था वह सहन न कर सकती थी।'''विवाहिता पत्नी होने की प्रसन्नता और प्रतिष्ठा की भावना से वह उत्साहित थी। उसका अभी तक का सारा ही जीवन तिरस्कृत, विफल, नीरस और अन्धकारमय बीता था। माता-पिता कच मर गए थे'''उसने उनके स्नेह की एक बूँद भी न पाई थी। सवधियों की उपेक्षा-पूर्ण निगरानी में पल कर, यौवन की ड्योढ़ी पर पैर रखते ही उसने जो वैवाहिक सौभाग्य पाया, उस पर प्रारम्भ में ही बिजली पड़ गई थी। बहुत मेधा और सहनशक्ति का परिचय देने पर भी वह ससुराल में निरन्तर पिटी, फिर भी पति का कोई सुख नहीं प्राप्त हुआ।'[3]

९. जहाँआरा ('आलमगीर')

'वह एक विदुषी, बुद्धिमती और रूपसी स्त्री थी। वह बड़े प्रेमी स्वभाव की थी। साथ ही दयालु और उदार भी।'''बादशाह का उसके प्रति आकर्षण देख यह प्रसिद्ध हो गया था कि बादशाह उससे अनुचित प्रेम है।'[4]

---

१. नरमेध, पृ० ५।
२. रक्त की प्यास, पृ० ८।
३. दो किनारे, १७-१८।
४. आलमगीर, पृ० २७।

१०. शोभना ('सोमनाथ')

'शोभना शोभा की खान थी ।'' विधवा होने पर भी वैधव्य को ध्यान वह मानती न थी । वह हर समय खूब ठाट-बाट का शृंगार किए रहती । आँखों में अंजन, दाँतों में मिस्सी, बालों में ताजे फूलों का जूड़ा, पैरों में महावर, होठों में पान और हाथों में मेंहदी । विधि-निषेध करने पर, समझाने-बुझाने पर, वह सबकी सुनी-अनसुनी करके नृत्य करने और हँसने लगती थी ।'[1]

११. अरुणा ('धर्मपुत्र')

'डाक्टर की पत्नी का नाम था अरुणा, उसे राजी करने में नवाब को कठिनाई नहीं हुई । सन्तान की प्रच्छन्न लालसा तथा स्त्री-जाति पर दया-भावना से अभिभूत हो कर उसने स्वीकृति दे दी । अतोल सम्पदा पर भी उसका ध्यान गया'''।'[2]

१२ करुणा ('धर्मपुत्र')

'करुणा उन्नीस को पार कर गई थी'''वह बहुत प्रसन्नचित्त, फुर्तीली और चैतन्य लड़की थी । प्यार तो वह यों सभी भाइयों को करती थी, पर शिशिर पर उसकी अभिरुचि थी । दिलीप से वह डरती थी, पर अदम डटकर करती थी । दिलीप की कट्टरता की वह बहुधा खिल्ली उड़ाती थी । उसकी आलोचना बहुधा तीखी हो जाती थी ।''' हैं, सी बात तो यह थी कि दिलीप की कोई बात उसे पसन्द न थी ।'[3]

१३ शूर्पणखा ('वयं रक्षामः')

'खूब घने-काले बाल, चमकती हुई काली आँखें, एक निराला-सा व्यक्तित्व, गहन अहम्मन्यता से भरपूर, रानी के समान गरिमा, पिघले हुए स्वर्ण-सा रंग आदर्श सुन्दरी न होने पर भी एक भव्य आकर्षण से ओत-प्रोत । आँखों में भाँकती हुई दृढ़-संकल्प प्रतिभा ''लम्बी, तन्वंगी, सतर और अचचल'''वह परन्तप रावण और दुर्धर्ष कुम्भकर्ण की अकेली बहिन थी, प्यार और वातावरण में पनी हुई । प्रथम, रक्ष कुल, दूसरे राज-कुल, तीसरे प्रतापी भाइयों की इकलौती बहिन, चौथे निराला अह-स्वभाव, पाँचवें स्वच्छन्द जीवन, सब ने मिलकर उसे एक असाधारण, कहना चाहिए लोकोत्तर, बालिका बना दिया था ।'[4]

---

१. सोमनाथ, पृ० ३७ ।
२. धर्मपुत्र, पृ० १६ ।
३ वही, पृ० ७५-७६ ।
४ वयं रक्षामः', पृ० १६६ ।

१४. प्रमिला-रानी (उदयास्त')

'राजा साहेब की पुत्रवधू का नाम है प्रमिला रानी। वह एक हिज हाइनेस की पुत्री है। रियासत मे सब लोग उन्हे कुँवरानी कहते हैं। उन्होंने पितृ गृह मे बी० ए० तक शिक्षा पाई है। सगीत की भी उन्हे थोडी शिक्षा दी गई है। उपन्यास पढने का उन्हे बहुत शौक है। हँसती भी बहुत हैं। वास्तव मे कुँवरानी खुले दिल की खुश मिजाज स्त्री है।'[1]

१५ पद्मा (उदयास्त')

'लडकी सुन्दर थी। अवस्था का कोमलपन चेहरे पर था। इसके अतिरिक्त एक तेज और ताजगी भी उसके मुख पर थी। यौवन उसे छू रहा था और इसका यत्किंचित् आभास उसे था। ध्यान से देखने पर बाल-सुलभ चपलता भी चेहरे पर स्पष्ट दीख पडती थी। परन्तु अध्ययन की गम्भीरता भी उसके मुँह पर थी। सब मिलाकर एक आकर्षक लडकी उसे कहा जा सकता था। नाम था पद्मा।'[2]

१६ एलिजाबेथ (सोना और खून')

'यद्यपि वह कुछ विशेष सुन्दरी न थी तथा आयु भी उसकी अडतीस को पहुँच चुकी थी, पर वह कुमारी थी। ''हकीकत तो यह थी कि वह इतनी अधिकार-प्रिय थी कि वह पति ही क्यो, किसी के शासन म रहना पसद नही करती थी।'''इसके अतिरिक्त वह अपने कुँवारेपन से राजनैतिक चालें भी चलती थी।' वह कभी इस प्रेमी पर कृपा-दृष्टि रखती तो कभी उस पर। उसकी मुस्कान से प्रभावित होकर न जाने कितने प्रेमी जानजोखिम मे डाल चुके थे।'[3]

१७ सम्राज्ञी नागाको ('ईदो')

'सम्राज्ञी की दो वस्तुओ मे रुचि थी। एक फूलो मे, दूसरे सम्राट् मे।''' वे बहुधा धीरे बोलती थीं। मानो बोलने से प्रथम वे मन मे यह तोल कर देख लेती थी कि वे जो कुछ कह रही हैं वह ठीक-ठाक उनकी मर्यादा के अनुकूल है भी या नही।'[4]

---

१ उदयास्त, पृ० १६-१७।
२ वही, पृ० १२०-२१।
३ सोना और खून, भाग-२, पृ० ४८-४६।
४ ईदो, पृ० ६।

१८. क्लारा ('ईदो')

'क्लारा अत्यन्त बुद्धिमती युवती थी। जब भी उसे अवसर मिलता, वह मुसोलिनी के साथ राजनीति और युद्ध पर बहस किया करती। कभी-कभी उसके तर्क अत्यन्त गम्भीर सत्य दृढ़ और राजनीति में ओत-प्रोत होते थे, जिन्हें सुनकर मुसोलिनी को नई प्रेरणा प्राप्त होती थी।'[1]

चतुरसेन के विभिन्न उपन्यासों के उद्धरणों से स्पष्ट है कि उनका नारी-चित्रण अधिकतर वर्णनात्मक शैली पर आधारित है। वे प्रवक्ता की भाँति मंच पर आकर अपने विवेच्य नारी-पात्रों के व्यक्तित्व एवं गुण दोषों की संक्षिप्त सूचना प्रारम्भ में दे देते हैं। यह ठीक है कि किसी नारी की वाह्याकृति, अवस्था एवं साक्षात् स्थिति से परिचित होने में लेखक की मध्यस्थता के बिना पाठक सफल नहीं हो सकता, किन्तु जब लेखक यह भी बताने लगता है कि अमुक नारी पात्र मधुर भाषी है अमुक स्त्री सेवा-परायणा है, अमुक पुरुष दयालु और उदार है अथवा अमुक लड़की प्रसन्नचित्त, फुर्तीली और सचेत है, तो पाठक के हृदय में अनायास यह जिज्ञासा होती है कि 'कैसे? इसका प्रमाण क्या है?' उपन्यास में पात्र स्वयं गतिशील होकर अपने चरित्र को उद्घाटित करते हैं। चरित्र चित्रण की यह विधि नाटकीय पद्धति है। आचार्य चतुरसेन ने अपने पात्रों को केवल इसी प्रकार चित्रित करके सन्तोष नहीं किया है। वे पात्रों के उपन्यास में आते ही उनके गुणों का परिचय प्रत्यक्षविधि से देने को व्यग्र हो उठते हैं। पात्र के अनायास प्रारम्भ में ही उद्घाटित हो जाने से आगे उसके चरित्र में पाठक की जिज्ञासा कम हो जाना सम्भव है।

आचार्य चतुरसेन के नारी चित्रण में इस पद्धति की प्रमुखता का एक कारण यह है कि उनके अधिकांश उपन्यास उद्देश्य प्रधान तथा घटना प्रधान हैं। अनेक उपन्यास पात्रों के नाम पर आधारित हैं। उनमें भी नारी नामों की अधिकता है, जैसे—'नीलमणि', 'आभा', देवांगना', गोली', 'वैशाली की नगरवधू', 'अपराजिता' आदि। उनमें लेखक का प्रतिपाद्य कोई समस्या-विशेष या विचार-विशेष है। उसे स्पष्ट करने के लिए उन्होंने रोचक घटनाओं के ताने-बाने चुने हैं। उदाहरण के रूप में 'वैशाली की नगरवधू' के लगभग साढ़े सौ पृष्ठों में से एक सौ से भी कम पृष्ठ अम्बपाली के चित्रण से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बन्धित हैं। उपन्यास का अधिकतर भाग तद्युगीन सामाजिक, राजनीतिक गतिविधियों एवं कुतूहलमयी घटनाओं से भरा हुआ है। ऐसी वर्णन विशेषण प्रधान कृति में नारी चित्रण के निमित्त वर्णनात्मक शैली का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं।

---

१. ईदो, पृ० ९६।

(ख) परोक्ष अथवा नाटकीय शैली

किसी उपन्यास के चरित्र-विधान की सफलता इस बात पर निर्भर है कि उसके सभी पात्र अपने-अपने विशिष्ट चरित्र के कारण सरलता से पहचान में आ सकें और पाठक उनके साथ सहज रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सके। यह तभी सम्भव है, जब उपन्यासकार चरित्र चित्रण के लिए प्रत्यक्ष अथवा वर्णनात्मक शैली की अपेक्षा परोक्ष अर्थात् नाटकीय शैली का माध्यम ग्रहण करे। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के कई नारी-पात्र इसी शैली के कारण बड़े सजीव, प्रभावी और अविस्मरणीय बन गए हैं। भगवती और कुमुद ('बहते आँसू'), सुधा और सरला ('आत्मदाह'), नीलू ('नीलमणि'), अम्बपाली और कुंडनी ('वैशाली की नगरवधू'), मंजुघोषा और सुनयना ('देवांगना'), राज (अपराजिता), विमलादेवी और माया (बदल बदल), चौला (सोमनाथ), हुस्नबानू (धर्मपुत्र), दैत्यबाला, मन्दोदरी तथा कैकेयी (वय रक्षामः), आभा (आभा), शारदा (बगुला के पंख), लिज़ा और प्रतिमा (खग्रास), जोहरा, (मोती) तथा शुभदा (शुभदा) ऐसी नारियाँ हैं, जिनका चित्रण प्रत्यक्ष अर्थात् वर्णनात्मक पद्धति द्वारा न होकर, इनके अपने आचरण, व्यवहार और कार्य-कलाप द्वारा हुआ है। लेखक ने इन्हें उपन्यास के कथा-क्षेत्र में स्वच्छन्द छोड़ दिया है, उसके पश्चात् पाठक स्वयं इन पात्रों के बहिरंग व्यक्तित्व और अंतरंग चरित्र की विशेषताओं को धीरे-धीरे जानने-पहचानने लगता है। इन नारी-पात्रों के चित्रण-परक कतिपय उद्धरणों में यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी।

१ भगवती ('बहते आँसू')

'कौन है?' गुलाबो ने अनजान की तरह पूछा। छदामो ने तुनक कर कहा—'तेरा सिर। जयनारायण की धी, राँड भग्गो।'

अब तो गुलाबो को मानो बिच्छू डँस गया। उसने ठोड़ी पर हाथ रखकर कहा—'कलयुग है, कलयुग, बहू। इस कलयुग में किसी की मरजाद थोड़े ही रही है। क्षण भर में दृश्य बदल गया।'''सब को यह लालसा हुई, देखें तो, कलयुग की राँड का कैसा ठाट-बाट है। भगवती ने देखा, उसके चारों ओर ठठ जुट पड़ा है। कोई आपस में इशारा कर रही है, तो कोई बोल बस रही है। भगवती घबड़ा उठी।'[1]

इन कुछ ही पंक्तियों में उपन्यासकार ने अपनी ओर से बिना कुछ कहे, वैधव्य के अभिशाप से दग्ध भगवती के प्रति समाज की क्रूर दृष्टि का चित्रण

---

१. बहते आँसू, पृ० ६८।

कर दिया है। यही भगवती परिस्थिति के जाल में फँसकर गोविंदसहाय की वासना का शिकार होने के बाद जब माता-पिता द्वारा प्रताड़ित होती है तो उसकी मनव्यथा को लेखक ने उसी के शब्दों मे व्यक्त कराया है—

(२) 'लज्जा ? ''लज्जा अब है ही कहाँ ? और मेरे माँ-बाप ही कहाँ हैं ? मेरे माँ-बाप होते तो क्या मेरी यह गति बनती ? मैं कुत्तों, जानवरो, भिखमगों से भी अधिक दुख, अपमान और अवहेलना में स्नान कर करके वर्षों से टुकड़े खा रही हूँ, खून पी-पीकर जी रही हूँ बदनामी की स्याही से मुँह काला हो रहा है, लोग मेरा नाम लेने मे घृणा करते हैं, सुहागिनें मुँह नही देखतीं—अपने बच्चों पर परछाई तक नही पडने देतीं।'[1]

भगवती का यह आर्त्तनाद घर, मुहल्ले और समाज में होने वाली उसकी दुर्दशा का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत कर देता है। उसकी नारी-लालसा, देह-भुक्ति की नैसर्गिक वृत्ति के परिणामस्वरूप उत्पन्न यह विद्रूपता उसे किस प्रकार जीते-जी नारकीय यातनाएँ सहने पर मजबूर कर रही है—यह स्पष्ट है। अन्यत्र, लेखक ने उसके नारी हृदय मे निहित मातृत्व की कुण्ठा की अभिव्यक्ति इसी नाटकीयता मे मार्मिक रूप मे कराई है। उन्मादिनी भगवती पागलखाने मे पडी चिल्ला रही है—

(३) 'लाओ, उसे मुझे दो ''मेरे बच्चो को, जिसे आँखों से एक बार भी नही देखा, नही प्यार किया। अरे, कौन माँ इस तरह बच्चे को हलाल करती है ? हरे राम ! वह खून मे नहा रहा था। बाप रे। यदि मेरी माँ भी इसी तरह करती, तो मैं इतनी बडी कैसे होती ? लाओ'''मैं उसे गोद मे लूँगी।'

इन शब्दो मे लेखक ने स्पष्ट कर दिया है कि बदनामी के भय से बलात् गर्भपात की कितनी भीषण प्रतिक्रिया भगवती के मन पर हुई है।

एक अन्य उद्धरण देखिए—

२ कुमुद ('बहते आँसू')

'भोगों की इच्छा रहने पर उनके न मिलने से दुख होता है, मेरी उन मे तृप्ति हो गई है।'

'यह तृप्ति कैसे हुई ?'

'अन्तरात्मा की सूक्ष्म भावना से'''। मेरा बच्चा जब सोता है, तब मैं निश्चिन्त होकर काम करती रहती हूँ। यदि तुम्हारी रकम बैंक में जमा है तो तुम बेफिक्र हो।'

---

१. बहते आँसू, पृ० २०५।

२ वही, पृ० २५५।

'इस उदाहरण से अभिप्राय ?'

'यही कि तुम कहते हो कि स्वामी के बिना स्त्री सब दुःखों को सहती है, पर मैं स्वामी को सदैव पास पाती हूँ।'

'परन्तु उसमें इन्द्रिय-वासना भी तो है।'

'उसे मैंने जीत लिया है, और यही मेरी तृप्ति का विषय है।'[1]

प्रकाश और कुमुद के इस कथोपकथन द्वारा कुमुद के चरित्र की गरिमा स्वतः स्पष्ट है। कुमुद विधवा होकर भी, संयम और आत्माभिमुखता के कारण पूर्णतः संतुष्ट और निश्चिन्त जीवन व्यतीत करने वाली मर्यादाशील नारी है। उसके चरित्र का यह वैशिष्ट्य उसी के आचार-व्यवहार द्वारा प्रत्यक्ष है।

३. सरला ('आत्मदाह')

'बहते आँसू' की कुमुद के समान ही 'आत्मदाह' की बाल विधवा सरला के संयमित चरित्र और प्रगल्भ व्यक्तित्व का चित्रांकन उपन्यासकार ने उसकी अपनी चेष्टाओं के माध्यम से किया है—

'उसने भीतर कोठरी में जाकर द्वार बन्द कर लिए। वह जमीन पर लेट गई।'''उस अन्धकार में सुधीन्द्र उसके हृदय में घुसे पड़ते थे। उस दिन कदाचित् प्रथम बार वैधव्य जीवन का उसे ज्ञान हुआ। उसके हृदय में वह विकलता जाग उठी जो सोई पड़ी थी आज वह एकाएक समझ गई कि वह केवल स्त्री ही नहीं, युवती भी है। वह कई दिन से अपने मन में अनुभव कर रही थी कि जैसे सुधीन्द्र को देखकर उसके मन में कुछ नई सी अनुभूति उदय हो उठती है। उसे मन ही में दाब रखने की उसने भरपूर चेष्टा की' परन्तु जब वह भावना बढ़ती ही गई, तब उसने सुधीन्द्र को आँखों से ओझल करना ही ठीक समझा।'[2]

सरला का यह चिन्तन उसके अन्तर्द्वन्द्व की सभी रेखाओं को स्वतः स्पष्ट कर देता है।

संवादपरक चित्रण

१. (क) नीलू ('नीलमणि')—'और ये चिट्ठियाँ कैसी लिखी हैं?' नीलू सिंहनी की भाँति दराज पर झपट पड़ी। उसने पल भर में दराजों को देख डाला, फिर वह पागल की तरह चिल्ला कर बोली—'तुमने इन्हें छुआ है, पढ़ा है। मैं कहती हूँ माँ। तुम बिल्कुल जंगली हो, तुम्हें शर्म आनी चाहिए।'

---

१. बहते आँसू, पृ० २४६।

२. आत्म-दाह, पृ० १६५।

(ख) 'अंग्रेजी किताबों में तुमने यही बातें पढ़ी हैं ?'

'बेशक, अंग्रेजी किताबों को पढ़कर मैं समझ गई हूँ कि स्त्री होने से ही मैं कीड़ा मकौड़ा नहीं हो गई हूँ। मैं मनुष्य हूँ, मुझे स्वतन्त्रता से जीने का हक है।'[2]

(ग) महेन्द्रनाथ कहते गए—'आखिर झगड़े का कारण क्या था नीलू ? अम्मा तो बहुत अच्छी हैं।'

नीलू अब बोली। उसने कहा—'क्षमा कीजिए, मैं इन घरेलू बातों में किसी से बातचीत करना पसन्द नहीं करती।'

'महेन्द्रनाथ अवाक् रह गए। कुछ क्षण स्तब्ध रहकर उन्होंने कहा—'क्या बात है नीलू, क्या मैं इतना गैर हूँ ? मैं तुम्हारा पति हूँ।'

'''क्या कभी आपने मुझसे बातचीत की है ? मेरा आपका परिचय हुआ है ?'''आपके चरित्र, स्वभाव और विचारों से मैं अपरिचित हूँ और आप मेरे से'''।'

ये तीनों उद्धरण इस बात के परिचायक हैं कि नीलू के चरित्र के अन्तरंग स्वरूप—उसकी निर्भीकता, जागरूकता, स्वाधिकार-प्रियता आदि—का चित्रण उपन्यासकार ने संवादपरक नाटकीय शैली में किया है।

२. अम्बपाली ('वैशाली की नगरवधू')—'तुम चिरजीविनी हो, देवी अम्बपाली'''तुम्हारा यह दिव्य रूप, यह अनिन्द्य सौन्दर्य, यह विकसित यौवन, यह तेज, यह दर्प, यह व्यक्तित्व स्त्रीत्व के नाम पर किसी एक नगण्य व्यक्ति के दासत्व में क्यों सौंप दिया जाए ?'[3]

× × ×

'''जनपद-कल्याणी, मैंने तुम्हारे अप्रतिम रूप, लावण्य, असह्य तेज, दर्प और लोकोत्तर प्रतिभा की चर्चा अपने देश में सुनी थी। इसी से केवल तुम्हें देखने में बहुत दूर से छद्म-वेश में आया हूँ। अब मैंने जाना कि सुनी हुई बातों से भी प्रत्यक्ष बढ़कर है। तुम-सी रूपसी बाला कदाचित् विश्व में दूसरी नहीं है।'[4]

× × ×

'भन्ते'''यह महानारी शरीर कलंकित कर के मैं जीवित रहने पर बाधित हो गई, शुभ संकल्प से मैं वंचित रही,'''मैं कितनी व्याकुल, कितनी कुंठित, कितनी शून्यहृदया रहकर अब तक जीवित रही हूँ, यह कैसे कहूँ ?'''भन्ते, भगवन्

---

१. नीलमणि, पृ० ८६।

२. नीलमणि, पृ० १८।

३. वैशाली की नगरवधू, पृ० ३१।

४. वही, पृ० १०४।

प्रसन्न हो। जब भगवत् की चरण रज से यह आवास एक बार पवित्र हुआ, तब यहाँ अब विलास और पाप कैसा ?''''इसलिए भगवच्चरण कमलों में यह सारी सम्पदा, प्रासाद, धन-कोष, हाथी, घोड़े, प्यादे, रथ, वस्त्र, भण्डार आदि सब समर्पित हैं। भगवन् ने जो यह भिक्षु का उत्तरीय मुझे प्रदान किया है, मेरे लज्जा निवारण को यथेष्ट है। आज से अम्बपाली तथागत के शरण है।'[1]

ये अंश उपन्यास के तीन भिन्न स्थलों से उद्धृत हैं, जो क्रमशः वृद्ध गणपति, उदयन एवं अम्बपाली के कथन हैं। अम्बपाली के प्रभावी व्यक्तित्व, समष्टि के लिए व्यष्टि के बलिदान और सांसारिक वैभव से अकस्मात् वैराग्य—उसके जीवन के ये तीनों प्रमुख मार्मिक सोपान नाटकीय शैली द्वारा चित्रित हैं।

इसी प्रकार कुण्डनी के विलक्षण साहस और उसकी दूरदर्शिता का आख्यान उपन्यासकार ने अपने वक्तव्य द्वारा न करके सोमप्रभ और कुण्डनी के संवाद के माध्यम से किया है—

'तुम कौन हो कुण्डनी ?' सोम ने घोर सन्देह में भर कर कहा।

'पिता ने कहा तो था, तुम्हारी भगिनी। अब और अधिक न पूछो।

''''तुम अद्भुत हो कुण्डनी। कदाचित् तुम्हें असुर का भय नहीं है।'

'असुर से भय करने को ही क्या कुण्डनी बनी हूँ।'

'तुम क्या करना चाहती हो कुण्डनी, मुझसे कहो।'

'इसमें कहना क्या है। शम्बर या तो हमारे मैत्री सन्देश को स्वीकार करे, नहीं तो आज सब असुरों सहित मरे।'

''''परन्तु किस प्रकार ?'

'यह समय पर देखना। अभी मुझे बहुत काम है''''।'

'तो तुम मुझे बिल्कुल निष्क्रिय रहने को कहती हो ?'

'कहा तो मैंने भाई, शान्त रहो, तत्पर रहो और प्रत्युत्पन्नमति रहो। फिर निष्क्रिय कैसे ?'

'पर मेरे शस्त्र ?'

'वे छिन गए हैं तो क्या हुआ ? बुद्धि तो है।''[2]

राज (अपराजिता')—'हम लोग हैरान हैं कि तुझे यह क्या सूझी ? ब्याह तो ब्रजराज से हो रहा था, तू ठाकुर साहब पर कैसे रीझ गई ?' राज ने कहा—'सखियो, हम लोग मूर्खा नहीं' सब सुशिक्षिता हैं, हमें जानना चाहिए कि जीवन का सब से निरापद मार्ग कर्तव्य-पथ है।''''सखियो, उसी कर्तव्य-पथ पर

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ७०३।

२ वही, पृ० १७७-७८।

चलकर मुझे व्रज का विसर्जन करना पड़ा। सबसे ही मैंने मन की वेदना छिपाई है, अब तुम से नहीं छिपाऊँगी।'

'तो प्यारी राज, तुमने यह भारी आत्म-बलि दी है, हम तुम्हारा अभिनन्दन करती हैं और हम तुम्हारे साथ हैं।'[1]

राज और उसकी सखियों का यह वार्तालाप, उसके चरित्र की कई रेखाओं को अनायास उभार देता है, यथा वह बुद्धिमती और सुशिक्षिता है। उसने कर्त्तव्य पर प्रेम की बलि दी है और वह सहनशील एव मूक साधिका है, आदि। इसी प्रकार पूरे उपन्यास मे लेखक ने कहीं भी अपनी ओर से यह वक्तव्य नहीं दिया कि राज स्वाभिमानिनी तथा नारी अधिकारो के लिए लड़ने वाली एक आदर्श गृहिणी है।

३. चौला ('सोमनाथ')—सोमनाथ महालय की यह देवदासी, विभिन्न विपदाओं से अपनी रक्षा करने वाले गुर्जरेश्वर भीमदेव सोलंकी के प्रति मन प्राण से समर्पित है किन्तु आक्रान्ता महमूद को देश से बाहर खदेड़ चुकने के पश्चात् भीमदेव द्वारा चौला को पत्नी रूप में वरण करने के निश्चय का जब राजपुरोहित और अमात्य कुल-मर्यादा के नाम पर विरोध करते हैं तो वह किस प्रकार अपूर्व त्याग भावना का परिचय देकर अपने व्यक्तित्व की गरिमा से पाठकों के हृदयों को चमत्कृत कर देती है, इसे उपन्यासकार ने उसके मुख से गिने चुने शब्द कहलाकर स्पष्ट कर दिया है—'महाराज आपके नेह से मैं सम्पन्न हूँ। राजगढ़ जाने का मुझे मोह नहीं। आपसे मैं दूर नहीं। राजमर्यादा की भी एक सत्ता है। गुर्जरेश्वर को उसका विचार करना होगा। फिर नेह किया तो टीस भी होगी, पीर भी होगी।...मेरा एक अनुरोध है महाराज।'

'वह भी कहो।'

'गुर्जरेश्वर के शुभ प्रस्थान के समय, मगल-मुहूर्त के लिए स्वर्ण-कलश मे तीर्थोदक ले, नगर की कोई कुमारिका नगर-द्वार पर खड़ी हो—ऐसी प्रथा है।'

'है तो।'

'तो वह प्रतिष्ठा मुझ दासी को प्रदान की जाए।'

'भीमदेव का हृदय हाहाकार कर उठा। उन्होंने आँसुओं से गीली आँखों से चौला की ओर देखकर कहा—जैसी तुम्हारी इच्छा प्रिये, तुमने अब जीवन को विसर्जन में लय कर ही लिया, तो अब कहने को क्या रह गया।'[2]

४. हुस्नबानू ('धर्मपुत्र')—इस त्यागमूर्ति बाला का समूचा जीवन-चित्र

---

१. अपराजिता, पृ० २०।

२ सोमनाथ, पृ० २५५-५६।

लेखक ने घटनाओं, क्रिया-कलापों और संवादों के माध्यम से उरेहा है। यहाँ उसकी ममता एवं मर्यादाशीलता के रेखांकन के परिचायक दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

(क) 'हुस्नबानू लडखडाते पैरों से किन्तु आँधी की भाँति कमरे में घुस गई। बालक को उसने उठाकर छाती से लगा लिया—अरे मेरे लाल, अरे मेरे लख्तेजिगर, अरे मेरे कलेजे के टुकड़े! अब तो तुझे अपनी माँ को देखने पहचानने का भी हक नहीं है। या अल्लाह, यह भी कैसी दुनिया है। मगर खैर, तू सलामत रहे, लाल जंजीरों में बँधी रहकर भी तुझे देखती रहूँगी। अपना न कह सकूँगी, तो भी तू मेरा है, मेरा है, मेरा है।...'[1]

(ख) 'अरुणा इस नारी की विवशता पर पहले ही द्रवित थी...अपने पुत्र को अरुणा की गोद में डालकर जब बानू चली गई थी, ...परन्तु अब ' यह सब क्या साधारण परिवर्तन था ? परिवर्तन तो अरुणा में भी हुए थे...पर वह माँ भी तो रही, पत्नी भी तो रही, गृहिणी भी तो रही। बानू न माँ थी, न पत्नी, न गृहिणी।...यह सब देख-समझ कर ही अरुणा चौधारे आँसू बहाती रही।'[2]

दैत्यबाला (वयं रक्षामः)—'कौन ?'

'वह दैत्य-बाला !'

'कौन थी वह ?'

'अभिसार-सखी। दो दिन पूर्व उसे प्रथम क्षण देखा, प्रणय हुआ, विग्रह हुआ, बन्दी हुआ। जलदेव से उसने मेरी रक्षा की, और वहाँ बलि-यूप में बँधे-बँधे अपना जीवन दे मेरे प्राणों की रक्षा की।'

'अहा सुपूजिता है वह दैत्यबाला।

अभिनन्दन करती हूँ।'[3]

यहाँ द्रष्टव्य है कि रावण द्वारा कथित इन दो तीन वाक्यों में ही दैत्यबाला का सर्वांग चित्र पाठक की कल्पना में उभर आता है।

५. आभा ('आभा')—'नवयुग के वरदानों और अभिशापों के बीच अपना संतुलन खो बैठने वाली इस सुशिक्षिता-आधुनिक नारी के द्वन्द्वमय व्यक्तित्व का चित्रण भी सर्वत्र संवाद-शैली से हुआ है। एक उदाहरण देखिए—

'मैं न तो सत-धर्म की प्रचारिका हूँ, न धर्म-उपदेशिका। ...हमारी कमजोरी यह है कि जब हम प्रलोभन के जाल में फँसते हैं तो हम बहुत-से मधुर

१. धर्मपुत्र, पृ० ३४।
२. वही पृ० १५३।
३. वयं रक्षामः, पृ० ७७।

किन्तु काल्पनिक रूप देखने लगते हैं। और हम ऐसे काम में आगे बढ़ जाते हैं, जो हमारी शक्ति से बाहर है और हम दुःख पाते हैं, क्योंकि हम ऐसी परिस्थितियों में फँस जाते हैं जिनका प्रतिकार करना हमारे लिए असंभव हो जाता है और तब नितान्त असहाय अवस्था में हमारा पतन हो जाता है।'

'परन्तु ''वैवाहिक जीवन में भी तो उलझनें आ जाती हैं। आ सकती हैं। सीते समय धागा उलझ जाता है, तब प्रत्येक उलझन की गुत्थी के भीतर से शान्तिपूर्ण रील को निकालना पड़ता है। तनिक भी असावधानी हुई कि धागा टूटा।''[1]

अपने पति को छोड़ कर नए प्रेमी अनिल के घर आने के पश्चात् स्वतः आत्म बोध होने पर आभा की अनिल से यह बातचीत उसके अंतस् के चित्र को पर्याप्त स्पष्ट कर देती है।

६ जोहरा ('मोती')—इस वेश्या के वाह्य-बाजारू व्यक्तित्व के भीतर जो एक आदर्श बहिन और सौम्य नारी का स्वरूप समाहित है उसकी झलक लेखक ने संवादों के माध्यम से प्रस्तुत की है। अपने भाई मोती से उसके वार्तालाप के एक अंश से यह बात स्पष्ट है—

'झूठ बोल आए''

'झूठ न बोलता तो फिर वह पाजी मेरी अंगूठी और घड़ी कुर्क करा लेता न।'

'इसी से गंगाजली उठा ली ?'

'गंगाजली ? हाँ, एक शीशी में गंगा-जल था।'

'तो अदालत में ईमान हार आए। आखिर रंडी की रोटियों पर पले हो न, शरीफों की गैरत कहाँ से आएगी।'

'मोती की आँखों से आँसू आ गए। उसने कहा, जीजी ''।''[2]

× × ×

इसी प्रकार क्रान्तिकारी हंसराज में उसका वार्तालाप उसके नारीत्व की नैसर्गिक आकांक्षाओं का प्रत्यकन करने वाला है—

'हाँ जोहरा, मेरी जिन्दगी ही ऐसी है कि मैं जीवनभर भागता फिरूँ या फिर दुबक कर छिपता रहूँ।'

'लेकिन ऐसा क्यों ? ' काश ! आपके किसी काम मैं आ सकती और आप की जिन्दगी खुशगवार होती।' हंसराज ने जोहरा का हाथ अपने हाथों में लेकर

---

१ आभा पृ० ५८-५६।

२ मोती पृ० २६।

कहा—'नहीं, ऐसा नहीं जोहरा, तुम मेरी जिन्दगी के काम तभी से आ रही हो, जब पहले-पहल आज से आठ वर्ष पहले मैं अचानक इसी भाँति छिपने के लिए भाग कर तुम्हारे कक्ष मे घुस गया था''''लेकिन तुम यहाँ कैसे ?'

'एक बार नवाब साहब घूमने कलकत्ता गए। मेरे कोठे पर भी आए। इनकी शराफत की मैंने दाद दी और आप का दर्द लेकर यहाँ चली आई'''।'

'तो जोहरा, मैं तुम्हारी तारीफ करता हूँ। तुम जिन्दगी का भेद जान गई।'

''''यह भेद की बात मैं नहीं जानती। जो गुज़री सो बता दी। पर क्या तुम मुझे वह सब न दोगे जिसकी मैंने मन ही मन उम्मीद की है ?'

'किसको जोहरा ?'

'सुखी ससार की, पति-पत्नी के ससार की।'[1]

७. शुभदा ('शुभदा')—भारतीयता के सस्कारों मे पली इस प्रगतिशील नारी के अतरंग का चित्रण भी नाटकीय शैली मे हुआ है—

'राधामोहन ने कहा—बेटी, तुझे यहाँ प्रसन्न और स्वस्थ देखकर मैं बहुत खुश हूँ। मुझे जाति-वालो ने जो प्रताड़ित किया और मेरा अपमान किया, वह अब तुझे देखकर मुझे खल नहीं रहा है। पर मैं चाहता हूँ कि तू मेरे साथ रह और पुत्री की कमी को पूरा कर।'

शुभदा ने कहा— ''''परन्तु मेरे साथ जो घटनाएँ घट चुकी हैं और मैं जहाँ पहुँच चुकी हूँ, वहाँ से लौटकर आपकी शरण मे जाना, न आपके लिए श्रेयस्कर होगा, न मेरे लिए।'

'मैं तो तुझे अपनी वही पुत्र-वधू समझता हूँ।'

'वही तो हूँ। बदल कैसे जाऊँगी ?'

'यह तो मैंने तभी देख लिया, जब तू ने गले मे आँचल डालकर मेरी चरण-रज ली। पर मैंने सुना है कि तू एक तरुण से ब्याह कर रही है ?'

'दूसरी कोई राह नहीं है। पर मेरी आत्मा हिन्दू है। सस्कार हिन्दू हैं। फिर मैं भारतीय भी तो हूँ।'[2]

स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन के नारी-पात्रो के चित्रण मे नाटकीय शैली का प्रयोग सफलता-पूर्वक हुआ है। अधिकाश उपन्यास घटना-प्रधान एव उद्देश्य प्रधान होने के कारण उनके नारी-पात्रो का चित्रण चरित्र-प्रधान अथवा मनोवैज्ञानिक उपन्यासो के नारी-पात्रो की भाँति पूर्णत. सवादात्मक अथवा

---

१. मानी, पृ० ७६-७७।

२. शुभदा, पृ० ८१-८२।

वस्तुस्थिति और पात्रो के आचरण पर आधारित परोक्ष शैली मे नही हुआ है। किन्तु 'आभा', 'नीलमणि' और 'अदल-बदल' जैसे समस्यात्मक और बौद्धिकता-प्रधान उपन्यासो के नारी-पात्रो का चित्रण प्राय कथोपकथन-शैली मे बन पडा है।

(ग) आत्म-कथात्मक-शैली

आचार्य चतुरसेन के केवल दो उपन्यास इस शैली मे लिखे गए हैं— 'गोली' और 'पत्थर युग के दो बुत'। प्रथम उपन्यास की कथा चम्पा और दूसरे उपन्यास की कथा विभिन्न पात्र कहते हैं। इन उपन्यासों के नारी-पात्रों का आत्म-विश्लेषण स्वभावत उनके बहिरंग चित्रण की अपेक्षा अन्तरंग-चित्रण मे अधिक सहायक हुआ है। उनके मनोजगत् का प्रत्येक कोना जैसे साकार हो उठा है। दोनो उपन्यासो से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

१. चम्पा ('गोली')—(क) 'मैं जन्म जात अभागिन हूँ। स्त्री जाति का कलक हूँ। स्त्रियो मे अधम हूँ ''परन्तु'''मेरा दुर्भाग्य मेरा अपना नहीं है, मेरी जाति का है, जाति-परम्परा का है।'''कलमुंहे विधाता ने मुझे जो यह जला रूप दिया वह उस रूप का दीवाना था, प्रेमी-पतगा था। एक ओर उसका इतना बडा राज-पाट और वह स्वय भी मेरे चरण की इस कनी अगुली के नाखुन पर न्योछावर था।'[1]

× × ×

(ख) 'मेरा शृगार होने लगा। कैसे तमाशे की बात थी। मन तो मेरा मिट्टी हो रहा था। मुझे गढी की मुलाकात भी याद आ रही थी और उस दिन सुहाग रात की मुलाकात भी। मैं सोच रही थी, अब यह आज की मुलाकात न जाने कैसी होगी। फिर मर्जी का तो कोई सवाल ही न था। मैं इन्कार करने का अधिकार ही न रखती थी।'[2]

× × ×

(ग) '''इसी समय अबाध रूप से किसुन भीतर आया। क्षण भर उसने मेरे रूप को निहारा, आँखें नीची की और कहा—'सवारी के लिए सुखपाल हाजिर करूँ या तामजाम'''।'

वह स्वर सुनते ही मेरा मन हुलस उठा। ऐसे लगा जैसे मेरा शृगार सफल हो गया पर मुझ से जवाब देते न बना। मैंने हडबडा कर केसर की ओर देखा। केसर ने कहा—'सुखपाल हो मगा लो।'

किसुन चला गया। और तनिक ठहरता तो क्या हरज था ? मैंने सोचा और

---

१ गोली, पृ० ६-१०।

२. वही, पृ० १४७।

तभी मुझे अचानक याद आया, वह मेरी ही खिजमत मे है। जैसे मेरे दिल की कली खिल गई।"[1]

तन से राजा और मन से किसुन के प्रति समर्पित इस नारी का अन्तर्द्वन्द्व उक्त कुछ ही पंक्तियो से स्पष्ट है।

२ माया ('पत्थर युग के दो बुत')—'अकस्मात् ही कुछ अनहोनी-सी होती प्रतीत हुई। मैंने भयभीत होकर देखा—मैं भद्दी होती जा रही हूँ। मेरा तन उदासरहने लगा। आलस्य और अवसाद मेरे मन मे भर गया।'' अब मैं नाच न सकती थी। मेरा पेट बढ रहा था। जिससे कहती, वह मुँह फेर कर हँस देता। राय से कहा तो उन्होंने शुभ समाचार बताया। मैं बरबाद हो रही थी और दुनिया आनन्द मना रही थी और फिर वह भयानक रात आई जब होश मे आई तो देखा—'चद्रकिरन सी एक सजीव गुडिया मेरा स्तन चूस रही थी।' 'वाह री प्रकृति! वाह री विडम्बना! वाह रे प्यार! वाह री औरत! वाह रे मर्द!' 'मेरा प्यार तो अब मेरे ही आँचल मे पडा-पडा बासी हो रहा था और मुझे जो मिल रहा था वह प्यार न था''' प्यार की तलछट थी, कडवी और अप्रिय।''परन्तु अब मेरी भूल मुझे बेचैन कर रही थी 'मुझे ढेर सा प्यार चाहिए था। राय की तलछट मेरे काम की न थी मुझे चाहिए था गर्मागर्म प्यार''' एकदम ताजा।''' और वह मुझे मिल गया (वर्मा के ससर्ग से)''।"[2]

एक नारी के अन्तर्मन के मातृत्व बनाम यौन वृत्ति के इस विलक्षण द्वन्द्व का जितना सजीव चित्रण स्वय उसी के आत्म-कथन द्वारा हो पाया है, उतना अन्य किसी शैली के माध्यम से हो पाना सभव नही था।

३ लीलावती ('पत्थर युग के दो बुत')

'बडी खराब बात है। ये वर्मा साहब तभी घर आते हैं, जब डैडी घर पर नही होते—मुझे यह सब पसन्द नही है।—माना कि मैं बच्ची हूँ पर सब समझती हूँ'''।"[3]

निष्कलुष हृदय की बेटी अपनी माँ के अनाचार पर जो स्वाभाविक प्रतिक्रिया व्यक्त करती है, वह यहाँ बडी सहज बन पडी है।

४ रेखा ('पत्थर युग के दो बुत')

'चाहती हूँ, राय से खुलकर बात करूँ। नही तो उनको यहाँ न आने दो

---

१. गोली, पृ० २४७।

२ पत्थर युग के दो बुत, पृ० ४५-४६।

३. वही, पृ० ४७।

कहूँ, सब सम्बन्ध तोड दूँ—अब भी मैं सच्चे मन से दत्त को प्यार करूँ तो मैं निहाल हो सकती हूँ। परन्तु 'एक बार फिसलने पर फिर सभलना मुश्किल है। अब तो दिल मे भाव खा बैठी। मन मे चोर घुस बैठा। शरीर मे कलक का दाग लग चुका। मेरा नारी जीवन मलिन हो गया। पत्नी की पवित्रता मैं खो चुकी।' 'कौन मुझे अब राह दिखाएगा? कौन मुझे सीधी राह पर लाएगा? '''अरे, मैं तो खुद ही अपनी दुश्मन बन गई।'[1]

रेखा ने अपने कुकृत्य पर जो ग्लानि का भाव उद्वेगपूर्वक व्यक्त किया है, उससे उसकी नारी के मर्म का सहज उद्घाटन होता है।

इस शैली का एक वैशिष्ट्य यह है कि इसम पूर्वोक्त दोनो—वर्णनात्मक एव नाटकीय-शैलियाँ स्वत समाहित रहती हैं। अन्तर यह है कि उपन्यासकार का स्थान उपन्यास का कोई पात्र ले लेता है। उपन्यासकार द्वारा किए गए वर्णन की अपेक्षा किसी पात्र द्वारा किया गया वर्णन अधिक सजीव बन पडता है। आचार्य चतुरसेन के आत्म-कथात्मक उपन्यास 'गोली' मे चम्पा अपने साथ-साथ कुवारी केसर आदि अन्य नारी पात्रा के चरित्र की सभी रेखाओ को भी स्पष्टता से उभारने म दक्ष है। इसी प्रकार 'पत्थर युग के दो बुत' नामक उपन्यास के तीनो प्रमुख नारी-पात्र रेखा, माया और लीला के चरित्रो का चित्रण जहाँ उनके अपने वक्तव्यो के माध्यम स हुआ है, वहाँ पाठको स उनकी जान-पहचान एक-दूसरे के माध्यम स भी हुई है। उदाहरणत माया के पर-पुरुष के सम्बन्ध के विषय मे अन्य लोगो की क्या प्रतिक्रिया है, इसका विवेचन वह स्वय इतनी विश्वसनीयता मे नहीं कर सकती जितना कि उसकी पुत्री लीला अथवा उसके पति या प्रेमी के वक्तव्य उस पर प्रकाश डालते हैं।

आचार्य चतुरसेन की नारी-चित्रण-कला का सर्वाधिक निखार आत्म-कथात्मक शैली के माध्यम म सम्भव हुआ है। इस शैली मे उन्होंने केवल दो उपन्यास लिखे हैं। इन उपन्यासो के नारी-पात्र, अन्य नारी-पात्रो की अपेक्षा कहीं अधिक गहरी छाप पाठको के हृदयो पर अकित करते हैं। इसके बाद, आचार्य जी के उपन्यासो मे नारी चित्रण की सजीवता नाटकीय शैली म बन पडी है। इसी शैली के माध्यम म सरला, भगवती, आभा, नीलू, राज, ज़ोहरा, शोभना और देवबाला जैसे अविस्मरणीय नारी-पात्रो की सृष्टि हो सकी है। इसके साथ ही आचार्य चतुरसन की नारी चित्रण-कला म वर्णनात्मक शैली की उपादेयता को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। विशेषत नारी पात्रा क बहिरग स्वरूप, व्यक्तित्व आदि की साकारता का श्रेय इसी शैली को है।

---

१ पत्थर युग के दो बुत, पृ० ८४-८५।

३. आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो मे नारी-चित्रण का बहिरंग स्वरूप

प्रत्येक मनुष्य प्राय दुहरा जीवन जीता है। एक वह, जिसमे उसका शरीर और बाहरी व्यक्तित्व सचेष्ट रहता है, दूसरा वह, जिसमे उसकी अतश्चेतना अर्थात् उसका मन सक्रिय रहता है। जीवन के इन दोनो पक्षो के सम्यक् चित्रण मे किसी पात्र के चरित्र की सम्पूर्णता निहित है। एक समय था जब कुछ तत्वदर्शी विद्वान् मनुष्य की वाह्य आकृति और अन्त करण का परस्पर सीधा सम्पर्क स्वीकार करते थे। डॉ० शशिभूषण सिंहल का इस प्रसग मे मत है कि 'आकृति सामुद्रिक (फिजियाग्नमी) के प्रवर्तक श्री लवेटर ने कुछ परीक्षणो के आधार पर चेहरे की आकृति से बुद्धि का अनुमान लगाने का दावा किया था। उसने व्यक्तियो की नाक, दांत, कपोल तथा भौंहो आदि की आकृति मे तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर एक विशिष्ट आकृति के लिए एक विशिष्ट मानसिक गुण का समर्थन किया। किन्तु बाद के प्रयोगो और निष्कर्षों के फलस्वरूप आधुनिक मनोविज्ञान ने आकृति सामुद्रिक को निराधार सिद्ध कर दिया है, यद्यपि जनसाधारण का उस पर कुछ न कुछ विश्वास अब भी दिखाई पड़ता है।"[1] इसी प्रकार की मान्यता का समर्थन कुछ समय पूर्व गाल नामक फ्रासीसी विद्वान् ने भी किया था। उसने मस्तिष्क-विज्ञान (फ्रेनालोजी) के माध्यम से यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि मनुष्य की बुद्धि का परिमाण उसके सिर की आकृति पर आधारित है। किन्तु सन् १९०६ मे प्रो० कार्ल पियर्सन नामक विद्वान् ने ५००० व्यक्तियो पर किए गए अपने प्रयोगो द्वारा सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य के सिर की बनावट, मुखाकृति तथा अन्य शारीरिक अवयवो की सरचना का उसके मनोजगत् से कोई सीधा सबध नही है।"[2] मनोविज्ञान शास्त्रियो द्वारा प्रतिपादित विभिन्न सिद्धान्त भी प्रो० कार्ल पियर्सन के इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं। हम प्राय देखते हैं कि 'मनुष्य ऊपर से जो कार्य-कलाप, बार्तालाप और व्यवहार करता दिखाई देता है, उसके हृदय मे कई बार उससे सर्वथा भिन्न भाव होते हैं।'[3] इसी प्रकार मनुष्य का व्यक्तित्व जैसा बाहर से दिखाई देता है भीतर से उसका स्वभाव अनिवार्यत वैसा ही नही होता। अत किसी भी पात्र के चरित्र-चित्रण के दो पक्ष स्पष्टत पृथक् रूप मे उल्लेख्य हैं प्रथम—उसका वाह्य दृश्य व्यक्तित्व एव द्वितीय—उसका मनोजगत्। यहाँ नारी-पात्रो के वाह्य रूप पर विचार किया गया है। उनकी मनोवैज्ञानिक विशेषताओ पर

---

१. डॉ० शशिभूषण सिंहल, उपन्यासकार वृदावनलाल वर्मा, पृ० १४२-४३।
२ माडर्न एजूकेशनल साइकालाजी, पृ० ४०२-४०५।
३ डॉ० रामप्रकाश, ग्रबन . आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० ४०।

अन्यत्र यथास्थान प्रकाश डाला गया है।

औपन्यासिक पात्रों से पाठकों की जान-पहचान सर्वप्रथम उनके बाह्यावलोकन द्वारा होती है। जिस प्रकार मंच पर किसी पात्र का आगमन होने पर, पहले दर्शक उसके आकार प्रकार, रंग-रूप, वेश विन्यास आदि से परिचित होते हैं और बाद में उन्हें उस पात्र के गुण-स्वभाव आदि का ज्ञान होता है, उसी प्रकार औपन्यासिक पात्रों के चित्रण की स्वाभाविक प्रक्रिया यही है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में इस प्रक्रिया का सम्यक् परिपालन दृष्टिगत होता है। उनके सभी प्रमुख नारी-पात्र अपने विशिष्ट व्यक्तित्व, विलक्षण रूप गठन और वेश-विन्यास के कारण, अन्य पात्रों से स्पष्टतः पृथक् रूप में पहचाने जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त उनके चारित्रिक गुण उन्हें एक अलग अस्तित्व प्रदान करते हैं।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में नारी चित्रण की यह प्रक्रिया वैज्ञानिक बन पड़ी है। जिस प्रकार किसी भित्ति पर टंगे विभिन्न चित्रों के दर्शक के सम्मुख क्रमशः उनके निकट आने पर उन की रेखाएँ उत्तरोत्तर स्पष्ट होती चली जाती हैं—पहले दूर से वह चित्र के सामान्य ढाँचे को देखता है, फिर कुछ निकट आने पर उसकी रूपाकृति से परिचित होता है, कुछ अधिक ध्यान से देखने पर उसे ज्ञात होता है कि चित्रकार ने उसके शरीरावयवों के साथ-साथ उसकी वेशभूषा को भी बड़ी सूक्ष्मता से विभिन्न रंगों में उरेहा है, इसके उपरान्त वह चित्र में अंकित व्यक्ति की मुखमुद्रा, अंग-चेष्टाओं और विशिष्ट स्थितियों के माध्यम से उसके आन्तरिक भाव-गुण आदि को जान पाता है। उसी प्रकार आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-पात्रों की चित्रण प्रक्रिया को भी पाँच उपशीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त किया जा सकता है—(क) सामान्य व्यक्तित्व, (ख) रूप-आकार, (ग) वेश विन्यास, (घ) बौद्धिक गुण एवं (ङ) चारित्रिक गुण।

(क) सामान्य व्यक्तित्व-चित्रण

सामान्य व्यक्तित्व से अभिप्राय उल्लेख्य नारी-पात्र के प्रथम दर्शन से पड़ने वाले सामान्य प्रभाव से है। उपन्यास में किसी नारी-पात्र से पहली बार परिचित होने पर पाठक के हृदय पर उसकी जो छाप पड़ती है, वही बाद में उसके अन्तरंग परिचय का आधार बनती है। आचार्य जी इस संबंध में सजग रहे हैं कि उनका कोई प्रमुख नारी पात्र इस दृष्टि से पाठकों से अपरिचित न रहे। उदाहरण-स्वरूप उनके कुछ उपन्यासों से ऐसे अंश यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं जो कतिपय विशिष्ट नारी-पात्रों के सामान्य-व्यक्तित्व को भलीभांति स्पष्ट कर देने वाले हैं।

सरला ('हृदय की परख')—'गांव के लोग न जाने क्यों, सरला से कुछ डरते-से थे। उसकी दृष्टि कुछ ऐसी थी कि सरला से न कोई आँख ही मिला सकता था और न किसी को उसका अपमान या तिरस्कार करने का साहस होता था। उसकी दृष्टि में कुछ ऐसा प्रभाव था कि वह जिससे बातें करती, वह दब-सा जाता।'[1]

यहाँ लेखक ने गिने-चुने शब्दों में षोडशी सरला के प्रभावशाली व्यक्तित्व का चित्रण किया है।

शशिकला ('हृदय की परख')—सरला की जन्मदात्री शशिकला जब अकस्मात् उसे मिलने आती है तो पाठक केवल एक पंक्ति में उसके व्यक्तित्व का अनुमान लगा लेता है—

'उस का मुख भारी और रुग्राबदार था। शरीर जड़ाऊ आभूषणों से सज रहा था। उसके बढ़िया वस्त्र और सामग्री देखने से वह कोई बड़े घर की स्त्री मालूम होती थी। अवस्था इसकी कोई ४० वर्ष की होगी।'[2]

कुमुद ('बहते आँसू')—कुमुद के व्यक्तित्व का विशेष परिचय उसके विधवा हो जाने के पश्चात् इन शब्दों में मिलता है—

'जब एक दिन उसने उसके समक्ष आने का साहस किया, तो देखा—समुद्र के समान गम्भीर कुमुद खड़ी है। कुमुद की आँखों में तपस्विनी के समान तेज उत्पन्न हो गया। गम्भीर विवेचना, सहिष्णुता, धैर्य, पवित्रता, यह सब मिलकर कुमुद के चरित्रवान् सौन्दर्य में जब रम गए, तो उसमें एक अद्भुत माधुर्य और तेज आ गया।'[3]

माया ('आत्मदाह')—'माया स्त्रीत्व की एक कोमल छाया थी। कवि यदि अपनी सभी स्वाभाविक कल्पनाओं की एक प्रतिमा गढ़े, तो वह कदाचित् माया से मिल जाए।'[4]

सुधा ('आत्मदाह')—'सुधा स्त्रीत्व का एक कोमल अवतरण थी। बहुत ही नन्हा-सा हृदय अपने स्वर्ण शरीर में छिपाए, स्वामी के साथ स्वामी के घर में आई।...वह बहुत भोली, सर्वथा मुग्धा और अतिशय लजीली बालिका थी।'[5]

'आत्मदाह' की उक्त दोनों नारियों का यह व्यक्तित्व-चित्रण संक्षिप्त और

---

१. हृदय की परख पृ० १७।
२. वही पृ० ३७।
३. बहते आँसू, पृ० १४०।
४. आत्मदाह पृ० २५।
५. वही, पृ० १७४-७५।

सटीक है।

अम्बपाली ('वैशाली की नगरवधू')

'सहसा कोलाहल स्तब्ध हो गया, जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। सब कोई चकित-स्तम्भित होकर परिषद् के द्वार की ओर देखने लगे। एक अवगुण्ठन-वती नारी वातावरण को सुरभित करती हुई और मार्ग में सुषमा फैलाती हुई आ रही थी। तरुणों का उद्धत भाव एकबारगी विलीन हो गया। गण के सदस्य और अन्य जनपद उस अलौकिक मूर्ति को उत्फुल्ल होकर देखते रह गए।—सहस्र सहस्र नेत्र उस रूप को देख अपलक रह गए। प्राणी जड़ हो गई, अग अचल हो गए ।[1]

इन पंक्तियों में चित्रित नारी का नामोल्लेख किए बिना उसके व्यक्तित्व-अंकन से दर्शकों और साथ ही उपन्यास के पाठकों में कुतूहल-सचार कर देने में नाटकीयता का तत्त्व आ गया है।

केसर ('दो किनारे'-'दादा भाई')

'युवती एक वेश्या थी। उसका नाम केसरबाई था। आयु उसकी २५ वर्ष, वदन छरहरा, नेत्रों में वेदना, मस्तिष्क में उलझन तथा प्रकृति में गम्भीर थी।'[2]

केसर का यह स्वरूप चित्रण उसके व्यक्तित्व की विभिन्न विरोधी रेखाओं का परिचायक है।

जीनत ('धर्मपुत्र')

'दूसरी थी जरा ठाठदार—उम्र थी कोई पैंतीस के आसपास। रंग खूब गोरा, दुबली पतली, मिजाज की तेज, जबान की तीखी—रहती थी खूब चाक-चौबन्द, चौकस, पहरे चौकी से मुस्तैद।'[3]

शूर्पणखा ('वय रक्षाम.')

'रानी के समान गरिमा, पिघले हुए स्वर्ण-सा रंग, आदर्श सुन्दरी न होने पर भी एक भव्य आकर्षण से ओत-प्रोत। आँखों में झाँकती हुई स्थिर दृढ़-संकल्प प्रतिमा, कटाक्ष में तैरती हुई तीखी प्रतिमा और उत्फुल्ल होंठों में विलास करती हुई दुर्दम्य लालसा—यह शूर्पणखा का व्यक्तित्व था। प्रतिक्रिया के लिए

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० १८।
२. दो किनारे (दादाभाई), पृ० ११३।
३. धर्मपुत्र, पृ० ३५।

सदैव उद्यत और अपने ही पर निर्भर। लम्बी, तन्वगी, सतर और अचचल।"[1]

सुलोचना (वयं रक्षामः)

इसी प्रकार सुलोचना का व्यक्तित्व भी दर्शनीय है—

'वह बाला नूतन मुग्धा थी। मेघ-रहित क्षणप्रभा विद्युत्-सी, कुमुद-बन्धु चन्द्र-रहित ज्योत्स्ना-सी, मन्मथ-रहित रति-सी थी वह सुलोचना, सुलक्षणा, दानवनन्दिनी मेघनाद-प्रियतमा। जैसे विधाता ने सारे ससार की सब रचनाओं से अपने हस्त-कौशल को परिष्कृत कर एक आदर्श रम्य-मूर्ति रची थी, जो वसत की फुलवारी-सी प्रतीत होती थी।"[2]

प्रमिला रानी ('उदयास्त')

'वास्तव मे कुँवरानी एक खुले दिल की खुशमिजाज स्त्री है। स्वास्थ्य उनका साधारण है। उन्हें खास तौर पर रूपवती भी नहीं कहा जा सकता, परतु वह कुरूप भी नही हैं। रग उनका अधिक गोरा नही है, उज्ज्वल, साँवला-सलोना रूप है। चेहरे की बनावट आकर्षक है। बडी-बडी आँखो मे मद है और लावण्य की प्रभा से उनका मुखमण्डल देदीप्यमान है।···कद मे वह जरा लम्बी हैं, यो वह दुबली-पतली युवती हैं, पर अग उनके सुडौल और मांसल हैं। अग की गोलाइयाँ उभारदार हैं। सब मिलाकर वह एक आकर्षक युवती है।"[3]

इस पात्र का उपन्यासकार ने सूक्ष्म विवरण इस सधे हुए ढग से प्रस्तुत किया है कि इसका रूप एकाएक पाठक की कल्पना मे उभर आता है। पात्र से पाठक की आत्मीयता तत्क्षण उत्पन्न करने की यह कला उल्लेखनीय है। पाठक पात्र मे स्वत: रुचि लेने लगता है। स्वभावत उसकी जिज्ञासा होती है कि पात्र आगे कब, क्या करता है?

इसी उपन्यास मे एक अन्य नारी-पात्र का प्रथम आगमन इन शब्दो मे चित्रित है—

पद्मा ('उदयास्त')—'इसी समय एक सत्रह-अठारह वर्ष की बाला सामने से आती नजर आई ··लडकी सुन्दरी थी। अवस्था का कोमलपन चेहरे पर था। इसके अतिरिक्त एक तेज और ताजगी भी उसके मुख पर थी।···लापरवाही से बने हुए बाल, परन्तु बडी-बडी आँखो मे एक उज्ज्वल प्रकाश। यौवन उसे छू रहा था···ध्यान से देखने पर बाल-सुलभ चपलता भी चेहरे पर स्पष्ट दीख

१. वयं रक्षामः, पृ० १६६।
२. वही, पृ० ३५५।
३. उदयास्त, पृ० १७।

पढ़ती थी। परन्तु अध्ययन की गम्भीरता उसके मुँह पर थी। सब मिलाकर एक आकर्षक लड़की उसे कहा जा सकता था। नाम था पद्मा।"[1]

विवियाना ('सोना और खून', भाग-२)

'कुमारी विवियाना एक खुशमिजाज भले घर की लड़की थी। वह शिक्षिता और बुद्धिमती थी। आयु उसकी पच्चीस से भी कम थी और अभी वह कुमारी ही थी। वह सुन्दरी और हँसमुख थी।"[2]

फ्लोरेंस नाईटिंगेल ('सोना और खून', भाग-३)

'फ्लोरेंस नाईटिंगेल की आयु इस समय लगभग अट्ठाईस बरस की होगी। उसका कद लम्बा, शरीर सीधा और आकर्षक था। उसके बाल सुनहरी, मुखाकृति कोमल और आँखें बड़ी-बड़ी थी। उसका चेहरा किंचित् लम्बा था—जिस पर एक प्रकार की आभा थी।"'उसके नाक, कान उभरे हुए थे जो उसकी मानसिक उच्चता के द्योतक थे।—इस उम्र मे भी उसके मुख-मण्डल पर बच्चों-जैसी प्रसन्नता के साथ साथ विचारों की गम्भीरता प्रकट होती थी।"[3]

यहाँ फ्लोरेंस नाईटिंगेल की 'मानसिक उच्चता' का सम्बन्ध उसके 'उभरे हुए नाक, कान' से जोड़कर आचार्य चतुरसेन ने आकृति-सामुद्रिक (फिजियाग्नमी) के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की है, जिसके अनुसार 'मनुष्य का मुख उसके मन का दर्पण' माना जाता है। इसकी पुष्टि 'खून और खून' की केशव की माँ के व्यक्तित्व-चित्रण से भी हो जाती है—

केशव की माँ ('खून और खून')

'उसकी अवस्था उस समय चालीस को पार कर गई थी। उसका शरीर कृश, मुखमुद्रा गम्भीर, नेत्र स्थिर और स्वभाव अत्यन्त कोमल था। वह अल्प-भाषिणी और सत्यवादिनी प्रसिद्ध थी।"[4]

रानी चन्द्रकुँवरि ('अपराधी')

'रानी चन्द्रकुँवरि स्वाभिमानी और ठसक की औरत थी। बुढ़ापे तक पर्दे मे रहीं, किसी ने उँगली की पोर भी न देखी, एक शब्द भी न सुना। मगर स्वभाव

---

१. उदयास्त पृ० १४९-५०।
२. सोना और खून, भाग-२, पृ० २२-२३।
३. वही, भाग-३, पृ० २११।
४. खून और खून, पृ० ११।

था सारे अमले पर। कचहरी के ऊपर चिक में बैठकर सब रियासत का काम देखती थी।"[1]

विभिन्न नारी-पात्रो के व्यक्तित्व चित्रण से सम्बन्धित ये उद्धरण उपन्यासकार की लोकानुभवी दृष्टि के परिचायक हैं। उन्होंने भारतीय और विदेशी, युवा और अधेड़, स्वच्छन्द वृत्ति और मर्यादाशील स्त्रियो के सामान्य व्यक्तित्व की रेखाओ को इस कुशलता से उभारा है कि वे पूरे जनसमुदाय मे सरलतापूर्वक पृथक् रूप से पहचानी जा सकती हैं।

(ख) रूप-चित्रण

नारी-पात्रो के रूप-चित्रण मे चतुरसेन का वैशिष्ट्य दृष्टिगोचर होता है। उसके अधिकाश उपन्यासो की नायिकाएँ युवा हैं तथा वे अन्य सामान्य स्त्रियो की अपेक्षा विशिष्ट रूपवती हैं। प्रतीत होता है कि उनके चित्रण मे लेखक ने सौन्दर्य शास्त्र और काम शास्त्र-विषयक अपने गहन ज्ञान के साथ एक कुशल चिकित्सक के व्यापक अनुभव का उपयोग किया है। उनके नारी-पात्रो के रूप-चित्रण मे शरीर गठन, अग-विन्यास, मुख-लावण्य, नाक-नक्श आदि सभी सौंदर्य-तत्त्वो का सामजस्य है। उनके कई नारी-पात्रो का रूप-चित्रण इतना सूक्ष्म और सागोपाग है कि कोई भी रगकर्मी चित्रकार उन्हे अपने 'माडल' के रूप मे समक्ष रखकर भव्य, रमणीय चित्रो की सृष्टि कर सकता है। कई बार उन नारी-चित्रों की अतिशय सूक्ष्मता और सजीवता देखकर यह भ्रम होने लगता है कि कहीं आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो का प्रतिपाद्य मात्र मासल सौन्दर्य का प्रदर्शन कर, साधारण पाठको के हृदय मे गुदगुदी उत्पन्न कर, उनका सस्ता मनोरजन करना तो नहीं। किन्तु यह भ्रम है। अपने बहिरग स्वरूप मे ये नारी पात्र जितने मोहक और आकर्षक रूप मे चित्रित किए गए हैं, अपने अन्तरग जगत् मे ये उतने ही प्रबुद्ध और भाव-सम्पन्न हैं। इस तथ्य का विशद विवेचन अन्यत्र, यथास्थान किया गया है। उनके नारी पात्रो के रूप-चित्रण में 'रूप' के साथ-साथ 'रस', 'गन्ध', 'स्पर्श' और कहीं-कहीं 'स्वाद' का तत्त्व भी सम्मिलित है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो मे चित्रित नारियाँ भारत और विश्व के विगत ढाई-तीन हजार वर्षों के इतिहास का प्रतिनिधित्व करती हैं। देश, काल और परिस्थितियो के अनुसार उनकी चिन्तन-प्रक्रिया और कार्य विधियों में क्रमश: वैभिन्य दृष्टिगोचर होता है। किन्तु उनका रूप-विन्यास, देह-लावण्य और मोहक सौन्दर्य एक-से प्रभावी रूप मे चित्रित किया गया है। ऐसे उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

१. अपराधी, पृ० ७८।

सरला ('हृदय की परख')

'सरला जब बातें करती तो उसके हिलते हुए होठ ऐसे मालूम होते, मानो झंझावायु से प्रेरित होकर गुलाब की पखुड़ियाँ हिल रही हो। उसकी वोली भौंरे की गुंजार की तरह मन को लहरा देती थी—उसके कुन्द-कली के समान धवल दाँतों की शोभा देखते ही बनती थी।'[1]

'''कुमारपने की मिठास इसके मुख पर विराजमान है, और एक ऐसी प्रतिभा, श्री और माधुर्य इसके नेत्रों में है कि कहा नहीं जाता।'''मुख से मानो फूल बरसते हैं।'[2]

इस चित्र में यद्यपि सरला के मुख-मण्डल की पूरी छवि नही दिखलाई गई तथापि रसमय नेत्र और मवाक् अधर इतनी सजीवता से चित्रित हैं। यही स्थिति 'हृदय की प्यास' नामक उपन्यास मे चित्रित 'भगवती की वहू' की भी है—

भगवती की बहू ('हृदय की प्यास')

'पीला स्वर्ण के समान वह मुख चुपचाप श्वास ले रहा था। नेत्र आधे बद थे।'''मानो वहू अत्यन्त अलकमाए, मदभरे नेत्रों से छिपकर उन्हें देख रही है।'[3]

परन्तु इस चित्र मे उपन्यासकार की तूलिका मुखमण्डल से कुछ और नीचे तक भी चली गई है—'स्वच्छ सगमरमर-सी छाती पर सेब के समान दोनो स्तन मग्न पडे थे। सुराही-सी श्वेत गर्दन पर स्वर्ण-कमल के समान मुख मूर्च्छित उघरा पडा था।'[4]

एक झलक मध्ययुगीन सामन्ती नायिका की प्रस्तुत है—

संयोगिता ('पूर्णाहुति')

'उस चद्रवदनी, मृगलोचनी बाला के उज्ज्वल ललाट पर श्याम-भ्रू-भाग ऐसा सुशोभित होता है, मानो गगा की धारा मे भुजग तैर रहे हैं। उसकी कीर के समान नासिका, अनार के समान दत-पक्ति, पतली-सी कमर, श्रीफल में उरोज और चम्पा के समान सुन्दर अग-अग गजब छटा दिखाते हैं।'[5]

---

१. हृदय की परख, पृ० १४।
२. वही, पृ० ४५।
३. हृदय की प्यास, पृ० १०६।
४. वही, पृ० १०६-१०।
५. पूर्णाहुति, पृ० ७।

कहीं-कहीं लेखक ने सूक्ष्म रेखांकन के स्थान पर केवल उपमान और प्रतीक के माध्यम से विवेच्य नारी-पात्र के रूप का आभास दिया है—

सरला ('आत्मदाह')

'सरला को कमल के उस फूल की उपमा दी जा सकती है जो प्राकृत पुष्करिणी के बीच नैसर्गिक रूप से खिलता है—जिसमे विधाता के हाथ की असली कारीगरी होती है। स्वच्छ सरोवर का मोती-सा अमल-धवल जल जब उन्मुक्त पवन मे हिलोरें लेता है—तब रक्ताभ महादल-कमल उत्फुल्ल होकर झूम-झूम कर जो शोभा-विस्तार करता है, वह किसी मानवीय कारीगरी की समता की चीज नहीं हो सकती। सरला ऐसी ही लड़की थी।'[1]

आचार्य चतुरसेन कुछ नारी-पात्रों का रूप-चित्रण करते अघाते नहीं हैं। जैसे—

अम्बपाली ('वैशाली की नगरवधू')

(क) 'देह-यष्टि जैसे किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अखण्ड टुकडे मे यत्नपूर्वक खोद कर गढ़ी थी। उससे तेज आभा, प्रकाश, माधुर्य, कोमलता और सौरभ का अटूट झरना झर रहा था। इतना रूप, इतना सौष्ठव, इतनी अपूर्वता कभी एक स्थान पर देखी नहीं थी।'[2]

× × ×

(ख) 'उसकी अनिंद्य, सुन्दर देह-यष्टि, तेजपूर्ण दृष्टि, मोहक मन्द मुस्कान, मराल की-सी गति, सिंह की-सी उठान, सब कुछ अलौकिक थी।'[3]

× × ×

(ग) 'न जाने विधाता ने उसे किस क्षण मे गढ़ा था। कोई चित्रकार न तो उसका चित्र ही अंकित कर सकता था, न कोई मूर्तिकार वैसी मूर्ति ही बना सकता था। इस भुवनमोहिनी की वह छटा आगंतुक के हृदय को छेद कर पार हो गई। उसके घनश्याम-कुंचित कुंतल केश उसके उज्ज्वल और स्निग्ध कन्धों पर लहरा रहे थे। स्फटिक के समान चिकने मस्तक पर मोतियों का गुँथा हुआ चन्द्रभूषण अपूर्व शोभा दिखा रहा था। उसकी काली और कटीली आँखें, तोते के समान नुकीली नाक, बिम्बफल जैसे अधर-ओष्ठ और अनारदाने के समान उज्ज्वल दाँत, गौर और गोल चिबुक बिना ही शृंगार के अनुराग और आनन्द

१. आत्मदाह, पृ० १०३।
२. वैशाली की नगरवधू, पृ० १८।
३. वही, पृ० ६०।

बिखेर रहा था।"[1]

कुण्डनी ('वैशाली की नगरवधू')

(क) 'उनके पास ही बगल में एक अतिसुन्दरी बाला अधोमुखी बैठी थी। ''उसकी गोर सुडोल भुजलता अनावृत थी। काली लटें चांदी के समान श्वेत मस्तक पर लहरा रही थी। पीठ पर पद-तल चुम्बी चोटी लटक रही थी। उसका गौर वक्ष अनावृत था, सिर्फ बिल्व स्तन कौशेय-पट्ट से बँधे थे—इस सुन्दरी के नेत्रों में अद्भुत मद था। कुछ देर उसकी ओर देखने ही से जैसे नशा आ जाता था। उसके बिम्बफल जैसे ओष्ठ इतने सरस और आग्रही प्रतीत हो रहे थे कि उन्हें देखकर मनुष्य का काम अनायास ही जागृत हो जाता था।"[2]

× × ×

(ख) 'उसका चम्प की कली के समान पीतप्रभ मुख, उस पर विलास-पूर्ण मदभरी आँखें और लालसा से लबालब होठ, कुंचित भृकुटि-विलास—।"[3]

× × ×

(ग) 'मशाल के प्रकाश में आज सोम कुण्डनी का वह त्रिभुवन-मोहन रूप देखकर अवाक् रह गया। उसकी सघन-श्याम-केश-राशि मनोहर ढंग से चांदी जैसे उज्ज्वल मस्तक पर सुशोभित थी। लम्बी चोटी नागिन के समान चरण-चुम्बन कर रही थी। बिल्व-स्तनों को रक्त-कौशेय से बांध कर उस पर उसने नीलमणि की कंचुकी पहनी थी। कमर में लाल दुकूल और उस पर बड़े बड़े पन्नों की कसी पेटी, उसकी क्षीण कटि ही की नहीं, पीन नितम्ब और सुन्दर उरोजों के सौन्दर्य की भी अधिक वृद्धि कर रही थी।"[4]

(घ) 'कुण्डनी के यौवन, मत्तनयन और उद्वेग-जनक ओष्ठ, स्वर्ण देह-यष्टि, इन सबने महाराज दधिवाहन को कामान्ध कर दिया।"[5]

यहाँ उपन्यासकार ने कुण्डनी के मादक रूप का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है।

'वैशाली की नगरवधू' में से इसी प्रकार के कुछ अन्य रूप चित्र द्रष्टव्य हैं—

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ६५२।
२ वही, पृ० ७२।
३ वही, पृ० ८३।
४ वही, पृ० १७६।
५ वही, पृ० २१४।

कलिंगसेना ('वैशाली की नगरवधू')

'उसका अद्भुत सौन्दर्य, नीलमणि के समान उज्ज्वल नेत्र, चमकीले सोने के तार के-से स्वर्ण-केश और स्फटिक-सी धवल गौर कान्ति एवं सुगठित, सुस्पष्ट देहयष्टि देखकर सम्पूर्ण रनिवास आश्चर्यचकित रह गया।'[1]

चन्द्रभद्रा ('वैशाली की नगरवधू')

'राजबाला के सम्पूर्ण शरीर से स्वच्छ कान्ति प्रस्फुटित हो रही थी। उस का सद्य स्नात, हिम धवल, प्रभापुञ्ज गात्र, शरत्कालीन मेघों से आच्छादित चन्द्र-कला-जैसा प्रतीत हो रहा था। वह मूर्तिमती स्वर्ग-मन्दाकिनी-सी, शंख से खोदकर बनाई हुई दिव्य प्रतिमा सी प्रतीत हो रही थी। जैसे अभी-अभी विधाता ने उसे चन्द्रकिरणों के कूर्चक से धोकर, रजत रस से आप्लावित करके, सिन्धुवार के पुष्पों की धवल कान्ति से सजा कर यहाँ बैठाया हो।'[2]

रोहिणी ('वैशाली की नगरवधू')

'उसकी लम्बी देहयष्टि अत्यन्त गौर, स्वच्छन्द, संगमरमर-सा चिकना गात्र कमल के समान मुख और बहुमूल्य नीलम के समान पानीदार आँखें उसे दुनिया की लाखों करोड़ों स्त्रियों से पृथक् कर रही थीं।'[3]

मधु ('वैशाली की नगरवधू')

'एक और असाधारण बाला वहाँ इस तरुणी-मण्डल में थी, जो लाज नवाई चुपचाप बैठी थी और कभी-कभी सिर्फ मुस्करा देती थी।'''उसकी आँखें गहरी काली और ऐसी कटीली थीं कि उनके सामने आकर बिना घायल हुए बचने का कोई उपाय नहीं था। उसके केश अत्यन्त घने, काले और खूब चमकीले थे। गात्र का रंग नवीन केले के पत्ते के समान और चेहरा ताजे सेब के समान रंगीन था। उसका उत्फुल्ल यौवन, कोकिल कण्ठ, मस्तानी चाल ''यह सब ऐसी थी जिनकी उपमा नहीं थी। पर इन सबमें अपूर्व सुषमा की खान उसकी व्रीडा थी। वह ओस से भरे हुए एक बड़े ताजे गुलाब के फूल की भाँति थी, जो अपने ही भार से नीचे झुक गया हो। इस भुवनमोहिनी कुमारी बाला का नाम मधु था।'[4]

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० २६३।
२ वही, पृ० ३५४।
३. वही, पृ० ११३।
४ वही, पृ० ११५-१६।

इन अनुपमेय अथवा नए-नए उपमानों से युक्त अनेकानेक भुवनमोहिनियों से परिपूर्ण 'वैशाली की नगरवधू' के नारी-पात्रों का रूप-चित्रण देख-देखकर पाठक स्वयं को एक अद्भुत अप्सरा-लोक में उपस्थित पाता है।

'वैशाली की नगरवधू' के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक उपन्यासों में भी नारी-सौन्दर्य के अनेक आकर्षक चित्र अंकित हैं। उदाहरणत—

इच्छनीकुमारी (रक्त की प्यास')

'वही तरल आँखें, वही आग्रही अधरोष्ठ, वही वीणा विनन्दित स्वर, वही कुसुमलता सी देहयष्टि, वही चम्पे की कली-सी उंगलियाँ, निखरी चाँदनी सी वही मृदु-मुस्कान।'[1]

एक अन्य चित्र में व्यतिरेक के माध्यम से रूप-चित्रण की कला अवलोकनीय है—

मंजुघोषा (देवांगना)

'सुन्दरी मंजुघोषा, तुम्हारे आते ही इस पवित्र स्थान के सभी दीपक मन्द पड़ गए ' तुम्हारी सुन्दरता से। तुम्हारे कोमल अंग की सुगंध ने यहाँ के सभी फूलों की सुगन्धि को मात कर दिया।' 'तुम्हारे सौन्दर्य का मद इस मद से बहुत अधिक है।'[2]

चौला ('सोमनाथ')

'षोडशी बाला लाज, रूप और यौवन में डूबती-उतराती धीरे-धीरे बाहर आकर वृद्ध के चरणों में गिर गई। वह रूप, वह माधुर्य, वह स्वर्ण देह-यष्टि देखकर सब कोई आश्चर्य विमूढ़ रह गए।'[3]

आचार्य चतुरसेन की नारी-रूप-चित्रण-कला 'वयं रक्षामः' में नए शिखर का स्पर्श करने लगती है। 'वैशाली की नगरवधू' के असाधारण नारी-पात्रों के समान 'वयं रक्षामः' के नारी-पात्र भी अलौकिक और दिव्य-रूप में चित्रित किए गए हैं। विभिन्न दैत्य और दानव-बालाओं का सौन्दर्य-चित्रण करते लेखक की लेखनी मानो विश्राम नहीं लेना चाहती—

दैत्यबाला ('वयं रक्षामः')

'कज्जल-कूट के समान गहन, श्यामल, अनावृत उन्मुख यौवन, नीलमणि-सी

---

१ रक्त की प्यास, पृ० ११।
२. देवांगना, पृ० ४८।
३. सोमनाथ, पृ० ११।

ज्योतिर्मयी बड़ी बड़ी आँखें तीक्ष्ण कटाक्षों से भरपूर,'''लाल डोरे, मद-घूर्णित दृष्टि, कम्बु ग्रीवा पर अधर धरे से गहरे लाल उत्फुल्ल अधर, उज्ज्वल हीरकावलि-सी धवल दन्तपंक्ति, सम्पुष्ट प्रतिबिम्बित कपोल, प्रलय मेघ-सी सघन गहन-काली-घुंघराली मुक्त कुंतलावलि'''सम्पुष्ट जघन-नितम्ब'''उनके नीचे हेम-तार-ग्रथित कच्छप-चर्म-उपानत्-आवृत चरण-कमल, सद्य. किशोरी ।'[1]

मन्दोदरी ('वयं रक्षामः')

वक्रगतिका, क्षीणकलेवरा, विमल-सलिला, शैल नदी के समान दानव की बेटी मन्दोदरी की देहयष्टि थी। माधुर्य और सौन्दर्य का उसमें विचित्र सामंजस्य था।'''सर्पिणी के समान उसकी पदचुम्बिनी वेणी लटकने लगी।'''उस की उज्ज्वल, धवल दंतपंक्ति, उसके लाल अधरोष्ठों पर यत्किंचित् सीत्कार-सी करती हुई प्रश्वासों के साथ निकलती हुई अप्रतिम सुषमा प्रसार कर रही थी। उसके कमल के समान बड़े-बड़े नयनों में काजल की रेखा ऐसी प्रतीत होती थी जैसे नई कटार पर फिर धार चढ़ा दी गई हो। उसकी वंकिम भौंहों के नीचे मदिर दृष्टि मदवर्षा कर रही थी।'[2]

दानवकुमारी ('वयं रक्षामः')

'उसकी साथ वाली बाला अनूठी थी। तपाए हुए सोने के समान उसका रंग था। क्षीण कटि और स्थूल नितम्ब थे।'''उसके केश काले, सघन, चिकने और घुंघराले थे। वे पाद-चुम्बन कर रहे थे। भौंहें जुड़ी हुईं, जंघाएँ रोम-रहित-गोल, दाँत सटे हुए थे। नेत्रों के समीप का भाग, नेत्र, हाथ, पैर, टखने और जंघाएँ '''सब समान और उभरे हुए थे। नख, अंगुलियों की गोलाई के समान गोल थे। हस्त-तल उतार-चढ़ाव वाला, चिकना, कोमल और सुन्दर था। उँगलियाँ समान थीं। शरीर की कान्ति मणि के समान उज्ज्वल थी। स्तन पुष्ट और मिले हुए थे। नाभि गहरी थी तथा उसके पार्श्व भाग ऊँचे थे। मन्द-मुस्कान निरन्तर उसके होठों पर खेल रही थी। ऐसी ही सुलक्षणा सुकुमारी, दानव की वह बेटी थी।'[3]

मायादेवी ('वयं रक्षामः')

'माया अपूर्व रूप-सुन्दरी थी। उसका रंग तपाए हुए सोने के समान

---

१. वयं रक्षामः, पृ० ६।
२. वही, पृ० ७३।
३. वही, पृ० ७१।

कान्तिमान् था और उसके अंग-प्रत्यंग इतने सुडौल थे कि देख कर उसके रचयिता को धन्य कहना पडता था। आयु उसकी अभी अट्ठाईस वर्ष की ही थी परन्तु अपनी आयु से वह बहुत कम दीख पडती थी। उस की भाव भंगिमा भी बडी मोहक थी। उसका शरीर उठानदार था, कद कुछ लम्बा था। उसके नेत्र काले और बडे थे। कोये दूध जैसे सफेद थे। दृष्टि मे ऐसी मादक भाव-भंगिमा थी कि जिससे उसकी आग्रही और अनुरागपूर्ण भावना का प्रकटीकरण होता था। केश उसके भौरे के समान, दो भागों में बंटे थे। ध्यान से देखने पर उसकी बांकी भौंहें कुछ घनी प्रतीत होती थी। कान छोटे, पतले और कोमल थे। शख के समान कण्ठ, भरावदार उन्नत उरोज और छरहरी देह थी।"[1]

उपमानो के माध्यम स रूप-चित्रण की यह प्रवृत्ति न केवल ऐतिहासिक पात्रो के सन्दर्भ मे साकार हुई है, अपितु अनेक आधुनिकाओ का सौन्दर्य-चित्रण इसी शैली म हुआ है। उदाहरणार्थ बम्बई की एक ग्रेजूएट युवती का रूप-वर्णन देखिये—

किरण ('नरमेध')

'इस अधेड दम्पती के साथ एक चम्पकवर्णी बाला भी थी। उसका नवीन केले के पत्ते के समान उज्ज्वल सौन्दर्य और उगते हुए सूर्य के समान विकसित यौवन, उसके शरीर पर धारण किए हुए रत्नो से होड ले रहा था।"[2]

इसी प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर दिल्ली के एक सक्रिय राजनैतिक नेता की पत्नी के निम्नाकित रूप-चित्र का अवलोकन कर सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि नारी चाहे पौराणिक युग की हो या आधुनिक वैज्ञानिक युग की, उपन्यासकार की पैनी दृष्टि और कुशल लेखनी उसे देखने-दिखाने और समझने-समझाने मे एक-सी लीक पर चली है।

पद्मा ('बगुला के पख')—

पद्मा देवी की आयु छब्बीस वर्ष की थी। उसका रग गोरा था, जिसमे से खून टपका पडता था। उसके लावण्य मे स्वास्थ्य की कोमलता का एक अद्भुत मिश्रण था। उसकी आँखें काली और बडी-बडी थी। कोये उज्ज्वल श्वेत थे। उन आँखो मे तेज और आकाक्षा—दोनो ही कूट-कूटकर भरी थीं। अनुराग और आग्रह जैसे उनमे से झाँकता था। पद्मादेवी के बाल गहरे काले तथा आपाद-चुम्बी थे। वे मुलायम और घुंघराले भी थे। भौंहें पतली और कमान के समान

---

१. वय रक्षाम', पृ० १३२।
२. नरमेध, पृ० १२।

सुबुक थी। कान छोटे, गर्दन सुराहीदार और उरोज उन्नत थे। शरीर उसका छरहरा था।"[1]

नारी-रूप-चित्रण मे आचार्य जी की विशेष-रुचि का प्रमाण इस बात से मिलता है कि उन्होने अपने एक (सम्भवत सर्वप्रथम प्रकाशित) 'हृदय की परख' उपन्यास मे एक षोडशी (सरला) तथा एक अधेड-वयस्का रमणी (शारदा) को परस्पर एक दूसरे के रूप पर मुग्ध होते प्रदर्शित कर 'तुलसी' की इस उक्ति का प्रतिवाद प्रस्तुत किया है कि 'मोह न नारि नारि के रूपा।'[2] उनके उपन्यासो के कुछ नारी-पात्र स्वय अपने ही रूप पर मुग्ध दिखलाए गए हैं, जैसे, चम्पा ('गोली') और रेखा ('पत्थर युग के दो बुत)'। इन दोनो के रूप-लावण्य का एक-एक चित्र प्रस्तुत है—

चम्पा ('गोली')

'हौज से निकल कर मैं कद्देआदम आइने के सामने खडी हो गई। तपाए सोने के रग की मेरी अनावृत देह से मोतियो की लड़ की भाँति भर-भर कर पानी की बूँदें सगमर्मर के फर्श पर टपक रही थीं। मेरा सम्पूर्ण जागृत यौवन मुझे ही लुभा रहा था। मेरी लटकती केश-राशि से टपकते जल बिन्दु ऐसे प्रतीत हो रहे थे जैसे नागिन मोती उगल रही हो। देर तक मैं अपना उन्मुख अग-सौष्ठव निहारती रही।"[3]

रेखा ('पत्थर युग के दो बुत')

'''''लाखो मे एक। छरहरा बदन, उछलता यौवन, प्यासी आँखें और दान को उतावला होंठ। चम्पे की कली के समान कमनीय उगलियाँ, एडी तक लटकती घुँघराली लटें, चाँदी-सा उज्ज्वल माथा। अनार की पक्ति के समान दाँत और चाँदनी-सा हास्य। वाह, इसे कहते हैं औरत।"[4]

निष्कर्ष है कि नारी के रूप-चित्रण मे लेखक की दृष्टि, नारी के शरीर पर रहने के कारण उसके लावण्य और आकर्षक उपकरणों पर अधिक रही है। यह रूप-दृष्टि सीमित है। मात्र युवा, सुन्दर तरुणियो एव सौन्दर्य-छटा से

---

१. बगुला के पख, पृ० ३२।

२. रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, १, १, ११६, आचार्य जी ने इस उक्ति को यो उद्धृत किया है— नारि न मोह नारि के रूपा'।

—द्रष्टव्य 'हृदय की परख', पृ० ४७।

३. गोली, पृ० ८२।

४. पत्थर युग के दो बुत, पृ० २६।

आप्लावित कमनीय रमणियों के रूप चित्रण में नारी चित्रण की इतिवृत्ता स्वीकार नहीं की जा सकती। बालिकाओं, वयस्काओं, वृद्धाओं और यहाँ तक कि 'तपाए सोने के रंग से' विहीन सामान्य मानवी स्त्रियों के रूप आकार का भी अपना अस्तित्व और ही है। इनकी आचार्य जी के उपन्यासों में प्रायः उपेक्षा हुई है। अनेक उपन्यासों में ऐसी वयस्का, प्रौढ़ा एवं वृद्धा स्त्रियाँ हैं जिनका उल्लेख कई महत्त्वपूर्ण प्रसंगों में हुआ है। वे उनके व्यक्तित्व अथवा रूप आकार का कुछ भी संकेत दिए बिना, उनके आचरण व्यवहार अथवा कथोपकथन द्वारा अभीष्ट की ओर अग्रसर हो जाते हैं। यह ठीक है कि चरित्र विश्लेषण के लिए यही माध्यम उपयुक्त है और रूप-आकार का इस दृष्टि से कोई विशेष महत्त्व नहीं है, किन्तु नारी जीवन के सर्वांग सम्पूर्ण चित्रण की आशा प्रत्येक सजग उपन्यासकार से की जा सकती है। जो तूलिका छनकते यौवन और मदमाते नयनों को रेखायित कर सकती है, उसकी चित्रण-क्षमता ढलती सन्ध्या जैसी रक्ताभ श्यामता अथवा उगते प्रभात सी श्वेत अरुणिमा से युक्त झुर्रीदार अथवा पानीदार आकृतियों को क्यों साकारता प्रदान नहीं कर सकी? हर नारी के 'ओठों में दान-लालसा' और 'नत्रों में आग्रही प्यास' की चमक चित्रित करने वाली लेखनी किसी भी नारी आकृति में सरल सौम्य-स्नेह दुलार, ममत्व, समर्पण या आत्मिक उल्लास की आभा अंकित करने में क्यों कुंठित रह गई? ये शंकाएँ उठना स्वाभाविक है। यह नहीं कहा जा सकता कि आचार्य जी के उपन्यासों में माताओं और उनकी ममता, बहिनों और उनके दुलार या पुत्रियों और उनके स्नेह का चित्रण नहीं है। यह सब कुछ पर्याप्त मात्रा में है। पर यहाँ जो प्रश्न उठाया गया है, वह केवल नारी के रूप आकार विशेष के चित्रण के सन्दर्भ में है। नारी के 'भुवनमोहक' रूप के साथ उसके जगत्सर्जक और जगद्वन्द्य रूप का भी रेखांकन इन उपन्यासों में हो पाता तो आचार्य जी की नारी चित्रण-कला का समग्र कौशल सार्थक हो जाता। फिर भी, उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में नारी की मोहक रूपाकृतियों के साथ उसकी पीड़ा-जन्य रेखाओं की मार्मिक आकृतियाँ चित्रित हुई हैं। उदाहरणतः 'हृदय की प्यास' में जिस भगवती की बहू का प्रवीण को पथभ्रष्ट कर देने वाला मादक सौन्दर्य चित्रित है, परिस्थिति-वश गृह-त्यक्त हो जाने के बाद उसकी क्या स्थिति है—इसका चित्रण बड़ा मार्मिक बन पड़ा है—

"...उसने देखा, कुएँ पर एक स्त्री खड़ी पानी का डोल खींच रही है। रस्सी का हाथ खींचती बार उसका दुर्बल शरीर जोर के मारे दोना हो-हो जाता है। मैले वस्त्र, मैला शरीर...।"[1]

---

1 हृदय की प्यास, पृ० २१३।

इसी प्रकार 'बहते आँसू' की जिस भगवती के नवागत यौवन का चित्रण कर उसे पुरुष सम्पर्क के नैसर्गिक पथ पर अग्रसर होता दिखाया गया है, उसी का रूप-आकार, परिस्थितियों की ठोकरों से कैसा विकृत हो जाता है, यह भी द्रष्टव्य है—

'भगवती को और कुछ न कहना पड़ा। घर के प्रकाश में उसका पीला, सूखा और भयकर मुँह, बिखरे बाल और मलीन वेश देखकर वह स्तम्भित रह गया।'[1]

ऐसा ही एक अन्य परिस्थिति-प्रताड़िता नारी का बहुत ही वेदनामय चित्र आचार्य जी ने 'नरमेध' में अंकित किया है—

'कभी उसका रंग मोती की तरह आबदार होगा, आज वह कोयले की राख के समान धूमिल है। दाँत कैसे थे, आज नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इस समय उसके मुँह में आगे के चार दाँत नहीं हैं। गालों पर बड़े-बड़े स्याह दाग और छोटे-छोटे सुराख हो गये हैं जैसे ताजा सेब असावधानी से रखने पर सड़ गया हो। आँखें अब भी बड़ी-बड़ी हैं, पर वे अब फटी फटी-सी दीख पड़ती हैं। होठ पतले हैं, पर वे अब सूख गए हैं। हँसती है तो अब भी एक बहार की झलक दीख जाती है, तब क्या होता होगा, नहीं कह सकते। कद लम्बा है। बदन इकहरा है। वक्ष प्रशस्त है, परन्तु उसमें उभार नहीं है। वह मरुस्थली के समान सूखा है।'[2]

(ग) वेश-विन्यास-चित्रण

मनुष्य के व्यक्तित्व से उसकी वेश भूषा का गहरा सबंध है। उसके वस्त्राभूषणों से उसकी सामाजिक स्थिति, अभिरुचि एवं जीवन-दृष्टि का परिचय मिलता है। स्त्रियों के सन्दर्भ में यह बात और भी सटीक है। नारी की देह उसका रूप-आकार, उसकी रागात्मक चेतना, भले ही सहस्रों वर्षों में यथावत् है किन्तु उसके बाह्यावरण अर्थात् वेश-विन्यास में देश-काल और वैयक्तिक तथा सामाजिक स्थिति के अनुसार सर्वदा कुछ न कुछ परिवर्तन होता रहा है। पौराणिक युग की नारी अपने शरीर की साज-सज्जा के लिए जिस प्रकार वस्त्राभरणों का उपयोग करती थी, मध्ययुगीन नारी की स्थिति उससे भिन्न थी। आधुनिक युग में वेश भूषा के आयाम पूर्णतः बदल गए हैं। इसके अतिरिक्त नगरवासिनी और ग्रामीण, प्रौढ़ा और युवती, सधवा और विधवा, समृद्ध और

---

१ बहते आँसू, पृ० २२३।

२. नरमेध, पृ० ५-६।

निर्धन, स्वामिनी और सेविका, सम्राज्ञी और सामान्या आदि भेद से विभिन्न नारियों का वेश-विन्यास भिन्न होना स्वाभाविक है। नर्तकी, वेश्या, योद्धा आदि व्यवसायगत भिन्नता भी वेश-भूषा की भिन्नता का कारण हो सकती है। उपन्यासों में नारी-चित्रण की समग्रता और स्वाभाविकता तभी संभव है, जब उपन्यासकार इन सारी विभिन्नताओं का रेखांकन सही ढंग से करे।

आचार्य चतुरसेन इस लेखकीय दायित्व के निर्वाह में पर्याप्त सफल रहे हैं। उनके उपन्यासों में पौराणिक, ऐतिहासिक, आधुनिक—सभी युगों की नारियाँ चित्रित हैं। मध्ययुगीन सामन्ती नारियों के साथ आधुनिक काल की विज्ञान-पण्डिता और जागरूक नारियों तक का चित्रण उनके उपन्यासों में उपलब्ध है। इसी प्रकार शासिकाएं, सेविकाएँ, नर्तकियाँ, वेश्याएँ, विधवाएँ, शहरी, ग्रामीण, वृद्धाएँ, युवतियाँ—आदि विविधप्रकार की नारियाँ विभिन्न प्रसंगों में समाविष्ट हैं। इन सबकी वेश-भूषा का चित्रण यथावसर स्वाभाविक हुआ है। इस संबंध में उल्लेखनीय उद्धरण प्रस्तुत हैं—

१. पौराणिक नारियों की वेश-भूषा

दैत्यबाला (वयं रक्षामः)—'''भुजाओं में स्वर्णवलय और क्षीण-कटि में स्वर्ण मेखला रत्नाम्बर मण्डित,'''गुल्फ में स्वर्ण-पैंजनियाँ ''उनके नीचे हेम-तार-ग्रथित कच्छप चर्म, उपानत् आवृत चरण'''।"[1]

'—तरुण ने विधिवत् रमणीय रमणी को शृंगारित किया। कुचों को शैलेय से चित्रित किया। कपोलों में लोध्र रेणु मला, अधरों पर लाक्षारस दे, केशों में कमल गूँथे। जघन को मकरन्द से सुरभित किया। भुजाओं में मृणाल वलय लपेट दिये—।"[2]

मन्दोदरी (वयं रक्षामः)

'—उन्होंने कृशांगी मन्दोदरी को सुगन्धित उबटन लगाया, सुगन्धित जलों से स्नान कराया। केशों में मधूच्छिष्ट मृगमद लगाया, चोटी गूँथ उनमें मुक्ता गूँथे। कपोलों पर लोध संस्कार किया, मस्तक पर हीरक चन्द्र, कानों में नील-मणि कुण्डल, कंठ में महार्घ मुक्ताओं की माला धारण करायी। कोमल क्षौम कंचुक से उन्नत स्तन-बन्द किए। वक्ष पर कुंकुम-कस्तूरी-अगर का लेप किया। भाल पर गोरोचन की श्री दी। अधरोष्ठों को ताम्बूल-रंजित किया।"[3]

---

१. वयं रक्षामः, पृ० ६।
२. वही, पृ० १५।
३. वही, पृ० ७३।

मायावती ('वयं रक्षामः')

'वह ग्रीष्मकालीन बहुत ही महीन कौशेय शरीर पर धारण किए हुए थी, जिसमे से छन-छन कर उसके शरीर की लावण्य-छटा दुगुनी चौगुनी दीख पड रही थी। उसके छोटे-छोटे सुन्दर पैरो मे पडे सुनहरी उपानहो के लाल माणिक्य नेत्रों मे चकाचौंध उत्पन्न कर रहे थे।'[1]

चित्रांगदा ('वयं रक्षाम')

'उसके गौर वर्ण पर पुष्पाभरण अपूर्व शोभा-विस्तार कर रहे थे।—उसके अंग पर मकडी के जाले के समान महीन वस्त्र थे, जिनमे छन छन कर उसका स्वर्णांगात अपूर्व शोभा विस्तार कर रहा था।'[2]

सुलोचना का योद्धा वेश ('वयं रक्षाम')

'स्वर्ण-हर्म्य मे जाकर उसने वीरांगना का वेश धारण किया। केशों पर मणि किरीट, भाल पर चन्दन की रेख, कुचो पर कवच, कमर मे रत्न-जटित कमर बन्द, जिससे बँधी विकराल कराल खड्ग और पीठ पर बडी-सी ढाल। हाथ मे उसने शूल लिया।'[3]

'वय रक्षाम' से उद्धृत उपर्युक्त अश इस बात के साक्षी हैं कि आचार्य जी की दृष्टि अधिकाशतः राक्षस-कुल एव दैत्यो-दानवो की राजकुलीन-स्त्रियो की साज-सज्जा का वर्णन करने मे अधिक रमी है। कैकेयी, सीता, कौशल्या आदि आर्यकुल की स्त्रियों एव उपन्यास मे उल्लिखित शतश सेविकाओ, परिचारिकाओ आदि के वेश विन्यास का सकेत उन्होंने नही दिया।

(२) बौद्धकालीन नारियों की वेश-भूषा

अम्बपाली ('वैशाली की नगरवधू')

(क) 'नगरवधू' बनने से पूर्व —'अम्बपाली ने शुभ्र कौशेय धारण किया था। उसके जूडा-ग्रथित केश कुन्तल ताजे फूलो से गुँथे हुए थे। ऊपरी वक्ष खुला हुआ था।'''उसने कठ मे बडे-बडे सिंहल के मोतियो की माला धारण की थी। कटि-प्रदेश की हीरे जडी करधनी उसकी क्षीण कटि को पुष्ट नितम्बो से विभाजित-सी कर रही थी। उसके सुडौल गुल्फ मणि खचित उपानत से, जिनके

---

१. वय रक्षाम, पृ० १३२।
२. वही, पृ० १४६।
३. वही, पृ० ४८२।

ऊपर स्वर्ण-पैंजनियाँ चमक रही थीं, अपूर्व शोभा का विस्तार कर रही थीं।"

(ख) नगरवधू बनने के पश्चात्—'उस समय उसने वक्षस्थल को मकड़ी के जाले के समान महीन वस्त्र से ढाँप रखा था। कण्ठ में महातेजस्वी हीरों का हार था। हीरों के ही मकर-कुण्डल कपोलों पर डोलायमान हो रहे थे। वक्ष के ऊपर का श्वेत निर्दोष भाग बिलकुल खुला था। कटिप्रदेश के नीचे का भाग स्वर्णमण्डित, रत्न-खचित पाटम्बर से ढाँपा गया था। परन्तु उसके नीचे गुल्फ और अरुण चरणों की शोभा पृथक् विकीर्ण हो रही थी।"

(ग) भिक्षुणी बनने से पूर्व—'वह बहुत महीन श्वेत कार्पास पहिने थी। वह इतनी महीन थी कि उसके आर-पार साफ दीख पड़ता था। उसमें छनकर उसके सुनहरे शरीर की रंगत अपूर्व छटा दिखा रही थी। पर यह रंग कमर तक ही था। वह चोली या कोई दूसरा वस्त्र नहीं पहने थी।" मोती की कोर लगी हुई सुन्दर ओढ़नी पीछे की ओर लटक रही थी' 'वह अपनी पतली कमर में एक ढीला-सा बहुमूल्य रंगीन शाल लपेटे हुए थी। उसकी हंस के समान उज्ज्वल गर्दन में अंगूर के बराबर मोतियों की माला लटक रही थी तथा गोरी-गोरी कलाइयों में नीलम की पहुँची पड़ी हुई थी।"

(घ) भिक्षुणी बनने के पश्चात्—'आनन्द ने अपना उत्तरीय उतार कर अम्बपाली को भेंट कर दिया। क्षण भर के लिए अम्बपाली भीतर गई। परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी उत्तरीय से अपने अंग ढाँपे आ रही थी। कंचुक और कौशेय जो उसने धारण किया हुआ था उतार डाला था। अब उसके अंग पर आनन्द के दिए हुए उत्तरीय को छोड़कर और कुछ न था। न वस्त्र, न आभूषण, न शृंगार।"

उक्त चारों चित्रों में अम्बपाली के विभिन्न वेश-विन्यास से नारी चित्रण कला में युग बोध का तत्त्व स्पष्ट होता है। उसी युग की एक अन्य गान्धारी स्त्री के वेश विन्यास का वर्णन अवलोकनीय है। जैसे—

रोहिणी ('वैशाली की नगरवधू')

'उनकी गान्धारी पत्नी रोहिणी ने सुरुचि, सभ्यता, कासिक कौशेय का उत्तरीय, अन्तर वासक और कंचुकी धारण की थी। उसके सुनहरे केशों को

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० १८।
२. वही, पृ० १६०।
३. वही, पृ० २५६।
४ वही, पृ० ७०२।

ताजे फूलों से सजाया गया था'''चेहरे पर हल्का वर्ण-चूर्ण था। कानों में हीरक कुण्डल और कण्ठ में केवल एक मुक्तमाला थी।"[1]

(३) मध्ययुगीन नारियों की वेशभूषा

संयोगिता ('पूर्णाहुति')

'संयोगिता की सखियों ने उबटन करके संयोगिता को मज्जन कराया, केश संवार वेणी गूंथी और मांग मांग में मोती पिरोये, बीच-बीच में सुगंधित पुष्प भरे। शीश पर शीशफूल लगाए, ललाट पर जड़ाऊ तिलक संवारे, बड़े-बड़े खंजन-से नेत्रों में काजल लगाया, नाक में बेसर पहनाई, मुख में पान खिलाया, कंठ में नाभि तक लटकती हुई मोतियों की माला पहनाई। हाथों में चूड़ी, पटेले, पहुँची, नागरी, बरा, बाजूबन्द और जोशन आदि साजे, कमर में मेखला, करधनी और पैरों में नूपुर, पैंजनी और पायजेब पहनाई और तलवों में महावर लगाया।"[2]

जयचन्द की दासियाँ ('पूर्णाहुति')

'वे दासियाँ क्या थीं, पृथ्वीराज के मन के मोहने को माया मरीचिकाएँ थी। वे सोलह शृंगार और बारहों आभूषणों से सज्जित हो, रंग-बिरंगे बहुमूल्य रेशमी और जरतारी वस्त्र पहन, बड़ी बड़ी आँखों में बारीक काजल लगा और पान के बीड़े चबा चलने को तैयार हुईं।"[3]

'पूर्णाहुति' उपन्यास के उक्त दोनों अंश पढ़कर पौराणिक एवं बौद्ध-कालीन नारियों तथा मध्ययुगीन नारियों की वेशभूषा का अन्तर स्पष्ट अनुभव किया जा सकता है। इसी प्रकार कतिपय अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

बेगम जफर अली ('आलमगीर')

'वह बारीक धानी पोशाक पहने थी। उसमें से उसका स्वर्ण-शरीर छन छन कर दीख रहा था।"[4]

शाहजादी रोशनआरा ('आलमगीर')

'वह ढाके की महीन मलमल की तीहरी पोशाक पहन थी, फिर भी उसमें से उसका मनोरम शरीर छन रहा था। उसपर सुनहरी जरी का निहायत नफीस

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० १०३।
२. पूर्णाहुति, पृ० १२५।
३. वही, पृ० ७६।
४. आलमगीर, पृ० ५७।

काम हुआ था। उसकी चोटी निहायत नफासत से गुथी थी और सुगंधित तैलों से तर थी। माथे पर लापरवाही से हल्के फीरोजी रंग की एक जरबफ्त की ओढ़नी पड़ी थी। उसकी गर्दन में पाँच बड़े बड़े लालों की एक माला पड़ी थी, जिसके सिरों पर मोतियों के गुच्छे लगे थे। यह माला उसके पेट तक लटक रही थी। माथे पर मोतियों की बेंदी थी···कानों में जड़ाऊ फूल थे। छाती पर एक विचित्र हरा फूल झूल रहा था कलाई पर नीलम की पहुँचियां थी, जिनमें जगह जगह मोतियों के गुच्छे लगे थे। उसकी प्रत्येक उँगली में अँगूठी थी। दाहिने हाथ के अंगूठे पर एक आरसी थी, जिसके इर्द गिर्द मोती जड़े थे। कमर के चारों ओर सोने का दो अंगुल चौड़ा पटका था, जो बड़ी कारीगरी से जवाहरात से जड़ा हुआ था। अजारबन्द के दोनों सिरों पर दो अंगुल लम्बी पाँच-पाँच मोतियों की लड़ें लटक रही थीं। पैरों में भी पायजेब की जगह बड़े-बड़े मोतियों की लड़ें पड़ी थीं। पोशाक इत्र में सराबोर थी।'[1]

शाहजहाँ की पुत्री रोशनआरा के वेश-विन्यास का जो चित्र ऊपर अंकित है, वह उपन्यासकार की सूक्ष्मदर्शिनी चित्रण कला का अपूर्व उदाहरण है। उत्तर मध्यकालीन मुगल रनिवास में हीरे मोतियों से लदी बेगमें जो वेशभूषा पहनती थीं—उसका कितना विशद ब्यौरा लेखक ने प्रस्तुत किया है।

(४) देवदासियों की वेशभूषा

देवांगना ('देवांगना')

मध्ययुगीन भारत के कुछ क्षेत्रों में देवदासी प्रथा का पर्याप्त प्रचलन था, जिसका विशद विवेचन अन्यत्र 'नारी विषयक मान्यताओं' के अन्तर्गत विभिन्न समस्याओं और प्रथाओं के सन्दर्भ में किया जायेगा। यहाँ उनकी वेशभूषा की झलक प्रस्तुत करके यह प्रदर्शित करना अभिप्रेत है कि आचार्य जी के उपन्यासों में नारी चित्रण के सभी पक्ष किस सर्वांगीणता से उद्घाटित हुए हैं—

'मन्त्र-पाठ समाप्त होते ही देवदासियों ने नृत्य प्रारम्भ किया। सब रंग बिरंगी पोशाक पहने थीं। सिर पर मोतियों की माँग, कान में जड़ाऊ झाटक, छाती पर जड़ाऊ हार, कटि प्रदेश रत्न पट्ट, पीठ पर लहराता हुआ उत्तरीय। हाथ में डमरू और झांझ।'[2]

(५) सतियों की वेशभूषा

मध्ययुगीन भारतीय समाज में सतीप्रथा के दो रूप मिलते हैं। एक रूप वह

---

१. आलमगीर, पृ० १०३-१०४।
२. देवांगना, पृ० २८।

है, जिसमे क्षत्रिय ललनाएँ अपने योद्धा-पतियो के वीरगति प्राप्त कर लेने पर, शत्रु-अधिकार मे जाने से बचने के लिए, स्वेच्छया जौहर कर लेती हैं। दूसरे रूप के अन्तर्गत, कोई भी स्त्री पति की मृत्यु के पश्चात्, या तो स्वय सती हो जाती थी या समाज-द्वारा बलात् उसे मृत पति की चिता पर बैठा दिया जाता था। इन विभिन्न प्रकार के अवसरों पर उनका वेश-विन्यास कैसा होता था, इसकी झलक भी आचार्य जी के उपन्यासो मे देखी जा सकती है।

(क) जौहर के समय का वेश ('सोमनाथ')

'महाराज धर्मगजदेव के शव के किले मे पहुँचते ही महारानी तुरन्त सती होने को तैयार हो गई।' रानी ने माथे पर इगुर का टीका किया, कुकुम की म्राड लगाई, कण्ठ मे सुगन्धित फूलो के हार पहने, काले चिकने बालो की लट मुक्त कर दी, हाथो मे मेहदी रचा दी। पचरगी चूनरी शरीर पर धारण की। अन्य स्त्रियो ने भी ऐसा ही शृगार किया।'[1]

(ख) सामान्य सती का वेश ('शुभदा')

'''बालिका लगभग बेसुध-सी बैठी थी। उसका नख-शिख शृगार किया गया था। नवीन रगीन चुनरी पहनाई गई थी। माँग मे सिदूर दिया गया था। हाथो मे सुहाग का चूडा था।'[2]

(६) आधुनिक नारियो की वेशभूषा

सामाजिक उपन्यासो मे प्राय उच्च-मध्य-वर्गीय सम्भ्रान्त परिवारो की नारियो का चित्रण हुआ है उनकी वेशभूषा तदनुकूल वर्णित है। इन उपन्यासो मे बहुत-से निम्न-मध्यवर्गीय तथा सामान्य परिवारो के नारी-पात्र भी हैं। जैसे इन उपन्यासो मे उनका व्यक्तित्व और रूप-आकार अनगढ़ा रह गया है, वैसे ही उनका वेश-विन्यास भी उपेक्षित रहा है। कारण सम्भवत यह है कि उपन्यास-कार की दृष्टि मूल 'कार्य' से प्रत्यक्षत सम्बद्ध प्रमुख नारी-पात्रो के विशद-चित्रण पर ही केन्द्रित रही है। इस प्रकार के उल्लेखनीय अश यहाँ दिए जा रहे हैं—

शशिकला ('हृदय की परख')

'शरीर जडाऊ आभूषणो से सज रहा था। उसके बढ़िया वस्त्र और सामग्री

---

१. सोमनाथ, पृ० ८३।

२. शुभदा, पृ० ३।

देखने से वह कोई बड़े घर की स्त्री मालूम होती थी।[1]

मायादेवी ('ग्रदल बदल')

'मायादेवी सुर्ख जार्जेट की साड़ी मे मूर्तिमान् मदिरा बनी हुई थी। उन्होंने सफेद जाली का चुस्त स्लीवलेस वास्कट पहन रखा था।'[2]

पद्मादेवी ('पत्थर युग के दो बुत')

'ग्रब वह नहा-धोकर नाइलोन की नई साड़ी ग्रौर साटन की चुस्त चोली पहनकर, सजधज कर शृगार कर रही है। चोटी मे उसने फूल गूथे है, हाथो मे मेहदी रचाई है।'[3]

ग्राभा ('ग्राभा')

'ग्राभा ने स्वय भी ग्रपना ग्रच्छी तरह शृगार किया है। फिरोजी कामदार साड़ी पहनी है। ब्लाऊज भी नया है। बाल भी नए फैशन के बनाए हैं।'[4]

हुस्नबानू ('धर्मपुत्र')

'हुस्नबानू ने ग्रपना बुर्का उतार कर रख दिया था। सलेटी रग की न्यू कट जार्जेट की साड़ी मे छन कर उसका धवल कुन्दकली के समान नवल रूप ग्रालोक बखेर रहा था।'[5]

रेणुकादेवी ('उदयास्त')

'रेणुका ने ग्राज जरा ठाठ का शृगार किया था। न्यू कट नाइलोन की साड़ी मे छनकर उसका सुगठित सुडौल शरीर सगमरमर की प्रतिमा-सा जच रहा था।'[6]

इन प्रसगो से सहज स्पष्ट है कि ग्राधुनिक युग की सामान्य-सम्भ्रान्त नारी की वेशभूषा मे कोई विशेष ग्रन्तर नही है। वस्त्र प्राय वही है—केवल कटाई-सिलाई ग्रौर कसावट (स्टिचिग ग्रौर फिटिंग) मे थोड़ा-बहुत ग्रन्तर है। वास्तविकता यह है कि बौद्धिकता-प्रधान ग्राधुनिक युग मे नारी ग्रपने वस्त्राभरणो या

---

१. हृदय की परख, पृ० ३७।
२. ग्रदल-बदल (नीलमणि से सयुक्त), पृ० ११३।
३. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ३२।
४. ग्राभा, पृ० ३।
५. धर्मपुत्र, पृ० १५।
६. उदयास्त, पृ० १४५।

साज-शृंगार से मानव-समुदाय को उतना चमत्कृत नहीं कर रही, जितना अपने प्रगतिशील और उन्मुक्त विचारों से कर रही है। यही कारण है कि आचार्य चतुरसेन ने अपने अधिकांश सामाजिक उपन्यासों के प्रमुख नारी-पात्रों के बहिरंग-चित्रण की अपेक्षा, उनके अंतरंग-चित्रण में अपनी कला का अधिक उपयोग किया है।

(७) अन्य विशिष्ट वर्गीय नारियों की वेशभूषा

(क) सामान्य ग्राम्य नववधू का वेश विन्यास

मालती ('दो किनारे'—'दो सौ की बीवी)

'और जब माथे पर कुंकुम लगाए, पैरों में महावर की लाली मले, नए खरीदे सैंडिल पैरों में डाले, इन्द्रधनुष के रंग की साड़ी पहने, पांच बीड़ों का बीड़ा मुंह में डाले मालती श्री बिखेरती ''रमाशंकर के पीछे पीछे आई।'[1]

(ख) वेश्याओं की वेशभूषा ('बगुला के पंख')

'सामने मोतीबाई बैठी गज़ल गा रही थी। हल्की आसमानी रंग की साड़ी उस पर गहरे किरमची रंग की चुस्त अंगिया ''नर्म गोरी कलाइयों में काला लच्छा'''।'[2]

× × ×

राजदुलारी ('आत्मदाह')

वेश्या की उम्र पच्चीस-तीस के लगभग थी।'''वह पैरिस-कट जरीकोर की बढ़िया साड़ी तथा न्यू फैशन का ब्लाऊज डाटे थी।'[3]

(ग) विधवा नारियों की वेशभूषा

नायिकादेवी ('रक्त की प्यास')

'रानी नायिकादेवी काले वस्त्र पहने निराभरण बैठी थी।'[4]

---

१. दो किनारे (दो सौ की बीवी), पृ० ८६।
२. बगुला के पंख, पृ० ४८।
३. आत्मदाह, पृ० १४५।
४. रक्त की प्यास, पृ० ८६।

केशव की माँ ('खून और खून')

'वह कभी जूता नहीं पहनती थी, न कोई रंगीन या कीमती वस्त्र पहनते किसी ने उसे देखा था। खद्दर की धोती और उसकी कुर्ती सदैव उसके शरीर पर रहती थी।'[1]

रानी रासमणि ('शुभदा')

'मन्दिर की प्रतिष्ठा होने के प्रथम ही रानी विधि से कठोर तपस्या करने लग गई थी। वे तीन बार स्नान करती हविष्य भोजन करती, भूमि पर सोती और हर समय जप-पूजन करती रहती थीं।'[2]

(८) विदेशी नारियों की वेशभूषा

साम्राज्ञी नागाको ('ईदो')

'वे इस समय अपने मूल्यवान् राजसी परिधान में अत्यन्त आकर्षक लग रही थी। रेशमी वस्त्रों के ऊपर सुनहरी रंग का रिबन उनके गरिमायुक्त व्यक्तित्व को और भी अधिक प्रभावशाली बना रहा था।'[3]

मेरी स्टुअर्ट ('सोना और खून', भाग-२)

'वह सुन्दर सफेद अतलस की सदा की पोशाक के स्थान पर काली साटन की पोशाक पहने हुए थी। उसमें झालर टकी थी और मखमल की गोट लगी थी। उसके नकली बाल बड़ी सुघराई से बँधे हुए थे। सिर और कमर पर लटकता हुआ सफेद दुपट्टा पड़ा था। गर्दन में सोने का एक नैकलेस था और हाथी-दाँत का सुन्दर क्रास। उसकी कमर में एक पेटी थी जिसमें जवाहरात में जड़ी पवित्र प्रार्थनाएँ अंकित थी।'[4]

मिसेज कर्नल हिमरर्स ('शुभदा')

'उसने अप-टू-डेट फैशन का परिधान पहना था। परिधान आसमानी मख-मल का था और उस परिधान में उसका सौन्दर्य और यौवन फूटा पड़ता था। ... (पैरों में) उसने नए फैशन के जूते पहने थे। सिर पर भी नए फैशन का एक अमरीकन टोप था, जिसमें किसी पक्षी का सफेद पर लगा था।'[5]

---

१. खून और खून पृ० ११
२. शुभदा, पृ० १६५-६६।
३. ईदो, पृ० १४२।
४. सोना और खून, भाग-२, पृ० ६२।
५. शुभदा, पृ० ६५।

ये उदाहरण इस तथ्य की पुष्टि के लिए पर्याप्त हैं कि आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासों में नारी के बहिरंग स्वरूप के सभी उपकरणों का यथासम्भव सूक्ष्म एवं विशद चित्रण किया है।

(घ) बौद्धिक एवं (ङ) चारित्रिक गुणों का चित्रण

ईश्वरप्रदत्तप्रतिभा एवं अन्य मानवीय गुणों का कुछ न कुछ अंश प्रत्येक मनुष्य में रहता है। किन्तु उनका सम्यक् उद्घाटन एवं परिमाण परिस्थितियों के घात-प्रतिघात तथा उनके प्रतिफल पर निर्भर है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में सभी प्रमुख पात्रों के बौद्धिक और चारित्रिक गुणावगुण विभिन्न प्रसंगों, परिस्थितियों तथा घटनाओं के माध्यम से विशदतः चित्रित हुए हैं।

'ख' भाग

(४) आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में नारी पात्रों के अंतरंग स्वरूप का (मनोवैज्ञानिक) चित्रण

(क) साहित्य और मनोविज्ञान

मानव-मन अतल-अथाह सागर के समान है, जिसकी अमित गहराइयों को नापने-जोखने का प्रयास चिर-काल स होता रहा है। प्रकृति द्वारा प्रत्यक मानव को एक जैसा आकार-प्रकार, अंग-विन्यास, शरीर-गठन और बुद्धि सामर्थ्य प्राप्त होने पर भी, हर एक के मन की दुनिया अलग-अलग है। स्वभाव, चरित्र एवं सामाजिक सम्बन्धों के प्रति दृष्टिकोण का वैभिन्न्य सहज ही मानव व्यक्तित्व को विभिन्न खण्डों म विभक्त कर देता है।

मानव व्यक्तित्व के प्रत्येक पक्ष को चेतना के स्तर पर सूक्ष्मता से समझने-समझाने का प्रयास मनोविज्ञान की परिधि में समाविष्ट है।

साहित्य जीवन का दर्पण है और जीवन विभिन्न घटनाओं, घात प्रतिघातों एवं ऊहापोहों का समुच्चय है। जीवन की इन विविधताओं के दो रूप हैं—बहिरंग और अंतरंग। बहिरंग में मनुष्य सृष्टि के विभिन्न पदार्थों और प्राणियों के सम्पर्क में बहुत कुछ सीखता और समझता है किन्तु उसके ये समस्त अनुभव, उसके अन्तरंग में स्थित पूर्ण आनन्द की कामना को तृप्त नहीं कर पाते। मनुष्य जो कुछ है—उससे कहीं अधिक होना चाहता है। उसे जो कुछ प्राप्त है, वह अपूर्ण है। अन्त पूर्णत्व का अनुसन्धान मनुष्य का चरम लक्ष्य है। अन्तरंग की यह पूर्णत्व-लालसा बहिरंग की अपूर्णता में नित्य प्रति टकराकर मनुष्य को असन्तुष्ट, क्षुब्ध तथा सदा कार्यशील बनाए रखती है। इस प्रकार मानव जीवन

मे मानसिक स्तर पर यथार्थ और सुखेच्छा के बीच जो संघर्ष होता है, साहित्य उसी संघर्ष के शमन का उपचार करता है। मानव जीवन के अतरग की गहराइयो का विश्लेषण करने मे साहित्य का सच्चा सहायक है— मनोविज्ञान। मनोविज्ञान यह बताता है कि सत्य केवल वह नही है जो हमें बाहर दिखाई देता है, उससे भी प्रबल और चरम सत्य भीतरी है जिसका उद्घाटन करना आवश्यक है। वस्तुत मनोविज्ञान अन्तिम विश्लेषण मे 'जीवन' शब्द का पर्यायवाची हो जाता है, क्योंकि जिसे हम जीवन कहते हैं, वह अधिकांश रूप से हमारे मनोजगत की सूक्ष्मता की ही वस्तु है। अत मनोविज्ञान साहित्य को प्रभावित करे तो इसमे कोई आश्चर्य नही है।"[1]

(ख) मनोविज्ञान और उपन्यास

मनोविज्ञान ने कथा-साहित्य को सबसे अधिक प्रभावित किया है। कारण यह है कि अन्य साहित्यिक विधाओं की तुलना मे, कथा-साहित्य जन-जीवन के अधिक निकट है और उसमे भी उपन्यास के बृहद् पटल पर जीवन की समस्त रेखाएं जितनी स्पष्टता एव सजीवता से उभरती हैं, उतनी कहानी की सीमित परिधि मे नहीं उतर सकती।

(ग) उपन्यासों के पात्र-चरित्र चित्रण मे मनोवैज्ञानिकता

उपन्यासो के तत्त्वो मे प्रथम स्थान कथावस्तु का है। महत्त्व एव शिल्प की दृष्टि मे पात्र और चरित्र चित्रण नामक तत्त्व सर्वोपरि है। जैसे अग-विन्यास के बिना शरीर की परिकल्पना निराधार है, वैसे पात्रो के बिना किसी भी प्रकार का वस्तु-विन्यास सम्भव नहीं है। उपन्यासकार का सबसे बडा सम्बल उसके पात्र हैं। उनके माध्यम से वह जीवन या समाज को परखता और चित्रित करता है, वे उसके विचारो के प्रवक्ता एव उसकी मानसिक अथवा बौद्धिक क्रियाओं के प्रणेता होते हैं। इसलिए प्रसिद्ध पाश्चात्य उपन्यास-समीक्षक ई० एम० फार्स्टर के मतानुसार किसी औपन्यासिक पात्र को तभी यथार्थ माना जा सकता है जब उपन्यासकार उसके सम्बन्ध मे सब कुछ जानता हो। वह उस पात्र के सम्बन्ध मे अपनी जानकारी पाठकों के सम्मुख भले ही प्रस्तुत न करना चाहे, और भले ही उस पात्र का स्वरूप पाठको का यद्यपि स्पष्ट प्रतीत हो किन्तु उपन्यासकार उसे अप्रकट रख सकता है। लेखक पाठको को यह प्रतीति तो करवा ही देगा कि यद्यपि उसने पात्र विशेष की चरित्र व्याख्या नहीं की तथापि वह पात्र व्याख्येय

१. डॉ० देवराज उपाध्याय, आधुनिक हिन्दी कथा-साहित्य और मनोविज्ञान, पृ० ६।

है और उनसे हम (पाठक) पात्र के उस यथार्थ को जान लेते हैं जिसे हम दैनिक जीवन मे नही जान सकते।"[1]

आचार्य चतुरसेन का पात्र चित्रण इस कसौटी पर खरा उतरता है। पात्र-चरित्र-चित्रण म सामान्यत, नारी-चरित्र चित्रण के प्रसग मे विशेषत, न तो समय या स्थान का अभाव उसकी लेखनी का बाधक बना है और न व्याख्या की अपूर्णता उसके आडे आई है।

आचार्य चतुरसेन का नारी चित्रण कितना स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है, इसका विशद विवेचन करने से पूर्व, साहित्यिक क्षेत्र मे प्रचलित प्रमुख मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायो और उनके कतिपय सिद्धान्तो का सक्षिप्त सर्वेक्षण कर लेना उपयुक्त होगा।

(घ) मनोविज्ञान के प्रमुख सम्प्रदाय और उनके सिद्धान्त

मनोविज्ञान के क्षेत्र मे प्रमुखत तीन सम्प्रदाय उल्लेखनीय हैं—

(१) मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय,

(२) सम्पूर्णतावादी सम्प्रदाय और

(३) आचरणवादी सम्प्रदाय।

(१) मनोविश्लेषणवादी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के मूर्धन्य विचारक फ्रायड हैं। उनके मनोविज्ञान चिन्तन की चार बातें महत्त्वपूर्ण हैं—यथा

(१) मानव जीवन की समस्त प्रक्रियाएँ मूल रूप से काम केन्द्रित हैं जिसे उन्होंने लिबिडो' (काम मूलक ग्रथि) कहा है। फ्रायड के मतानुसार मानव के समस्त क्रिया व्यापार इसी काम-वृत्ति की विकृति मात्र होते हैं। उन्होंने अनेक उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि बालक के अन्तर्मन में अपनी माँ या बहिन के प्रति प्रेमभाव इडिपस' ग्रन्थि के रूप मे रहता है और बालिका के अन्तर्मन मे यही प्रेमासक्ति अपने पिता अथवा भाई के प्रति 'इलेक्ट्रा' ग्रन्थि के रूप मे रहती है। ये दोनो ग्रन्थिया मानव की मूल काम वृत्ति अथवा यौन भावना की प्रति-

---

१ 'And now we can get a definition as to when a character in a book is real, it is real when the novelist knows everything about it He may not choose to tell us all he knows—many of the facts even of the kind we call obvious may be hidden but he will give us the feeling that though the character has not been explained, it is explicable, and we get from this a reality of a kind, we can never get in daily-life.'

—E M Forster, Aspects of the Novel, p 61

रूप हैं।

(२) मानव के मानसिक व्यापार तीन स्तरों में चलते हैं—(१) अचेतन (२) अवचेतन अथवा उपचेतन तथा (३) चेतन। फ्रायड का कथन यह है कि मानव प्राय अचेतन मन से परिचालित रहता है, जिसकी प्रतीति चिन्तन स्तर पर नहीं होती। कई बार मानव चेतनावस्था में होते हुए भी अर्थात् उसके क्रिया-व्यापार प्रत्यक्षत बाह्य जगत् से सम्बद्ध होते हुए भी, उसका अन्तर्मन किसी अन्य विचार (भाव) में खोया रहता है। यह उपचेतन या अवचेतन स्तर वस्तुत चेतन और अचेतन का मध्यवर्ती है।

(३) मानव की मनोवृत्तियाँ दो विरोधी वर्गों में विभाजित हैं, जिनमें से प्रथम वर्ग जीवन-वृत्ति का है और दूसरा मरण-वृत्ति का। फ्रायड के मतानुसार मानव के अन्तर्मन में प्रेम और घृणा, सक्रियता और उदासीनता तथा आसक्ति और विरक्ति की विरोधिनी वृत्तियों का विलक्षण ध्रुवत्व रहता है। मानव-मन के अनेक अनगत, अस्वाभाविक अथवा चमत्कारिक प्रतीत होने वाले व्यापारों का रहस्य इस ध्रुवत्व सिद्धान्त में निहित है।"[1]

(४) मानव मन के चेतन और अचेतन की मध्यवर्ती अवस्था के तीन सोपान हैं—(१) केवल स्वत्व (इद) (२) स्वत्व (ईगो) और (३) उपरिस्वत्व (सुपरईगो)।

मन का वह स्तर, जहाँ मनुष्य की प्रारम्भिक उमगें, प्रेरणाएँ और प्रबल इच्छाएँ निवास करती हैं केवल स्वत्व अथवा प्रकृत स्वत्व कहलाता है। बाह्य जीवन के अनुभव से धीरे-धीरे विकसित होने वाले मानसिक स्तर को स्वत्व (ईगो) कहते हैं। मनुष्य का यही मानसिक स्तर अर्थात् स्वत्व (ईगो) मन के प्रकृत या केवल स्वत्व (इद) के अनियन्त्रित आग्रहों एवं प्रवृत्तियों को परिस्थिति के अनुसार नियन्त्रित करता है। केवल स्वत्व वासना-प्रेरित होता है और स्वत्व अनुभव प्रेरित। तीसरे स्तर का नाम उपरिस्वत्व अथवा नैतिक स्वत्व (सुपर ईगो) है, जो व्यक्ति का समाजीकरण करने वाली, नैतिकता की मूल प्रेरणा-शक्ति है। इसकी उत्पत्ति प्रकृत स्वत्व और स्वत्व के बाद होती है और यह मानव के सभी प्रकार के आदर्शों का विधायक है।"[2]

इन चार प्रमुख सिद्धान्तों के अतिरिक्त फ्रायड ने विभिन्न मानसिक कार्य-पद्धतियों का विशद विश्लेषण किया है, जिसे उन्होंने 'मनोव्यापार' की संज्ञा दी

---

१ द्रष्टव्य—ब्राउन, साइको डाइनेमिक्स आफ एबनार्मल बिहेवियर, पृ० १९६
२. (क) वही, वही, पृ० १६३।
(ख) ब्रेसी, फाइड—दि ड्रीम एण्ड मेकन थ्योरीज, पृ० ८८।

है।[1] मुख्य मनोव्यापार हैं—उदात्तीकरण, आरोपण, तादात्मीकरण, निर्देशन—, विस्थापन, स्थानान्तरीकरण, बद्धत्व-प्रत्यावर्तन, स्वप्न, युक्ति और सम्मोहन।

फ्रायड ने कतिपय असाधारण चित्तवृत्तियों और व्यक्तित्वों का भी उल्लेख किया है। उनके द्वारा निरूपित चित्तवृत्तियाँ अधिकांशत चित्तविकृतियाँ ही हैं, जिनमें प्रमुख हैं—(१) चित्तविकृति, (२) चित्तविक्षिप्ति, (३) चित्तमन्दता और (४) असामाजिक मनोवृत्ति।

असाधारण व्यक्तित्व के अन्तर्गत उन्होंने प्रमुखत क्रान्तिकारी और विद्रोही व्यक्तित्व की गणना की है।

फ्रायड द्वारा प्रतिष्ठापित मनोविश्लेषणवाद में एडलर ने कुछ अन्य मान्यताओं का समावेश किया है। उन्होंने 'अहम्'-वृत्ति को मानव मन की मूल-प्रवृत्ति माना है। इसके अतिरिक्त उनका कथन यह भी है कि मानव-मन की हीनता-ग्रन्थि विभिन्न प्रतिक्रियाओं को जन्म देकर, उसके जीवन को पर्याप्त सीमा तक प्रभावित करती है।

मनोविश्लेषणवादी-सम्प्रदाय के दूसरे उल्लेखनीय व्याख्याकार युग महोदय हैं। उन्होंने फ्रायड द्वारा निरूपित काममूलक शक्ति एव एडलर द्वारा विवेचित अहम् वृत्ति के सिद्धान्त की सीमाओं की ओर निर्देश करते हुए, मानव-समुदाय को दो वर्गों में विभाजित किया है—(१) बहिर्मुखी मानव, (२) अन्तर्मुखी मानव।

(२) सम्पूर्णतावादी सम्प्रदाय

सम्पूर्णतावादी मनोविज्ञान-शास्त्रियों की धारणा यह है कि मानव का व्यक्तित्व खण्डित होते हुए भी, विभिन्न कोणों को समग्र रूप से देखने पर सम्पूर्णता का बोध करा सकता है अर्थात् किसी मनुष्य की जिस प्रवृत्ति को एकांगी, अपूर्ण अथवा विकृत रूप में देखा जाता है, वह वास्तव में उस मनुष्य के समूचे व्यक्तित्व का एक पहलू भर होता है, अत. किसी के मन और अन्तर्व्यक्तित्व का पूर्ण विवेचन उसमें दृष्टिगोचर होने वाली भिन्न भिन्न अथवा विरोधिनी प्रवृत्तियों के समग्र अनुशीलन द्वारा सम्भव है।

(३) आचरणवादी सम्प्रदाय

मनोविज्ञान की आचरणवादी शाखा के प्रवर्तन का श्रेय अमेरिका के वाटसन महोदय और रूस के पावलव महोदय को प्राप्त है। इनकी मान्यता यह है कि मनोविज्ञान का प्रतिपाद्य मनुष्य के बाह्य आचरण और शारीरिक अनुभावों

---

1. ड्रेवर, ए डिक्शनरी आफ साइकालोजी, पृ० १६३।

(चेष्टाओं) पर विचार करना है। यह सिद्धान्त पूर्णत वस्तुपरक है अत. फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त से एकदम भिन्न है।

इन सभी मनोवैज्ञानिक सम्प्रदायो मे से साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला सम्प्रदाय मनोविश्लेषणवादी है। हिन्दी कथा-साहित्य मे इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक फ्रायड और व्याख्याता एडलर तथा युग के विचारो की छाप विशेषरूप से दृष्टिगोचर होती है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यास इसके अपवाद नही हैं। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ० नगेन्द्र के मतानुसार हिन्दी मे फ्रायड का प्रभाव और प्रेरणा कई रूपों मे आँके जा सकते हैं—'एक तो फ्रायड की प्रेरणा से हिंदी मे शृगार का पुनरुत्थान हुआ। द्विवेदी युग की स्थूल नैतिकता और छायावाद की अतीन्द्रिय सौन्दर्योपासना के कारण शृगार की जो प्रवृत्तियाँ दब गई थी, वे फिर उभर आईं। परन्तु इस शृगारिकता का रूप प्रचलित रूपों से भिन्न है। इसमे शृगार साध्य न होकर मनोविश्लेषण का माध्यम है। लेखक का उद्देश्य काम-कुठाओं का विश्लेषण होता है। इसके द्वारा ऐसे रस का परिपाक हुआ, जिसमे गहरी शृगारिकता के साथ बौद्धिक अन्वेषण का भी आनन्द मिला हुआ है। दूसरे, काम की सूक्ष्म चेतना और सूक्ष्म अभिव्यक्तियों की असलियत खुल गई। अवचेतन विज्ञान के प्रभाव से हिन्दी साहित्यकार के चिन्तन और भावना मे गहराई, सूक्ष्मता तथा प्रखरता आई। जिस समय प्रगतिवाद के प्रचारक जीवन की स्थूल आवश्यकताओं के साथ कला का सम्बन्ध जोडते हुए उसे बहिर्मुख करने के लिए नारे लगा रहे थे, फ्रायड के प्रभाव से उसके अन्तर्मुखी रूप को यथेष्ट बल मिला और वह इश्तिहारों के स्तर पर आने मे बच गई। हिन्दी के लिए फ्रायड का यह वरदान सिद्ध हुआ। विचार के क्षेत्र मे भौतिक-बौद्धिक मूल्यों को अधिक विश्वसनीय तथा रोचक ढग से स्थापना की गई "काव्यशिल्प पर भी फ्रायड का प्रभाव कम नही पडा। उनकी 'मुक्त सम्बन्ध' शैली को तो कथाकारों ने सीधा ही अपना लिया। साथ ही स्वप्नचित्रो के सृजन और उद्घाटन का भी हमारे साहित्य मे बडे वेग के साथ प्रचार हुआ।"[1]

(ड) आचार्य चतुरसेन के नारी-चरित्रों मे मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की अवतारणा

(१) मन के अचेतन और चेतन स्तर

आचार्य चतुरसेन के अधिकाश नारी-पात्र मानव सुलभ नैसर्गिक मानसिक

---

१. डा० नगेन्द्र, 'विचार और विश्लेषण' मे निबन्ध फ्रायड और हिन्दी साहित्य' पृ० ६३-६४।

वृत्तियों के मध्य जीवन व्यतीत करने वाले हैं। कतिपय अतिमानवीय कृत्य करने पर भी, उनके मनोव्यापार यथार्थ धरातल से अधिक ऊपर नहीं उठते। उनका मन चेतन-स्तर पर जो कुछ सोचता या अनुभव करता है, कई बार अचेतन मन उन्हें उससे सर्वथा भिन्न स्थिति मे पहुँचा देता है। उदाहरणार्थ 'हृदय की परख' उपन्यास की नायिका सरला चेतन रूप मे प्रबुद्ध और आदर्शवादिनी युवती है। वह सत्यव्रत को प्रेम और वासना का अन्तर बता कर, विवेकपूर्ण ढग से प्रकृति और परमात्म-तत्त्व के प्रति मानवीय अनुराग को सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करती है।[1] किन्तु उसका अचेतन मन पुरुष-ससर्ग के प्रति नैकट्य मे उत्पन्न रति-कामना की ओर स्वभावत उन्मुख रहता है। इलाहाबाद मे शारदा के पास रहते हुए वह चित्रकार विद्याधर के सम्पर्क मे आती है। उसका अचेतन, चेतन की अपेक्षा बलवत्तर हो उठता है। उसके चेतन और अचेतन के द्वन्द्व की झलक द्रष्टव्य है —'उसका ऐसा परिष्कृत मस्तिष्क ऐसा विस्तृत हृदय ऐसा अटल निश्चय, ऐसे वेग से उस युवक की ओर बहा जा रहा है कि स्वय सरला भी घबरा उठी है। यह युवक नित्य आकर ज्यो-ज्यो कागज पर सरला का हाथ पक्का कराता है, त्यो-त्यों उसका हृदय कच्चा होता चला जा रहा है।'''जब युवक आता है तो सरला न तो उससे विशेष बातें ही करती है और न उसकी ओर देखती ही है, पर उसके चले जाने पर इस मूर्खता के लिए पछताती है।'[2] उसकी यह स्थिति इस बात की द्योतक है कि चेतन मन उसे मर्यादावादिनी बनाए रखना चाहता है, जबकि अचेतन मन उसे सहजतः पुरुष के प्रति आसक्त किए हुए है। सत्यव्रत को वह चेतन-मन के वशीभूत हो आदर्श सिद्धान्तवादिता के नाम पर छोड जाती है, अन्तत उसका अचेतन मन उसे एक भीषण तूफानी रात को उसी के पास ले आता है। उसका अतृप्त हृदय कह उठता है—'सत्य, तुम्हें लूट कर मैं ही चली गई थी, और अब तुम्हारी सेवा करने मैं ही आ गई हूँ।'[3]

'बहते आँसू' की अनाथ कन्या सुशीला, उसे गुण्डो के पजे मे बचाने वाले युवक प्रकाश के प्रति आसक्त हो जाती है। उसका चेतन-मन उसे मर्यादा-सीमा मे बाँधे रखना चाहता है, पर अचेतन मन उसके प्रेम मे आबद्ध है—'वह भूखी-प्यासी बालिका पद सब कुछ भूलकर, उसी युवक की स्मृति को बार-बार हृदय से निकालने की चेष्टा कर रही थी ' पर मानो वह युवक तीर की गाँस की भाँति उसके कलेजे मे घुस गया हो।'[4] उसके अचेतन और चेतन-मन के द्वन्द्व का

---

१ हृदय की परख, पृ० २६।
२. वही, पृ० ६०।
३ वही, पृ० १४३।
४ वही, पृ० ३२।

विश्लेषण इन शब्दों में है—"युवक मुस्कराहट न रोक सका, पर बालिका लाज से गढ़ गई। क्यों? यह हम क्या जाने? प्राणियों के हृदय के भीतर, गहरे पर्दों में, पता नहीं, क्या क्या होता रहता है? जिह्वा पर बातें बहुत कम आती हैं, पर होठों पर और आंखों पर तो बेतार की तारबर्की चलती रहती है।"[1] प्रकाश सुशीला को धर्म बहिन बना कर घर में रखता है और अवसर आने पर अपने प्राण मित्र श्याम से उसका विवाह करा देता है। किन्तु वह मित्र सुशीला के अचेतन की दमित आकांक्षाओं से अपरिचित नहीं रहता। उसका कथन है—'मैंने थोड़े ही काल में, जब वह मेरे घर में थी, समझ लिया था कि वह तुम से कुछ और भी आशा रखती थी।' इस पर प्रकाश कहता है—'श्याम, अब इस को यहीं छोड़ दो। देखो, उसे तुम सदा क्षमा करना।'[2] ये शब्द इस बात के द्योतक हैं कि सुशीला का चेतन मन सामाजिक मर्यादावश श्याम से भले ही प्रणयाबद्ध है पर उसका अचेतन मन अब भी प्रकाश के प्रति आसक्त है।

'आत्मदाह' की बाल विधवा ब्राह्मण कन्या सरला अत्यन्त सुशील और विदुषी युवती है। उसके घर में कुछ दिनों के लिए ठहरा हुआ धीरोदात्त युवक सुधीन्द्र उसे 'पवित्रात्मा और पूजनीया दीदी' कहकर पुकारता है। एक बार सुधीन्द्र का एकान्त में स्त्री विराग में विदग्ध गीत गाते सुन उसके अचेतन में सुप्त नारी प्राण जाग उठते हैं। उसे लगता है जैसे वह अधूरी है और उस के अधूरेपन की पूर्णता आवश्यक है। परन्तु तत्क्षण उसका चेतनमन जागरूक प्रहरी के समान उसे उस स्वप्नलोक से लौटा लाता है। वह प्रबल शब्दों में सुधीन्द्र को अपने घर, अपनी पत्नी के पास चले जाने का आग्रह करती है। अपने इस अन्तर्द्वन्द्व को वह इन शब्दों में व्यक्त करती है—'इसी से मैंने तुम से कहा था तुम चले जाओ। प्राणहीन स्त्री पराये प्राण को देख स्थिर न रह सके ...तब?'[3]

'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली के चेतन और अचेतन का द्वन्द्व अनेकत्र झलकता है। उसका चेतन कहता है—'....इस रूप की ज्वाला में मैं विश्व को भस्म करूँगी। इस अछूते रूप को सदा अछूता रखूँगी। इस सुषमा की म्लान गात्र को किसी को छूने भी न दूँगी, विश्व उसे भोग न सकेगा, वह इसकी पूजा ही करे।' किन्तु उसके अचेतन में सोया नारीत्व पुरुष के समक्ष सर्वस्व-समर्पण के

---

१. हृदय की परख, पृ० २३।
२. वही पृ०, पृ० २२५।
३. आत्मदाह, पृ० १२०।
४. वैशाली की नगरवधू पृ० १०२।

लिए मचलता है। उदयन पर मन प्राण से मुग्ध और उसके सहवास के लिए आतुर अम्बपाली सहसा चीत्कार कर उठती है—" मैं निरीह नारी कैसे इस दर्पमूर्ति पौरुष के बिना रह सकती हूँ ? उसने केवल मेरी आत्मा को ही आक्रान्त किया, शरीर को क्यों नहीं ? इस शरीर के रक्त की एक एक बूंद, प्यास, प्यास, प्यास चिल्ला रही है अरे आ, आओ तुम इस अकेली न छोड़ो। ओ, ओ, पौरुष ! ओ निर्भय ! कहाँ हो तुम ? इसे आक्रान्त करो, इसे विजय करो इसे अपने में लीन करो अपने अदम्य पौरुष से अपने में आत्मसात् कर लो तुम•••।"[1]

विष-कन्या कुण्डनी, अपने अप्रतिम लावण्य पर, असख्य वासना कीट पुरुषों को मुग्ध कर, अपने मृत्यु-चुम्बन से इन्हें समाप्त कर आजीवन राष्ट्र धर्म निभाती रही। वह अपने अचेतन की सुप्त वासना के वशीभूत हो मृत्यु का वरण करती है—' उसने अन्धाधुंध मद्य ढाल-ढाल कर स्वयं पीनी और उस पुरुष को पिलानी आरम्भ की। अन्तत: अवश हो आत्मसमर्पण के भाव मे वह अर्ध निमीलित नेत्रों से एक चुम्बन की प्रार्थना-सी करती हुई उसकी गोद मे लुढ़क गई ।'[2]

नारी के अचेतन में व्याप्त उद्दाम प्रणयावेग और चेतन में प्रकटत: दृष्टि-गोचर होने वाले जागृत विवेक के भीषण द्वन्द्व का विशद चित्र 'नीलमणि' में दिखाई देता है। नीलम विवाह के पूर्व भावी पति से परिचित होना आवश्यक समझती है। उसका विवाह एक अपरिचित युवक महेन्द्रनाथ से कर दिया जाता है। उसका जागरूक चेतन मन पहली ही भेंट में पति को 'अपरिचित' कह कर उपेक्षित करने के लिए उसे बाध्य कर देता है। महेन्द्रनाथ जब यह कहकर चला जाता है कि 'तुम ठीक कहती हो नीलू मैंने तुम्हें नाहक कष्ट दिया, तुम मुझे क्षमा करना।' तब नीलम का अचेतन मन पश्चात्ताप करने लगता है—(पति के)' कमरे से बाहर निकलते ही जैसे उसकी जान निकल गई वह पागल की भाँति दो कदम भागी। चाहती थी कि चिल्ला कर उसे रोके और कहे कि मैं अनजाने में सब कुछ बक गई हूँ—।" किन्तु उसके चेतन और अचेतन का द्वन्द्व समाप्त नहीं होता। पति के साथ ससुराल जाने पर पहली ही रात्रि में वह अपने पूर्व व्यवहार का प्रायश्चित्त करने के लिए, अनुरागमयी होकर पति-आगमन की प्रतीक्षा करती है। किन्तु उसका चेतन मन पुन: स्त्री-अधिकारों और कुल प्रतिष्ठा की बात लेकर उसे पति से उलझा देता है। पति म्लान-भाव मे चला जाता है, उसके अचेतन में सोया नारीत्व पुन: ऐसे रो उठता है, जैसे

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ४६४।
२. वही, पृ० ५६१।
३ नीलमणि, पृ० १८।

बालक अपना सुन्दर खिलौना टूट जाने पर बिलख कर रो उठता है।" कुछ दिन उपरान्त एक क्षण ऐसा भी आता है, जब नीलम का अचेतन उसके चेतन को पूरी तरह से पराभूत कर देता है। वैज्ञानिक प्रयोगशाला में विस्फोट होने के कारण महेन्द्रनाथ के घायल हो जाने का समाचार पाते ही वह विद्रोहिणी अपने स्वत्व-विवेक को तिलांजलि देकर तत्काल पति-सेवा में जा पहुँचती है। वहां अनायास पति के कर-स्पर्श और चुम्बन-द्वारा उसका 'नारीत्व' एक अनिर्वचनीय सुख का अनुभव करता है। एक अज्ञात बन्धन और आकर्षण उसे महेन्द्र के अधिकाधिक पास ले आता है।[1] किन्तु उसका चेतन फिर आड़े आ जाता है। वह हृदय से न चाहते हुए भी, अपने स्वत्व-बोध को स्थिर रखने के लिए अकस्मात् मायके चले जाने का निश्चय कर लेती है। नीलम के अचेतन और चेतन का यह अद्भुत द्वन्द्व महेन्द्र के इन शब्दों में प्रकट है—'कहो फिर, तुम रात-रात भर जागती क्यों हो? आक्रान्त होने में तुम्हें अपने आत्म-सम्मान का भंग दीखता है तो फिर तुम आक्रान्त होने की अभिलाषिणी क्यों हो?'[2] अन्ततः उसके बाल-सखा विनय की प्रेरणा से उसका चेतन, अचेतन के सम्मुख हार मान लेता है। वह दोनों हाथों से छाती दबा कर कह उठती है—'उन्होंने मुझ पर बलात्कार क्यों नहीं किया?' 'वह बिल्कुल पागल हो गई। आज उसका रोम-रोम महेन्द्र का प्यासा था।'[3] वह माँ से यह कहकर तितली की तरह फुदकती हुई भाग जाती है—'मैं आज लाहौर जा रही हूँ आज रात को, समझीं?'[4] नीलम के इस चारित्रिक विश्लेषण से स्पष्ट है कि मानव मूलतः अचेतन द्वारा ही सचालित होता है।

'सोमनाथ' में अचेतन और चेतन मन की ऊहापोह का सजीव अंकन शोभना के चरित्र में दिखाई देता है। वह बाल-विधवा ब्राह्मणी बाह्यतः नैतिक सामाजिक मर्यादाओं में बँधी है, पर हृदय से शूद्र-पुत्र को प्यार करती है। उसका अचेतन उस पर इतना प्रभावी है कि प्रेमी के मुसलमान बनकर सोमनाथ भंजक विदेशी आक्रान्ताओं का साथ देने पर भी, वह उसी के संकेतों पर गुप्तचरी करने के लिए तैयार हो जाती है। किन्तु शीघ्र ही उसका चेतन, अचेतन को दमित कर सफल होता है और वह अपने ही हाथों अपने प्रेमी का सिर काट कर धर्म तथा राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करती है।

---

१ नीलमणि, पृ० ६०,६५।
२ वही, पृ० ७३।
३. वही, पृ० ७३।
४ वही, पृ० ६३।

'रक्त की प्यास' में नायिका इच्छनीकुमारी का मनोजगत् अन्त तक अचेतन और चेतन के द्वन्द्व का क्रीडा-क्षेत्र बना रहता है। प्रथमत वह अचेतन मन मे निहित यौवन सुलभ प्रेम के वशीभूत होकर कुमार भीमदेव के प्रति इतनी आसक्त हो जाती है कि कुमार उसका प्रेमाह्वान प्राप्त कर कुल-शील और मर्यादा-पथ को भूल जाता है। किन्तु शीघ्र ही उसका चेतन, अचेतन पर प्रभावी हो जाता है और वह कुमार को ठुकरा कर पिता द्वारा मनोनीत अपने पति के प्रति एकनिष्ठ और सुस्थिर रहती है।

'आलमगीर' की बेगम जहाँआरा की सम्पूर्ण जीवन-चर्या अचेतन मन द्वारा परिचालित है। बाह्यत वह कुशल राजनीतिज्ञा और व्यवहार-कुशल शासिका दिखाई देती है, पर उसके सम्पूर्ण कार्य-कलाप वस्तुत उसके जीवन मे अचेतन मन म निहित, अतृप्त एव अभुक्त काम-वृत्ति की तुष्टि हेतु किए जाने वाले आयोजन मात्र हैं।

'धर्मपुत्र' की हुस्नबानू और माया मे अचेतन और चेतन की द्वन्द्वमयी स्थिति अनेकत्र दृष्टिगोचर होती है। हुस्नबानू अचेतन की उद्दाम शक्तिमती धारा को अवरुद्ध कर चेतन मन को सदा बलवत्तर बनाए रखने मे समर्थ है, किन्तु माया का चेतन मन अचेतन के हल्के से दबाव के सामने हार मान बैठता है। हुस्नबानू के अचेतन मे अपने प्रेमी प्रोफेसर और डाक्टर अमृतराय के प्रति सहजानुराग की तीव्र भावना है। किन्तु उसका चेतन इस भावना का निरोध कर, उसे पारिवारिक और सामाजिक मर्यादाओ की खराद पर तराश कर अन्त तक उज्ज्वल बनाए रखता है। इसके विपरीत माया का चेतनमन उसे दिलीप के तथाकथित जातीय अभिमान के कारण, उससे विमुख रखने का प्रयास करता है जबकि उसका अचेतन मन 'उसके रक्त की प्रत्येक बूंद मे दिलीप की छवि भर देता है।'[1] वह माँ की घड़ी देने के बहाने दिलीप से सम्भाषण की अपनी लालसा पूरी करने का प्रयास करती है। दिलीप की बहिन करुणा के सख्य के व्याज से वह दिलीप के नैकट्य का कोई अवसर नही चूकने देती और अन्ततः जब दिलीप, एक अविवाहित मुस्लिम स्त्री का पुत्र सिद्ध होने पर, हर ओर से त्यक्त एवं उपेक्षित होकर एकाकी रह जाता है तो माया का अचेतन उसे बरबस दिलीप के प्रति आत्म-समर्पित कर देता है।[2]

'आभा' मे आभा के अचेतन मन की प्रचण्ड शक्तिमत्ता का विश्लेषण सर्वाधिक है। आभा अपने बौद्धिक तर्कजाल मे उलझ कर, पति अनिल को छोड़कर,

---

१. धर्मपुत्र, पृ० १०२।
२. वही, पृ० १६४।

उसके मित्र रमेश के घर चली जाती है। परन्तु उसका अचेतन, उसे वहाँ एक पल भी चैन का अनुभव नहीं करने देता। पति की छवि उसकी आँखों से ओझल नहीं हो पाती। उसके लिए इधर-उधर ऊपर नीचे, जैसे सर्वत्र अनिल ही अनिल की मूर्तियाँ थी। वह दोनों हाथ फैलाकर अनिल को अंक में भरने को भाग बढी, किन्तु दीवार से उसका सिर जा टकराया। उसके अचेतन का सहजोन्माद उसे कई मास तक तीर्थों में भटकाने के पश्चात् पुन पति के पास लौट आने पर सन्तोष पाता है।

'गोली' की चम्पा प्रत्यक्षत सुखी, वैभवशालिनी और राजरानियों से भी अधिक सौभाग्यवती प्रतीत होती है, किन्तु उसके अचेतन में 'किसुन' नामक गोले के प्रति निहित अनुराग उसे क्रमश राजवैभव और भोगविलास से दूर ले जाकर प्रकृत नारी धर्म की ओर अग्रसर करता है।

'बगुला के पख' में सभी प्रमुख नारी मूर्तियाँ अपने अचेतन मन से नियन्त्रित हो, प्रकृत सामाजिक पथ से दूर हट जाती हैं। दिल्ली के एक प्रतिष्ठित नेता की पत्नी पद्मा अचेतन मन में छिपी काम मुक्ति की प्रबल आकाक्षा-वश जुगनू जैसे लम्पट को देह-समर्पण कर बैठती है। श्रीमती बुलाकीदास के अचेतन में विद्यमान 'मद-जिज्ञासा' भी, जुगनू के पुरुषत्व के सम्पर्क में आते ही, उसके नारीत्व को झकझोर डालती है।[1] शारदा, एक 'सच्चरित्र और शुद्धाचरण वाली लड़की है।'[2] वह भावुक एव सहृदय है। सामान्य वह मर्यादाशीलता की सीमा का उल्लघन करने की कल्पना भी नहीं कर सकती। एक बार जुगनू द्वारा एकान्त में प्रणय निवेदन करने पर वह चेतन और अचेतन के द्वन्द्व में उलझ जाती है। 'निस्सन्देह, उसे उस समय की जुगनू की हरकत और प्रणय निवेदन असह्य-सा लगा था, परन्तु ज्यों-ज्यों वह उस घटना पर विचार करती गई, उसकी चेतना में यौवन का जागरण होता गया। इसके बाद बहुत बार अनुकूल-प्रतिकूल भाव आए और गए। जुगनू से मिलने की एक प्रच्छन्न अभिलाषा उसके मन में उदय होती गई—वह इस अभिलाषा को अपने शरीर की एक भूख के रूप में अनुभव कर रही थी।'[3]

'पत्थर युग के दो बुत' में सहनायिका रेखा का समूचा व्यक्तित्व अचेतन और चेतन मन के द्वन्द्व के तुषार से आच्छन्न है। उसे कुछ सूझता ही नहीं कि क्या करे, क्या न करे। उसी के शब्दों में—'वे प्यार देते हैं, सुख देते हैं, तृप्ति

---

१. बगुला के पख पृ० १६७।
२ वही, पृ० १४५।
३ वही, पृ० २०७।

देते हैं, पर उनके जाते ही प्यार भय बन जाता है, मुख डक मारने लगता है और तृप्ति प्यास को भडका देती है। मन होता है—बस, अब नहीं चाहिए। पर उनके आने की प्रतीक्षा मे मैं अधमरी हो जाती हूँ। "प्यार नहीं करती हूँ तो क्या करती हूँ? 'यह मैं नहीं जानती। इतनी उत्कट प्रतीक्षा कैसे करती हूँ" यह भी नहीं बता सकती। अपने को कैसे उनके अक मे सौंप देती हूँ, यह भी नहीं जानती। "मुझे लगता है कि मैं चोर हूँ, मैंने अपने को ठग लिया है और मैं अखाद्य भक्षण कर रही हूँ। फिर भी उससे मैं अपने को विरत नहीं कर पाती हूँ।"[1]

'मोती' की नीलम एक प्रगतिवादिनी और जागरूक युवती है। देशभक्त शायर मोती के बन्दी बना लिए जाने पर उसका दुःखी होना स्वाभाविक है। किन्तु उसका यह दुःख, उसके चेतन मन मे व्याप्त देश-भक्ति की भावना का द्योतक उतना नही, जितना उसके अचेतन मन मे निहित मोती के प्रति अज्ञात आसक्ति का परिचायक है। इसकी स्वीकृति उसकी वाणी अनायास देती है—'प्यारे अब्बा, मोती एक बहादुर नौजवान है, उसे बचाना होगा। "वह मेरा है। मैं उसके बिना नहीं रह सकती।'[2]

इस अध्ययन मे स्पष्ट है कि चतुरसेन के उपन्यासो में चित्रित नारी-चरित्र मनोविज्ञान शास्त्र की अचेतन-चेतन सबधी धारणा को सर्वथा उपयुक्त सिद्ध करते हैं।

२. चित्तवृत्तियों का निरोध एवं दमन

फ्रायड के मतानुसार कुछ मानसिक प्रवृत्तियाँ निन्दनीय अथवा अग्राह्य होती हैं। मनुष्य उन्हे दबाने का प्रयास करता है। चेतनमनद्वारा किया गया मानसिक प्रवृत्तियो का यह निषेध 'निरोध' कहलाता है। कई बार ऐसा निषेध अचेतन मन द्वारा भी होता है, जिसे 'दमन' कहा जाता है। दोनो प्रकार के इस निषेध मे अन्तर यह है कि 'निरोध' चेतन मस्तिष्क द्वारा ज्ञात रूप से होता है, किन्तु 'दमन' अचेतन मन द्वारा अज्ञात रूप से।

आचार्य चतुरसेन के नारी-चरित्रो मे, चित्तवृत्तियो के निरोध के कई उदाहरण उपलब्ध हैं। 'आत्मदाह' मे सरला बाल-विधवा है। युवावस्था में सुधीन्द्र सरीखे चुम्बकीय व्यक्तित्व वाले युवक के प्रति उसके हृदय में आसक्ति का भाव उदित होना सहज है। किन्तु उसका चेतन मन इस नैसर्गिक प्रवृत्ति का निरोध कर देता है। यह लेखक के इन शब्दो मे स्पष्ट है—'उसने भीतर कोठरी में जाकर द्वार

---

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ८२।
२. मोती, पृ० ८६-८७।

बन्द कर लिया। वह जमीन में चुपचाप लेट गई।" उन अन्धकार में सुधीन्द्र उसके हृदय में घुसे पड़ते थे "उसके हृदय में वह विकलता जाग उठी जो सोई पड़ी थी।"'वह कई दिनों से अपने मन में अनुभव कर रही थी कि जैसे सुधीन्द्र को देखकर, उसके मन में कुछ नई-सी अनुभूति उदय हो उठती है। उसे मन ही में दाब रखने की उसने भरपूर चेष्टा की—परन्तु जब वह भावना बढ़ती ही गई, तब उसने सुधीन्द्र को आँखों से ओझल करना ही ठीक समझा।"[1]

'धर्मपुत्र' की नायिका हुस्नबानू और 'अपराजिता' की नायिका राज अपने-अपने प्रेमी को छोड़कर स्वेच्छा से आजीवन पुरुष-सम्पर्क के बिना रहने का साहस 'निरोध' शक्ति के बल पर ही दिखा पाती हैं, चाहे वे पुरुष उनके वैध पति भी हैं। 'गोली' की महारानी कुँवरि का विवाहोपरान्त, जीवन के सम्पूर्ण उन्नीस वर्ष एकान्तवास में काट देना 'निरोध' का ज्वलन्त उदाहरण है। 'वैशाली की नगर-वधू' की विषकन्या कुण्डनी के चरित्र में निरोध की प्रवृत्ति बड़ी महत्त्वपूर्ण है। वह सोमप्रभ-जैसे आकर्षक, सुन्दर और मन-मोहक युवक के साथ दिन-रात रह-कर और उसके द्वारा अपने प्रति अनेक बार आसक्ति का संकेत मिलने पर आत्म-निरोध का परिचय देती है तथा सोमप्रभ को भी संयमित रखने में सफल होती है। 'बगुला के पंख' की पद्मा का चेतन मन भी एक स्थल पर उसकी अचेतन प्रेरित तथा निंद्य वासना प्रवृत्ति का निरोध करने में सफल होता है। जिस जुगनू को वह स्वयं कहती है—'"'तुम मुझे छोड़कर नहीं जा सकते। और फिर अभि-भूत-सी होकर उसके शरीर पर झुक जाती है।"[2] उसी जुगनू के प्रति कामोद्दीप्त होकर, उसे अपने अंक-पाश में आबद्ध करने के प्रयत्न का विरोध करती हुई वह 'किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर कुर्सियों से टकराती हुई कमरे से बाहर की ओर भाग जाती है।"[3] यह अदृश्य शक्ति और कोई नहीं, उसके चेतनमन में विद्य-मान निरोध प्रवृत्ति है। इसी उपन्यास की युवती शारदा अपनी भावुक प्रवृत्ति के कारण पहले जुगनू के प्रति सहज-आकर्षण का प्रदर्शन कर, उसे अधिकाधिक अपने निकट आने का अवसर देती है किन्तु जब जुगनू एक दिन एकान्त में लपक कर उसका हाथ पकड़ लेता है तो 'वह खींचकर अपना हाथ छुड़ा लेती है तथा भय और आशंका से भरी हुई जुगनू का मुँह ताकने लगती है। किसी नैसर्गिक ज्ञान से उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी हिंस्र आक्रमण के सन्निकट है।"[4]

---

१. आत्मदाह, पृ० ११५।
२. बगुला के पंख, पृ० ५६।
३. वही, पृ० ६०।
४. वही, पृ० १३६।

यह नैसर्गिक ज्ञान वस्तुतः उनके चेतन मन की निरोध-प्रवृत्ति के सिवाय और कुछ नहीं।

३. लिबिडो (काम-मूलक-ग्रन्थि)

मनुष्य के मन तथा व्यक्तित्व को परिचालित करने वाली मूल शक्ति को फ्रायड ने 'लिबिडो' कहा है। इसे 'काममूलक' तथा 'स्वार्थमूलक' ग्रन्थि का पर्याय माना जा सकता है। समाज की नैतिक धारणाओं से मेल न खाने पर भी यही शक्ति मानव जीवन की मूल परिचालिका है। फ्रायड ने बालक और बालिका की 'लिबिडो' नामक मनोग्रन्थि के दो भिन्न-भिन्न नाम दिए हैं—'इडिप्स' और 'इलैक्ट्रा'। उसके मतानुसार दो वर्ष की अवस्था के पश्चात् बालक या बालिका की लिबिडो' क्रमशः माता या पिता की ओर उन्मुख होने लगती है। धीरे-धीरे इसका केन्द्र कोई विशिष्ट विपरीत लिंगी हो जाता है। कुछ बड़ा होने पर जब उन्हें ज्ञात होता है कि यह भावना समाज-द्वारा निन्दनीय है तो अचेतन मन-द्वारा अज्ञात रूप से इस वृत्ति का दमन हो जाता है, जिसके परिणामस्वरूप उनमें ग्रन्थि उत्पन्न होती है। बालक की यह ग्रंथि 'इडिप्स' और बालिका की ग्रन्थि 'इलैक्ट्रा' कहलाती है। भविष्य में भी ये ग्रन्थियाँ उनके समूचे जीवन-कार्य-व्यापार को प्रभावित करती रहती हैं।

आचार्य चतुरसेन के प्रायः सभी उपन्यासों के अधिकांश प्रमुख नारी-पात्रों का चरित्र 'लिबिडो' अर्थात् 'काममूलक-ग्रन्थि' द्वारा परिचालित दिखाई देता है। 'हृदय की परख' में शशिकला नामक युवती अपनी सखी शारदा के मंगेतर भूदेव के प्रति इतनी आसक्त है कि अपने कौमार्य के मातृत्व में बदलते हुए भी वह किसी को इसका पता नहीं चलने देती। यह छात्रावस्था में उसकी 'इलैक्ट्रा'-ग्रन्थि के अतीव प्रबल होने का परिणाम है। 'बहते आँसू' में बाल विधवा भगवती इस मनोग्रन्थि का शिकार होकर हरगोविंद नामक युवक को देहार्पण कर देती है। उसमें इलैक्ट्रा ग्रन्थि इतनी प्रबल है कि वह भरे-पूरे परिवार में रहती हुई भी हरगोविंद से भेंट का मार्ग ढूँढ लेती है और माँ, बाप, भाई, भाभी तथा छोटी बहिन सभी को अँधेरे में रखकर कामैषणा की तृप्ति के लिए कई बार उसके घर पहुँच जाती है।

'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली के चरित्र के सभी चढ़ाव-उतार 'लिबिडो' ग्रन्थि के परिणाम हैं। आजीवन अविवाहित रहकर, अपनी रूप शिखा में वैशाली के पुरुषमात्र को दग्ध करने का संकल्प लेने वाली इस सुन्दरी की 'इलैक्ट्रा' मनोग्रन्थि इसे हर्षदेव से सोमप्रभ, सोमप्रभ से बिम्बसार और बिम्बसार से उदयन के सहवास की ओर प्रवृत्त करती है। सम्पूर्ण वैशाली गणराज्य और

मगधसाम्राज्य को अपने एक भ्रू भंग से ध्वस्त कर देने की क्षमता रखने वाली इस गर्विणी का दर्प काम-भुक्ति के क्षण उपलब्ध कर शान्त हो जाता है और यह पौरुष की भिखारिणी बन उन्मत्त-सी हो जाती है।'[1] इसी प्रकार आर्या मातंगी का पिता द्वारा निषेध किए जाने पर भी, वह वर्षकार से अवैध सम्बन्ध स्थापित करती है। वास्तव में वह उसी का सहोदर है। इस वस्तुस्थिति के पश्चात् उसकी 'लिबिडो' उसे सम्राट् बिम्बसार की अंकशायिनी बनने पर बाध्य करती है। इसी उपन्यास की एक अन्य युवती कुण्डनी की 'इलैक्ट्रा' ग्रन्थि एक समय इतनी बलवती हो उठती है कि पुण्डरीक नामक दिव्य पुरुष का सान्निध्य पाने के लिए वह मृत्यु का भी सहर्ष वरण करती है।

'नरमेध' की अनाम नायिका अपने लोक प्रतिष्ठित देव-तुल्य पति को त्याग कर पर-पुरुष को आत्म-समर्पण करने का जो दुष्कृत्य करती है, उसका कारण उसकी 'लिबिडो' ही है। 'नीलमणि' की नीलम, 'आत्मदाह' की सुधा और 'दो किनारे' की मालती अपनी 'लिबिडो' मनोग्रन्थि के कारण, अपने पतियों से कुछ अधिक की चाह रखती हैं तो 'अदल-बदल' की मायादेवी, 'आभा' की आभा, 'बगुला के पंख' की पद्मा और श्रीमती बुलाकीदास तथा 'पत्थर युग के दो बुत' की रेखा और मायादेवी ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिनकी 'इलैक्ट्रा' ग्रन्थि उन्हें पति तक ही सन्तुष्ट न रहने देकर पर-पुरुष-संसर्ग की ओर प्रवृत्त करती है। 'आलमगीर' की जहाँआरा और 'वयं रक्षामः' की दैत्यबाला लिबिडो से परिचालित नारी-मूर्तियाँ हैं। उन्हें एकाधिक पुरुषों की संसर्ग की लालसा सता रही है। जहाँआरा कभी छत्रसाल, कभी दुलारे और कभी नजाबत खां के माध्यम से अपनी काम-तृप्ति की कामना प्रकट करती है। दैत्यबाला का कथन है—'''''तू ही पहला पुरुष नहीं है। तुझ से पहले बहुत आ चुके हैं, तू ही अन्तिम नहीं है, और अनेक आएँगे।'[2]

'गोली' की चम्पा तथा रानी चन्द्रमहल के चित्र में 'इलैक्ट्रा' ग्रन्थि की क्रियाशीलता स्पष्ट है। चम्पा के मन में राजा को देखकर 'अकारण' गुदगुदी और उसका 'अकारण' हँस देना वस्तुतः अकारण नहीं, 'इलैक्ट्रा' ग्रंथि के कारण है, अन्यथा वह बार-बार दर्पण में अपना रूप देखकर अपनी 'जवानी की दौलत' पर न इतराती और राजा के सहवास-सुख में उसका मन इतना न रमता। रानी चन्द्रमहल की 'लिबिडो' जब पति-राजा के सान्निध्य से वंचित रहने के कारण अतृप्त रह जाती है तो वह गंगाराम के पौरुष को अपना लक्ष्य

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ४६४।
२. वयं रक्षामः', पृ० १६।

बनाने का प्रयास करती है।

'उदयास्त' की रेणुकादेवी और 'अदल-बदल' की मालतीदेवी की प्रगतिशीलता का समूचा खोल वस्तुत 'इलैक्ट्रा' ग्रंथि की भित्ति पर आधारित है। इन दोनो 'समाज सेविकाओ' के उन्मुक्त और उदार स्वभाव तथा नारी सुधार-सबधी उदात्त विचार की परिणति पर पुरुष-ससर्ग के सुख की उपलब्धि के रूप मे होती है।

इससे स्पष्ट है कि आचार्य चतुरसेन ने नारी मन की सूक्ष्म पर्तों मे छिपी उनकी सहज प्रवृत्तियो का सजीव रेखांकन करने मे पूरी सफलता प्राप्त की है।

४. विषम प्रवृत्तियो का ध्रुवीकरण

मानव मन मे प्रायश दो विरोधिनी प्रवृत्तियाँ एक साथ प्रखर रूप मे सदा विद्यमान रहती हैं। मनोविज्ञान-शास्त्रियो के अनुसार, मानव मन मे स्वप्रेम के साथ पर-प्रेम, रचनात्मक प्रवृत्ति के साथ विनाशात्मक प्रवृत्ति अथवा जीवनेच्छा के साथ मरणेच्छा का अद्भुत ध्रुवत्व दिखाई देता है। मनोविज्ञान के अन्तर्गत इन्हे क्रमश जीवन प्रवृत्ति (इरोज) और मरण प्रवृत्ति (थाटोस) का नाम दिया गया है। जीवन प्रवृत्ति से परिचालित होकर मनुष्य विभिन्न लैंगिक आचरण करने लगता है जबकि मरण प्रवृत्ति के प्रभाववश विभिन्न विनाशात्मक कार्यों मे प्रवृत्त होता है। उल्लेखनीय बात यह है कि ये दोनो प्रवृत्तियाँ एक साथ मानव-मन मे उपस्थित रहकर उसके व्यक्तित्व मे यदा-कदा सघर्ष उत्पन्न कर देती हैं। इन्ही परस्पर-विरोधिनी प्रवृत्तियो के प्रभाव स्वरूप एक प्रेमी जहाँ अपनी प्रेमिका के साथ मधुर व्यवहार करता है, चाहे उसे स्वय कष्ट ही क्यो न झेलना पडे, वहाँ कभी-कभी वह अनपेक्षित रूप से उसके साथ क्रूर व्यवहार करने मे ही तृप्ति का अनुभव करता है। प्रथम प्रकार के आचरण को फ्रायड ने 'आत्म-पीडन-रति' और दूसरे को 'पर-पीडन-रति' कहा है। व्यावहारिक जीवन मे इन वृत्तियो के विचित्र उदाहरण अनेक बार दृष्टिगोचर होते हैं। एक ही व्यक्ति के चरित्र मे प्रेम और घृणा, दया और क्रूरता, सहानुभूति और ईर्ष्या तथा जिजीविषा और मरणेच्छा का अद्भुत सगम दिखाई देता है।"[1]

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो की कतिपय नारी-पात्रो का चरित्र परस्पर विरोधिनी प्रवृत्तियो के ध्रुवत्व की झलक है। 'वय रक्षाम' की दैत्यबाला के व्यक्तित्व मे जीवनवृत्ति और मरणवृत्ति का एक ही बिन्दु पर समीकरण दिखाई देता है। वह एक ओर अपनी माँ को अतल-सागर मे डूब जाने देती है। दूसरी

---

१. द्रष्टव्य . ब्राउन, साइको डाइनैमिक्स आफ अब्नार्मल बिहेवियर, पृ० १५९।

और रावण को डूबने से बचाने में तत्पर हो जाती है। इसी प्रकार बाद में वह जीवन में असीम उल्लास की स्थिति बनाए रखने के लिए एक ओर पल भर के लिए भी रावण का साथ नहीं छोड़ना चाहती तो दूसरी ओर वह दानवेन्द्र के सैनिकों द्वारा रावण को बलि-यज्ञ में डाले जाने से पूर्व, स्वयं को बलि पर चढ़ाने का आग्रह करती है और अपने शरीर को खण्ड खण्ड कर दिए जाने पर भी चेहरे पर दुःख का कोई चिह्न तक नहीं उभरने देती।"[1]

'बहते आँसू' की भगवती और मालती दोनों का चरित्र इन विषम वृत्तियों के ध्रुवत्व का कार्य-क्षेत्र है। भगवती जिस हरगोविंद के सहवास द्वारा प्रबल जीवन-कामना का परिचय देती है, बाद में उसी की हत्या कर स्वयं भी मरण का वरण करने को तत्पर हो जाती है। मालती की सुखेच्छा जहाँ उसे भावुक और चपल बनाकर, काम लिप्सु लम्पटों के हाथ पड़ने पर बाध्य करती है, वहाँ उसकी मरण-वृत्ति उसे निर्भीक और साहसी बना कर, पहले कालीप्रसाद को और फिर विधवा-आश्रम के प्रबन्धक को घायल कर हर प्रकार के संकट का सामना करने को तत्पर कर देती है।

'अपराधी' उपन्यास की नायिका अनाम-हत्यारी का व्यक्तित्व विरोधिनी प्रवृत्तियों के ध्रुवत्व का सजीव प्रतिरूप है। जीवन को अधिक आनन्दमय बनाने के लिए जिस पुरुष को वह अपना सर्वस्व समर्पण कर देती है, उसी की अकारण हत्या कर वह स्वतः मृत्यु-दण्ड की अभिलाषिणी बन जाती है। यहाँ तक कि पुत्र त्रिभुवन द्वारा बचाव के सभी उपायों का भी परिहार कर वह मर जाने में जीवन की सार्थकता समझती है।

'गोली' की सहनायिका कुँवरी में विषम प्रवृत्तियों के ध्रुवत्व की यह प्रक्रिया और भी स्पष्ट है। उसे महारानी पद के अनुकूल सुख-वैभव के सभी साधन प्राप्त हैं, किन्तु वह ऐश्वर्य-भरे प्रासाद के मध्य रहती हुई स्वयं को गला-गला कर समाप्त कर डालती है।

'आलमगीर' में बेगम शाइस्ताखाँ और 'सोना और खून' में कुदसिया बेगम के चरित्र विषम प्रवृत्तियों के ध्रुवत्व का ज्वलन्त उदाहरण हैं। बेगम शाइस्ताखाँ जीवन की पवित्रता बनाए रखने के लिए, आत्मशक्ति द्वारा भूखी-प्यासी रहकर, अपने प्राण त्याग देती है तो कुदसिया बेगम इसी उद्देश्य की सिद्धि हीरे की कनी चाट कर करती है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के उक्त नारी-पात्रों के अतिरिक्त 'नीलमणि' की नीलम, 'आभा' की आभा, 'सोमनाथ' की शोभना, 'रक्त की प्यास' की

---

१ वयं रक्षाम', पृ० ६६-६७।

इच्छनी कुमारी, 'वैशाली की नगरवधू' की अम्बपाली, 'सोना और खून' की एलिजावेथ, तथा 'ईदो' की 'केन' में भी विषम प्रवृत्तियों के ध्रुवीकरण की झाँकी देखी जा सकती है। नीलम और आभा के व्यक्तित्व में प्रेम और घृणा का भाव साथ साथ क्रियाशील दिखाई देता है तो शोभना में आसक्ति और विरक्ति का। इच्छनी कुमारी में अनुराग और विराग एक साथ पलते हैं तो अम्बपाली और एलिजावेथ में प्रेम और ईर्ष्या का विचित्र संगम है। 'केन' में जीवनेच्छा और मरणेच्छा इतनी अभिन्न दिखाई देती है कि उसके कार्यकारी जीवन का प्रत्येक पग पाठकों को अन्त तक अनिश्चय की स्थिति में उलझाये रखता है।

५. मन के तीन स्तर

(१) प्रकृतस्वत्व (इद) (२) स्वत्व (ईगो) (३) उपरिस्वत्व (सुपर ईगो)

'प्रकृत स्वत्व' मानव मन की प्रारम्भिक नैसर्गिक उमंगों—इच्छाओं और प्रकृत प्रेरणाओं का केन्द्र अचेतन का स्तर होता है। यह सैद्धान्तिक तर्कों से सर्वथा मुक्त और सहज-भाव से सभी प्रकार की वासनाओं तथा आचरण प्रवृत्तियों को ग्रहण करता है।'[1] इसी का विकसित रूप 'स्वत्व' है, जो बाह्य जीवन के अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। यही वह स्तर है जो मन के प्रकृत स्वत्व के अनियंत्रित आग्रहों को परिस्थिति के अनुसार नियंत्रित करके लक्ष्य की ओर उन्मुख करता है। 'प्रकृत-स्वत्व' यदि वासना प्रेरित है तो 'स्वत्व' अनुभव-प्रेरित।'[2] 'उपरिस्वत्व' को दूसरे शब्दों में 'नैतिक स्वत्व' भी कहा जा सकता है, क्योंकि यही वह शक्ति है जो व्यक्ति का समाजीकरण करती है। इस स्तर का मुख्य कार्य नैतिक एवं अनैतिक प्रवृत्तियों का अन्तर निर्धारित कर मन को निरन्तर आदर्शोन्मुख कराना है।'[3]

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-चरित्रों में अचेतन मन के ये तीनों स्तर न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रकृत स्वत्व इन उपन्यासों के सभी प्रमुख नारी-पात्रों में है, क्योंकि किसी नारी-पात्र को मानव-मन की नैसर्गिक वासनाओं, आशा अभिलाषाओं तथा रागात्मक वृत्तियों से रहित नहीं माना जा सकता। किन्तु स्वत्व (ईगो) और उपरिस्वत्व (सुपर ईगो) का रूप केवल कुछ असाधारण नारी-चरित्रों में है। 'बहते आँसू' की सुशीला, 'आत्मदाह' की सरला

---

१. द्रष्टव्य (क) ब्राउन, साइकोडाइनेमिक्स आफ अब्नार्मल बिहेवियर, पृ १६३। तथा (ख) जैस्ट्रो, फ्रायड : हिज ड्रीम्स एण्ड सेक्स थ्योरिज, पृ० ६८।

२. (क) वही, (ख) वही, पृ० ८८।

३. (क) वही, पृ० १६३ तथा (ख) वही, पृ० ८८।

'वैशालीकी नगरवधू' की कुण्डनी, 'नरमेध' की चन्द्रकिरण, 'दो किनारे' की सुधा, 'उदयास्त' की पद्मा, 'मोती' की जोहरा और 'खून और खून' की रतन में स्वत्व नामक मनःस्तर स्पष्ट है। सुशीला के हृदय में अपने संरक्षक युवक प्रकाश के प्रति निसर्गत आसक्ति और अनुराग है किन्तु उसका अनुभव-प्रेरित मस्तिष्क उसे रागात्मक वासनाओं के प्रवाह में बहने से रोकता है। उसका स्वत्व उसे मर्यादित बनाए रखता है। बाल विधवा सरला पूर्ण यौवना होने के कारण, सुधीन्द्र के सम्पर्क में आकर, अपने अन्तर की उद्दाम लालसाओं के प्रवाह में सहज प्रवाहित हो सकती थी, किन्तु उसका 'स्वत्व' उसे सचेत कर अनियंत्रित होने से रोकता है। कुण्डनी की सम्पूर्ण जीवनचर्या ही 'स्वत्व' प्रेरित है। उसका आत्म अस्तित्व बोध इतना प्रबल है कि वह अनेक पुरुषों को अपनी अंगुलि के इशारों पर नचाती हुई भी, स्वयं सर्वदा निष्काम, सजग और आत्मकेन्द्रित बनी रहती है। चन्द्रकिरण अपने प्रेमी त्रिभुवन के कुलटा पुत्र होने का रहस्य ज्ञात होने पर थोड़ी देर के लिए घृणा और प्रतिशोध की नारी सुलभ भावना में ग्रस्त होने लगती है। उसके माता पिता स्पष्टत उसे त्रिभुवन से विरक्त होने को प्रेरित करते हैं, पर उसका स्वत्व उसे आत्म निर्णय लेने में समर्थ बना कर स्त्रियोचित कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर कर देता है। सुधा, सुधीन्द्र की दूसरी पत्नी है। सुधीन्द्र पहली पत्नी माया को न भुला सकने के कारण, उसे उपयुक्त प्यार और अनुराग नहीं दे पाता। ऐसी स्थिति में सुधा के मन की प्रकृत लालसाएं उसे कहीं भी ले जा सकती थीं किन्तु उसका स्वत्व (ईगो) उसे सदैव मर्यादित रखता है। वह पूरे परिवार में अपने व्यक्तित्व को सुचारुरूपेण प्रतिष्ठित रखती हुई, पति के मन की भटकन को दूर करती है। यहाँ तक कि बाद में पति के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने पर वह भी पीछे नहीं रहती और कारागार की यातनाओं की बलि चढ़ कर अपने स्वत्व को सार्थक कर जाती है। 'उदयास्त' में पद्मा एक सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्री है। उसकी विचारधारा माता पिता को पसन्द नहीं, किन्तु उसका स्वत्व उसे परिवार की नैसर्गिक सीमाओं से ऊपर उठाकर, आत्मनिर्धारित मार्ग पर अचल बनाए रखता है। जोहरा एक वेश्या और दिल्ली के एक ऐय्याश नवाब की रखैल है। नवाब के हरम में उस जैसी अन्य अनेक तवायफें पल रही हैं। उनकी नियति येन केन प्रकारेण नवाब के पैसे पर भोग विलास में डूबे रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं। किन्तु जोहरा उस वेश्या सुलभ भ्रष्ट पथ से सर्वथा भिन्न आत्मसम्मान और नारी मर्यादा का जीवन जीती है। उसका स्वत्व न केवल नवाब और उसके भाई मोती पर हावी रहता है अपितु नवाब की सुशिक्षिता युवा पुत्री नीलम के लिए भी प्रेरणा बिन्दु सिद्ध होता है। 'खून और खून' में मि० जिन्ना की प्रेमिका रतन का स्वत्व

आद्योपान्त उसे सामान्य नारी स्तर से सर्वथा भिन्न और ऊँचा उठाए रखता है। यह समृद्ध और सुशिक्षित पारसी कन्या परिवार, समाज और धर्म की प्रकृत सीमाओं से ऊपर उठकर मुस्लिम युवक जिन्ना को अपना जीवन-साथी बनाती है किन्तु वहाँ भी अन्य सामान्य प्रेमिकाओं की भाँति प्रेमी इच्छा पर आत्म-समर्पित रहना अपनी नियति नहीं मानती। भारतीयता के प्रति अपनी निष्ठा पर प्रेमी की अरुचि देखते ही उसका स्वत्व जाग उठता है और वह आजीवन जिन्ना से सम्बन्ध विच्छेद किए बिना उससे अलग रहकर आत्म निर्धारित पथ पर कार्यशील रहती है।

इन उपन्यासों के नारी चरित्रों में उपरिस्वत्व (सुपर ईगो) के उदाहरण अपेक्षाकृत कम हैं। नीलम (नीलमणि') अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू'), मालती ('दो किनारे'), राज (अपराजिता'), हुस्नबानू (धर्मपुत्र'), शूर्पणखा (वय रक्षाम) तथा चम्पा (गोली')—जैसी असामान्य नारियों के व्यक्तित्व में इसकी कुछ झलक है। इन सभी नारी पात्रों का उपरिस्वत्व' इन्हें पुरुष वर्ग पर शासन करने में समर्थ बनाता है। इनका अन्तर्मन भले ही द्वन्द्व ग्रस्त रहा हो, किन्तु परिवार या समाज में इनके व्यक्तित्व की अद्वितीय प्रभविष्णुता का श्रेय इनके सुपरईगो (उपरिस्वत्व) को है।

६ उदात्तीकरण

मनोविज्ञान शास्त्रियों द्वारा निरूपित कार्य-पद्धतियों अथवा मनोव्यापारों में 'उदात्तीकरण' का स्थान महत्त्वपूर्ण है।[1] मनुष्य जब अपनी इच्छाओं और प्रवृत्तियों का दमन करता है तो उनका मार्गान्तरीकरण किसी न किसी समाजानुमोदित नैतिक दिशा की ओर हो जाता है। मन की सहज प्रवृत्तियों का यही उदात्तीकरण मानव सभ्यता के विकास का मूलाधार है। संसार के प्रायः श्रेष्ठ पुरुष अपने प्रारम्भिक जीवन में विभिन्न मानसिक विकृतियों के शिकार रहे हैं, किन्तु समय पाकर, उनकी वही प्रवृत्तियाँ उदात्तीकृत होकर, न केवल उनके जीवन अपितु पूरे परिवार, राष्ट्र या धार्मिक समुदाय के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हुई हैं। किसी की दमित प्रेम वासना श्रेष्ठ काव्यधारा बनकर फूट पड़ती रही है, किसी की उद्दाम हिंसा वृत्ति शत्रु-काल बनकर उसे जन-नायक के पद पर पहुँचा देती रही है। किसी की उद्दाम काम लालसा उदात्तीकृत रूप में भक्ति के उच्चतम शिखर को स्पर्श कर लेती रही है। किसी की दूसरों को दुःख या कष्ट देने आदि की प्रवृत्ति कई बार दमित होने के पश्चात् उदात्तीकृत होकर आत्म-

१. द्रष्टव्य : ड्रेवर, ए डिक्शनरी आफ साइकालोजी, पृ० १६३।

पीड़न का रूप ले लेती है।

आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासों में ऐसे अनेक नारी-चरित्रों की सृष्टि की है। उनकी मानसिक प्रवृत्तियों का उदात्तीकरण उनके जीवन के अतिरिक्त समकालीन सामाजिक परिस्थितियों में भी महत्त्वपूर्ण मोड़ लाने का कारण सिद्ध हुआ है। उदाहरणतः 'बहते आँसू' में कुमुद युवावस्था में विधवा हो जाने पर अपनी प्रेम-भावना का उदात्तीकरण भक्ति और वैराग्य के रूप में कर लेती है। उसके कथनानुसार 'पुष्प की सार्थकता केवल विलास की सजावट में ही नहीं, देव-पूजा में भी सम्भव है।' 'मेरे लिए वासना के जीवन से त्याग और तप का जीवन कहीं अधिक सरल है।'[1] 'हृदय की परख' में सरला के व्यक्तित्व की दीप्ति उसके मानसिक उदात्तीकरण का प्रतिफल है। उसके शब्दों में 'चाहना बुरी नहीं है ''जिनका हृदय सुन्दर होता है वे ही चाहना करते हैं' 'पर चाहना में वासना बुरी है। हमें उसी का उन्मूलन करना चाहिए।''[2]

'आत्मदाह' की सरला की सहज रागात्मक चेतना भी आत्मदमन और विवेक के रूप में उदात्तीकृत होकर, उसके नारीत्व को सर्वदा तेजोमय बनाए रखती है। 'हृदय की प्यास' के दोनों प्रमुख नारी-चरित्रों में उपन्यासकार ने मानसिक प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण का आदर्श प्रदर्शित किया है। सुन्दरा अपने पति के कालुष्य का दंड स्वयं वहन करने के लिए प्रस्तुत होकर, अपने अनुराग को त्याग में बदल देती है। आगे चलकर उसका यही अनुराग सेवा-साधना का रूप धारण कर, उसे आदर्श स्त्री बना देता है। भगवती की बहू की नारी-सुलभ प्रेमाकांक्षा सहनशीलता और संयम का अवलम्ब ग्रहण कर उसे सामान्य से असामान्य बना देती है।

'सोमनाथ' में शोभना का चरित्र उदात्तीकरण का ज्वलन्त उदाहरण है। वह बाल विधवा ब्राह्मण-कन्या होकर भी दासी-पुत्र देवा के जिस प्रेम में उन्मत्त होकर कुल, परिवार, धर्म और समाज की अवहेलना कर देती है, उसका वही प्रेम अवसर आने पर व्यष्टि के स्थान पर समष्टि-गत रूप ग्रहण कर लेता है और वह अपने हाथों से प्रेमी का वध करके वासनात्मक प्रेम की अपेक्षा आध्यात्मिक प्रेम का आदर्श प्रतिष्ठित करती है। चौला जब उसके द्वारा अपने लिए किए गए इस विलक्षण कृत्य की प्रशंसा करती है तो उसका कथन है—'आपके लिए नहीं देवी, अपने प्यार के लिए जो मेरे मन में देवा के लिए था और अभी भी वैसा ही है। उस दासी-पुत्र ने उसी का सौदा कर डाला था, उसे मैंने

---

१. बहते आँसू, पृ० २५०-५१।

२. हृदय की परख, पृ० ३२।

कलंकित होने से बचा लिया।"[1]

आभा (आभा') के चरित्र में उदात्तीकरण की एक हल्की-सी झलक उस समय दिखाई देती है, जब वह पति को त्याग कर, उसके मित्र रमेश के प्रति सहवासी पुरुष के रूप में प्रदर्शित किए गए प्रेम को सहसा भ्रातृ-तुल्य देवर के स्नेह में बदल डालती है।[2]

'धर्मपुत्र' की नायिका हुस्नबानू और 'गोली' की सहनायिका कुँवरी अपनी आसक्ति को विरक्ति में परिवर्तित करके उदात्तीकरण का उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। हुस्नबानू के शब्दों में— मेरा फर्ज है कि उनकी (अब्बा की) बात पर हर्फ न लगाऊँ मेरी जरा सी जिन्दगी तबाह हो जाए तो परवाह नहीं, लेकिन मैं उनकी मर्जी के खिलाफ कुछ नहीं कर सकती।"[3] डॉ० अमृतराय द्वारा उसके जीवन की विषमता को 'प्यार की सज़ा' बताने पर वह कहती है— 'प्यार की सही सूरत तो जुदाई ही है, मिलन नहीं वह जुदाई जहाँ प्यार की भूख रोम-रोम में रम कर, जिस्म को प्यार में सराबोर कर देती है। ' प्यार तो पत्थर का बुत है जिसे हिन्दू पूजते हैं। इसी से वह प्यार सब भूख-प्यास से पाक साफ होकर मंदिर बन जाता है। 'वह इतना पाक हो जाता है कि सिवा पूजा करने के दूसरी किसी बात का ख्याल दिमाग में नहीं लाया जा सकता।"[4] 'गोली' की रानी कुँवरी के चरित्र में उदात्तीकरण की प्रक्रिया और भी प्रखर रूप में है। पति को गोली (चम्पा) के प्रति अनन्यासक्त देखकर जहाँ पति की प्रताड़ना करनी चाहिए थी, चम्पा को डाँटना-फटकारना चाहिए था, वहाँ वह उन दोनों को कुछ भी न कहकर, आत्म पीड़न का मार्ग ग्रहण कर लेती है। पति के विश्वासघात का प्रत्यक्षतः कोई प्रतिकार न कर वह स्वयं को यातनाएँ देने के लिए एकान्त आवास में रहना प्रारम्भ करके, पति के लिए अपने द्वार सदा के लिए बन्द कर लेती है।[5] और मरण-पर्यन्त अपनी उस कोठरी से बाहर नहीं झाँकती। एक दासी के अतिरिक्त कोई स्त्री-पुरुष कभी उसकी एक झलक भी नहीं पा सकता।"[6]

'ईदो' में 'केन' नामक जासूस-नारी अपनी प्रेम भावना की धारा को देशसेवा

---

१. सोमनाथ, पृ० २०७।
२. आभा, पृ० ८६-८७।
३. धर्मपुत्र, पृ० १६-१७।
४. वही, पृ० २४।
५. गोली, पृ० ६६।
६. वही, पृ० १३३।

की प्रवाहिनी मे समाहित कर मानसिक उदात्तीकरण का परिचय देती है। एक अमेरिकन लैफ्टिनेंट के प्रति उनके हृदय मे अनन्य अनुराग है, किन्तु वह अपने राष्ट्र (जापान) के लिए उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए स्वतः प्रतिबद्ध है, अतः वह अपने प्रेमी लैफ्टिनेंट के हाथों स्वयं सहर्ष गिरफ्तार होते हुए कहती है—मैं अपने कर्त्तव्य को स्वीकार करती हूँ। मुझे गिरफ्तार कीजिए। पर नहीं, एक मिनट ठहरिये। मैं अपने देश की वन्दना कर लूँ।"[1]

इस विवरण के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि आचार्य चतुरसेन को नारी-मन की सहज-आकांक्षाओं और प्रवृत्तियों का नैसर्गिक विकास रुचिकर होते हुए भी, देश काल गत परिवेशानुसार उनका उदात्त रूप अधिक काम्य रहा है।

७. सम्मोहन

मनोविज्ञान वेत्ताओं ने विभिन्न मनोव्यापारों के अन्तर्गत, 'सम्मोहन' की गणना भी की है। उनके मतानुसार 'सम्मोहन'-क्रिया मनोवैज्ञानिक प्रभाव मे अतिशयता और सक्रियता लाने का एक प्रबल माध्यम है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी चरित्रों में 'सम्मोहन' के उदाहरण अत्यन्त विरल है। केवल 'हृदय की परख' और 'वैशाली की नगरवधू' मे सम्मोहन शक्ति की कुछ झलक है।

'हृदय की परख' मे सरला एक दिन विद्याधर नामक युवक के चित्ताकर्षक प्रतिशिक्षक रूप को देखकर, उसके प्रति अनायास सम्मोहित सी होकर अपनी सुध-बुध भूल जाती है। उसके मुख से सहसा ये शब्द निकल पड़ते है—'जिन महा-पुरुष ने मेरे हृदय के पट खोल दिए हैं, क्या उन्हीं की आत्मा ने इस शरीर मे दर्शन दिए हैं ' मैं कहती थी न, कि वह एक दिन अपना रूप दिखावेंगे, वही सच हुआ'''क्या जाने, मेरा मन इस मूर्ति की ओर क्यों खिचता है। हो-न-हो, यह उसी महापुरुष की आत्मा है'''भगवन् ! गुरुवर्य !' क्या तुम वही हो ? बता दो, क्यों भटका रहे हो ?'''देव ! सैकड़ों वर्ष हुए, आपने इस पापमयी भूमि को त्याग दिया है, पर मेरी प्रतिज्ञा थी कि मेरा हृदय आजन्म आपका ही उपासक बनकर रहेगा।" यह सम्मोहन प्रक्रिया का उदाहरण है।[2] 'वैशाली की नगरवधू' मे यही स्थिति अम्बपाली की उस समय होती है, जब वह एकान्त वन-गर्भ मे स्थित एक कुटी मे उदयन को देखती है। 'अम्बपाली ने कुछ ऐसी अनुभूति की,

---

१ वही, पृ० १५४।

२ हृदय की परख, पृ० ७४।

जो अब तक उसे नहीं हुई थी। अपने हृदय की धड़कन वह स्वयं सुनने लगी। उसका रक्त जैसे तप्त सीसे की भाँति खौलने और नसों में घूमने लगा। उसके नेत्रों के सम्मुख शत सहस्र लक्ष-कोटि रूपों में वही मुख पृथ्वी, आकाश और वायुमण्डल में व्याप्त हो गया। उस मुख से वज्र ध्वनि में सहस्र सहस्र बार ध्वनित होने लगा—'नाचो अम्बपाली, नाचो, वही नृत्य, वही नृत्य।' और अम्बपाली को अनुभव हुआ कि कोई दुर्धर्ष विद्युत् धारा उसके कोमल गात में प्रविष्ट हो गई है। वह असंयत होकर उठी '' वह आत्मविस्मृत होकर वही अपार्थिव नृत्य करने लगी।'' इसी उपन्यास की महानायिका कुण्डनी द्वारा एकाधिक बार बड़े बड़े समर्थ व्यक्तियों को अपनी रूप मोहिनी से सम्मोहित करके निष्क्रिय और कभी-कभी निष्प्राण तक कर डालने के प्रसंग भी उक्त मनोवैज्ञानिक तथ्य की पुष्टि करते हैं।

८ असाधारण चित्तवृत्तियाँ

(चित्तविकृति, चित्त-विक्षिप्ति और असामाजिक चित्तवृत्ति आदि)

मनुष्य के चेतन और अचेतन मन का द्वन्द्व कई बार इतना भीषण रूप धारण कर लेता है कि मनुष्य असाधारण व्यवहार करने लगता है। ऐसी स्थिति में कार्यशील दिखाई देने वाली असामान्य चित्तवृत्तियों में सर्वप्रमुख 'चित्तविकृति' (न्यूरोसिस) है, जो प्राय स्वत्व विभाजन के कारण उत्पन्न होती है। विकृतचित्त व्यक्ति का चेतन मन अपने नैतिक आदर्शों को थामे रहता है, जबकि अचेतन मन अनैतिक वासनाओं के पीछे भागता है।[2]

'चित्त विकृति' से अगली स्थिति 'चित्त विक्षिप्ति' की है। अचेतन में पड़ी हुई वासनाएँ कई बार इतनी प्रबल हो जाती हैं कि मनुष्य अनजाने में ही विक्षिप्त का-सा व्यवहार करने लगता है। उसका मस्तिष्क चेतना शून्य-सा होकर उचितानुचित से सर्वथा निरपेक्ष कुछ-का-कुछ कह या कर बैठता है।

'चित्त-विकृति' की चरम परिणति 'असामाजिक-मनोवृत्ति' के रूप में दृष्टिगोचर होती है। रागात्मक वासनाओं की अतृप्ति कई बार इतना कुण्ठित कर देती है कि व्यक्ति संयम खोकर अमानवीय तथा नृशंस आचरण कर बैठता है। बलात्कार, हत्या, लूटपाट आदि द्वारा वह मानसिक कुंठाओं को तुष्ट करने का प्रयास करता है।

---

१. वैशाली की नगरवधू, पृ० ४६०।

२ द्रष्टव्य : जुग, टू ऐस्सेज आन अनैलिटिकल साइकालोजी, पृ० १६।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के अनेक नारी-पात्र इन असाधारण चित्त-वृत्तियों के शिकार दिखाई देते हैं। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम 'बहते आंसू' में भगवती और वसन्ती का उदाहरण प्रस्तुत है। उसकी अतृप्त काम वासना हरगोविंद के सम्पर्क से तृप्ति का मार्ग ढूंढती है। परिणामतः उसे अवैध गर्भपात की स्थिति के साथ परिवार के सभी लोगों की डांट फटकार का सामना करना पड़ता है। कई दिन तक वह हरएक की जली-कटी का सिर नीचा करके सुन लेती हैं किन्तु धीरे धीरे उसका चित्त विकृत हो उठता है और वह सोचने लगती है—'यदि यह पाप ही है तो उसे मैं ही भोगूंगी ये लोग क्यों दांव-दांव करके सिर खाए जाते हैं। तभी अकस्मात् जब उसकी मां कह बैठती है—'अरी कुल-च्छनी! कुलबोरनी!! तू पैदा होते ही क्यों न मर गई? मेरी ही कोख में तुझे जन्म लेना था, सत्यानाशन।' तो उसकी चित्त विकृति अनायास इन शब्दों में फूट पड़ती है— क्या है? क्यों मेरे पीछे टक टक लगाई है?—मरो तुम, तुम सब मर जाओ मेरी जूती मरेगी।—मैं हाड़ मांस की थोड़े ही हूं, ईंट पत्थर की हूं। तुम लोग खुशी से जीओ, गुलछर्रे उड़ाओ और मैं मर जाऊं। क्यों?"[1] भगवती की यह चित्तविकृति धीरे धीरे चित्तविक्षिप्ति और असामाजिक मनोवृत्ति का रूप धारण कर लेती है। वह विश्वासघाती, काम लोलुप हरगोविन्द की हत्या कर उसके घर को आग लगा देती है।[2] और अन्त में, पगली के रूप में, हस्पताल में चीख चीख कर मर जाती है।"[3] वसन्ती की असामाजिक मनोवृत्ति और भी भीषण है। अपनी कुण्ठित वासनाओं की प्रतिक्रिया स्वरूप वह गली मुहल्लों से बुरे मतलब के लिए लड़कियाँ चुराती फिरती है। कई बार जेल की सजा भोग चुकने के बाद भी वह इस कृत्य को छोड़ नहीं पाती।"[4]

मन की सहज वासनाओं की अतृप्ति मनुष्य को कितनी असाधारण चित्त-विकृति का शिकार बना देती है, इसका उदाहरण 'हृदय की परख' की नायिका सरला जैसी विदुषी, विवेकशीला और गुणवती युवती के चरित्र में देखा जा सकता है। सत्य के सहज अनुराग को वह आदर्श, आध्यात्मिक प्रेम के नाम पर उपेक्षित कर देती है किन्तु इलाहाबाद में विद्याधर के प्रति उसका हृदय आसक्त हो अनुराग के मधुर आनन्द-सागर में हिलोरें लेने लगता है। एक दिन सहसा विद्याधर द्वारा जातीय विवशता के कारण विवाह में अपनी असमर्थता प्रकट

बहते आंसू, पृ० १६८-६६।
२ वही पृ० २२६-२७।
३. वही, २५६।
४. वही, पृ० २२७।

करने पर घोर आदर्शवादिनी सरला का चित्त इतना विकृत हो उठता है कि वह पागलों का सा आचरण करने लगती है। उसकी मातृ-तुल्य पूज्या शारदा चिन्तित होकर सोचती है—'सरला तो पागल हो गई। अब क्या करूँ ?'[3] इसी विक्षिप्तावस्था मे वह प्रयाग से कई कोस आँधी मेह मे पैदल चलकर पूर्व सहचर सत्यव्रत के पास आ पहुँचती है।[2] किन्तु रात मे सोये सोये ही उसके प्राण पखेरू उड जाते हैं।[3]

'सोना और खून' मे इग्लैंड की महारानी एलिजाबेथ की काम अभुक्ति उसे एक के बाद दूसरे—कई पुरुषो की ओर आसक्त करती है। वह कभी एक प्रेमी पर कृपा-दृष्टि करती है तो कभी दूसरे पर। उसकी मुस्कान पर प्रभावित होकर न जाने कितने पुरुष अपनी जान जोखिम मे डाल चुके हैं। किन्तु उसके कुण्ठित मन की विकृति उस समय भीषण रूप धारण कर लेती है, जब वह अपने नव-प्रेमी अर्ल आफ एसक्स को एक अन्य सुन्दरी की ओर आकृष्ट देखती है। वह महारानी पद के अधिकार का प्रयोग करते हुए पहले तो अकस्मात उन दोनो के विवाह की घोषणा कर देती है और फिर तत्काल अर्ल आफ एसेक्स को एक घातक अभियान पर जाने का आदेश देकर, उन्हें सुहागरात तक मनाने का भी अवसर नही देती।[4] इससे उसकी मानसिक विकृति स्पष्ट है।

कई उपन्यासो मे कुछ नारी चरित्रो की असाधारण चित्तवृत्ति उन्हें असामाजिक कार्यो मे भी प्रवृत्त कर देती है। 'बदल बदल' की माया देवी, 'आभा' की आभा और 'पत्थर युग के दो बुत' की माया कुण्ठित वासना की तृप्ति के लिए अपने अपने पति के अतिरिक्त सन्तान को भी छोडकर पर-पुरुष का सहवास स्वीकार करती हैं। 'गोली' की रानी चद्रमहल अपनी दमित वासनाओ की तृप्ति के लिए, बाल सहवासी गगाराम के साथ अपने अनैतिक सम्बन्ध राजमहल में भी बनाए रखने के उद्देश्य से इतनी विवेकशून्य हो जाती है कि गगाराम के पुत्र को राजा के सयोग से उत्पन्न अपनी सन्तान अर्थात् राजकुमार घोषित करके न केवल राज्य के वास्तविक उत्तराधिकारी को अधिकार-च्युत करती है, अपितु अन्य राज्य-हितैषियों पर नृशस अत्याचार करती है।[5]

---

१. हृदय की परख, पृ० १३४।
२ वही, पृ० १४३।
३ वही, पृ० १४४।
४. सोना और खून, भाग-२, पृ० ५३।
५ गोली, पृ० ३४०।

६. अहम् भावना

फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों के व्याख्याता एडलर ने फ्रायड-निरूपित लिबिडो (Libido—काम-मूलक-ग्रंथि) को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना व्यक्ति की अहम् भावना को। उसके मतानुसार दूसरों पर किसी-न-किसी रूप में अधिकार जमाना मानव की सहज प्रवृत्ति है। इससे उसे विचित्र आत्म-तोष का अनुभव होता है। अपनी इस भावना पर तनिक-सा आघात लगने ही वह कई बार ईर्ष्यावश भीषण प्रतिशोध चाहता है। कई बार वह अपने 'अहम्' को ठेस पहुँचाने वाले से कोई प्रतिशोध न लेकर आत्मपीड़ित होता रहता है। अहम् भावना नारी की अपेक्षा पुरुष में अधिक पाई जाती है। फिर भी चतुरसेन के अनेक नारी चरित्रों में यह भावना है।

'हृदय की परख' की सरला का अहम् उसे सत्यव्रत के सहजानुरागी, कोमल हृदय की प्रणय याचना की अवहेलना पर बाध्य करता है। इसी अहम् भावना-वश वह अपनी वास्तविक जननी शशिकला का अपने घर आने पर तिरस्कार करती है। एक बार संयोगवश उसके घर पहुँच जाने पर भी उसके साथ इतना कटु व्यवहार करती है कि शशिकला विक्षिप्त होकर अन्ततः परलोक सिधार जाती है। सरला का अपना जीवन इसी 'अहम्' भावना के कारण सदा अशान्त रहता है। अन्त में कई ठोकरें खाने के बाद वह अहम् को त्याग कर स्वयं सत्य-व्रत के पास लौट आती है किन्तु तब तक उसका जीवन चुक जाता है।

'नीलमणि' की नायिका नीलम की अहम्-भावना और भी प्रबल है। उसे अपनी शिक्षा, वंश-प्रतिष्ठा, प्रगतिशीलता और विवेक-बुद्धि पर इतना घमण्ड है कि वह सर्वगुण-सम्पन्न, विनयी तथा सहृदय पति का बारम्बार तिरस्कार करने में आत्म तोष का अनुभव करती है। पति से प्रथम साक्षात्कार के समय, वह उसे 'अपरिचित' कहकर वापस लौट जाने पर बाध्य करती है। फिर रेल यात्रा में स्वयं दूसरे दर्जे में बैठकर भी पति द्वारा तीसरे दर्जे में बैठने को अपना अपमान समझती है। ससुराल में जाने पर, पति द्वारा दिखाई गई अत्यधिक शालीनता को वह अपने प्रति व्यंग्य मानकर बौखला उठती है। वह पति को व्यंग्य करते हुए कहती है—"''आप मेरे मालिक और मैं आपकी जायदाद हूँ। मेरा आपा खो गया है। मेरे सारे स्वत्व खत्म हो गए हैं'''आप का मुझ पर असाध्य अधिकार है। इस अधिकार के बल पर उस दिन आप बिना मेरी अनु-मति लिए मेरे कमरे में घुस आए थे और फिर बिना मेरी अनुमति के आप मुझे अपने घर ले आए।"[१]

---

१. नीलमणि, पृ० ६४।

उसका यह 'अहम्' उसे पति से निरन्तर दूर कर, उसके मन को सदा विदग्ध किए रहता है। उसका 'उज्ज्वल आलोक की ज्वाला' सा जीवन 'बुझी हुई राख-सा हो जाता है।'[1] अन्तत जब वह पूर्णत 'अहम्' मुक्त होकर, दोनो हाथों से छाती दबाकर यह कामना करती है कि—'उन्होंने मुझ पर बलात्कार क्यो नही किया ?' तो उसका जीवन फिर से लहलहा उठता है। वह अकस्मात्, माता-पिता के सामने, अपनी ससुराल जाने की घोषणा करते समय अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव करती है।'[2]

'रक्त की प्यास' की नायिका इच्छनीकुमारी की अहम् भावना न केवल उसे धर्म सकट मे डाल देती है अपितु समूचे आबू तथा गुर्जर-प्रदेश को भीषण युद्ध की ज्वाला मे झोक देती है। वह पहले तो स्वय 'अहम्' का परिचय देती हुई गुर्जर कुमार भीमदेव को अपने हरण के लिए आमन्त्रित करती है। फिर कुमार के आगमन पर, पुन 'अहम्-भावना का प्रदर्शन कर, उसका तिरस्कार करती है। परिणाम यह होता है कि रक्तपात का ताण्डव सहस्रो की बलि ले लेता है।

'वैशाली की नगरवधू' की नायिका अम्बपाली तथा 'अपराजिता' की नायिका राज मे 'अहम्' भावना इतनी प्रचण्ड है कि उसके ताप से समूचा समाज झुलस जाता है। अम्बपाली के 'अहम्' के सम्मुख सम्पूर्ण वैशाली गणराज्य और मगध-साम्राज्य नतमस्तक हो जाते हैं। राज का 'अहम्' ठाकुर-परिवार की युग-युग से सचित प्रतिष्ठा को धराशायी कर सन्तुष्ट होता है।

'आलमगीर' की बेगम जहाँआरा 'अहम्'-भावना की जीवन्त प्रतिमूर्ति है। उसकी अवज्ञा का साहस कोई राजा, सामन्त या अमीर-उमराव नहीं कर सकता, बादशाह शाहजहाँ और शाहजादा दाराशिकोह उसके सम्मुख मुँह नहीं उठा सकते। छत्रसाल के प्रति कहे गए उसके ये शब्द उसकी 'अहम्'-भावना को स्पष्ट करते हैं—'तुम्हारी यह हिमाकत कि हमारी आरज़ू और मुहब्बत को ठुकराओ। क्या तुम नही जानते कि हमारे गुस्से मे पडकर बडी से बडी ताकत को दोजख की आग मे जलना पडता है।'[3]

'गोली' मे कुँवरी की 'अहम्' भावना जीवन पर्यन्त उसकी सम्पत्ति बनी रहती है। वह पति के अविवेकपूर्ण, अनैतिक आचरण को अपना अपमान समझ जीवन-भर उससे बात न करने का सकल्प लेती है। उसके ठाकुर पिता, अंग्रेज

१. नीलमणि, पृ० ८७।
२. वही, पृ० ९३-९४।
३. आलमगीर, पृ० ८६।

रेजीडेण्ट आदि पति के साथ उसका समझौता कराने का बहुत प्रयास करते हैं किन्तु उसका 'अहम्' तिल भर भी नहीं डिगता।[1]

'पत्थर युग के दो बुत' की रेखा अहम् भावना से अभिभूत होने के कारण अपने और पति के जीवन को विषम परिस्थितियों में उलझा देती है। पति का अपने ही 'बर्थ-ड' पर घर में उपस्थित न रहना मानो उसके 'अहम्' के लिए चुनौती बन जाता है और यही चुनौती अन्त में उसे घर से बाहर ले जाकर अर्थात् पर-पुरुष की ओर उन्मुख कर, उसके जीवन में नया मोड़ ले आती है।

१०. अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी-चरित्रों में कतिपय अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त भी यत्र-तत्र हैं। उदाहरणार्थ— हृदय की प्यास' में सुनन्दा हीनता-ग्रन्थि से ग्रस्त है। भगवती की बहू के दिव्य सौन्दर्य के सम्मुख उसे अपनी कुरूपता अखरती है। सम्भवतः इसी हीनता ग्रन्थि के कारण वह पति के प्रत्येक उचितानुचित आचरण को सहने पर बाध्य है। 'सोना और खून' के दूसरे भाग में एलिजाबेथ भी हीनता-ग्रन्थि का शिकार है। इसका प्रमाण उसका अपना यह कथन है— मैं मूर्ख, अपने रानी के रूप को सर्वोपरि समझती रही। अपना औरत का रूप मैंने नहीं देखा। मर्द, प्यार औरत को करता है, रानी को नहीं। मैं नहीं जानती कि मैं एक औरत हूँ।'''कैसे आश्चर्य की बात है। रानी की सम्पूर्ण गरिमा को चीर कर यह औरत कहाँ से मेरे अन्दर से निकल आई, मुझे अपमान, निराशा और पराजय में ढकेलने के लिए।"[2]

फ्रायड ने विभिन्न मनोव्यापारों के अन्तर्गत 'आरोपण' नामक मानसिक क्रिया-पद्धति का उल्लेख किया है। सामान्य रूप से मनुष्य अपने दुर्गुण दूसरों की दृष्टि से छिपा कर रखना चाहता है और उन्हीं दुर्गुणों की कल्पना अन्य लोगों में करता है। 'आरोपण' का यह मनोभाव थोड़ा बहुत प्रत्येक मनुष्य में होता है, परन्तु कतिपय सम्पन्न निम्नकोटि के व्यक्तियों के चरित्र में इसकी विशेष प्रखरता दिखाई देती है। 'खून और खून' में गोविन्द की माँ का चरित्र इस बात का साक्षी है। वह अपनी विधवा पुत्रवधू पर गाँव के एक भोले युवक गणेश के साथ अनैतिक सम्बन्ध होने का बार-बार आरोप लगाती है। वस्तुतः, गाँव के रईस लाला रामकिशोर के साथ अपने अनैतिक सम्बन्धों पर पर्दा डाले रखने का उसका यह घिनौना प्रयास है।

---

१. गोली, पृ० १२०-२१।
२. सोना और खून, भाग-२, पृ० ५४।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में कुछ नारी पात्र अन्तर्मुखी हैं। ये मनोविज्ञान की दृष्टि से विशिष्ट चरित्रों में परिगणनीय हैं। 'हृदय की परख' की सरला, हृदय की प्यास' की सुखदा, 'बहते आँसू' की नारायणी, 'आत्मदाह' की सरला, 'नीलमणि' की मणि, 'रक्त की प्यास' की लीलादेवी, 'अपराजिता' की राधा, 'धर्मपुत्र' की अरुणा, 'गोली' की केसर 'पत्थर युग के दो बुत' की लीलावती, 'ईदो' की सम्राज्ञी नागाको और 'शुभदा' की रानी रासमणि की गणना ऐसे नारी-पात्रों में की जा सकती है।

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के नारी चरित्रों में मनोविज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्तों की अवतारणा के विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि अपने उपन्यासों में विभिन्न नारी-पात्रों की सृष्टि करते समय आचार्य चतुरसेन की दृष्टि उनके बाह्य व्यक्तित्व को सजीवता से रेखांकित करने के साथ उनके मनोजगत् के यथार्थ चित्रांकन की ओर भी रही है। आचार्य जी अपने व्यावहारिक जीवन में एक कुशल शरीर चिकित्सक के साथ मनोविज्ञान शास्त्र एवं काम-शास्त्र के गहन अध्येता थे। फ्रायड आदि मनोविज्ञान-शास्त्रियों का उन्होंने अपने उपन्यासों में एकाधिक बार उल्लेख किया है। उनके उपन्यासों के कई आधुनिक नारी-पात्र मनोविज्ञान वेत्ता हैं। हुस्नबानू रेखा, आभा आदि मनोविज्ञान में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त किए हुए हैं। इस स्थिति में उनके नारी-चरित्रों का मनोविज्ञान विश्वसनीय है। उनके नारी-चरित्र अधिकांशतः फ्रायड-निरूपित 'काम-मूलक-दमित' के सिद्धान्त को चरितार्थ करने वाले हैं। आचार्य जी की चरित्र-चित्रण कला का वैशिष्ट्य यह है कि उनमें प्रधानता चरित्र की है—मनोविज्ञान की नहीं, अर्थात् उन्होंने मनोविज्ञान सम्बन्धी सिद्धान्तों को सामने रखकर नारी-चरित्रों की सृष्टि नहीं की, अपितु उनके नारी-पात्र परिस्थिति और परिवेश के अनुसार ही अपनी स्वाभाविक मानसिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। संयोगवश वे मनोवैज्ञानिकता की कसौटी पर भी सहज विश्वसनीय और वास्तविक बन गए हैं। यह आचार्य जी के नारी-चित्रण की मनोविज्ञानाश्रित सफलता है।

अष्टम अध्याय

आचार्य चतुरसेन की नारी विषयक मान्यताएँ

नारी-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं का स्वरूप

नारी जीवन से सम्बन्धित अधिकांश समस्याओं का मूल-तन्तु पुरुष के साथ उसके सबन्धों में स्थित है। भारतीय समाज-सगठन की सबसे छोटी इकाई परिवार है। परिवार का मुखिया कोई न कोई पुरुष ही होता है। नारी चाहे पुत्री, बहिन, पत्नी, प्रेमिका या माँ भी हो, उसे किसी न किसी रूप में पुरुषाभिमुख होना ही पड़ता है। पुरुष द्वारा उसके प्रति अपनाए गए रुख की अनुकूलता प्रतिकूलता, सहृदयता, उदासीनता अथवा समर्पण अधिकार की प्रवृति उसके जीवन की दिशा का निर्धारण करती है। इस पर यदि नारी का निजी व्यक्तित्व स्वतन्त्र है, तो पुरुष से उसके विचारों की टकराहट अनेक प्रश्न उत्पन्न कर देती है। इन सब कारणों से समाज में, नारी जीवन की अनेक समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं। इन्हें प्रायः उपन्यासकार चित्रित करने का प्रयास करते हैं। इन समस्याओं का विश्लेषण करते समय उपन्यासकार उनके कारण और समाधान विषयक अपने जो विचार प्रकट करता है, उसी को हम उसकी 'नारी दृष्टि' कह सकते हैं। उपन्यास में नारी जीवन सम्बन्धी समस्याएं समाविष्ट होती हैं। उनका समाधान उपन्यासकार अपनी नायिकाओं अथवा अन्य नारी पात्रों की सहायता से करता है।

आचार्य चतुरसेन इस दृष्टि से जागरूक उपन्यासकार प्रमाणित हुए हैं। उन्होंने अपने उपन्यासों में इतिहास के विभिन्न युगों और मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों से कथाओं का चयन कर विविध स्थितियों और पात्रों के माध्यम से नारी सम्बन्धी समस्याओं के सभी सम्भव पक्षों को उभारा है। साथ ही, उनके यथोचित समाधान का निर्देश भी पूरे विश्वास के साथ किया है।

विश्लेषण की सुविधा के लिए इन समस्याओं को प्रमुखत चार वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) विवाह सबधी समस्याएँ, (२) प्रेम और यौन सबधी समस्याएँ (३) आर्थिक स्वाधीनता और अन्य अधिकार सम्बन्धी समस्याएँ तथा (४) अन्य स्थानीय अथवा सामयिक समस्याएँ।

विवाह सम्बन्धी समस्याओं के अनेक रूप हैं। जैसे अनमेल विवाह, बाल विवाह, विधवा विवाह बहु विवाह, अन्तर्जातीय विवाह और विवाह विच्छेद (तलाक) आदि।

प्रेम और यौन-सम्बन्धी उलझनें नारी-जीवन की सबसे बडा अभिशाप हैं। इनका भीषणतम रूप है—वेश्या समस्या। वेश्या वृत्ति के आर्थिक और सामाजिक कारण बताए जा सकते है, किन्तु उसका मूल कारण यौन विकृति है। इस समस्या के अन्य पक्ष स्त्री पुरुष के पारस्परिक तनाव, अनैतिक यौनाचार आदि के रूप मे देखे जा सकते हैं।

आर्थिक स्वाधीनता एव अधिकार प्राप्ति की समस्या के कई पक्ष हैं। इनमें से कुछ हैं, आर्थिक विषयो मे नारी का अधिकार, परिवार और समाज मे नारी का स्थान, रूढियो के विरुद्ध विद्रोह और सार्वजनिक क्षेत्र मे नारी की स्वाधीनता आदि।

अन्य विविध स्थानीय या सामयिक समस्याओं के अन्तर्गत भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य मे जिन प्रथाओं का नामोल्लेख किया जा सकता है, वे हैं—देवदासी प्रथा, सती प्रथा और गोली प्रथा।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो में उपर्युक्त सभी समस्याएँ विविध रूपो मे चित्रित हुई हैं। उनका क्रमश विशद विवेचन प्रस्तुत है।

(१) विवाह सबंधी समस्याएँ

(क) अनमेल विवाह

आचार्य चतुरसेन ने अनमेल विवाह के दो रूप प्रस्तुत किये हैं। प्रथम, स्त्री-पुरुष की आयु की असमानता और द्वितीय, उनकी रुचियो की असमानता। प्राचीन भारतीय सामाजिक विधान मे इस बात का स्पष्ट निर्देश मिलता है कि विवाह के समय वर और वधू दोनो युवा होने चाहिएं। ऋग्वेद मे कहा गया है कि 'ब्रह्मचारिणी और विदुषी युवतियाँ उसी प्रकार युवा पुरुषों का वरण करें जैसे नदी समुद्र को प्राप्त होती है।'[1] वेदो मे यह भी कहा गया है कि 'स्त्री-पुरुष दोनो परस्पर सहायक बनकर, एक दूसरे के स्वभाव और आचरणों का

---

१. ऋग्वेद, ३, ३५, ४।

अनुकरण करें और एक दूसरे के सद्गुणों को धारण करते हुए, आजीवन मैत्री पूर्वक रहें।"[1]

इस मान्यता मे, दम्पती मे रुचियो की समानता की आवश्यकता का स्पष्ट निर्देश है। जब भी इस औचित्य की उपेक्षा होती है, तभी दाम्पत्य-जीवन मे विकृति उत्पन्न हो जाती है। आचार्य चतुरसेन ने 'वहते आँसू' मे दमन्ती नामक युवती का एक बूढे के साथ ब्याह दिखा कर उसका दुष्परिणाम दिखाया है। वह बाल्यावस्था मे विधवा होकर पहले तो भीख मागती है, कष्ट सहती है, परन्तु शीघ्र ही यौवन की आंधी उस पतन के मार्ग की ओर उडा ले जाती है। 'धर्मपुत्र' मे कमसिन हुस्नबानू को उसका दादा नवाबी शान के नाम पर एक पचपन वर्षीय, क्लीव नवाब वजीर अली खाँ से ब्याह देता है। हुस्नबानू आठ वर्ष तक पति अस्पृष्टा रहकर विधवा हो जाती है। लेखक ने ऐसे अनमेल विवाह को लगूर के हाथ मे अगूर की डाली' कहकर भर्त्सना की है।

रुचियो के वैभिन्न्य के कारण पति पत्नी मे अनबन का उदाहरण 'नीलमणि' उपन्यास मे है। नीलू और महेन्द्र दोनो सुशिक्षित, समवयस्क और विवेकशील हैं किन्तु दोनो की जीवन दृष्टि मे आकाश-पाताल का अतर है। इससे इनका दाम्पत्य जीवन विषमय बन जाता है। नीलू अपने अनमेल विवाह का विश्लेषण करते हुए पति से कहती है—'आपके विचार क्या हैं? और मेरे क्या हैं? यह बात एक दूसरे को मालूम है? क्या ऐसी कोई बात है कि जिस से हम लोग एक-दूसरे के निकट घनिष्ट हो सकें? आप के चरित्र, स्वभाव और विचारो से मैं अपरिचित हूँ और आप मेरे से···।"[2]

(ख) बाल विवाह

बाल विवाह की समस्या भारतीय समाज मे ही नही, समूचे विश्व-समाज में चिन्ता का विषय रही है। फ्रान्स के राजा फिलिप्स का इग्लैंड की बारह वर्षीय राजकुमारी तथा बाद मे एक नौ वर्षीय बालिका से विवाह बहुत चर्चा का विषय रहा है। एलिजाबेथ हार्डविक का विवाह तेरह वर्ष की आयु मे ही कर दिया गया था। इग्लैंड के सम्राट् हेनरी सप्तम के अत्यन्त निर्बल होने का यही कारण बताया जाता है कि उसकी माँ कुल नौ वर्ष की अवस्था मे पत्नी और दस वर्ष की अवस्था में उसकी जननी बन गई थी। 'किन्तु इस निकृष्ट और घृणित प्रथा ने जितना बडा आघात हिन्दू जाति को पहुँचाया है उतना किसी

---

१. यजुर्वेद, ११, ५२।
२. नीलमणि, पृ० १८।

ने नहीं पहुँचाया।"[1] यह समस्या प्रकारान्तर से अनमेल विवाह और विधवा-समस्या के साथ जुड़ी हुई है। अतः आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासों में इस नारी-समस्या को प्राय. इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया है। 'बहते आँसू' उपन्यास में वर्णित छहों विधवाओं (नारायणी, भगवती, सुशीला, वसन्ती, मालती और कुमुद) में से केवल कुमुद को छोड़कर अन्य सभी का दुर्भाग्य बाल-विवाह के साथ जुड़ा हुआ है। 'आत्मदाह' में सरला, 'सोमनाथ' में सोभना, और 'शुभदा' में शुभदा के वैधव्य का कारण यही समस्या है।

चतुरसेन की दृष्टि में छोटी आयु में बालिकाओं का विवाह बहुत-सी नारी-समस्याओं की जड़ है। 'बहते आँसू' में उन्होंने बाल-विधवा बहिनों—भगवती और नारायणी—के पिता जयनारायण से कहलाया है—"देखो, जब पेड़ छोटा होता है, तो बड़े यत्न से उसकी रक्षा करनी पड़ती है, बाड़ लगानी पड़ती है। ज़रा-सी आँधी, पानी, धूप के कारण ही वह नष्ट हो जाता है। उसके बढ़ने का कुछ भी भरोसा नहीं होता। अन्त में जब बढ़कर दृढ़ हो जाता है, उसके सब अंग पुष्ट हो जाते हैं, तो बड़ी-बड़ी आँधी के झोंकों में भी नहीं गिरता। यही हाल आदमी का भी है। जब बालक छोटा होता है तो ज़रा-सी सर्दी-गर्मी हवा का उस पर असर होता है, अनेक रोग पीछे लगे रहते हैं, पर ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगता है, उसके सब अंग सबल हो जाते हैं, तब वह कम बीमार पड़ते हैं। इसी से कहता हूँ कि बाल-विवाह से विधवाएँ अधिक होती हैं, और यह तो साफ बात है कि मैं जो 'नीरो' का ब्याह ही अभी न करता तो वह विधवा कैसे होती?"[2]

आचार्य चतुरसेन को, कुछ विचारकों द्वारा प्रतिपादित, बालविवाह का यह कारण स्वीकार्य नहीं कि भारत में लड़कियाँ छोटी आयु में रजस्वला हो जाती हैं, अतः उनका छोटी आयु में विवाह कर देना श्रेयस्कर है। उनकी दृष्टि में बाल-विवाह के मुख्य कारण हैं—देश में अज्ञान और स्वार्थ की अधिकता, स्त्रियों का अधिकार-वंचित होना, घरों में बालिकाओं के गुड्डे-गुड़िया के खेल को प्रोत्साहन, माता पिता द्वारा शैशव से ही बालिकाओं के सम्मुख विवाह, दूल्हा, ससुराल आदि की बातें करना आदि।"[3] बाल-विवाह प्रथा से होने वाली समाज की क्षति को देखकर आचार्य जी व्यथित हो उठते हैं—"हमारी नस्ल बर्बाद हो गई, ज़िन्दगी घट गई, तन्दुरुस्ती मिट्टी में मिल गई। रह गई हड्डी की

---

१. आचार्य चतुरसेन, नारी, पृ० ११३।
२ बहते आँसू पृ० ५९।
३ आचार्य चतुरसेन, नारी पृ० १२६।

गठरी, रह गई प्रघमरी देह, इसका क्या कारण है ? वही जालिम माँ-बापों की बहू देखने की लालसा।"[7] और वे समाज के कर्णधारों से दर्दभरी अपील करते हैं—'भाइयो, यदि जाति और समाज को बल-प्रदान करना हो तो इस भयानक प्रथा को दूर कर दो। अपने बच्चों पर तरस खाओ और उन्हें जीवित रहने दो। इस हत्यारे बाल विवाह से उनकी रक्षा करो।'[8]

(ग) विधवा-समस्या

उपन्यासकार ने विधवा-समस्या का प्रमुख कारण बाल विवाह को माना है। फिर भी उनके अनेक नारी पात्रों को अन्य परिस्थितियों मे भी वैधव्य का दुःख भोगना पड़ा है। उदाहरणार्थ, 'बहते आँसू' की कुमुद का दाम्पत्य जीवन हर प्रकार से आदर्श और आनन्दमय है, किंतु पति के प्लेग प्रकोप मे परलोक सिधार जाने के कारण विधवा हो जाने पर, इसके जीवन के सारे वरदान अभिशाप में बदल जाते हैं। 'रक्त की प्यास' मे नायिकादेवी तथा 'वय रक्षाम' मे मन्दोदरी और सुलोचना अपने-अपने पति के युद्ध मे वीरगति प्राप्त करने के कारण विधवाएं होती हैं। 'सोना और खून' मे रानी लक्ष्मीबाई का पति रोग-वश काल का ग्रास बन जाता है। वास्तव मे मनुष्य की मृत्यु तो उसकी अनिवार्य नियति है ही, वह छोटी या बड़ी किसी भी अवस्था में आ सकती है, किन्तु आचार्य जी दिखाना चाहते हैं कि दम्पती मे से किसी एक पक्ष की मृत्यु किस प्रकार दूसरे के लिये भिन्न परिस्थितियाँ पैदा कर देती है। एकाध उदाहरण को छोड़कर, जैसे 'आत्म दाह' मे सुधीन्द्र की पत्नी माया की मृत्यु उसे आजीवन असन्तुलित बनाये रखती है, प्राय. स्त्री की मृत्यु पुरुष के लिए क्षणिक अवसाद की एक अस्थिर रेखा-मात्र सिद्ध होती है। इसके विपरीत पुरुष की मृत्यु के पश्चात् स्त्री के लिए जीवन, परिवार, समाज—सभी कुछ विद्रूप हो जाता है। विधवा हो जाने के पश्चात् नारी की जो दुर्दशा होती है, उसका मार्मिक चित्रण आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासों मे किया है। 'बहते आँसू' मे बाल विधवा नारायणी ससुराल मे अपने साथ किये जाने वाले अमानुषिक व्यवहार की व्यथा-गाथा अपने पिता को सुनाती हुई कहती है—'वे सब बात-बात मे मुझे गाली देन, मारन और दुःख देन लगे। चाचा जी(श्वशुर) ने तो मेरे हाथ का अन्न-जल त्याग दिया। जब मैं पीने का पानी लेकर जाती तो सैकड़ों गाली सुनाते, 'डायन', 'अभागिनी' कहकर और लात मार कर गिलास फेंक देते।'''रसोई मे मुझे कोई

---

७ आचार्य चतुरसेन, पृ० ११६।

८. वही, वही, पृ० १२८।

घुसने नहीं देता था। सब के खा-पी चुकने पर, दो-तीन बजे रूखी-सूखी जो मिलती, खाती'' चाहे जो अच्छा हो या न हो, रात को बारह बजे तक चौका बासन मुझे ही करना पड़ता था।'''अन्त मे खाट पर गिर गई। इस पर भी जिठानी ने मक्र-फरेब बताया। ''सास ने रस्सी लेकर ऐसी मार लगाई कि मैं अधमरी हो गई।''[1]

यह तो रही ससुराल की बात, माँ-बाप के घर भी विधवा कन्या की क्या दुर्दशा होती है, उसे इस उपन्यास मे नारायणी की बडी बहिन बताती है—'मेरे माँ-बाप हैं ही कहाँ? मेरे माँ बाप होते तो क्या मेरी यह गति बनती? मैं कुत्तो, जानवरो, भिखमगो से भी अधिक दु ख, अपमान और अवहेलना मे स्नान कर-करके वर्षों से टुकडे खा रही हूँ, खून पी-पीकर जी रही हूँ। बदनामी की स्याही मे मुँह काला हो रहा है, लोग मेरा नाम लेने मे घृणा करते हैं, सुहागिनें मुह नही देखती, अपने बच्चो पर परछाई तक नहीं पडने देती, भले घर की बेटियो को मेरी हवा लग जाती है तो उन्हे पाप लगता है। माँ-बाप के सामने सतान की ऐसी दुर्दशा हो सकती है क्या? मेरे माँ-बाप कहाँ हैं? मैं तो राक्षसो के बीच पड गई हू।''[2]

नारायणी और भगवती की इस दुर्दशा का कारण अधिकाशत सामाजिक है। समाज मे प्रचलित लोक-विश्वासो और अन्ध-रूढियो के कारण मायके और ससुराल दोनो जगह विधवा की स्थिति अशुभ, गर्हणीय और तिरस्कार्य मानी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ आर्थिक और मनोवैज्ञानिक कारणो से भी विधवा स्त्री को पग-पग पर मानसिक और शारीरिक यातनाएँ सहन करनी पडती हैं। 'बहते आँसू' मे कुमुद का पति जब प्लेग-ग्रस्त हो मर जाता है, तो कुमुद सहसा जैसे आकाश से गिरकर रसातल मे पहुँच जाती है। ससुराल मे एक तपस्विनी साध्वी का जीवन व्यतीत करते हुए भी, जब उसका विधुर-कामुक जेठ अपनी लम्पटता के कारण तथा उसकी सधवा जेठानियाँ-देवरानियाँ अपने वाग्बाणो की वर्षा के कारण उसका जीना दूभर कर देती हैं, तो वह भाई और भाभी के घर शरण लेने का निश्चय करती है। किंतु उसे देखते ही 'उसकी भौजाई घृणा से मुह सिकोड लेती है। वह कुमुद, डिप्टी साहिब की स्त्री, जिसके घर आने पर गाँव भर मे धूम मच जाती थी, एक मैली साडी पहने, गोद मे बच्चे को लिए, नगे पैर द्वार पर भिखारिन के वेश मे खड़ी है। भाई ने उसे चुपचाप घर में ले लिया। कोई कुछ बोला नहीं। किसी ने कुछ पूछा भी नहीं। कुमुद ने देखा, यह

१ बहते आँसू पृ० ६१-६२।
२. वही, पृ० २०५।

क्या बात है ? सारा ससार ही विमुख हो गया है।"[1]

'बहते आँसू' मे सुशीला का वैधव्य आर्थिक विपन्नता के कारण उसके लिए अनेक सकट उपस्थित कर देता है। वह इस ससार मे सर्वथा एकाकिनी और निराश्रिता है। कपडे सीकर किसी प्रकार नित्य एक समय पेट की ज्वाला शान्त कर पाती है। वह एक कुटिला बुढिया के मकान मे किराये पर रहती है, परतु कई-कई महीने तक किराया नही दे पाती। परिणामत एक ओर वह बुढिया मकान खाली कराने की धमकियो के साथ उसे रूप और यौवन का विक्रय करने की परोक्ष प्रेरणा देती है। दूसरी ओर, सिलाई कराने वाले रईस उसे सिलाई के दाम देने के बजाय अपनी कामुकता और लम्पटता का प्रसाद देने को अधिक तत्पर रहते हैं। सयोगवश, उस प्रकाश के रूप मे एक सच्चरित्र और शीलवान् युवक सरक्षक के रूप मे मिल जाता है। पर सभी विधवाओ और आर्थिक विपन्नता मे ग्रस्त नारियो का तो ऐसा सौभाग्य नहीं होता। इसलिये समस्या की विकटता तनिक भी कम नही होती। इसका उदाहरण लेखक ने इसी उपन्यास मे वसन्ती और मालती के माध्यम से प्रस्तुत किया है। वसन्ती बाल विधवा है। यौवनागम की वेला मे कुसगति मे पडकर वह अनेक दुर्व्यसनों मे ग्रस्त हो जाती है। यौवन ढल जाने पर उसके रूप और शरीर के प्रशसक और ग्राहक तो मुँह मोड लेते हैं, पर व्यसनो की चाट उसका पीछा नही छोडती। 'एक समय था, जब बडे-बडे रईस उसके तलुवे चाटा करते थे, पर समय बदलते ही, उसे गली-मुहल्लो मे बुरे मतलब के लिये लडकियाँ चुरानी पडती हैं क्योकि पाँच रुपये रोजाना तो उसका शराब का खर्च है। जिस मजिस्ट्रेट की अदालत मे उसका मुकदमा जाता है, वह भी यह सोच कर चिंतित हो उठता है कि इस दोष का निराकरण कानून क्या करेगा, जिसमें सिर्फ नियत्रण है ? क्या दड से ऐसी पतित आत्माओ का सुधार हो सकता है ?···न जाने कितनी स्त्रियाँ इस प्रकार नष्ट हो रही हैं, अवश्य ही यह इस अपराध की भागिनी नहीं। जिस समाज ने इन्हें पैदा करके यहाँ तक गिरने मे सहायता दी है, प्रकृत अपराधी तो वह समाज है।"[2] नारी की रक्षा मे असमर्थ कानून की विवशता इसी मजिस्ट्रेट की अदालत मे प्रकट होती है, जब विधवाश्रम की आड मे नारी विक्रय का व्यापार करने वालों के चगुल मे फँसी हुई मालती का मुकदमा उसके सामने आता है। मालती आदि विपद्ग्रस्त स्त्रियो की रिहाई के आदेश के बाद सभी चले जाते हैं, पर मालती वही खडी रहती है। उसकी समस्या है कि कानून ने उसे स्वतत्र कर दिया परन्तु

---

१. बहते आँसू, पृ० १४८।
२. वही, पृ० २२७-२८।

समाज ने तो नहीं। वह अदालत से बाहर कहीं भी जाना सुरक्षित नहीं समझती। किंतु मजिस्ट्रेट का कथन यह है कि कानून तो अपना काम कर चुका।'[1]

विडम्बना का अन्त यहीं नहीं हो जाता मजिस्ट्रेट व्यक्तिगत नैतिक साहस का परिचय देते हुए मालती के पिता को तार देकर उसे ले जाने के लिये सन्देश भेजता है, और तब तक उसे अपनी माँ के पास ठहरा देता है। किन्तु पिता का उत्तर मिलता है—'उसे हम घर मे नहीं रख सकते, जातीय मर्यादा बाधक है।'[2]

इस प्रकार विधवा के रूप मे क्रदन करती नारी का चीत्कार उपन्यासकार ने अनेक रूपो मे और कई माध्यमो से उपन्यासो मे व्यक्त किया है। उसकी दुर्दशा के महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक कारण की ओर भी उन्होने इगित किया है। वह है उसका नारी-सुलभ चापल्य एव उसके शरीर मे यौवन के आगमन के साथ-साथ अन्तर्मन मे रागात्मक लालसाओ का उदय। 'बहते आँसू' की वसन्ती और मालती का इसी कारण कुपथ की ओर अग्रसर होने का उदाहरण हम देख चुके हैं। शोभना (सोमनाथ) की स्थिति भी इसी प्रकार की है, यद्यपि उसका वैसा गर्हित परिणाम नहीं होता। सातवाँ वर्ष लगते ही अधर्म के भय से उसके पिता कृष्ण स्वामी ने लग्न शोध कर उसका विवाह कर दिया था। पर आठ वर्ष की आयु पूरी होने से पूर्व ही वह विधवा हो गई। विधवा होने पर भी वैधव्य की आन वह मानती न थी। वह हर समय खूब ठाठ-बाट का शृगार किए रहती। आँखो म अजन, दाँतो मे मिस्सी, बालो म ताज़े फूलों का जूड़ा, पैरों में महावर, होठो म पान, और हाथो मे मेहदी आठो पहर उसके अग मे देखे जा सकते थे।'''विधि निषेध करने, समझाने बुझाने पर भी वह सब की सुनी अन-सुनी करके नृत्य करने और हँसने लगती थी।'[3] अतत पिता के ही दासी-पुत्र देवा के प्रति उसका प्रेम इतना प्रगाढ हो गया कि वह घर, परिवार, वश, समाज—'सब की मर्यादा छोड, देवा के मुसलमान बन जाने पर भी, सदा के लिए उसी की हो रही।

यह तो हुआ प्रेम का आदर्श रूप। अत इस स्थिति मे न तो वैधव्य को अभिशाप कहा जा सकता है और न ही शोभना की प्रकृत रागात्मक प्रवृत्ति को दूषित माना जा सकता है। ऐसी अभागिनी विधवाओ की सख्या गणनातीत है, जिन्हें अकारण अपने मन प्राण पर असीम सयम रखने पर भी, मात्र विधवा होने के अपराध मे जीवन भर यातनाओ की ज्वाला मे जलना पड़ता है। गोविन्द

---

१. बहते आँसू पृ० २२६।
२. वही, पृ० २३०।
३ सोमनाथ पृ० ३२-३३।

की बहू (खून और खून) गोविन्द के असमय परलोक सिधार जाने के बाद, नित्य सास के वाग्बाणों के साथ शरीर पर रस्सी के कोड़ों की मार सहन करती है। उसकी स्थिति पर हमीद की टिप्पणी है—'यदि यही स्त्री आप में से किसी की बहिन या बेटी होती और इस दुर्दशा में पड़ी होती तो क्या आप उसकी मृत्यु की कामना करते ? क्या आप यह चाहते कि वह दिन भर दुःखी रहे, रोती रहे, और रस्सी की मार सहे, केवल इसलिए कि वह विधवा है। मैं आप सबसे यह प्रार्थना करता हूँ, विनती करता हूँ कि आप इस विधवा को जीवन-दान दें। इसे जीने का अधिकार दें। इसे हँसने का अधिकार दें। वह जीवन, वह हास्य कैसे मिलेगा ? इसे सम्मान और प्रेम देकर।"[1]

उपन्यासकार ने विधवा समस्या का एकमात्र समाधान बतलाया है—विधवा का पुनर्विवाह। इस संबंध में उसने अनेक उपन्यासों में उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। *'बहते आंसू'* में *तीन विधवाओं (नारायणी, सुशीला, मालती)* के पुनर्लग्न का प्रसंग प्रस्तुत करके, समाज के सम्मुख इस समस्या का एक आदर्श एवं व्यावहारिक समाधान रखा गया है। लेखक ने बताया है कि रूढ़िवादी अंध-परंपरा भक्त लोगों द्वारा किस प्रकार इस विचार का विरोध होता है, और सुधारवादी लोगों को इसके लिए कितना संघर्ष करना पड़ता है। इस उपन्यास में रामचन्द्र, जयनारायण, प्रकाश, श्याम एवं सुशीला उपन्यासकार के विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। रामचन्द्र नारायणी और भगवती के पिता जयनारायण का पड़ोसी है। उसका दृष्टिकोण सुधारवादी है। दो-दो बाल विधवा कन्याओं के पिता जयनारायण की अन्तर्व्यथा को देखकर, वह उन नारायणी के पुनर्विवाह की प्रेरणा देते हुए कहता है—'यदि आपको उसकी घोर विपत्ति में सहानुभूति प्रकट करनी है, उसकी कष्ट की बेड़ी काटनी है, तो फिर से उसका विवाह कर डालिये और देखिये, उसके पूर्वजन्म के संस्कार भाग जाते हैं और आपको स्वतन्त्रता में काम करने का अवसर मिल जाता है।' जयनारायण सैद्धान्तिक रूप से रामचन्द्र की बात स्वीकार करता है किन्तु जातीय रूढ़ियों से टकराने की उसमें हिम्मत नहीं। वह कहता है—'यह सब क्या सम्भव है ? रामचन्द्र बाबू ! मुझ अकेले की जान पर बीतती तो नरक की भयानक आग में भी कूद पड़ूँगा, पर इन सर्वनाशी हत्यारे जाति विधुनों को तो आप देखते ही हैं। बताओ मेरे बाल-बच्चों का कहीं ठिकाना रहेगा ?'[2] इस पर लेखक ने रामचन्द्र के मुख में जो आक्रोश प्रकट कराया है वह उसके दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचायक है—

---

१ खून और खून, पृ० १२१।

२ बहते आंसू, पृ० ५०।

'छोटे-छोटे भुनगे, चींटी, मकोड़े, कौवे, कुत्ते आदि पशुओं के लिए तो तुम्हारे पास दया का भंडार भर रहा है, पर अपनी सन्तान पर ये जुल्म कि उनकी उठती जवानी पर कुछ भी तरस न खाकर उन्हें ऐसी बुरी मौत मार रहे हो कि कसाई भी उतनी बुरी तरह गाय को न मारेगा।' 'तुम तो एक वर्ष की दूध-पीती कन्याओं को विधवा बनाकर पापों की नदी बहा रहे हो। उन्हें रोम-रोम मे विष पैदा करने वाले दुःख सागर मे ढकेल कर, जीते-जी दुखाग्नि मे डाल कर भून रहे हो'''आज ढाई करोड विधवाएँ तुम्हारी छाती पर मूँग दल रही हैं। इनमे कोई चुपचाप सर्द आह भर कर भारत को रसातल पहुंचा रही है, कोई कहार, धीवर, कसाई के साथ मुँह काला करके कुल-वश की नाक कटा रही है, फिर भी हिन्दू, पवित्र हिन्दू, ऋषि-सन्तान कहलाने की इच्छा रखते हैं। यदि अब भी हमें अपने रक्त-वश का अभिमान है, तो शर्म है, लाख-लाख शर्म है।'[1]

इस पर जयनारायण भी नारायणी का पुनर्विवाह करने का निश्चय कर लेता है। जयनारायण की पत्नी इस पर भड़क उठती है। इसके पश्चात् पति-पत्नी मे कई दिन नोक झोक और चख-चख चलती रहती है। पर दूसरी बाल-विधवा पुत्री भगवती को गोविन्द प्रसाद के सहवास से गर्भवती होते देखकर उनकी आँखें खुल जाती हैं।

सुशीला और मालती के पुनर्विवाह-प्रसग द्वारा लेखक ने यह सकेत दिया है कि केवल अशिक्षित एव पुरातन-पथी परिवारो मे ही इस विचार का विरोध दिखाई देता है। शिक्षित तथा आधुनिक-विचार-वादी परिवार इसे स्वीकार करने मे कोई ननु-नच' नही करते।

'अदल-बदल' मे लेखक ने विधवाओ के पुनर्लग्न की समस्या का और अधिक विस्तार मे चित्रण किया है। वहाँ एक क्लब मे, विभिन्न सम्भ्रान्त स्त्री-पुरुषो की स्त्री-अधिकार-सबधी बहस के अन्तर्गत डॉ० कृष्णगोपाल के माध्यम से, उसने विधवा-विवाह-सबधी कुछ व्यावहारिक कठिनाइयो का निर्देश भी किया है। इनमे प्रमुख हैं स्त्रियो की आर्थिक दासता और अधिकार सीमाएँ। डॉ० कृष्णगोपाल कहता है—'आर्थिक दासता का अभिप्राय साफ है। पहले आप हिन्दू घरो की विधवाओ को ही लीजिये, चाहे वे किसी भी आयु की हो, जिस आसानी से मर्द पत्नी के मरने पर दुबारा ब्याह कर लेते हैं उस आसानी से पति के मर जाने पर स्त्रियाँ ब्याह नही कर पाती।'''इस मे सिर्फ लज्जा, समाज के धर्म ही का बन्धन नही है और भी बहुत सी बातें हैं ''पहली बात तो यही है कि जहाँ पुरुष ब्याह कर स्त्री को अपने घर ले आता है, वहाँ स्त्री ब्याह

१. बहते आँसू, पृ० ५२।

घर के पति घर आती है। ऐसी हालत में वह विधवा होकर फिर ब्याह करना चाहे तो परिवार से उसे कुछ भी सहायता और सहानुभूति की आशा नहीं रहनी चाहिए। रही पिता के परिवार की बात। पहले तो माता-पिता लड़की को दोबारा शादी करना ही पाप समझते हैं, दूसरे, वे इसे अपने खानदान की तौहीन भी समझते हैं। आमतौर पर यही ख्याल किया जाता है कि नीच जाति में ही स्त्रियाँ दूसरा विवाह करती हैं। यदि उनकी लड़की का दुबारा ब्याह कर दिया जाएगा तो उनकी नाक कट जाएगी। तीसरे, वे ब्याह के समय 'कन्या-दान' कर चुकते हैं और लड़की पर उनका तब कोई हक भी नहीं रह जाता। इस-लिये यदि जब कभी ऐसा करने का साहस करते भी हैं, तभी बहुधा पति के परिवार वाले विघ्न डालते हैं क्योंकि इस काम में पिता के परिवार की अपेक्षा पति के परिवार वाले अधिक अपनी इज्जत-हतक समझते हैं।...इसका कारण यह है कि... स्त्रियों की न कोई अपनी सामाजिक हस्ती है, न उनका कोई अधिकार है। न उन्हें कुछ कहने या आगे बढ़ने का साहस ही है। इन्हीं सब कारणों से हिन्दू धर्म में, खासकर उच्च परिवारों में, स्त्रियाँ चाहे जैसी उम्र में विधवा हो जाएँ, वे प्राय ससुराल और पिता के घर में असहाय अवस्था में ही दिन काटती हैं।"[1]

'आत्मदाह' उपन्यास में इन विचारों का प्रमाणन एवं समर्थन लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया है। वहाँ सुधीन्द्र के विधुर होते ही उसकी माँ कुछ ही दिन पश्चात् एक सुन्दर, सुशील, सुशिक्षित कन्या (सुधा) के माता-पिता को वाग्दान कर आती है परन्तु दूसरी ओर एक ब्राह्मण की बाल-विधवा विदुषी कन्या (सरला) स्त्री होने के कारण अपने 'यौवन के चपल दास' को सुधीन्द्र जैसे विवेकी युवकों की भी छाया में बचाने के लिए सतत आत्मसंघर्ष में रत रहती है।

लेखक के इन्हीं विचारों की चरम परिणति 'शुभदा' में सुस्पष्ट है। वहाँ राजा राममोहनराय कहते हैं—मैं तो इसके निवारण के तीन सूत्रों को महत्त्व देता हूँ प्रथम, सती प्रथा का कानूनन विरोध। दूसरे, पुनर्विवाह का कानूनन वैध माना जाना। तीसरे, स्त्रियों के उत्तराधिकार का जोरदार समर्थन। बिना इन तीन सूत्रों के भारतीय स्त्रियों की दशा नहीं सुधर सकती।"[2] इसी उपन्यास में बाल विधवा शुभदा का पुनर्विवाह बड़ी धूमधाम से उसके सती प्रथा से रक्षक कर्नल मैकडानल के साथ सम्पन्न होता है।

---

१. मदन बदल (नीलमणि संयुक्त), पृ० १३८-३६।

२. शुभदा पृ० १७।

इस संदर्भ में लेखक ने आर्यसमाज के सक्रिय योगदान की एकाधिक बार चर्चा की है तथा स्वनामधन्य ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का स्मरण श्रद्धापूर्वक किया है। 'बहते आँसू' का रामचन्द्र, स्वामी सर्वदानन्द और महात्मा देशराज, 'उदयास्त' का आनन्दस्वामी और 'खून और खून' की रमाबाई आदि सभी आर्यसमाज के कर्मठ कार्यकर्ता के रूप में चित्रित किए गए हैं और नारी उत्थान के लिये बहुत सजग एवं सक्रिय दिखलाए गए हैं।

(घ) बहु-विवाह-प्रथा

समाज में नारी की दुर्दशा का अन्य कारण पुरुषों में प्रचलित बहु-विवाह-प्रथा है। कारण चाहे कुछ भी हो, जब एक पुरुष अनेक स्त्रियों का पति बन जाता है तब उन स्त्रियों में मानव-सुलभ हीन-भावना ईर्ष्या द्वेष एवं अन्य असामाजिक प्रवृत्तियों का उदय होना स्वाभाविक है। परिवार में स्त्रियों के अधिकार वैसे भी बहुत सीमित हैं, उस पर एक ही परिवार में एक स्तर की अनेक स्त्रियों की उपस्थिति उनके अधिकारों के लिए और भी बाधक हो जाती है। यह प्रथा वर्तमान युग में उतने भीषण रूप में विद्यमान नहीं है। 'वयं रक्षाम' में रावण 'वैशाली की नगरवधू' में सेट्ठिपुत्र शालिभद्र और 'पूर्णाहुति' में पृथ्वीराज द्वारा अनेक विवाह करने के प्रसंग हैं। किन्तु लेखक ने इन्हें किसी समस्या के रूप में चित्रित नहीं किया। 'धर्मपुत्र' में नवाब वज़ीर अली खाँ के अनेक विवाह इस कारण विशेष उल्लेखनीय नहीं हैं, क्योंकि मुस्लिम परिवारों में, थोड़े बहुत रूप में, यह प्रथा अब भी विद्यमान है। फिर भी 'धर्म पुत्र' में नवाब की उन स्त्रियों की दीनदशा एवं 'रक्त की प्यास' में कुमार भीमदेव की पत्नी लीलावती की मानसिक पीड़ा में बहु-विवाह प्रथा की प्रतिक्रिया की झलक है।

(ङ) अन्तर्जातीय विवाह

इस प्रथा को उपन्यासकार ने नारी के लिये किसी समस्या के रूप में चित्रित न करके, समन्वय भावना और भावात्मक एकता की दिशा में एक स्वस्थ परम्परा के रूप में प्रस्तुत किया है। उनकी दृष्टि में, भारतीय समाज की विविध रूपता को देखते हुए अन्तर्जातीय विवाहों को मान्यता देना अनिवार्य और उचित है। इसके लिये समाज में उचित मनोभूमि और अनुकूल वातावरण तैयार करने की आवश्यकता है।

लेखक ने तीन उपन्यासों 'धर्मपुत्र', 'शुभदा' तथा 'खून और खून' में अन्तर्जातीय विवाह के प्रश्न को भिन्न-भिन्न परिवेश में उठाकर स्पष्ट किया है कि सामान्य समाज में अन्तर्जातीय विवाह की कल्पना अभी 'अधर्म', 'जातिविरोधी'

तथा 'हीन प्रवृत्ति' समझी जाती है। कुछ गिने-चुने प्रगतिशील विचारधारा वाले विशिष्ट परिवार इसे स्वीकार करने की स्थिति में हैं, या जातीय रूढ़ियों का दुष्परिणाम भोग चुकने वाले कुछ व्यक्तिविशेष इसे मान्यता देते हैं। पर सर्व-साधारण की दृष्टि में यह बात अभी असाधारण ही समझी जाती है।

'धर्मपुत्र' में नायक दिलीपकुमार एक मुस्लिम दम्पती की सन्तान है, किन्तु परिस्थितिवश जन्मकाल से ही उसका लालन पालन डॉ० अमृतराय जैसे सम्भ्रान्त हिन्दू-परिवार में होने के कारण, उसके जातिविभेद की बात अज्ञात है। ऐसी स्थिति में, दिलीपकुमार का विवाह प्रचलित परिपाटी के अनुसार किसी हिन्दू परिवार में हो जाने में कोई अड़चन न होनी चाहिए। किंतु डॉ० अमृतराय का जातीय विमोह इस स्थिति को कदापि स्वीकार करने को तैयार नहीं है। वह कहता है—'मैं जीती मक्खी कैसे निगलूंगा? मैं तो जानता हूँ कि वह हमारा लड़का नहीं है, एक मुसलमान माता पिता का पुत्र है। मैं कैसे किसी हिन्दू लड़की को इस धर्म संकट में डाल सकता हूँ। इतना बड़ा छल तो मैं बिरादरी के साथ कर नहीं सकता।'''फिर अरुणा, यह रक्त का सम्बन्ध है, धर्म का बन्धन है। जानती हो, विवाह में कुल-गोत्र का उच्चारण होता है, गोत्रावली और वंशावली का बखान होता है। माता के चार कुल और पिता की चार पीढ़ियाँ बचाई जाती हैं (बोलकर बताई जाती हैं) यह सब इसलिए तो कि गैर रक्त आर्यों के रक्त में न प्रविष्ट होने पाए। अब हम एकदम म्लेच्छ रक्त का कैसे अपने में खपा सकते हैं? कैसे एक आर्यकुमारी को धोखा देकर, झूठ बोल-कर, म्लेच्छ के बालक से उसका विवाह कर सकते हैं? हमारे तो लोक परलोक दोनों ही बिगड़ जाएंगे।'[1] इसपर अरुणा पति से दिलीप कुमार के जन्म-रहस्य को सबके सामने प्रकट कर देने का आग्रह करती है, किन्तु डा० अमृतराय में यह साहस भी नहीं है। पति की इस जाति विषयक दुविधा को देखकर अरुणा खीझ उठती है—'तो फिर होने दो हिन्दू कुमारी का बलिदान। हिन्दू की बेटी तो बलि के लिए ही पैदा होती है। हिन्दू ही दूल्हा होता—लुच्चा और बदमाश—तो वह कितना दुःख देता। घर-घर में तो मैंने आंसुओं से गीले चेहरे देखे हैं। दिलीप कम से कम ऐसा पशु तो नहीं है। कोई भी स्त्री उस पाकर सन्तुष्ट होगी। फिर मुगलों के जमाने में तो मुगल बादशाहों ने हिन्दू कुमारियों से शादी की थी। अब इतना सोच विचार न करो। ब्याह कर डालो। पानी जितना उलीचा जाएगा, गन्दा होगा।'[2]

---

१. धर्मपुत्र, पृ० ६२-६३।
२. वही, पृ० ६४।

यहाँ उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि 'मानवता' अथवा 'पौरुष' किसी जाति विशेष की धरोहर नही है। स्त्री जीवन के लिए जाति-मर्यादा उतनी महत्त्वपूर्ण नही, जितनी पति रूप मे पुरुष की अनुकूलता है।

शुभदा (शुभदा') स्वेच्छापूर्वक अग्रेज पति का वरण करके भी हिन्दू स्त्रियो के परम्परागत कुलाचार का बडी निष्ठा से पालन करती है। पति कर्नल मैकडानल से वह कहती है— मैं तो केवल सस्कार ही तक सीमित हूँ। आभिजात्य की भावना मेरे मन मे होती तो मैं आपके साथ बैठकर कैसे खा-पी सकती थी।[1] वह अग्रेज पति द्वारा इग्लैड चलने के प्रस्ताव पर कहती है—'मैं इस सम्बन्ध मे कुछ नही कहना चाहती मैंने तो अपने आपको तुम्हे समर्पित कर दिया है। "तुम्हें शायद ये शब्द नये और अनोखे प्रतीत होंगे, पर यह तो हमारा हम हिन्दू स्त्रियो का, कुलाचार है। क्रिश्चियन ससार मे पलने पर भी मैं यह नहीं त्याग सकती। इससे स्त्री-पुरुष मे अभिन्नता उत्पन्न हो जाती है, और वे दोनो एक हो जाते हैं।[2] शुभदा को अपने अग्रेज पति का घर 'बहुत अच्छा' लगता है किंतु उसमे प्रवेश करते ही वह पहला प्रश्न यही करती है—'लेकिन मेरा ठाकुरद्वारा कहाँ है ?'[3] यही बात इसी उपन्यास मे भडूशाह की विधवा पत्नी गोमती के व्यक्तित्व मे है। वह अपने पशुतुल्य देवर के टुकडो पर पलती रहकर, अपना नारीत्व कलकित करने की अपेक्षा, ईसाई साधु सेंट जान की जीवन सगिनी बनकर जन सेवा मे समर्पित हो जाना अधिक श्रेष्ठ समझती है। उसकी सेवा-वृत्ति की ख्याति सारे इलाके मे है और उसने नि स्वार्थ भाव से भडूशाह के घराने को बरबाद होने से बचाया था। गोमती देवर की अधीनता त्यागकर सेंट जान के पास जाकर कहती है—'हम पति-पत्नी की भाँति रहेंगे, कहाँ है आप का खुदा, मुझे बताइए। मेरा परमेश्वर यह है।' वह अपनी छाती मे छिपी छोटी-सी शालिग्राम की मूर्ति निकाल कर दिखाते हुए फिर कहती है—'आइए, अब हम भगवान् और आपके खुदा के सामने खडे होकर प्रतिज्ञा करें कि हम परस्पर पति-पत्नी हैं। और जब तक जिन्दगी है, हमे कोई ताकत एक-दूसरे से अलग नही कर सकती।'[4]

'खून और खून' उपन्यास म उपन्यासकार ने भारतीय नारी को जातीय रूढियो के विरुद्ध अधिक सक्रियता मे विद्रोह करते हुए दिखाया है। इस उपन्यास

१. शुभदा, पृ० २८।
२. वही, पृ० ३६।
३. शुभदा, पृ० ६१।
४. वही, पृ० १६३।

मे उसने पारसी युवती रतन और मुस्लिम नेता जिन्ना तथा हिन्दू युवती इन्दिरा और पारसी युवक फिरोज के विवाहो के प्रसग प्रस्तुत किए हैं। ये अपने दिनो मे पर्याप्त चर्चा के विषय रहे हैं और भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के साथ नारी-जागरण के प्रतीक-रूप मे प्रचलित हैं। रतन मिस्टर जिन्ना की प्रतिभा और वक्तृत्व शक्ति म इतनी प्रभावित है कि वह पिता की हर बात का नकार-कर, स्वेच्छा से जिन्ना स विवाह कर लेती है। पिता द्वारा बिरादरी के बन्धन' का कारण उपस्थित करने पर वह कहती है—'श्रेष्ठ व्यक्तित्व तो सभी बन्धनो म ऊपर है। बन्धनो का विचार श्रेष्ठ पुरुष कभी नही करते।'[1]

इसी उपन्यास मे 'भारत-कोकिला' के नाम स प्रसिद्ध नेत्री सरोजिनी नायडू के भी मिस्टर जिन्ना क प्रति आकृष्ट होन का उल्लेख शिक्षिता नारियों मे जाति की अपेक्षा मानसिक रुचियो का प्रमुखता देने की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई प्रवृत्तियो का सूचक है। लेखक ने कवयित्री सरोजिनी द्वारा मिस्टर जिन्ना के नाम उसके जन्म दिवस पर भेजी गई एक अग्रेजी प्रणय-कविता का प्रकाशचन्द्र-सन कृत रूपान्तर देकर बताया है कि किस प्रकार 'रात्रि के एकाकी क्षणों मे, खामोश पर्वतो और गहराइयो मे तथा तारो-भरी नीरवता के उन्माद मे, सरो-जिना का हृदय मिस्टर जिन्ना के प्रिय-सबोधन के लिए लालायित रहता है।

'खून और खून' मे ही भारत के प्रमुख नेता जवाहरलाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा के विवाह का प्रसग 'रूढिवाद के विरुद्ध एक शिष्ट विद्रोह के रूप में' प्रस्तुत किया है।

(च) विवाह-विच्छेद (तलाक) संबधी दृष्टिकोण

आचार्य चतुरसेन का दृष्टिकोण अत्याधुनिक और प्रगतिशील होते हुए भी सर्वांगत भारतीय परम्परा-विरोधी अथवा पाश्चात्य समाज की अभिनव प्रवृत्ति यो का अधानुकरण मात्र नही है। उन्होंने हर क्षेत्र मे नारी की स्वाधीनता का समर्थन नही किया है। उन्होंने अपने कई उपन्यासों मे ऐसे पात्रों की रचना की है, जो स्त्री-पुरुष के पारस्परिक सम्बन्धो के उत्तरोत्तर विघटन के कारण उत्पन्न विभिन्न समस्याओ पर बडी जागरूकता से विचार करते हुए, उनके सम्भावित समाधान की खोज मे भी बडी तत्परता से सलग्न हैं। विवाह-विच्छेद के पक्ष विपक्ष मे जोरदार दलीलों को प्रस्तुत कराने के बाद आचार्य चतुरसेन ने निष्कर्ष-रूप मे अपना निर्णय नारी-पात्रो के माध्यम से उपस्थित किया है। वह तलाक पद्धति के विरोध मे है।

---

१ खून और खून, पृ० ३६।

आचार्य जी का विवाह-विच्छेद-सबंधी दृष्टिकोण प्रमुखतः 'अदल-बदल' तथा 'पत्थर युग के दो बुत' मे है। 'अदल-बदल' की नायिका मायादेवी एक आधुनिका है। उसे अपने सीधे-सादे, सहनशील पति मास्टर हरप्रसाद और भोले-भाले दस वर्षीय पुत्र विनोद के साथ घर मे पिंजरे मे बद पक्षी की तरह रहना पसंद नही है। उसे क्लब मे आने वाले अपने सभी 'ग्राहकों' को सुलगाकर और खिलौना बनाकर खेलने और खिझाने मे बडा मजा आता है। क्लब के मित्र गण उसे 'हिन्दू कोडबिल' की महिमा समझाकर अपने 'दकियानूसी' पति से तलाक लेने की प्रेरणा देते हैं। उसका एक प्रशसक सेठ गोपाल जी उसे कोड बिल' का परिचय देते हुए कहता है—'मजेदार चीज है मायादेवी ठीक मौसमी कानून है। उसका मज़ा यह है कि मायादेवी न किसी की जर-खरीद बादी है, न किसी की तावेदार, वे स्वतन्त्र महिला हैं। अरे साहब, स्वतन्त्र भारत की स्वतन्त्र महिला, वे अपनी कृपादृष्टि से चाहे जिसे निहाल कर दें चाहे जिसे बर्बाद कर दें।'[1]

'अदल बदल' मे डॉ० कृष्णगोपाल का मत है—'तलाक का अधिकार स्त्री को पुरुष के और पुरुष को स्त्री के जबरदस्ती बधन से मुक्त करने के लिए है।'[2] इस पर हरवशलाल तलाक के उज्ज्वल पक्ष का समर्थन करते हुए भी, व्यावहारिक क्षेत्र मे उसकी दो प्रमुख बुराइयो का उल्लेख करता है—'एक तो यह कि हमारे गृहस्थ मे जो पति-पत्नी म गहरी एकता, विश्वास और अभग सबध कायम है वह नष्ट हो जाएगा। 'और दूसरे, आप जानते हैं कि पुरुष स्त्री के यौवन का ग्राहक है और स्त्रियो का यौवन ढलने पर उन्हें कोई नही पूछता। अब तक हमारे गृहस्थ की यह परिपाटी थी कि स्त्री की उमर बढती जाती थी, वह पत्नी के बाद माँ, माँ के बाद दादी बनती जाती थी। इस मे उसका मान-सम्मान बढता ही जाता था। अब पुरुष तो पुरानी बुढिया औरतों को चूस-चूस कर तलाक देकर नई नवेलियो से नया ब्याह रचाएँगे। स्त्रियाँ भी, जब तक उनका रूप-यौवन है, नये-नये पछी फसाएँगी, पर रूप-यौवन के ढलने पर वे असहाय और अप्रतिष्ठित हो जाएँगी। उनकी बडी अधोगति होगी।

तलाक-सबधी यह विवाद उपस्थित करने के उपरान्त उपन्यासकार ने इसके व्यावहारिक रूप को प्रस्तुत किया है। मायादेवी और डॉ० कृष्णगोपाल क्रमश अपने पति और पत्नी से तलाक ले लेते हैं। परन्तु तलाक के बाद मायादेवी का हृदय आनन्दविभोर होने के बजाय भय, वितृष्णा और ग्लानि मे भर जाता

---

१. अदल बदल (नीलमणि मधुकर), पृ० ११५।

२. वही, पृ० ११५-१६।

है। 'मायादेवी और डॉ० कृष्णगोपाल दोनों बहुत कम मिलते। मिलने पर भी गुमसुम रहते। दोनों ही परस्पर मिलने पर एक दूसरे को प्रसन्न करने की चेष्टा करते, परन्तु यह बात दोनों ही जान जाते कि यह चेष्टा स्वाभाविक नहीं कृत्रिम है।'' एक गहरी उदासी की छाया हर समय उनके मन पर बनी रहती थी।''' दोनों भयभीत-से रहते थे दोनों ही कुछ ऐसी प्रतीक्षा-सी कर रहे थे, मानो कोई दुर्घटना घटने वाली हो।'' यद्यपि दोनों अपने पूर्व निश्चयानुसार विवाह कर लेते हैं तथापि उनकी सुहागरात वह सुहागरात न थी जो प्रकृति की प्रेरणा की प्रतीक है, जहाँ जीवन में पहली बार वसन्त विकसित होता है।''

इस अवसर पर मायादेवी का अन्तर्द्वन्द्व है—'वह सोचने लगी अपनी पहली सुहागरात की बात, फिर उसने आप ही आप भुनभुनाकर कहा—क्या'' ? क्या ? यह आज की रात भी सुहागरात कही जा सकती है ? क्या वह शराबी, दुराचारी अपनी साध्वी पत्नी के साथ निर्मम अत्याचार करने वाला पुरुष उसके साथ वैसा ही कोमल और भावुक बनकर रह सकेगा, जैसा उसका प्रथम पति था ? परन्तु वह प्रथम और दूसरा क्या ? पत्नी का पति तो एक ही है। क्या उसके जीवित रहते मैं दूसरे पुरुष को अपना अंग दिखलाऊँ ? स्वाधीन होने की आग में मैं अवश्य जल रही हूँ, पर इसके लिए मैं अपने शरीर को अपवित्र करूँ ? नहीं, यह मैं न कर सकूँगी।'' और वह यह सोचकर तुरन्त अपने पूर्व-पति के पास लौट जाती है कि 'मनुष्य को चाहिए कि ज्यों ही उसे अपनी भूल ज्ञात हो, उसे तुरत सुधार ले। एक क्षण भी व्यर्थ न गँवाए।'

इस प्रसंग में डॉ० कृष्णगोपाल की पूर्वपत्नी तलाक पर जो टिप्पणी करती है, वह उल्लेखनीय है—'मैं विश्वास करती हूँ कि पति-पत्नी का संबंध उसी प्रकार अटूट है, जैसे माता और पुत्र का, पिता और पुत्र तथा अन्य संबंधियों का। वह जो अपने पितृ-कुल को त्याग कर पति-कुल में आई है तो इधर उधर भटकने के लिए नहीं, न ही अपनी जीवन-मर्यादा समाप्त करने के लिए। रही एकता न रहने की बात, सो पिता पुत्र, माता-पुत्री में भी बहुधा मत-भेद होता है, लड़ाइयाँ होती हैं, मुकदमेबाजी होती है, बोल-चाल भी बन्द रहती है। फिर भी यह नहीं होता कि वे अब माता पिता या पुत्र-पुत्री नहीं रहे, कुछ और हो गए। ''पति-पत्नी संबंध पिता, माता, पुत्र के संबंध से कहीं अधिक घनिष्ठ और गम्भीर है। पुत्र माता-पिता के अंग से उत्पन्न होकर दिन-दिन दूर होता जाता -

१. बदन बदल (नीलमणि में संयुक्त), पृ० १२५।
२. वही, पृ० १७६।
३. वही, पृ० १३३।

है। पहले वह माता के गर्भ में रहता है फिर उसकी गोद में, पीछे आँगन के बाहर और तब सारे विश्व में वह घूमता है परन्तु पत्नी दूर से पति के पास आती है और दिन दिन निकट होती जाती है। उनके दो शरीर जब अति निकट होते हैं, तब उनसे तीसरा शरीर सन्तान के रूप में प्रकट होता है, जो दोनों के अखण्ड संयोग का मूर्त चिह्न है। अब आप समझ सकती हैं कि पति पत्नी विच्छेद का प्रश्न उठ ही नहीं सकता।"[1] वह अन्यत्र कहती है— यदि चाहे जिस भी उपाय से केवल जीवन को सुखी बनाने को ही जीवन का ध्येय मान लिया जाय तो फिर चोर, डाकू, ठग अनीतिमूलक रीति से जो धनोपार्जन करते हैं, शराब पीकर और वेश्यागमन करके सुखी होना समझते हैं उन्हें ही ठीक मान लेना चाहिए। पर मेरा विचार तो यह है कि सुख दुःख जीवन के गौण विषय हैं। जीवन का मुख्य आधार कर्त्तव्य-पालन है। कर्त्तव्य ही मनुष्य जीवन की चरम मर्यादा है, इसी की राह पर चल कर बड़े बड़े महापुरुषों ने सुख दुःख की राह समाप्त की है मेरा आदर्श भी वही है।"[2]

आचार्य जी ने नारी के लिए दो कारणों से तलाक की सम्भावना व्यक्त की है। प्रथम, आर्थिक परावलम्बन से मुक्ति एवं द्वितीय पति से अभीप्ट प्रेम-रस और इस रस की अप्राप्ति की प्रतिक्रिया। अदल बदल में पहले कारण का प्रस्तुतीकरण है तो पत्थर युग के दो बुत में दूसरे कारण का विश्लेषण हुआ है। इसमें माया पति दिलीपकुमार राय की भ्रमर वृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप पर पुरुषोन्मुख हो जाने पर विवश है। उसकी देह पिपासा पति की तल छट' से तृप्त न होकर, ताजा और अछूते प्रेम रस के पान की चाह रखती है। इस तरह पहले पति से तलाक और नए प्रेमी वर्मा से विवाह उसके लिए एक मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है। नया प्रेमी इसलिए क्योंकि दिलीपकुमार राय से भी उसका, माता पिता की इच्छा के विरुद्ध प्रेम विवाह हुआ था। इसका चुनाव उसने एक तरुण, गठील और सबल पुरुष का गर्मागर्म प्यार' पाने के उद्देश्य से किया था और इसके प्रेम की सजीव निशानी एक कन्या के रूप में वह प्राप्त कर चुकी है। उसकी मानसिक अतृप्ति उस बाईस वर्षीय दाम्पत्य जीवन तथा उन्नीस वर्षीय युवा कन्या की भी उपेक्षा कर, अन्य पुरुष के नवसंसर्ग की ओर उन्मुख कर देती है। इसके लिए वह एक वैधानिक और औचित्यपूर्ण मार्ग अपनाती है। वह राय को तलाक देकर, उसी के एक अधीनस्थ कर्मचारी

---

१ अदल बदल (नीलमणि संयुक्त), पृ० १६६।
२ वही, पृ० १७०।
३ अदलबदल (नीलमणि संयुक्त), पृ० ४६।

वर्मा से पुनर्विवाह करने का निश्चय कर लेती है। किन्तु तलाक ले चुकने के बाद, उसकी वही मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता उसे आत्म-चिन्तन पर बाध्य कर देती है। वह सोचती है—'तलाक मंजूर हो गया और राय से मेरा संबध-विच्छेद हो गया। परन्तु पत्नी अपने परिवार में किस तरह धंसी हुई है, इस बात पर तो मैंने कभी विचार ही नहीं किया था। अपने पति को मैंने तलाक दे दिया। बड़ी आसानी से उससे मेरी छोड़-छुट्टी हो गई। अब वे न मेरे पति रहे, न मैं उनकी पत्नी। परन्तु क्या बेबी भी अब मेरी बेटी न रही? यह बात तो न वह मानती है, न मेरा मन मानता है।···अब भी मैं बेबी की माँ हूँ, सच्ची माँ हूँ। कानून की कोई धारा, समाज का कोई नियम, उससे मेरा विच्छेद नहीं करा सकता।···अब जान पाई हूँ कि विवाह व्यक्तिगत संबध नहीं है, सामाजिक संबध है। नर-नारी का संबध बेशक व्यक्तिगत है, पर पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यक्तिगत नहीं सामाजिक है।··· सिर्फ बेबी की बात नहीं, और भी रिश्तेदार हैं।··· बाईस बरस में ये रिश्तेदार मेरे ऐसे प्रिय हो गए हैं कि उनके सुख दुःख में मुझे बहुत बार हँसना-रोना पड़ा है।···ये सब अब छूट गए। वे सब अब पराए हो गए। अब उन्हें देखकर मैं गर्व से मुस्करा नहीं सकती, उन पर अपनी ममता जता नहीं सकती।··· सब नातेदारियाँ अब खत्म हो गईं। क्यों भला? तलाक तो मैंने राय का ही दिया। इसी एक बात से ये सब सम्बन्ध-बन्धन भी टूट गए। मेरी युग की दुनिया उजड़ गई। परिवार की एक सदस्या थी मैं, सबके बीच जग-मगा रही थी, अब उजड़ गई, अकेली रह गई।···अब तो मैं घर से बेघर हो कर चौराहे पर आ खड़ी हुई हूँ। सारे सभ्य समाज से बाहर, बहिष्कृत, अकेली। न मैं किसी की कुछ हूँ, न मेरी कहीं कोई है। क्या कहकर अब मैं समाज में अपना परिचय दूँ?···सम्भ्रान्त महिलाएँ उत्सवों में, समारोहों में, चाव से आकर मुझ से मिलती थीं। हँस हँस कर पूछती थीं—बेबी कैसी है? राय कैसे हैं? और मेरी आँखें गर्व और आनन्द से फूल उठती थीं, पर···अब तो मैं किसी का मुँह दिखाना भी नहीं चाहती। घर-घर मेरी चर्चा है, बदनामी है। वे ही महिलाएँ जो मेरे सम्मान में आँखें बिछाती थीं, मुझे हरजाई कहकर मुँह बिचकाती हैं घृणा करती हैं।"[1]

तलाक अनैतिक यौनाचार को रोकने में सहायक हो सकता है। यदि नारी के मन में तलाक का विचार पहले और पुनर्विवाह का विचार बाद में आए, तब तो यह बहुत उचित है। किन्तु होता इसके विपरीत है। अधिकांश मामलों में तलाक पर प्रेम का परिणाम बनकर सामने आता है, अनैतिक शरीर-संबंध

[1] पत्थर युग के दो बुत पृ० ७०-७४।

की भूख की तृप्ति के लिए ही अधिकतर स्त्री-पुरुष तलाक का माध्यम ग्रहण करते हैं। इस प्रकार तलाक अनैतिक यौनाचार का निरोधक न होकर, उसका प्रोत्साहक सिद्ध होता रहा है। इसीलिए वह पारिवारिक और सामाजिक स्वास्थ्य एवं सतुलन को क्षति पहुँचाने वाला है। लेखक ने रेखा के मुख से कहलाया है—'काश, मैं दत्त की बफादार पत्नी ही रहती। सब कष्टों और असुविधाओं को सहती तो ही ठीक था, अच्छा था। पर मेरी कच्ची समझ ने मुझे वासना की आग मे झोंक दिया। राय को अवसर मिल गया और मैं लुट गई, बर्बाद हो गई।'[1] और अन्त मे रेखा के अनुभव के आधार पर आचार्य चतुरसेन सामयिक परिस्थितियों मे तलाक की अनिवार्यता स्वीकार करते हुए भी, निष्कर्ष रूप मे तलाक-पद्धति की असफलता की भविष्यवाणी भी कर देते हैं—'इस समय तलाक के सुभीते बढ गए हैं। इससे यह सभावना व्यक्त हुई है कि जिस समय एक पत्नी विवाह की प्रथा का विकास हो रहा था उस समय कानून के द्वारा पुरुष और स्त्री को मिलाकर एक करना विवाह का अग मान लिया गया, जो वास्तव मे एक प्रकार का सौदा था। अब प्रेम के द्वारा दोनो का मिलकर एक होना महत्ता नही रखता, कानून के द्वारा मिलकर एक होना ही अधिक महत्व-पूर्ण है। परन्तु यह व्यवस्था देर तक न चल सकेगी और कानून द्वारा स्त्री-पुरुष के मिलने की अपेक्षा प्रेम के द्वारा मिलना ही अधिक उपयुक्त प्रमाणित होगा और स्त्री-पुरुष के सयोग मे उच्चकोटि की भावनाओं अथवा विचारों का अधिराधिक समावेश होगा।'[2]

२. प्रेम और काम-सम्बन्धी समस्याओं का विश्लेषण

(क) वेश्या-समस्या—नारी-जीवन की विभिन्न विभीषिकाओं मे से 'वेश्या वृत्ति' सर्वोपरि है। इसे उसके पतन का निकृष्टतम रूप माना जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि समाज की दृष्टि से अत्यन्त गर्हित और निन्दित समझी जाने वाली इस वृत्ति मे ग्रस्त स्त्रियाँ अपने परिवेश-विशेष मे सामान्य, सम्भ्रान्त एव सद्गृहस्थ नारियों से कही अधिक मान-सम्मान और अर्थ-लाभ प्राप्त करती हैं। सभ्य जगत् मे एक स्त्री के लिए 'वेश्या' से अधिक बुरी और कोई गाली नही हो सकती, फिर भी 'लाखों स्त्रियाँ अत्यन्त निर्लज्जता और आश्चर्यजनक साहस के साथ वेश्या-वृत्ति से न केवल पेट भरती हैं, प्रत्युत जागीरें और जायदादें खरीदती हैं। समाज शास्त्र जिसे अम्मत और आवश्

१ पत्थर युग के दो बुत, पृ० १३६।
२. वही, पृ० १४६।

कहकर पुकारता है। "जिसे कुछ स्त्रियाँ प्राण देकर भी नहीं खोना चाहती, उसे ही स्त्रियाँ खुल्लमखुल्ला बाजार-भाव बे-रोक-टोक बेच रही हैं।" इसका कारण स्पष्ट है समाज के अन्तराल में जड-रूप में व्याप्त यौनाचार की विकृति इतनी बलवती है कि वह अपना प्रकृत मार्ग बनाने के लिए समाज को किसी भी सीमा तक ले जा सकती है।

प्राय समाजशास्त्री और साहित्यकार वेश्यावृत्ति के कारणों की खोज आर्थिक विषमताओं और सामाजिक कुरीतियों में करते रहे हैं क्योंकि उनका अभिमत है कि वही स्त्री वेश्या-पथ पर पैर रखती है जिसे या तो उदर पोषण के लिए कोई अन्य सम्मानित साधन उपलब्ध नहीं होता अथवा जो किसी कारण-वश परिवार, जाति या समाज से बहिष्कृत होने अथवा सामान्य स्त्रियों की भाँति वैवाहिक जीवन उपलब्ध न कर सकने के बाद, विवशतः इस ओर उन्मुख हो जाती है। किन्तु कारण आर्थिक हो या सामाजिक"' दोनों के मूल में मनुष्य की नैसर्गिक यौनवृत्ति की विकृति ही विद्यमान रहती है। आर्थिक स्थिति को अधिकांशतः पुरुष-वर्ग की इस विकृति का परिणाम माना जा सकता है क्योंकि वे अपनी अभुक्त काम-वासना की तृप्ति के लिए कुछ भी मूल्य चुकाने को तत्पर हो जाते हैं तथा वेश्याएँ उन्हें इसका अवसर सुलभ करती हैं और सामाजिक स्थिति को नारी-वर्ग की यौनाकांक्षाओं की परिणति माना जा सकता है, क्योंकि उपयुक्त अवस्था में विवाह न हो सकने, या अल्पायु में विधवा हो जाने, अथवा अन्य किसी बन्धन या विवशता-वश अपनी नैसर्गिक कामैषणा की प्रकृततः तृप्ति न हो सकने के कारण वे इस मार्ग का अवलम्बन करती हैं। आचार्य चतुरसेन वेश्यावृत्ति को मूलतः यौन-समस्या से ही सम्बद्ध मानते हैं। अपने इस अभिमत का सम्यक् विश्लेषण करते हुए उन्होंने लिखा है—'निस्सन्देह, स्त्री पुरुषों की नैसर्गिक प्रवृत्ति (काम अथवा यौन-तृप्ति) के लिए प्रारम्भ में बहुत काल तक समाज ने कोई मर्यादा नहीं बनाई थी। बहुत युगों तक पशुओं की तरह मनुष्य भी स्वच्छन्द-रूप से अपने स्वाभाविक उद्वेगों को प्रकट करते रहे होंगे। पीछे ज्यों-ज्यों समाज और सभ्यता के कृत्रिम और व्यवहार शास्त्र की पेचीली रीति-नीतियों का प्रचार हुआ, वैसे ही धीरे-धीरे स्त्री-पुरुष अपनी इस प्रधान जीवना-कांक्षा को छिपाने लगे।"'धर्म और रूढ़ियों का कठोर बन्धन ही मर्यादातिक्रमण का कारण हुआ और प्राणी की इस नैसर्गिक प्रवृत्ति ने व्यभिचार अथवा अनधिकार-संक्रमण का रूप धारण कर लिया।"'जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्शे का कथन है कि प्राचीन यूनानी लोग सभी स्वाभाविक आवेगों को

---

१. आचार्य चतुरसेन, नारी, पृ० ७१-७२।

स्वीकार करते थे। "और समाज-सगठन ने कुछ ऐसी नालियाँ बना रखी थी कि कोई सामाजिक आवेग समाज का बिना अनिष्ट किए शमन किया जा सके और खास दिनो और खास विधियो से बलात् पाशविक शक्ति निरुद्रव निकाल कर फेंक दी जाय।"[1] वेश्या प्रथा की इस पृष्ठभूमि को दृष्टिगत रखकर आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासो में इस समस्या का विशद विश्लेषण किया है। 'वैशाली की नगरवधू' मे अम्बपाली और भद्रनन्दिनी के रूप मे उन्होने उस युग के सम्भ्रान्त समाज मे वेश्याओ की अप्रतिम प्रतिष्ठा दिखलाकर सिद्ध किया है कि उन दिनो इस प्रथा को न केवल सामाजिक अपितु राजकीय सरक्षण प्राप्त था। इसके अतिरिक्त उन्होने उस युग मे वेश्याओ की कार्य सीमा नृत्यगान-द्वारा सामाजिको के मनोरजन तक ही अकित की है, सर्व सामान्य को देह विक्रय कर उनकी यौन तृप्ति का दायित्व उन वेश्याओ का नही था। इसे उपन्यास-कार मध्यकालीन सामन्ती युग की विलासिता के अनेक रूपो मे से एक मानता है और इसी परिप्रेक्ष्य में उसने अपने सामाजिक उपन्यासो मे वेश्या-समस्या का चित्रण किया है।

'हृदय की प्यास' का नायक (प्रवीण) वेश्या के प्रति तिरस्कार-भाव न रखते हुए भी, मित्रो के साथ उसका गायन-वादन सुनने के लिए जाते हुए डरता है। 'कई बार वह वेश्या के घर जाकर उसका रूपसौन्दर्य और वजादारी देखने की इच्छा कर चुका था, पर इस काम के लिए उसमे साहस न था। उसका आत्म-गौरव इस काम मे बाधक था।"[2] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज के विचारशील वर्ग मे वेश्यावर्ग के प्रति सहानुभूति तो है, पर उसके निकट-सम्पर्क मे आने का नैतिक साहस उसमे नही है। अपनी मानसिक कुठाओ की तृप्ति के लिए वह उस ओर उन्मुख होने मे कभी नही हिचकता। यह ध्वनि इस उपन्यास मे दिखाई गई है। जैसे, सभा मे पहुँचकर, वेश्या के सामने बैठ कर मित्रगण जब आपस मे हँसी दिल्लगी कर रहे थे, तब प्रवीण बाबू मनोमुग्ध बने, एकाग्र-चित्त हो, सौन्दर्य की इस छाया को छिपी नजर से देख रहे थे। मन मे भय, हृदय मे लज्जा, आँख मे मोह और आत्मा में अग्नि ज्वाला जल रही थी "वेश्या की आँखों मे लज्जा नही थी, मुखचन्द्र सागर मे लज्जा मछली की तरह बेधड़क नाचती फिरती थी। वह मद-मद हँसती थी, पर उस हास्य से वह उन युवको के साथ यौवन की चौसर खेल रही थी" "और जब प्रवीण घर

---

१. आचार्य चतुरसेन, नारी, पृ० ७३-७४।

२. हृदय की प्यास, पृ० ७६।

लौटा, तो उसकी आँखो मे वही मूर्ति रम रही थी।"[1] पत्नी की कुरूपता और फूहड़पन से कुंठित प्रवीण का इस प्रकार प्रथम दृष्टि मे ही वेश्या की ओर आकृष्ट हो जाना स्वाभाविक है।

'बहते आँसू' मे बाल विधवा बसती और चमेली की नैसर्गिक देह-लालसा ही उन्हे इस पथ पर अग्रसर होने को बाध्य करती है। बसन्ती का परिचय देते हुए लेखक ने लिखा है—"बसन्ती भले घर की बेटी थी। वह पढी लिखी भी थी, उतनी जितनी हिन्दू-कन्याएँ साधारणतया पढा करती हैं। वह चचल थी, तिस पर सस्कारो की गुलाम। स्कूल की अध्यापिकाओ और सहेलियो ने उसे पतन की झाँकी दिखाई। अभागिनी बूढे से ब्याही गई और अति बाल्यावस्था मे विधवा हो गई। माँ-बाप मर गए। कहिये, अब इस चपल दुर्बल-हृदया हिन्दू-बालिका के लिए कौन-सी गति है? "विपत्ति के साथ यौवन ने भी उस पर आक्रमण किया "वह पतन के रास्ते पर बह चली" 'वह यह नही समझती थी कि वह अपना शरीर बेच रही है। वह समझती थी कि मैं शिकार फँसाती हूँ, मनुष्यो की विजय करती हूँ।"[2]

गाँव के चौधरी की इकलौती विधवा पुत्री चमेली के वेश्या बनने का वृत्तात और भी पेचीदा है। 'उसके सम्बन्ध मे सारे गाँव मे यही विश्वास है कि वह धर्मपूर्वक काशीवास कर रही है। परन्तु वहाँ रहकर वास्तव मे वह शरीर-विक्रय करके अपने पेट और शरीर दोनो की ज्वाला शान्त करती है।" एक अन्य बाल-विधवा और पर-ससर्ग से गर्भवती होने के बाद बदनाम भगवती को भी जब गाँव की पचायत शेष जीवन किसी तीर्थ स्थान पर बिताने का परामर्श देती है और उसका भाई हरनारायण जब इस उद्देश्य से उसे काशी मे चमेली के पास छोड़ने जाता है, तब यह रहस्य प्रकट होता है। हरनारायण द्वारा चमेली को यह कुत्सित मार्ग अपनाने के कारण भला-बुरा कहने पर, चमेली, एक वेश्या, के अन्तराल मे सोई हुई आहत नारी मानो तड़प कर चीख उठती है—"मेरी यह हालत किसने बनाई है?"'तुमने और तुम्हारी जाति ने। "मेरे बेईमान बाप ने उस मिरगी के मरीज से साढे पाँच हजार रुपये लेकर मेरा ब्याह कर दिया और ब्याह के बाद ही छः महीने मे मैं विधवा हो गई। उसके बाद घर मे और ससुराल मे जिस दुःख से तीन वर्ष काटे, उसे मैं ही जानती हूँ। "बिरादरी वालो की बात मे आकर बाप ने मुझे यहाँ फेंक दिया और पाँच रुपये महीना

---

१. हृदय की प्यास, पृ० ७८-८०।
२. बहते आँसू पृ० १८२।
३. वही, पृ० २१४।

भेजना शुरू किया। 'तुम्ही कहो, इतने बडे नगर मे इतने थोडे खर्च मे बिना सहायक के मैं अकेली रह सकती थी? पाप? मैं कौन सा पाप कर रही हूँ? मैं जैसी नरक की आग छाती मे रखकर पाप करती हूँ उसे तुम पाखंडी मर्द क्या समझ सकते हो? भगवान् तुम्हे कभी लडकी का जन्म दे और मेरे जैसी तुम्हारी दुर्गति हो तो तुम असलियत समझ सकोगे।'[1] फिर वह साथ ही सहम कर खडी हुई भगवती को व्यग्य भरे स्वर मे कहती है— तुम जिस लिए आई हो बहन, मैं समझ गई। वही करने की तैयारी करो। कलेजा पत्थर का करो। उसमें आग सुलगाओ पर धुआँ अन्दर ही अन्दर घुटने दो। छल कपट म हँसना और झूठी बात बनाना सीखो आओ और मेरी तरह चैन करो।[2]

'आत्म-दाह' मे उपन्यासकार ने इस समस्या का मनोवैज्ञानिक दृष्टि स विवेचन किया है। इसका नायक सुधीन्द्र पत्नी माया की मृत्यु से अशान्त मन लेकर स्थान स्थान पर भटकता हुआ एक बार जब काशी म आकर ठहरता है तब वहाँ के एक मित्र (राजा साहब) के विवाह के अवसर पर कलकत्ता से बुलाई गई एक वेश्या राजदुलारी से उसकी भेंट होती है। विवाह जैसे सामाजिक उत्सव पर इतनी दूर से किसी वेश्या को नाचने गाने के लिए बुलवाया जाना हो इस बात का द्योतक है कि सभ्यता के एक छोर पर अत्यन्त गर्हित और तिरस्कृत समझी जाने वाली वेश्या-नारी उसी के दूसरे छोर पर कितनी सम्माननीय और प्रतिष्ठित है।

सुधीन्द्र राजदुलारी के प्रथम-परिचय से ही अत्यन्त प्रभावित यहाँ तक कि कुछ मत्त-सा, होकर भी उसके निकट सम्पर्क मे जाने से झिझकता है। राजदुलारी द्वारा झिझक का कारण पूछने पर वह कहता है— मैं वेश्याओ से बहुत घृणा करता हूँ।' इसमे राजदुलारी का आत्मसम्मान भडक उठता है और वेश्या-समस्या को लेकर एक अच्छी खासी बहस छिड जाती है। राजदुलारी सुधीन्द्र से पूछती है— वेश्याओ ने आपका ऐसा क्या बिगाडा है कि आप उनसे इस कदर नाराज हैं?

वे समाज की दूषण हैं।'

मेरा ख्याल कुछ और ही है। मैं समझती हूँ कि वे समाज की मोरी और नाबदान हैं हर घर मे मोरी और नाबदान एक गौरव की चीज है। जो लोग अपने मकान में इन दो चीजों का कुछ गौरव नहीं समझते उनका सारा घर गदा रहता है। मनुष्य के समाज म वेश्या वही है जहाँ समाज के अभाग

१ बहते आँसू पृ० २१४ १६।
२ वही, पृ० २१६।

आदमी अपनी गन्दी जरूरत रफा करते हैं। इससे गदगी गदी जगह रह जाती है, बाकी समाज की शुद्धता बच जाती है।' 'आप लोग शरीफ और इज्जतदार हैं आपकी बहू बेटियाँ हैं वे सभी अस्मतदार हैं। अस्मत पर वे जान और जिन्दगी न्योछावर कर देती हैं।'''परन्तु आप शरीफो म कुछ ऐसे शरीफजादे भी हैं, जिनके मन की हविश इन शरीफजादियों से नहीं मिटती, उन्ही के लिये हमे रगीलेपन का साइनबोर्ड लगाकर बैठना पडता है और अस्मतफरोशी करनी पडती है।'

सुधीन्द्र ने गम्भीरता से कहा—'अस्मतफरोशी तो सौदा है, पैसे का लेन-देन है।'

वेश्या के होंठ घृणा से सिकुड गए। उसने कहा—'क्या आप जानते हैं कि हम लोग सिर्फ पैसे के लालच मे नहीं, किंतु समाज के नियम से ऐसा करने को मजबूर हैं? क्या आपको मालूम है कि हिमालय की पवित्र तराई मे लाखो लडकियाँ विवाह करने के अधिकार से समाज की रूढि के आधार पर वचित की गई हैं? दक्षिण मे भी आपको ऐसी ही अभागिनी जातियाँ मिलेंगी। क्या आप कह सकते हैं कि ये अभागिनी नारियाँ पैसे के लोभ मे या ऐय्याशी के लिये वेश्याएँ बनी हैं? बाबू साहब, जो स्त्री इस बात का जरा भी अधिकार नहीं रखती कि वह जिस आदमी को पसन्द करे या प्यार करे, उसी को अपना शरीर अर्पण करे ' जिस स्त्री को धन देकर कोढी, कलकी, लुच्चे, शराबी, बूढे, लम्पट, डाकू, खूनी भी अपने उपयोग मे ला सकते हैं, उस तपस्विनी को ऐय्याश कह सकते हैं? आपकी इतनी जुर्रत?'

फिर कुछ ठहरकर उसने कहा—'प्रत्येक वेश्या तपस्विनी है, पाप से रहित है। उसने घृणा विरक्ति, मान-अपमान को जीत लिया है। वह समाज में घृणित कीडे से भी बदतर हैसियत मे रहकर हँसती है। जो लोग हमारे सामने कुत्ते की तरह दुम हिलाते और जूतियाँ सीधी करते तथा थूक चाटते हैं, वे भी अपनी माँ-बहिनो से हमारी मुलाकात नहीं करा सकते। यह सब हमने सहन किया है। आप लोग व्यभिचार करते हैं, प्रकट मे पवित्र, सज्जन बनते हैं।'' हम आपके व्यभिचार की पूर्ति करती हैं, और आपके बदले हम व्यभिचार का काला टीका अपने माथे पर लगाए ससार मे मुँह दिखा रही हैं, आप क्या हमारे इस त्याग और सेवा को समझ सकते हैं?'

राजदुलारी इतना कहकर चुप हो गई। सुधीन्द्र सकते की हालत मे उसे देखते रह गए। उनकी इच्छा हुई कि उस परम बुद्धिमती, तेजस्विनी स्त्री के चरणो म सिर झुकावे। उन्होंने कहा—'देवी, मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

"'''आज से मैं प्रत्येक वेश्या बहिन को आदर और पूज्य दृष्टि से देखूँगा ।"

इन शब्दों से वेश्या के रूप मे समाज का सम्पूर्ण विष-पान करने वाली नारी का अभिवादन किया गया है। न केवल 'आत्म-दाह' की वेश्या राजदुलारी को ही अपितु अन्य उपन्यासो मे चित्रित वेश्याओं को भी लेखक द्वारा बड़ी सहृदय, सेवामयी और मनुष्यता के श्रेष्ठ गुणों से युक्त नारी के रूप मे अंकित किया है। राजदुलारी सुधीन्द्र के रुग्ण होने पर, उसकी सेवाशुश्रूषा मे रात-दिन एक कर देती है।[१] 'दो किनारे' की केसर भी मानव-सेवा की सजीव प्रतिमा है। एक युवक नरेन्द्र के अपनी कार से टकरा कर घायल हो जाने पर, वह उसे अस्पताल मे भिजवाने का विरोध करती हुई कहती है—'नहीं नहीं इसे मेरे घर ले चलो। अस्पताल मे मनुष्य के जीवन का कोई मूल्य नहीं समझा जाता। हमे स्वय इसकी सेवा करनी चाहिए।'[३] बाद मे वह उसी युवक की धर्म-बहिन बनकर अपनी जान की बाजी लगा कर भी उसकी इज्जत बचाती है।[४] बाहर से वह अवश्य वेश्या का व्यवसाय करती है परन्तु उसका हृदय सात्त्विक और पवित्र है। उसके घर के भीतरी कमरे की दीवारो पर देवताओं के चित्र हैं। बीच मे देव-मूर्ति फूल धूप-दीप से सज्जित है। 'और सद्य स्नाता केसर प्रतिदिन प्रातः देवार्चन करके भाव मग्न होकर भक्ति पदों का गान करती है।'[५] उसके प्रति नरेन्द्र के ये शब्द मानो वेश्या-मात्र के व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप उद्घाटित कर देने वाले हैं—'दुनिया जिसे भीतर छिपाकर रखती है, वह तुम्हारे बाहर है। और जिसे वह बाहर दिखाने का ढोंग करती है, वह तुम्हारे भीतर है।'[६]

'मोती' की जोहरा भी ऊपर से एक ऐय्याश नवाब के हरम मे पलने वाली सामान्य सी तवायफ प्रतीत होती है किंतु वास्तव मे वह एक त्यागमयी बहिन और आदर्श प्रेमिका है। अपने भाई और प्रेमी हसराज क्रान्तिकारी के निमित्त किया गया उसका आत्म-त्याग किसी भी नारी के लिए स्पृहा का विषय है। 'खून और खून' की हमीदन का आचरण तो मानव मात्र की आँखें खोल देने वाला है। भारत-विभाजन के अवसर पर लाहौर और अमृतसर मे जब खून की होली खेली जा रही थी, तब जनसख्या के स्थानान्तरण के प्रवाह मे अमृतसर की मशहूर

१. आत्मदाह, पृ० १४७-५० ।
२. वही, पृ० १६१-६२ ।
३. दो किनारे (दादा भाई), पृ० ११३ ।
४. वही, पृ० २०६ ।
५. वही, पृ० १२३ ।
६. वही, पृ० १२४ ।

नर्तकी, गायिका और वेश्या हमीदन को भी अमृतसर से लाहौर के लिये प्रस्थान करना पड़ता है। सयोगवश जिस टैक्सी में वह छिपकर लाहौर जा रही होती है, उसी में शहर के सुप्रतिष्ठित हाजी साहिब भी लाहौर जाने के लिए ड्राइवर से सौदा पटाते हैं, पर एक वेश्या के साथ, एक ही गाड़ी में अपने परिवार को बैठाना उन्हें पसन्द नहीं। वे ड्राइवर को डाँट कर कहते हैं—'मेरी लड़कियाँ और बीवी क्या एक रजील बाजारू औरत के बराबर बैठेंगी। तुम जानते हो, हाजी करीम-उद्दीन अमृतसर में ही नहीं, तमाम पजाब में, भारी इज्जत रखता है। तुम्हें यह भी मालूम है कि मेरी बड़ी लड़की ननकू नवाब की बेगम है। वे जब सुनेंगे कि उनकी बेगम एक बाजारू औरत के साथ गाड़ी में बैठकर आई है, तो वे उसका मुँह भी न देखेंगे।" नवाब की बेटी भी एक रजील बाजारू औरत के बराबर बैठकर इज्जत बर्बाद करने की अपेक्षा जान दे देना बेहतर समझती है, पर ड्राइवर के हठ के सामने उन्हें झुकना पड़ता है, तभी, टैक्सी स्टार्ट होने से पहले ही जब कुछ गुंडे आकर टैक्सी की सवारियों में से एक रात के लिए किसी एक जवान औरत' की माँग करते हैं और माँग पूरी न होने की स्थिति में सबको मौत के घाट उतारने की धमकी देते हैं, तो नवाब और उनके परिवार के होश गुम हो जाते हैं। तब हमीदन आगे बढ़कर हाजी साहिब से कहती है—'आपसे मेरी एक आरजू है। मेरी सारी रकम इस गठरी में है। आप एक शरीफ बुजुर्ग मुसलमान हैं। आपकी और आपके खानदान की इज्जत बचाना मेरा फर्ज है। मैं एक रजील बाजारू औरत जरूर हूँ, मगर इसानी फर्ज से बेखबर नहीं। यह गठरी खुदा के सामने मैं आपको अमानत सौंपती हूँ। अगर जिन्दा लाहौर पहुँच गई तो ले लूँगी। खुदा हाफिज है।" और वे शरीफ बुजुर्ग ऐन निकलते हैं कि हमीदन के लाहौर पहुँच कर अपनी अमानत वापस माँगने पर साफ मुकर जाते है—'क्या तुम कोई पागल औरत हो बेगम? कब? कैसी गठरी?···मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं।"

इस प्रकार आचार्य चतुरसेन ने वेश्या कही जाने वाली नारी और सम्भ्रान्त कहे जाने वाले पुरुष-समाज के आचरण का अन्तर बतलाकर, वेश्याओं के प्रति सहानुभूति और श्रद्धा उत्पन्न करने का सफल प्रयास किया है। आगे चलकर वे हमीदन द्वारा काश्मीर को पाकिस्तान के साथ मिलाने के राजनीतिक षड्यन्त्र का भंडाफोड़ करवाकर उसे राष्ट्रीय रगमंच पर लाकर और भी सम्माननीय बना

१. खून और खून, पृ० ११६।
२. वही, पृ० १२१।
३ वही, पृ० १२२।

देते हैं।[1]

विवेचन से स्पष्ट है कि आचार्य जी वेश्यावृत्ति को समाज और नारी-जीवन की विशेष चिन्तनीय समस्या नहीं मानते है। उनकी दृष्टि मे यह एक समस्या न होकर मनोवैज्ञानिक अनिवार्यता है। इसका न निवारण हो सकता है और न ही उसके निवारण की चिन्ता करने की आवश्यकता है। आवश्यक यह है कि समाज वेश्या वर्ग की विवशता के साथ-साथ उसकी महत्ता को भी समझे तथा उसे घृणा के स्थान पर आदर और प्यार का प्रसाद दे। दूसरी ओर वे सद्गृहस्थ नारियो से इस बात की अपेक्षा रखते हैं कि यदि वे चाहे तो इस समस्या को अधिक भीषण रूप धारण करने से एक बड़ी सीमा तक रोक सकती हैं। अपनी 'नारी' नामक कृति मे उन्होने एक काम-शास्त्र-विशेषज्ञ पाश्चात्य विद्वान् प्रोफेसर हैवलाक का सन्दर्भ देते हुए लिखा है—'वेश्याओं के प्रति समाज का रोष बिल्कुल व्यर्थ है। वेश्याएँ वे ही स्त्रियाँ हैं जो स्त्रीत्व की संस्कृति को खूब विकसित रूप मे प्रकट करके अपना जीवन-निर्वाह करती है। उनके रहन-सहन, बोल-चाल, अदब-कायदे, चतुराई-सफाई, ये सब चीजें ऐसी हैं, जो प्रत्येक उच्चकोटि की स्त्री मे होनी चाहिएँ। यही कारण है कि पुरुष उनपर मोहित होता है, और नैतिक पतन यही से आरंभ होता है। यदि चतुर गृहिणियाँ सलीके और सफाई से रहे, सद्गृहिणियाँ रहते हुए भी उचित बनाव-शृंगार करें तो इन पुरुषो की क्लबो मे जाने और दूसरी जगह मनोरंजन करने की आदतें छूट जाएँ और उनके घर ही उनके लिए स्वर्ग बन जाएँ।'[2]

(ख) काम, प्रेम और विवाह का त्रिकोण

स्त्री और पुरुष का पारस्परिक आकर्षण और यौन-संसर्ग सृष्टि का मूल है। 'हव्वा और आदम' तथा 'श्रद्धा और मनु' उसी आदिम 'स्त्री' और 'पुरुष' के प्रतीक हैं, जिन दोनो के मिलकर एक होने से मानव-जाति का जन्म हुआ। स्त्री और पुरुष के इस संबंध पर ही बाद की सारी परिवार-संरचना और समाज-गठन-प्रक्रिया अवलम्बित है। किंतु केवल यौन-संबंध ही सब कुछ नहीं, जिस प्रकार खेत मे बीज डाल देना ही कृषि कर्म की इतिकर्त्तव्यता नही है, वरन् कृषक की वास्तविक साधना बीज-वपन के पश्चात् आरम्भ होती है। इसका आधार निरन्तर त्याग, लगन और आत्मीयता है। इसी प्रकार स्त्री और पुरुष मे मात्र यौन संबंध की स्थापना मानव-जीवन की सम्पूर्णता का

---

१. खून और खून, पृ० १७०।

२. नारी, पृ० ४२।

मानदड नही है। जीवन वाटिका के समुचित विकास और पल्लवन के हेतु प्रेम-जल से उसका सिंचन और आत्मीयता एव उत्सर्ग-भावना की छत्रछाया द्वारा अनिष्टकारी प्रवृत्तियो की धूप-आँधी से उसका निरतर सरक्षण आवश्यक है। स्त्री और पुरुष मे निसर्गत विद्यमान यौन बुभुक्षा की तृप्ति का एक समुचित तथा सतुलित माध्यम दाम्पत्य जीवन है। उसकी आधार शिला है विवाह और उसकी दृढता और स्थायित्व का आधार है 'प्रेम'। इस प्रकार अपने मे 'अपूर्ण नारी' और 'अपूर्ण नर' के मिलकर पूर्ण और 'एक' हो जाने की शाश्वत प्रक्रिया की सार्थकता यौन, प्रेम और विवाह-रूपी त्रिकोण की समानान्तर रेखाओ की सम्यक् और सतुलित स्थिति पर आधारित है। इस त्रिकोण की किसी एक भी रेखा को वक्र या विकृत अथवा असन्तुलित होने का परिणाम ही नारी या नर के जीवन की विषमता के रूप मे दिखाई देता है। अत. स्त्री-जीवन से सबधित सभी सम्भावित तथाकथित समस्याओ का मूल यौन, प्रेम और विवाह के उक्त त्रिकोण की अवस्थिति है। यही कारण है कि विश्व-साहित्य की कोई भी विधा इसके विवेचन से रहित नही है। ससार के वाङ्मय से यदि यौन प्रेम विवाह-सबधी विवेचन के अश अलग कर दिए जाएँ तो शेष जो बचेगा, वह कतिपय विराम चिह्नो अथवा योजक एव समुच्चय बोधक शब्दो के जमघट के सिवाय और कुछ न होगा, विशेषत कथा-साहित्य मे, जिसकी भित्ति जीवन की प्रत्यक्ष घटना-अघटनाओं पर आधारित है, जिसमे स्त्री और पुरुष के पारस्परिक सबधो के विविध पहलुओ का लेखा-जोखा ही अधिक रहता है और उपन्यास निश्चय ही समूचे कथा-साहित्य मे अग्रणी है। उपन्यासो मे नारी बनाम यौन नारी बनाम प्रेम और नारी बनाम विवाह की समस्या का विशद विवेचन, विश्लेषण होना स्वाभाविक है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यास भी इसके अपवाद नही हैं।

आचार्य चतुरसेन नारी-जीवन की सूक्ष्म एव जटिल गुत्थियो की एक एक गाँठ को खोल सकने मे समर्थ पैनी लेखनी के धनी, अनुभवी शरीर विज्ञानवेत्ता और मनोविश्लेषक चिकित्सक थे। अत. वे नारी की सामाजिक आवश्यकताओ और उनसे उत्पन्न होने वाली व्यवस्थाओ के साथ-साथ, उसकी शारीरिक और मानसिक उलझनो को भी समझने-समझाने मे पूर्ण समर्थ रहे हैं। उनके उपन्यासो मे एतद्विषयक प्रसगो का बाहुल्य और विवेचन इसका प्रमाण है।

'हृदय की प्यास' मे यौन, प्रेम और विवाह की समस्या सुखदा और प्रवीण के माध्यम से चित्रित हुई है। सुखदा एक कर्मशील और पतिसेवापरायणा स्त्री है किन्तु प्रवीण को आवश्यकता है रूप और सौन्दर्य के साथ-साथ उष्ण प्रेम की। 'स्त्री के लिए उसके हृदय मे प्रेम है "केवल प्रेम का इतना आदर है,

जितना हो सकता है—वह प्रेम भी वास्तविक प्रेम नहीं, सूक्ष्म दृष्टि से देखने में वह स्पष्ट मोह दिखाई देता है। प्रवीण केवल प्रेयसी के रूप में स्त्री को चाहते, जानते और समझते थे" पर उनकी स्त्री प्रेयसी न थी। हिन्दू कुल-वधू प्रायः प्रेयसी नहीं होती। हिन्दू जाति में विवाह केवल प्रेम के लिए नहीं किया जाता। प्रेम का तो पुट रहता है, केवल उस ओर अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए, जैसे भोजन में स्वाद "प्रवीण भी केवल प्रेम के लिए ब्याह और स्त्री को समझ कर खीझ रहे थे।"[1] प्रवीण के असन्तोष का कारण सुखदा का सुन्दर न होना भी है—'सुखदा सुन्दरी न थी, पर इसमें उसका क्या अपराध ?"'सुखदा के लिए सारा घर का धन्धा एक ओर था और सास की टहल एक ओर"'। इस सबके बदले में उसे पति का प्यार न सही, आदर भी मिलता तो बहुत था।" उसकी हँसी का कहीं आदर नहीं था। वह हँसी चाहे उतनी मीठी और सुवासित न भी होती, पर यदि किसी सुन्दर मुख में सजाकर पेश की जाती, तो शायद उसका बढ़ बढ़ कर स्वागत होता, लेकिन सुन्दरता तो किराए पर नहीं मिलती।[2] प्रेम को केवल शरीरी सौन्दर्य का विषय समझने की प्रवृत्ति का यह परिणाम होता है कि प्रवीण क्रमशः पत्नी से विमुख होकर, मित्र पत्नी के प्रति आसक्त होने लगता है। यहाँ उपन्यासकार का संकेत स्पष्ट है कि हमारे समाज की अनेक नारियों का जीवन प्रेम के वास्तविक मर्म को न समझने के कारण नारकीय बन जाता है। प्रवीण स्वयं अंगीकार करता है"'केवल प्यार से ही प्यार नहीं मिलता। उसके लिए कुछ और भी चाहिए" रूप"।[3] "'मैं यह जानता हूँ कि मेरी स्त्री मुझे बेतोल प्यार करती है। पर ज्यों-ज्यों मैं उस प्यार में तृप्ति नहीं पाता हूँ, उमंग नहीं पाता हूँ, त्यों-त्यों मैं समझ रहा हूँ कि स्त्री का केवल प्यार ही पुरुष के लिए सब कुछ नहीं है।' सुखी जीवन के लिए हृदय का आहार काम, जीवन-तृप्ति और सम्मान चाहिए। सो कुछ मुझे मिला नहीं।"[4] प्रवीण की यह प्रवृत्ति उसे इतना भटकाती है कि वह पर स्त्री से रूप-याचना करके अपने साथ उसका जीवन भी विषमय बना लेता है। अन्त में प्रवीण को पश्चाताप करते और पुनः पत्नी के अंक में लौटते दिखाकर लेखक ने सिद्ध कर दिया है कि रूप की अपेक्षा हार्दिक प्रेम श्रेष्ठ है।

'आत्मदाह' में इसके सर्वथा विपरीत, विवाह को दो आत्माओं के मिलन

---

१. हृदय की प्यास, पृ० १८-१६।

२ वही, पृ० १६-२०।

३. वही, पृ० ६६।

४. वही, पृ० ११६।

का प्रतीक बताया गया है, मात्र यौन-तृप्ति का माध्यम नहीं। उपन्यास का नायक सुधीन्द्र अपनी कुंठित-हृदया पत्नी सुधा से कहता है—'एक कोठरी में बन्द होकर केवल दो ही व्यक्ति भोग करें, यही क्या विवाह के पवित्र बन्धन का हेतु है ? तब तो विवाह एक तुच्छ स्वार्थ का शर्तनामा है।'' यह विवाह बन्धन तो कभी ऐसा बन्धन नहीं हो सकता कि जिसका तारतम्य परलोक तक हो। यह तो भोग का ठेका है।'[1]

'नीलमणि' में यौन प्रेम विवाह के त्रिकोण की समस्या के सम्बन्ध में विनय के माध्यम से बहुत ही वैज्ञानिक और व्यावहारिक दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है। विवाह और प्रेम के वास्तविक मर्म में अनभिज्ञ होने के कारण, मानसिक भटकन में उलझी हुई नीलू को उसका बालमित्र विनय समझाता है— देखो नीलू स्त्री पुरुषों का भिन्नलिंगी होना दोनों को परस्पर आकर्षित करता है। उस आकर्षण का केन्द्र वासना है। यह वासना विशुद्ध शारीरिक है। मन या आत्मा से उसका सम्बन्ध नहीं है। शरीर में कुछ ग्रन्थियाँ हैं, जिनमें एक प्रकार का रस उत्पन्न होकर रक्त में मिल जाता है और उसका प्रभाव मस्तिष्क के एक खास केन्द्र पर पड़ता है, तब भिन्नलिंगों के संसर्ग, सहवास या दर्शन ही से स्वस्थ व्यक्ति में विकार का उदय होता है। उसका प्रतिकार न ज्ञान कर सकता है, न संयम। नीलू पहले प्रेम करके पीछे विवाह करना, यह सिद्धान्त सुनने में ही अच्छा है, पर यह सर्वथा अव्यवहार्य है। यदि इस पर अमल किया जाएगा तो जीवन की पवित्रता, सतीत्व, पत्नी होने की योग्यता ' सब कुछ खतरे में पड़ जाएगी।' प्रेम तुम किसे कहती हो नीलू ? अधिकाधिक त्याग का नाम ही प्रेम है।'''कल्पना करो, दो अज्ञात युवक-युवती अकस्मात् अपरिचित अवस्था में पति-पत्नी बन जाते हैं। दोनों की अनुमति भी इसमें नहीं ली जाती है। फिर भी इसमें कुछ वैज्ञानिक और प्राकृतिक बातें हैं, जिनका विपर्यय नहीं हो सकता। ''दोनों भिन्न लिंगी हैं। नैसर्गिक रीति से दोनों अपने में अपूर्ण हैं। दोनों एक-दूसरे से मिलकर ही पूर्ण हो सकते हैं।'''मनोविज्ञान कहता है—कि भिन्नलिंगी के प्रति भिन्नलिंगी का आकर्षण ही प्रेम का प्रतिष्ठापक है।' यदि दोनों रोगी या विकार ग्रस्त नहीं हैं, तो उनमें ठीक इसी प्रकार प्रेम उदय हो जाएगा, जैसे दूध में जामन पड़ने से दूध जम जाता है।'[2] इस लम्बे वक्तव्य द्वारा लेखक का अभिप्रेत यही है कि नैसर्गिक और व्यावहारिक प्रेम की उपलब्धि विवाह द्वारा सम्भव है, प्रेम-द्वारा विवाह की उपलब्धि सभी स्थितियों

---

१ आत्मदाह, पृ० २६१-६२।

२ नीलमणि, पृ० ६१-६२।

मे निश्चित नही। प्रेम और विवाह की स्थिति स्पष्ट करने के बाद इसी उपन्यास के नायक महेन्द्र के माध्यम से उपन्यासकार ने प्रेम और यौन वृत्ति की स्थिति का भी इन शब्दो मे विश्लेषण किया है— इस क्षुद्र शरीर के बन्धन मे कर्म-वश जो आत्मा बन्धक है, वह अति महान् है। प्रेम इस आत्मा की एक ज्वाला है। प्रेम की इस ज्वाला मे समय समय पर उसका मैल भस्म होता है। पर स्त्रियो की आवश्यकता, जो पशुधर्म है और पशुधर्मी मानवो मे जिसका बाहुल्य होता है, वह प्रेम की वासना से बच नही सकता। वासना उसे अति क्षुद्र बना देती है और वह महामानव एक नगण्य विवश और विफल कीट हो जाता है। फिर वह अपना विस्तार कर ही नही सकता।"[1]

यह अभिमत एकांगी और अतिशयोक्तिपूर्ण कहा जा सकता है, क्योंकि इसमे प्रेम की उच्चतम भूमिका का स्पष्टीकरण तो है किन्तु साथ ही मानव की नैसर्गिक काम-प्रवृति को सर्वथा हेय बतलाने का प्रयास दिखाई देता है। लेकिन यह भ्रान्त धारणा इन विचारो का इस सदर्भ से अलग विश्लेषण करके करने से ही बनती है। नीलू और महेन्द्र के विशिष्ट व्यक्तित्वो के सन्दर्भ मे उक्त शब्दो की सार्थकता सहज ही समझी जा सकती है। महेन्द्र ने ये शब्द नीलू की अतिशय देह क्षुधा के कारण होने वाली दुर्दशा के शमन के लिए ही कहे हैं, काम-वृत्ति को सर्वथा त्याज्य सिद्ध करने के लिए नहीं। आचार्य जी तो प्रेम और काम के सम्यक् सन्तुलन के चिर-आग्रही हैं। उदाहरणस्वरूप 'अदल-बदल' मे डॉ० कृष्णगोपाल के माध्यम से व्यक्त मन्तव्य पठनीय है—'यदि इस सम्बन्ध मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार किया जाए तो आपका यह कहना कि प्रेम और काम साथ-साथ नही रह सकते, गलत प्रमाणित होगा। यह सिद्धान्त भी ठीक नही है कि स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध कामात्मक है, प्रेमात्मक नही। ससार के समस्त जीव-जन्तु, जो केवल काम वृत्ति से मिलते हैं, वे काम पूर्ति के बाद अपरिचित रह जाते हैं, केवल पुरुष और स्त्री ही अपने सम्बन्ध को अनुबन्धित बनाए रखते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेम-तत्त्व की काम-तत्त्व के साथ गम्भीर आवश्यकता इसलिए भी है कि काम सम्बन्ध एक ही काल मे अनेक स्त्रियो मे एक पुरुष का और अनेक पुरुषो मे एक स्त्री का हो सकता है किन्तु प्रेम-सम्बन्धी नही। प्रेम-सम्बन्ध एक काल मे एक स्त्री और एक ही पुरुष का परस्पर हो सकता है।"[2] प्रेम और काम के अन्तर का यह स्पष्टीकरण निश्चय ही विचारणीय है, क्योंकि उक्त कथन के सम्बन्ध मे लेखक ने सेठ जी के मुख

---

१. नीलमणि, पृ० १०३।

२ अदल-बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १३५-३६।

से यह मत उपस्थित कराता है—"...लैंगिक आकर्षण और लैंगिक तृप्ति से जो पारस्परिक प्रीति उत्पन्न होती है, उसे प्रेम नहीं कहा जा सकता।...लोगों ने इसी का नाम 'प्रेम' रख लिया है।' किन्तु उन्होंने इसका प्रत्युत्तर भी साथ ही दे दिया है—'प्रेम वास्तव में एक विशुद्ध आध्यात्मिक वस्तु है, इसका सम्बन्ध मन से है और काम-तत्त्व से उसका कोई प्रत्यक्ष अनुबन्ध नहीं है। काम-तृप्ति का आभास ही प्रेम है, ऐसी बात नहीं है।"[1]

प्रेम और काम-सम्बन्धी इस सैद्धान्तिक विवेचना की व्यावहारिक रूप में पुष्टि लेखक के अनेक उपन्यासों में हुई है। 'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली की क्रमशः हर्षदेव, सोमप्रभ बिम्बसार और उदयन के प्रति आसक्ति कामासक्ति मानी जाएगी मात्र प्रेम नहीं। कुडनी का सुण्डरीक के प्राण-नाशक आलिंगन-पाश में बँधने को आतुर होना भी कामावेग है, प्रेमावेग नहीं। 'हृदय की परख' में सरला का सत्यव्रत और विद्याधर के प्रति झुकाव शुद्ध प्रेम पर आधारित है, कामासक्ति अथवा यौन तृप्ति की आकांक्षा का इसमें कहीं आभास नहीं मिलता। 'बहते आँसू' की विधवा कुमुद के शब्द इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं—'इन्द्रिय-वासना को मैंने जीत लिया है और यही मेरी तृप्ति का विषय है।"[2] वह अपनी विधवा सखी मालती के हाथ में फूलों की एक माला देखकर कहती है—'क्या इसे तूने उस अदृष्ट पति के नाम पर नहीं बनाया था, जो तेरी नस-नस में रम रहे हैं पर जिन्हें तू देख नहीं पाती, जिन्हें देखने को तू कितनी व्याकुल है?'[3] स्पष्ट है कि इन दोनों ने 'प्रेम' और 'काम' के अन्तर को भली भाँति समझ लिया है। 'आत्मदाह' की बाल-विधवा सरला की सुधीन्द्र के प्रति आत्मीयता भी सात्त्विक प्रेम का विषय है क्योंकि ज्यों ही युवा सरला की सुप्त यौवनाकांक्षा उस प्रेम-भाव को आवेष्टित करने लगती है, वह सुधीन्द्र को हठपूर्वक घर लौट जाने का आग्रह करती है। 'नरमेध' की मल्लाननामा नायिका का प्रेम पति के प्रति है किन्तु कामासक्ति एक अन्य पुरुष के प्रति है। 'अपराजिता' की राज का चरित्र 'प्रेम' के उदात्त रूप का ज्वलन्त उदाहरण है। ब्रजराज के प्रति उसके हृदय में ऐकान्तिक प्रेम है। यह परिस्थिति-वश उनका विवाह अन्यत्र हो जाने पर भी किसी स्थिति में न तो रंचमात्र कम होता है न ही कलुषित। 'अदल-बदल' की विमलादेवी पति-पत्नी-सम्बन्ध को अटूट प्रेम-रज्जु में आबद्ध मानती है,

---

१. अदल-बदल (नीलमणि मधुकर) पृ० १२६।
२. बहते आँसू पृ० २५६।
३. वही, पृ० १४२।

दोनों के यौन-सम्बन्ध की अनिवार्यता उनकी दृष्टि में निरर्थक है।"[1] इसके विपरीत मायादेवी को पति-पत्नी सम्बन्धों की सार्थकता यौनतृप्ति और रूप रस के अभीष्ट आदान-प्रदान में दिखाई देती है। मात्र प्रेम तो वह एक साथ तीन-तीन चाहने वालों के प्रति प्रदर्शित करती है, जबकि वस्तुतः उसकी सच्ची आत्मीयता किसी के प्रति भी नहीं है। 'आलमगीर' की जहाँआरा के लिए काम-तृप्ति ही सब कुछ है; प्रेम को वह एक खिलवाड़ समझती है। इसके विपरीत बेगम दाराशिकोह के लिए सच्चा प्रेम ही जीवन की सबसे बड़ी पूँजी है और केवल काम-सम्बन्ध निकृष्ट और हेय है। 'सोमनाथ' की चौला और शोभना प्रेम-तत्त्व में रमी हुई नारियाँ हैं, काम बुभुक्षा के प्रभाव से उनका जीवन सर्वथा मुक्त है। यही बात 'धर्मपुत्र' की हुस्नबानू और मायादेवी में देखी जा सकती है। 'वय रक्षाम' की दैत्यबाला 'काम तत्त्व' से प्रेम-तत्त्व की ओर अग्रसर होती है तो मायावती और शूर्पणखा प्रेम-तत्त्व से काम-तत्त्व की ओर बढ़ती दिखाई देती हैं। 'गोली' की चम्पा के चरित्र में काम और प्रेम की पृथकता स्पष्टतः रेखांकित की जा सकती है। इनके केन्द्र क्रमशः राजा और किसुन हैं। 'आभा' की आभा काम और प्रेम के अन्तर को हृदयगम न कर पाने के कारण भटकती दिखाई देती है। 'बगुला के पंख' की पद्मा प्रेमतत्त्व को काम पंक में डुबो देने के कारण जीवन को विषमय बना डालती है। 'पत्थर के युग के दो बुत' की रेखा और माया के लिये भी काम अधिकारी है और प्रेम उसका अनुचर-मात्र प्रतीत होता है। इसीलिए इन दोनों के जीवन और हृदय सर्वथा अशान्त दिखलाये गये हैं।

इन उदाहरणों के आधार पर आचार्य जी के इस दृष्टिकोण का पुनराख्यान सहज ही किया जा सकता है कि 'प्रेम एक विशुद्ध आध्यात्मिक वस्तु है उसका सम्बन्ध मन से है और काम-तत्त्व से उसका कोई प्रत्यक्ष अनुबन्ध नहीं है। किन्तु जिस प्रकार जीवन में मस्तिष्क और हृदय आध्यात्मिकता और भौतिकता एवं आत्मा और शरीर के सन्तुलित समन्वय की आवश्यकता है उसी प्रकार दाम्पत्य परिधि में प्रेम और काम की सन्तुलित समन्वित स्थिति वरेण्य है। फिर प्रेम का स्थान निश्चय ही काम से कहीं ऊँचा है। इस सम्बन्ध में, हुस्नबानू के माध्यम से व्यक्त किये गये विचार पठनीय हैं। डॉ० अमृतराय द्वारा अपने प्रति प्रणयासक्ति दिखलाने पर बानू कहती है—"मैं तो यह समझने लगी हूँ कि प्यार की सही सूरत तो जुदाई ही है, मिलन नहीं।...वह जुदाई जहाँ रोम-रोम में

---

१. अदल-बदल (नीलमणि मथुरा), पृ० १६६-७०।

रमकर जिस्म को प्यार से सराबोर कर देती है।"[1] लेखक ने अपने उपन्यासों के माध्यम से स्त्री-जीवन में प्रेम भावना के स्फुरण, विकास और परिपक्व रूप धारण करने की वैज्ञानिक प्रक्रिया का भी सम्यक् विश्लेषण किया है। 'वय रक्षाम' में मन्दोदरी रावण के सम्मुख शूर्पणखा और विद्युज्जिह्व के प्रेम का विवेचन करती हुई कहती है—'यौवन का प्रारम्भ प्रेम ही से तो होता है, परन्तु युवक और युवतियाँ केवल जीवन को प्यार करना ही जानते हैं, उन्हें संसार का अनुभव कुछ नहीं होता, इसमें उनका प्यार खोखला हो जाता है और जीवन निराश। विवाह एक दुखद घटना हो जाती है। शूर्पणखा को मैं उसस बचाना चाहती हूँ। उसने अभी किसी तरुण को प्यार की दृष्टि से देखा ही नहीं है।''' उस तरुण के प्यार का अनुभव होना चाहिए, प्यार के घात प्रतिघातों से भी उस अपरिचित न रहना चाहिए। 'परन्तु उसकी दृष्टि एकांगी है।'''उसके विचार भावुकता से ओतप्रोत है। '''मैं नहीं चाहती कि वह मूर्ख, भावुक लड़कियों की भाँति उस तरुण से ब्याह कर ले, जिसे उसने प्रथम बार ही जरा-सा जाना हो और जरा सा हो प्यार किया हो।' फिर वह शूर्पणखा को समझाती है— तुम्हें वस्तु का यथार्थ ज्ञान होना ही चाहिए। तुम्हारा शरीर और आत्मा परिपूर्ण होगा, तब वह आह्लाद से एक दिन ओत-प्रोत हो जाएगा। तभी चैतन्य आत्माएँ परस्पर मिलकर जीवन के सच्चे आनन्द को प्राप्त करेंगी। परन्तु तुमने यदि भावुकता और आवेश में आकर कुछ चूक की तो तुम्हारे इन नेत्रों में जो आज प्रेम से उत्फुल्ल है, करुण विष भर जाएगा।"[2] प्रेम और विवाह की पारस्परिक महत्ता का यह विश्लेषण निश्चय ही प्रत्येक नारी के लिए विचारणीय है।

इस प्रश्न का एक अन्य पक्ष भी है। उसके अनुसार कई नारी-पात्र यौन तृप्ति अथवा शरीर संबंधों को प्रेम की रंगत को चमकाने वाली हींग और फिटकरी समझते हैं। 'आभा' की नायिका आभा पति के मित्र रमेश के प्रति आसक्त होकर अपना पति छोड़कर उसके घर आ जाती है तो रमेश को समाज की मर्यादा से डरते देखकर कहती है —'रकम पर ब्याज बढ़ रहा है और ब्याज की वसूली का कोई डौल होना आवश्यक है।"[3] उसका संकेत स्पष्ट है कि मौखिक प्रेम प्रदर्शन पर्याप्त नहीं है शरीर-रस का आदान-प्रदान भी तो होना चाहिए। उसी के शब्दों में 'नारी का शरीर ब्याज होता है। प्रेम की पूँजी तभी सार्थक होती है

१. धर्मपुत्र, पृ० २४।
२ वय रक्षाम, पृ० २०३-२०४।
३ आभा, पृ० ४८।

जबकि ब्याज मिलता रहे।' रमेश द्वारा बहुत शाब्दिक लीपापोती करने पर भी वह इस वास्तविकता को स्पष्ट करने में नहीं हिचकिचाती कि 'तुमने जब परस्त्री से प्यार का इजहार करके पाप का अनुष्ठान किया' तब तुमने आत्मा की कोई पुकार सुनी थी या नहीं ? · अपनी वासना नहीं देखी ?··· तब तुम अपने प्रेम का हाथ पकड़ कर मेरे द्वार तक गए, मुझे वहाँ खींच लाए, मेरे पति और सन्तान से छीनकर 'अब शायद उस प्रेम का हाथ छूट गया और अब तुम्हें दीखने लगा समाज, मर्यादा, यश, अपयश।' किन्तु अन्त में पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई वह यौन, प्रेम और विवाह के त्रिकोण की रेखाओं को तोड़-मरोड़ कर विकृत कर देने वाले स्त्री पुरुषों की भर्त्सना करते हुए कहती है—'मैं सोचती हूँ कि वैवाहिक प्रतिज्ञा भंग करने वाले की, समाज की ओर से, कम से कम उतनी भर्त्सना अवश्य होनी चाहिए जितनी व्यापार में धोखा देने वाले की होती है।'[1] इस प्रकार एक भुक्त-भोगिनी स्त्री द्वारा कामवासना पर आधारित खोखले प्रेम की तुलना में वैवाहिक मर्यादा की श्रेष्ठता स्वीकार कराकर लेखक ने प्रकारान्तर से अपने अभिमत की ही पुष्टि की है। इसीलिये वे उसी के मुख से कहलाते हैं—'संयम और प्रेम, दोनों मिलकर विवाह संस्था को जन्म देते हैं और वैवाहिक जीवन को अभंग बनाते है। विवाह की मर्यादा और प्रतिज्ञा का भंग संयम का उल्लंघन है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि प्रेम ने संयम का साथ छोड़ दिया और वासना का पल्ला पकड़ लिया। निस्सन्देह, यह न समाज के लिये कल्याणकारी है, न व्यक्ति के लिये।'[2] अन्यत्र भी, वह आत्म-चिंतन करती हुई इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि'''परस्पर आकर्षण ही स्त्री और पुरुष के बीच का प्रेम है। परन्तु देखा जाए तो वह प्रेम नहीं, सापेक्ष आकर्षण है। विवाह के बाद नर और नारी पति और पत्नी बन जाते हैं।'''पति-पत्नी का सम्बन्ध उसे (प्रेम को) आध्यात्मिक रूप देता है। नर-नारी की जहाँ वैयक्तिक सत्ता है, वहाँ पति-पत्नी की सामाजिक। इसी से नर-नारी जब पति-पत्नी की भाँति प्रेमार्पण में आबद्ध होते हैं, तभी वह ऊपर से शारीरिक और आभ्यन्तर से आध्यात्मिक होता है। इसी से वह समुद्र की भाँति शान्त, गंगा की लहरों की भाँति पवित्र और शीतल नव वसन्त की सुषमा की भाँति प्राणोत्तेजक हो जाता है और वास्तव में जीवन का यही चरमोत्कर्ष बन जाता है।'[3]

आभा का यह निष्कर्ष यदि काम, प्रेम और विवाह के सम्बन्ध में आचार्यजी

---

१. आभा, पृ० ४८-४९।
२. वही, पृ० ५१।
३. वही, पृ० ५५।

का अपना निष्कर्ष मान लिया जाए तो असंगत न होगा, क्योंकि आगे चलकर उन्होंने आभा को इसी आत्म-चिन्तन के फल स्वरूप, रमश को छोड़कर पति के पास लौटते दिखलाया है।

'प्रेम और 'काम'-वृत्ति की दुविधा में उलझी हुई एक अन्य नारी, 'पत्थर युग के दो बुत' की माया, के माध्यम से भी उपन्यासकार ने इस समस्या का पर्याप्त विश्लेषण किया है। माया काम भुक्ति को ही प्यार की सबसे बड़ी कसौटी मानती है—मुझे ढेर-सा प्यार चाहिए था। राय को तनछट मेरे काम की न थी। मुझे चाहिए गर्मागर्म प्यार' एकदम ताजा, एकदम अछूता।"[1] इसी उपन्यास की रेखा अपने पति दत्त से विमुख होकर, राय के प्रति आसक्त हो जाने के बाद अतीत का स्मरण करते हुए कहती है—'दोनो, दोनों को प्यार करते थे। फिर आ गया चांद सा बेटा प्यार का सुफल फल। पर इसी बीच यह पातक (राय से यौन सम्बन्ध) मेरे जीवन में घुस गया।"[2] रेखा के इस आत्म-कथ्य से स्पष्ट है कि वह पति प्रेम को उचित एवं पर-पुरुष-प्रेम को पातक मानती है फिर भी अपनी यौन तृप्ति की अदम्य कामना के वशीभूत होकर वह पति-प्रेम की अवहेलना कर देती है। उसके रति-सहचर राय के शब्दों में—"अपने पति की भांति ही वह अपने पति को प्यार करती थी। अपना तन-मन उसने अपने पति को सम्पूर्णरूपेण अर्पण कर दिया था।'[3] उसमें विकार आया रति भाव पर। स्त्री शरीर-महत्वाम के साथ जिस रति-विलास की आवश्यकता का अनुभव करती है, वह उसे दत्त से प्राप्त नहीं हुई। दत्त इस सम्बन्ध में अनाड़ी और असावधान व्यक्ति है। "वह प्रेम और काम के सन्तुलन को ठीक न बनाए रख सका, जिससे रेखा का रति-भाव भंग हो गया..."।"[4] इसी राय के मतानुसार 'स्त्रियाँ कोरे भावुक प्रेम को पसन्द नहीं करती। वे तो उसी प्रेम को पसन्द करती हैं जिसमें काम-वासना का भीषण आक्रमण छिपा हो।"[5] आचार्य जी ने राय का यह अभिमत व्यक्त कराकर प्रेम बनाम यौन वृत्ति के पक्ष की सबलता अवश्य दिखलाई है, किंतु हर यथार्थ, एक कटु सत्य होते हुए भी, बरेण्य तो नहीं माना जा सकता। इसीलिए उन्होंने स्त्रियों में पुरुष की अपेक्षा आठ गुनी काम की भूख" होने का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए भी, और राय के मुख से यह

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ४६।
२. वही, पृ० ८३।
३. वही पृ० ६७-६८।
४. वही, पृ० १०३।
५. वही, पृ० १०७।

कहलवाकर भी कि 'कामोदय-काल मे अविवाहित लडकियाँ न सौन्दर्य देखती हैं, न आयु न प्रेम। वे देखती हैं वह प्यास जो नेत्रो मे उन्हे देखते ही भड़क उठती है और जिसके मूल मे भिन्न लैंगिक आकर्षण होता है'''।'[1] इस प्रवृत्ति को स्त्री-जीवन, दाम्पत्य सुख और सामाजिक स्वास्थ्य के लिए अनुपयुक्त सिद्ध किया है। 'खून और खून' मे रतन के जिन्ना के साथ इसी आवेश मे किये गये विवाह के सफल न होने पर आचार्य जी ने एनी बीसेंट के मुख से कहलाया है— मैं इस सुकुमार लडकी की सुन्दर आँखो मे समाई हुई उदासी के कारण दुखी हूँ। अभी इसके विवाह को अधिक समय नही हुआ कि इसकी जिन्ना से अनबन रहने लगी है। कोमल, भावुक लडकी ने अपनी भावनाओ के वशीभूत होकर जिन्ना का हाथ पकडा, उसे पति के रूप मे स्वीकार किया, परन्तु असमानताओ का अभी से प्रादुर्भाव होने लगा है।'[2]

इन विवेचन से स्पष्ट है कि यौन, प्रेम और विवाह के त्रिकोणात्मक द्वन्द्व मे उपन्यासकार यौन और प्रेम की सत्ता सर्वथा पृथक् और अपने-अपने स्थान पर महत्वपूर्ण मानता है और वह इन दोनो की सन्तुलित सम्पूर्णता को कसौटी स्वस्थ वैवाहिक जीवन को समझता है। प्रेम विहीन काम-वृत्ति की चपल क्रीडाओ को वह सामाजिक दृष्टि से तो अहितकर मानता ही है, स्त्री के व्यक्तिगत जीवन मे भी उसकी शारीरिक और मानसिक रुग्णता का सूचक स्वीकार करता है। शारीरिक ऐक्य अर्थात् दम्पती रूप मे स्त्री पुरुष के समुचित ससर्ग से रहित, कोरा, भावुकता-भरा प्रेम उसे यथार्थ से दूर लगता है और अनुपयुक्त विवाह, चाहे वह आयु, शरीर-ऊर्जा अथवा बौद्धिक स्तर, किसी भी दृष्टि से अनमेल हो, उसे नारी-जीवन के लिए सबसे बडा अभिशाप प्रतीत होता है। अपवाद स्वरूप, किसी विशिष्ट, लोकोत्तर एव असाधारण व्यक्तित्वशाली चरित्र के लिए उसकी ये मान्यताएँ शतप्रतिशत सही नही भी हो सकती, जैसे अम्बपाली ('वैशाली की नगरवधू'), शोभना ('सोमनाथ'), चम्पा ('गोली'), राज ('अपराजिता'), कुमुद ('बहते आँसू') तथा सरला ('हृदय की परख') आदि का चरित्र अन्य स्त्रियो से कुछ विलक्षण है, किन्तु सामान्य नारी-वर्ग की स्थिति मे आचार्य जी का दृष्टिकोण सर्वथा उपयुक्त, व्यावहारिक और यथार्थ है। निष्कर्ष रूप मे, यौन प्रेम और विवाह-सम्बन्धी आचार्य जी के विचारो का सार इन शब्दो मे निहित है— विवाह एक आत्मिक सम्बन्ध है और शारीरिक भी। वैवाहिक जीवन की सार्थकता तभी है, जब शारीरिक सम्बन्ध आत्मिक सम्बन्ध

---

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ६७।
२. खून और खून, पृ० ५३।

में परिणत हो जाए। स्त्री पुरुष का एवं पति-पत्नी का साहचर्य तभी पूरा हो सकता है।[1] और "स्त्री-पुरुष के साहचर्य में काम-तत्त्व की महत्ता है। कभी भी स्त्री शारीरिक और मानसिक स्थितियों में अकेला छोड़ा जाना सहन नहीं कर सकती।"[2]

३. नारी की आर्थिक स्वाधीनता और अधिकार की समस्या

(क) आर्थिक मामलों में नारी अधिकार की सीमा

भारतीय समाज में परिवार में समूची अर्थ-व्यवस्था का कर्णधार पुरुष है। मध्ययुग तक भी सामन्ताधिकार के कारण कुछ उच्चवर्गीय स्त्रियाँ एवं सेवा-वृत्ति के माध्यम से कुछ निम्नवर्गीय स्त्रियाँ किसी सीमा तक आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र थीं। फिर भी ऐसे उदाहरण अपवाद ही मानने चाहिएँ। सामान्यतः नारी का आर्थिक मामलों में सम्बन्ध रखना कल्पनातीत रहा है। पाश्चात्य देशों में औद्योगीकरण की लहर के साथ, समाज में नई चेतना की जो लहर चली, उसके अन्तर्गत नारियों ने यहाँ आर्थिक रूप से स्वतन्त्र होने की माँग समाज के सामने रखी। प्रथम विश्वयुद्ध के समय संसार-भर में जो नई परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं उन्होंने नारी की आर्थिक स्वाधीनता के औचित्य पर स्पष्ट मुहर लगा दी, क्योंकि 'युद्ध-काल में प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण सेवाओं में नारियों की आवश्यकता को अनुभव किया गया, और नारियों ने अनेक पदों पर अत्यन्त सफलता-पूर्वक कार्य कर महत्त्वपूर्ण एवं उत्तरदायी कार्यों के लिये स्वयं को समर्थ सिद्ध किया।"[3] इससे उनकी आर्थिक स्वाधीनता की माँग को बल मिला और भारतीय समाज में भी इसका प्रभाव दृष्टिगोचर होने लगा। किन्तु यहाँ का सामाजिक और पारिवारिक अर्थतन्त्र इतनी कठोरता से पुरुष द्वारा नियन्त्रित है कि जब-जब भी नारी को आर्थिक स्वाधीनता देने की बात उठती है, उसका अनेक-विध प्रतिरोध होने लगता है।

'वैशाली की नगरवधू' में श्रावस्ती नरेश की दो पत्नियों, नन्दिनी और कलिंगसेना, में स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों पर विवाद द्वारा स्थिति स्पष्ट की गई है। कलिंग सेना कहती है—'पुरुष स्त्री का पति नहीं, जीवन-संगी है। 'पति' तो उसे सम्पत्ति ने बनाया है।' सो जब मैं उसकी सम्पत्ति का भोग नहीं करूँगी तो उसे पति भी नहीं मानूँगी।" राज ('अपराजिता') अपने विवाह में,

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ८८।
२. वही, पृ० १३५।
३. मादलाइनीन, दी फेमिनिन करैक्टर, पृ० २७।
४. वैशाली की नगरवधू, पृ० २६८।

पिता से मिले हुए दहेज और ससुराल से आए हुये चढ़ावे के रूप में प्राप्त सारे वस्त्राभूषण आदि अपनी सखी राधा को उपहार स्वरूप भेंट कर देती है। ससुराल आने पर जब इसके लिए उसका जवाब तलब किया जाता है तो वह स्पष्ट कहती है—'जो कुछ पिता ने दिया वह पुत्री-धन है, और जो आपने विवाह समय पर दिया, वह स्त्री धन है। दोनों पर मेरा अबाध अधिकार है। मैं उसका जैसा भी चाहूँ, उपभोग कर सकती हूँ।'[1] उसका क्रोधान्ध ससुर आवेश में उसे 'चमार की बेटी' तक कह डालता है। इसके विरोध-स्वरूप राज अनशन करके पूरे गाँव की सहानुभूति और सक्रिय नैतिक सहायता अर्जित करती है। अपने दुरभिमानी ससुर और पति का हृदय-परिवर्तन करने में उसे सफलता मिलती है। ससुर द्वारा अपनी भूल स्वीकार कर लेने पर राज अपने सत्याग्रह का कारण स्पष्ट करती हुई कहती है—आपने मेरे साथ जिस भावना और मनोवृत्ति के वशीभूत होकर अपमान जनक व्यवहार किया है, वह भावना हमारे जातीय सस्कार से सम्बन्ध रखती है, जिसके कारण हमारी लाखो-करोड़ो बहिनें दासता और अपमान का जीवन ससुराल में भोगती हैं। मेरा सत्याग्रह तो उसी के विरोध में है। इसी से गाँव ने मेरा साथ दिया है। और मैं आज यह आशा करती हूँ कि सारा ससार मेरा साथ देगा।[2]

'अदल बदल' में इस समस्या का अन्य पक्ष है। स्त्री की आर्थिक स्वाधीनता की लालसा उसे प्रकृत कर्त्तव्य-पथ से विमुख भी कर सकती है। स्वेच्छाचारिणी माया का पति हरप्रसाद उसे समझाते हुए कहता है—पुरुष अपने पुरुषार्थ से सुख-सम्पत्ति को ढो ढोकर लाता है, नारी उसे सजाकर उपभोग के योग्य बनाती है। पुरुष का काम प्रकट है, स्त्री का गुप्त है। पुरुष सचय करता है, स्त्री प्रेम दिखाकर उसे पुरस्कृत करती है। "पुरुष का धर्म कठोर है, स्त्री का धर्म कोमल और दयनीय है। इसीलिए नारी का स्थान प्यार है और वही रहकर वह पुरुषों पर अमृत की वर्षा कर सकती है।"[3] यह एकांगी सत्य है। पुरुष द्वारा स्त्री को यदि कहीं आर्थिक अधिकार प्राप्त है तो वह केवल सधवा की स्थिति में है। विधवा होने पर उसकी अकल्पनीय शोचनीय दशा का मुख्य कारण उसकी आर्थिक दासता ही होती है। डॉ० कृष्णगोपाल कहता है—हिन्दू घरों में··· स्त्रियाँ चाहे जैसी उम्र में विधवा हो जाएँ, वे प्राय ससुराल और पिता के घर में असहाय अवस्था में ही दिन काटती हैं।' इसी सन्दर्भ में मायादेवी का कथन

---

१ अपराजिता, पृ० ३२।

२. वही, पृ० ६६।

३ अदल बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १११।

है—'सद्गृहस्थ परिवार में पति की सम्पत्ति में से एक पैसा भी उन्हें नहीं मिल सकता। यदि वे उस परिवार के साथ रहें, तो उन्हें रोटी कपड़े का सहारा-मात्र मिल सकता है। इस रोटी-कपड़े के सहारे का यह अर्थ है कि घर-भर की सेवा-चाकरी करना, लाञ्छना और तिरस्कार सहना, सब भाँति के सुखों और जीवन के आनन्दों से वंचित रहना 'यही उसकी मर्यादा है।'[1]

'अदल बदल' में उपन्यासकार ने स्त्रियों की आर्थिक विपन्नता कम करने के लिए डॉ० कृष्णगोपाल के माध्यम से तीन उपाय बताए हैं। पहला, विवाह के समय माता पिता अधिकाधिक दहेज नकद धन के रूप में दें, जिसपर केवल लड़की का ही अधिकार हो। दूसरा विवाह के समय ससुराल से भी उसे जेवर और नकदी के रूप में स्त्री धन प्राप्त होना चाहिए। उसका कोई अपहरण न करे। तीसरा विवाह पर सगे-सम्बन्धियों तथा इष्ट मित्रों द्वारा प्राप्त एवं विदाई समय लब्ध धन भी स्त्री धन होना चाहिए।[2] ये तथाकथित उपाय भारतीय समाज के कुछ उच्च या मध्यवर्गीय परिवारों में ही लागू हो सकते हैं। जिन परिवारों में दो-समय खान की जुगाड़ भी कठिन है, वे 'कन्या धन' और 'स्त्री-धन' के लिए कहाँ से रकम लाएँगे? इसके अतिरिक्त इन उपायों से यह निश्चित नहीं कि स्त्री की आर्थिक विपन्नता सर्वथा समाप्त हो जाएगी।

वस्तुत आचार्य जी के जिन उपन्यासों में यह समस्या उठाई गई है, उनके नारीपात्र अधिकांशत उच्च-मध्यवर्गीय, सम्भ्रान्त परिवारों से सम्बन्धित हैं, अत उनके परिप्रेक्ष्य में ही इसके समाधान की खोज लेखक ने की है। किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि उसने इस समस्या की जड़ तक जाने का भरसक प्रयास किया है और इसके कारणों की छानबीन में अपनी सूक्ष्म एवं सतर्क दृष्टि का परिचय दिया है। उदाहरणतः 'पत्थर युग के दो बुत' में उसने पाठकों का ध्यान हिन्दू समाज में प्रचलित उस उत्तराधिकार-प्रथा की ओर आकृष्ट किया है, जिसके कारण नारी आर्थिक दृष्टि से कभी भी आत्मनिर्भर नहीं हो पाती। इस उपन्यास की नायिका रेखा कहती है—'भारत में एक और रोग प्रबल है—उत्तराधिकार का रोग। इसके कारण विवाहिता स्त्रियों का घरों में जो सम्मान होना है, वह उनके अपने गुणों और शील तथा व्यक्तित्व के लिए नहीं होता। स्त्रियों का सम्मान सन्तान होने पर निर्भर है, जो पति की सम्पत्ति की उत्तराधिकारी होती है...।'[3]

---

१. अदल बदल (नीलमणि मुद्रित) पृ० १३६।

२. वही, पृ० १४०-४२।

३. पत्थर युग के दो बुत, पृ० १४०।

'उदयास्त' में लेखक का दृष्टिकोण अधिक प्रगतिशील हो गया है। यहाँ उसने अनेक प्रबुद्ध और विचारशील पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि शोषण, उत्पीड़न और वर्ग भेद का सबसे पहला शिकार नारी है। यहाँ राजकुमार सुरेश कहता है—'इतिहास का पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा स्त्री का उत्पीड़न है। परिवार में स्त्री सर्वहारा के रूप में और पुरुष बुर्जुआ के रूप में है, और यह दमन और उत्पीड़न सार्वदेशिक है।'[1] यहीं कामरेड कैलाश कहता है—'यह स्त्री नाम का प्राणी तो सबसे ज्यादा पीडित वर्ग का मजूर है।···इनकी न तो कोई यूनियन है और न कोई संगठन। अठारह घंटे से ज्यादा मजदूरी का दिन। हफ्ता तो क्या, साल भर में भी एक दिन की छुट्टी नहीं। बस काम किए जाओ और मुस्कराए जाओ, मालिक यही चाहते हैं।'[2]

नारी के आर्थिक दासत्व के प्रति आचार्य जी ने अपनी जागरूकता का परिचय देते हुए इस क्षेत्र में उसकी अधिकारी-सीमा पर गहराई से विचार किया है। किन्तु प्रतीत होता है कि वे इस समस्या के स्वरूप और कारणों की व्याख्या करके ही रह गए हैं। इसके समाधान की खोज, उन्हें अन्त तक रही। इस सम्बन्ध में 'अदल-बदल' में हरबंशलाल के ये शब्द आचार्य जी के दोहरे दृष्टि-कोण के परिचायक हैं, जिसमें पहले तो वे नारी की आर्थिक दासता को कोसते हैं, और फिर उसकी यथास्थिति पर सन्तोष भी व्यक्त करते हैं—'अब स्त्रियों की आर्थिक दासता ही उनकी सामाजिक स्वाधीनता में बाधक है। वे घर में रहकर यदि गृहस्थी चलावें तो कुछ कमा तो सकती नहीं। केवल पति की आम-दनी पर ही उन्हें निर्भर रहना पड़ता है। पर इतना अवश्य है कि गृहस्थी में गृहिणी पति की कमाई पर निर्भर रह कर भी उतनी निरुपाय नहीं है। उसकी बहुत बड़ी सत्ता है, बहुत भारी अधिकार है। पति तो उसके लिए सब बातों का ख्याल रखता ही है, पुत्र भी उसकी मान-मर्यादा का पालन करते हैं।'[3]

(ख) परिवार और समाज में नारी

रेखा (पत्थर युग के दो बुत) का चिन्तन है—'धर्मजीवी पुरुषों ने स्त्री को गर्हित कहा है। इस का भेद क्या है—मैं नहीं जानती। शंकराचार्य नारी को नरक का द्वार बताते हैं। बाइबल में स्त्री को सब अनर्थों की जड़ कहा है।

---

१. उदयास्त, पृ० ६४।
२ वही, पृ० १६४।
३. अदल-बदल (नीलमणि से संयुक्त), पृ० १२१।

ईसाई धर्म-संस्थापक उसे शैतान का द्वार बताते हैं। वे तो स्त्री में आत्मा ही नहीं मानते। बुद्ध ने स्त्री को परिग्रह कहकर सबसे प्रथम त्याज्य बताया। मार्टिन-लूथर का कहना है कि स्त्री का बुद्धिमती होने से बढ़कर दूसरा दोष नहीं है। चीनी सन्तों ने कहा है कि अज्ञान स्त्रियों के सौन्दर्य की वृद्धि करता है। सुनती हूँ, प्राचीन मिस्र की सभ्यता में स्त्रियों को सम्मान मिलता था। रोम और यूनान की सभ्यता की बातें भी ऐसी ही सुनती हूँ। यों तो मनु भी स्त्री को पूजा के योग्य कहते हैं। पर यह सब सम्मान पूजा कैसी है, आदर सत्कार कैसा है कि जैसे घर में बँधी भैंस को यत्न से भूसा खल दिया जाता है, इसलिए कि वह खूब दूध दे। वे पुरुष थे, इसलिए केवल पुरुष के स्वार्थ को सामने रखकर उन्होंने समाज और धर्म-सम्बन्धी कानून बनाए और उन सब नियमों-कानूनों का यही अभिप्राय रहा कि स्त्रियों से पुरुष अपना प्राप्तव्य अधिक से अधिक कितना और कैसे वसूल करें। मनु आए, पाराशर आए, बुद्ध आए, मूसा आए, ईसा आए, शंकर आए और श्लोक पर श्लोक रचकर, सिद्धान्त पर सिद्धान्त रचकर, शास्त्र वचन की उन पर मुहर लगा दी। इस प्रकार पुरुषों के स्वार्थ ने धर्म बनकर समाज पर शासन करना आरम्भ कर दिया।"'मैं पूछती हूँ— स्वार्थपरता और चरित्रगत पापबुद्धि अधिक किस में है—पुरुष में या स्त्री में? क्या कोई माई का लाल ऐसा धर्मात्मा संसार में है, जो इस बात का निपटारा कर कि सामाजिक जीवन को विशुद्ध रखने के लिए स्त्री और पुरुष में से किस पर अधिक दृष्टि रखना उचित होगा? "क्या यह एक पाशविक अत्याचार नहीं कि स्त्री की तो रत्ती-भर भी भूल क्षमा नहीं की जा सकती, परन्तु पुरुषों को सोलह आना क्षमादान? "इसका कारण यह है कि समाज पुरुष का है, स्त्री का नहीं।"[1]

रेखा के इस वक्तव्य को हेरफेर के साथ आचार्य चतुरसेन के अन्य कई सामाजिक उपन्यासों में देखा जा सकता है, जिससे स्पष्ट है कि नारी स्थिति का यह विवेचन उनके निजी दृष्टिकोण का परिचायक है। पर यह तो उनके द्वारा नारी की अवस्था का एक सामान्य सर्वेक्षण-मात्र है। परिवार की परिधि में प्रथम पग रखने से अन्तिम घड़ी तक नारी को जिस वस्तुस्थिति का साक्षात्कार करना पड़ता है, उसका सोदाहरण विश्लेषण भी उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। 'आत्म-दाह' के नायक सुधीन्द्र की दूसरी पत्नी सुधा सुशिक्षिता और विवेकशील युवती है। सुधीन्द्र के हृदय में नारी मात्र के प्रति पूज्य भावना होते हुए भी, पूर्व पत्नी (माया) की मृत्यु के कारण उसका विदग्ध हृदय सुधा को

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० १४०-४४।

वह आत्मीयता नहीं दे पाता, जिसकी कि वह अधिकारिणी है। एक बार सुधा द्वारा उपालम्भ दिए जाने पर, सुधीन्द्र नारी की इस प्रवृत्ति का बड़ा सजीव विवेचन करता है कि वह एक लकीर के भीतर रहकर ही सब कुछ सोचती-करती है। उसके शब्द हैं—'हाय रे स्त्री जाति! मानो मुझे स्वाधीनता से विचार करने, सोचने का भी अधिकार नहीं। क्या विवाह होने पर स्त्री पुरुष की, और पुरुष स्त्री का सर्वस्व हो जाता है। एक कोठरी में बन्द होकर केवल दो ही व्यक्ति भोग करें, यही क्या विवाह के पवित्र बन्धन का हेतु है?'[1]

सुधीन्द्र के इस कथन द्वारा सम्भवतः आचार्य जी व्यंजित करना चाहते हैं कि पुरुष के लिए जीवन में स्त्री-सुख के अतिरिक्त अन्य भी अनेक विचारणीय विषय हैं। उनकी ओर प्रवृत्त होने पर स्त्री को अपनी अवमानना नहीं समझनी चाहिए। परन्तु स्त्री की चिन्तन-सीमा तो पुरुष-परिधि से बाहर जा ही नहीं सकती। इसीलिए सुधा अपने प्रति सुधीन्द्र का उपेक्षाभाव देखकर, रोते हुए कहती है—'क्या स्त्रियों के प्रति पुरुषों को ऐसी ही बेपरवाही का बर्ताव रखना चाहिए। पुरुषों को अपने दुख-सुख और चिन्ता की बातें क्या अपनी स्त्रियों से कहनी ही नहीं चाहिएँ? तुमने मुझे इतना पढ़ाया-सिखाया, सो क्या इसीलिए ...और यह तो पुरुषों का स्वभाव ही है कि वे स्त्रियों को अपने से सदा तुच्छ समझते हैं।'[2] सुधा के इस कथन से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आचार्य चतुरसेन स्त्री के प्रति पुरुष की उपेक्षावृत्ति के कटु आलोचक हैं। वे परिवार की सीमित परिधि में ही नहीं, समाज के विस्तृत क्षेत्र में भी नारी की अवहेलना देखकर क्षुब्ध हो उठते हैं और उनका यह क्षोभ, उनके उपन्यासों के विभिन्न नारी पात्रों की वाणी बनकर प्रकट हुआ है। 'वैशाली की नगरवधू' में अम्बपाली के मुख से उन्होंने नारी-अधिकारों का अपहरण करने वाले समाज के विनाश तक की कामना व्यक्त करवाई है—'जहाँ स्त्री की स्वाधीनता पर हस्तक्षेप हो, उस जनपद को जितनी जल्द लोहू में डुबोया जाय उतना ही अच्छा है।'[3] इसी प्रकार युवा गान्धार-कन्या कलिंगसेना वयोवृद्ध श्रावस्ती-नरेश की स्वार्थ लिप्सा की पूर्ति हेतु और माता-पिता की विवश आकुलता का निवारण करने के लिए अनिच्छित विवाह स्वीकार तो कर लेती है, किन्तु श्रावस्ती के राजमहालय में पहुँचने पर जब वह वहाँ पूर्व-महिषियों की शोचनीय स्थिति के रूप में स्त्री मात्र की दयनीयता का अनुभव करती है, तो अपने अधिकारों की रक्षा का संकल्प

---

१. आत्म-दाह, पृ० २६१-६२।
२. वही, पृ० २६२-६३।
३. वैशाली की नगरवधू, पृ० ३०-३१।

लेते हुए कहती है—'मैंने ग्रात्म बलि ग्रवश्य दी है, पर स्त्रियों के ग्रधिकार नहीं त्यागे हैं। मैं यह नहीं भूल सकती कि मैं भी एक जीवित प्राणी हूँ, मनुष्य हूँ, समाज का एक ग्रग हूँ, मनुष्य के सम्पूर्ण ग्रधिकारों पर मेरा भी स्वत्व है।' इस पर जब उसकी ज्येष्ठा सपत्नी नन्दिनी यह ग्राशका प्रकट करती है कि 'यह सब तुम कैसे कर सकोगी ? जहाँ एक पति की ग्रनक पत्नियाँ हों, उपपत्नियाँ हों ग्रौर वह किसी एक के प्रति ग्रनुबन्धित न हो, पर उन सबको ग्रनुबन्धित रखे, वहाँ मानव-समानता कहाँ रही बहिन ?' तो वह उत्तर देती है—'पुरुष स्त्री का पति नहीं, जीवन-सगी है ''ग्रब मेरे साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, मेरे क्या क्या ग्रधिकार हैं, यह मेरा ग्रपना व्यक्तिगत कार्य है।'''[1] कलिगसेना का यह निश्चय ग्राचार्य जी की दृष्टि में स्पष्ट ही नारी-मात्र का निश्चय होना चाहिए, क्योंकि बाद म कलिगसेना को ग्रपने निश्चय के कार्यान्वयन मे प्रवृत्त दिखाकर वे उसमे उसकी सफलता भी प्रदर्शित करते है। 'एक ग्रन्य षोडशी राजकुमारी चन्द्रप्रभा जब सीता दासी के रूप मे कौशल के राजमहालय मे लाई जाती है, तब वह न केवल उसे वहाँ से सुरक्षित निकल जाने मे सहायता करती है ग्रपितु उससे क्षमा याचना करके नारी-गौरव की ग्रक्षुण्णता भी प्रतिपादित करती है।'[2] इस तरह ग्राचार्य जी ने यह दिखलाने का प्रयास किया है कि स्त्री को परिवार या समाज म ग्रपना स्थान स्वय बनाना है, पुरुष स उसकी ग्रपेक्षा रखना व्यर्थ है।

'नीलमणि' ग्रौर 'ग्रदल-बदल' मे ग्राचार्य जी ने नारी को ग्रपनी पारिवारिक ग्रौर सामाजिक स्थिति के प्रति ग्रपक्षाकृत ग्रधिक जागरूक दिखाया है। 'नीलमणि' की नायिका नीलू को पुरुष-रूप मे न केवल पति से ग्रपितु पिता से भी शिकायत है—'हिन्दू समाज मे स्त्रियाँ पति की सम्पत्ति होती हैं। उनका पिता उन्हें जिन हाथों मे स्वच्छा से ग्रर्पण करता है, उसी की वे हो जाती हैं।'[3] ग्रन्यत्र उसकी यह धारणा पति के सम्मुख ग्रौर भी उग्र रूप मे प्रकट होती है—'स्त्रिया सदैव ही पुरुषों द्वारा ग्राक्रान्त की जाती रही हैं। पुरुष उनका सौभाग्य है, पुरुष उनका पति है।'''ससार की सभी सभ्य ग्रसभ्य जातियों मे स्त्रियाँ पुरुषों की जायदाद हैं। भारत मे भी हैं। पर ये जायदादें दान जाती की हैं। घर म रखने की नहीं। सो मेरे माता पिता ने भी उपयुक्त काल मे मुझे ग्राप को दान कर दिया था, ग्राप मेरे मालिक ग्रौर मैं ग्रापकी जायदाद हूँ। मेरा ग्रापा खत्म हो गया है। मेरे सब स्वत्व खत्म हो गए हैं। मेरा ग्रस्तित्व

१ वैशाली की नगरवधू, पृ० २६८-६६।
२ वही, पृ० ३६८।
३. नीलमणि, पृ० ३४।

नष्ट हो चुका है" सिर्फ इसलिये कि मैं पुरुष नहीं, स्त्री हूँ।'[1] नीलू की यह छटपटाहट अकारण नहीं। उसका पति, पुरुष, अपने कार्य-व्यवसाय मे इतना व्यस्त रहता है कि उस, नारी, को एकाकिनी घर मे घुट-घुट कर जीना पडता है। यद्यपि उसका पति सिद्धान्ततः स्वीकार करता है कि 'स्त्रियों की भी पुरुष के समान इच्छा है, शौक है, विचार हैं, और उन्हें उन्हीं की स्वाधीनता से उपभोग करने का पूर्ण अधिकार है।' तथापि व्यवहार-रूप मे वह इसके अनुकूल आचरण नहीं कर पाता। इसीलिए नीलू को पति के उक्त कथन के उत्तर मे कहना पडता है—'ठीक है, इसी से आप स्त्रियों को घर के तबेले मे बाँध कर अपने विज्ञान और विद्या की उपासना करते हैं। स्त्रियों को न सगी चाहिए, न साथी, न उन्हे मनोरजन की आवश्यकता है। यदि है भी तो घर की चाहरदीवारी उनके मनोरजन के लिये काफी है। कहिये तो, आप जो तमाम दिन कालिज मे और तमाम रात अपनी लेबोरेटरी मे व्यतीत करते है, आपने कभी सोचा है कि मैं अपना समय कैसे काटती हूँ? आप ही ने न मुझे मेरे माता पिता मित्रों से दूर कर दिया—सो इसीलिए?'[2]

'नीलमणि' मे जो नारी अपने प्रति परिवार और समाज के अनुचित व्यवहार का मौखिक विरोध करके रह जाती है, 'अदल बदल' मे वह इसके सक्रिय प्रतिरोध के लिए कटिबद्ध दिखाई देती है। इस उपन्यास मे आचार्य जी ने जहाँ नारी को पारिवारिक और सामाजिक बन्धनों से मुक्ति के लिए सतत प्रयत्नशील दिखाया है, वहाँ परिवार और समाज की परम्परागत मर्यादाओं के उज्ज्वल पक्ष को भी उभारने का प्रयास किया है। प्रतीत होता है कि आचार्य जी को नारी की स्वाधीनता की लहर मे, शताब्दियों से स्थापित परिवार-प्रथा और समाज-व्यवस्था का सहसा बह जाना भी सहज स्वीकार्य नहीं। अदल-बदल के पुरुष-प्रतिनिधि मास्टर हरप्रसाद और नारी-प्रतिनिधि मायादेवी का वादविवाद इसका प्रमाण है। मायादेवी द्वारा घर मे 'पिंजरे में बद पछी की तरह' रहना नापसन्द कहने पर, हरप्रसाद उसे परिवार मर्यादा का महत्त्व समझाते हुए कहता है—'नारी-धर्म का निर्वाह घर ही मे होता है। घर के बाहर पुरुष का ससार है। घर के बाहर स्त्री, पुरुष की छाया की भाँति अनुगामिनी होकर चल सकती है, और घर के भीतर पुरुष, पुरुषत्व-धर्म को त्यागकर रह सकता है। यह हमारी युग-युग की पुरानी गृहस्थ मर्यादा है।' मायादेवी के पास इसका निश्चित उत्तर है—'इस सड़ी-गली मर्यादा के दिन लद गए। अब स्वतन्त्रता

१. नीलमणि, पृ० ६४।
२. वही, पृ० ७४।

के सूर्य ने सबको समान अधिकार दिए हैं। अब आप नारी को बाँध कर नहीं रख सकते।'''युग-युग से नारी को पुरुष ने घर के बन्धन में डालकर कमज़ोर बना दिया है। अब वह भी पुरुष के समान बन सचित कर घर के बाहर के संसार में विचरण करेगी।' इस पर हरप्रसाद तर्क देता है—'तब उनमें से पुरुष को उत्साहित करने का जादू उड़नछू हो जाएगा। उनके जिस स्निग्ध स्नेह-रस का पान कर पुरुष मस्त हो जाता है, वह रस खत्म हो जाएगा। उनके पवित्र आँचल की छाया में पुरुषों की कायरता को नष्ट कर डालने के सामर्थ्य का लोप हो जाएगा। पुरुषों का घर सूना हो जाएगा। नारी का ध्रुव भग हो जाएगा।'''
जैसे पृथ्वी अपने ध्रुव पर स्थिर होकर घूमती है, उसी प्रकार घर के केन्द्र में स्त्री को स्थापित कर के ही संसार-चक्र घूमता है। स्त्री घर की लक्ष्मी है। समाज उसी पर अवलम्बित है। स्त्री केन्द्र से विचलित हुई तो समाज भी छिन्न भिन्न हो जाएगा।'

हरप्रसाद की समन्वयवादी धारणा को आचार्य जी का दृष्टिकोण माना जा सकता है। उपन्यास के अन्त में उन्होंने मायादेवी द्वारा ही, स्वयं को भ्रान्त और हरप्रसाद के विचारों को वरेण्य मानते दिखलाया है। मायादेवी सामाजिक मर्यादाओं की अवहेलना करते हुए, पति और पुत्र को त्याग कर तथा एक अन्य विवाहित पुरुष डॉ० कृष्णगोपाल से पुनर्विवाह करके अपनी स्वाधीनता की सार्थकता सिद्ध करती है। किन्तु नव-दाम्पत्य-सीमा में पैर रखते ही उनकी अन्तश्चेतना उसके पहले के जीवन को इस नए जीवन की अपेक्षा पवित्र श्रेष्ठ मानकर उसे पुनः पतिगृह की ओर लौटने पर बाध्य कर देती है। इस तरह आचार्य जी ने परिवार और समाज की परम्परागत मर्यादा को नारी के लिए अपेक्षाकृत उपयुक्त सिद्ध किया है। इस बात की पुष्टि इसी उपन्यास में, हरप्रसाद के अतिरिक्त अन्य पात्रों के विचारों से हो जाती है। एक अवसर पर, क्लब में वाद-विवाद के समय, मायादेवी के यह कहने पर कि 'आप यह भी जानते हैं घर के भीतर स्त्रियों ने कितने आँसू बहाए हैं?' कृष्णगोपाल बाबू उन्हें समझाते हैं—'सो हो सकता है। आप ही कहाँ जानती हैं कि घर के बाहर मर्दों ने कितना खून बहाया है। आँसू से तो खून ज्यादा कीमती है मायादेवी, यह तो अपनी-अपनी मर्यादा है। अपना-अपना कर्तव्य है। वक्त पर हँसना भी पड़ता है, रोना भी पड़ता है, जीना भी पड़ता है और मरना भी पड़ता है। समाज नाम भी तो इसी मर्यादा का है।'[1] अन्यत्र इसी पात्र के मुख से आचार्य जी ने गृहस्थ और समाज की मर्यादा का अनुमान इन शब्दों में करवाया है—'अनमोल

१. अदल-बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० ११८।

की बात तो यही है मायादेवी कि सारा मामला रुपयों पैसों पर आकर टिक जाता है। टीचर डाक्टर बनकर या नौकरी करके वे सौ दो-सौ रुपये पैदा कर सकती हैं। सिनेमा-स्टार बनकर वे हजारों रुपए पैदा कर सकती हैं मोटर में शान से सैर कर सकती हैं, परन्तु सामाजिक जीवन का मान दंड रुपया पैसा ही नहीं है। स्त्री पुरुष की परस्पर जो शारीरिक और आत्मिक भूख है, वही सबसे बड़ी चीज है। उसी को मर्यादा में बाँध कर हिन्दू गृहस्थ की स्थापना हुई है। वही हिन्दू गृहस्थ आज छिन्न भिन्न किया जा रहा है।'[1] इसके अतिरिक्त माया-देवी के मर्यादा विरोधी और परिवार तथा समाज के बन्धनों से नारी की मुक्ति संबंधी विचारों के प्रबल समर्थक डॉ० कृष्णगोपाल से भी लेखक ने यह स्वीका-रोक्ति कहलाई है—'यदि स्त्रियाँ सुधर जाएँ तो देश की बहुत उन्नति हो।' उसका एक अन्य फलक मित्र कहता है—'अजी आप यही सोचिए कि वे बच्चों की माताएँ हैं उन्हें ढालने के साँचे हैं, वे बच्चों की गुरु हैं। यदि वे योग्य न होंगी तो बच्चे योग्य हो ही नहीं सकते। बच्चे यदि अयोग्य हुए तो कुल मर्यादा नष्ट हुई समझिये।...एक जमाना था जब चित्तौड़ की क्षत्राणियों ने अपने पुत्रों, भाइयों और पतियों को देश के शत्रुओं से युद्ध करने के लिए उनकी कमरों में तलवारें बाँधी थीं। स्त्रियों के हाथ से देश जिया और इन्हीं के बल पर मर मिटेगा।...हे माताओ, तुमने अब वीर पुत्रों को उत्पन्न करना छोड़ दिया, तुम शृंगार करके, सज धज करके बैठ गईं। लोहे के पिंजरे में तुम गहने-कपड़ों के ऊलजलूल झगड़ों में उलझ कर बैठ गईं और पुरुषों को इसी उद्योग में फँसा रखा कि वे तुम्हारी आवश्यकताओं को जुटाने में मर मिटें। फलतः जीवन के सारे ध्येय पीछे रह गए।'

आचार्य जी समाज में नारी का कर्तव्य बहुत ऊँचा मानते हैं और उनकी कामना है कि वह आधुनिक स्वच्छन्दता के आकर्षण में फँस कर अपने उच्च स्थान से च्युत न हो। अपने दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति उन्होंने 'उदयास्त' में आनन्द स्वामी के माध्यम से की है। राजकुमार सुरेश द्वारा नारी की आर्थिक स्वाधीनता का प्रश्न उठाने पर आनन्द स्वामी कहता है—'इसमें एक नैसर्गिक दुविधा है—मातृत्व की। मातृत्व को नारी की परम सार्थकता माना गया है। परन्तु जब कोई स्त्री अपने परिवार की जिम्मेदारी ग्रहण करती है तो वह सामा-जिक उत्पादन में भाग नहीं ले सकती। और यदि वह सामाजिक उत्पादन में भाग लेती है और स्वतन्त्र रूप में अर्जन करना चाहती है तो अपना पारिवारिक कर्तव्य नहीं निभा सकती। अतएव वह चाहे जितनी भी स्वतन्त्रता के लिए छट-

---

१. अदल-बदल (नीलमणि मधुबन), पृ० १२०।

पढ़ाए उसे दो ही काम घर में रहकर करने होंगे'''(१) प्रजनन और (२) पाक-सम्पादन। आज बहुत सी स्त्रियाँ है जिनको पारिवारिक जीवन दिनों दिन अप्राप्य होता जा रहा है। हमारे समाज का गठन ही कुछ ऐसा है कि पुरुष जीविकोपार्जन करे तो उसका पारिवारिक जीवन जैसा का तैसा रहता है। पर स्त्रियों की बात तो इससे सर्वथा भिन्न है। परिणामतः स्त्रियों में से मातृत्व और विवाह दायित्व की भावना नष्ट हो रही है और पुरुषों के प्रति घृणा के भाव उनमें उत्पन्न होते जा रहे हैं।' इससे वे स्त्रियाँ सब बन्धन मुक्त माधुनिकाएँ हो जाएँगी और समाज में यौन अनाचार और नैतिक अराजकता फैल जाएगी, जो समाज के लिए एक भयानक अभिशाप होगा।'[1]

आचार्य जी की दृष्टि में परिवार और समाज में नारी की सम्मान पूर्ण स्थिति बनाए रखने का एक ही आधार है उनका मातृत्व और मर्यादित नारीत्व। 'अपराजिता' की भूमिका में उन्होंने अपनी इस मान्यता की व्याख्या करते हुए लिखा है—चार युग देखते-देखते बीत गए। युग ने पलटा खाया। नारी की दर्द भरी कराह, क्रोध की चीत्कार और आवेश के पुत्कार में बदल गई। मेरी माँ, दादी, चाची, भाभियों और बहिनों की छाया कभी भी दहलीज के बाहर नहीं हुई। लक्ष्मण की खींची हुई रेखा को जैसे रावण को भिक्षा देने आकर सीता के उल्लघन करने म आपत्ति थी, वैसे ही अपने छकड़ा भरे दुख-सुख को लेकर घर की दहलीज से बाहर निकलना उनकी मर्यादा से बाहर था।'''परन्तु आज मेरी बेटियों ने उस लक्ष्मण की रेखा का, घर की दहलीज का, उल्लघन कर दिया, उन्होंने कालिज से उच्च शिक्षा प्राप्त की है, वे जीवन के संघर्ष में पुरुषों की प्रतिस्पर्धा करने लगी हैं, पाश्चात्यों के सग ने हमारी नारी-समस्या को भारी उलझन में डाल दिया है और आज केवल हमारा ही नहीं, सारे ही ससार का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और सबसे बड़ा प्रश्न, यह उठ खड़ा हुआ है कि 'नारी का समाज में क्या स्थान होगा?' सभ्य शिष्ट, समुन्नत नारी-समाज ने घर की दहलीज का अवश्य उल्लघन किया है, पर ऐसा करके उसने रावण के द्वारा हरण किए जाने ही का खतरा उठाया है। 'पुरुष' यह छद्मवेशी रावण, साधु के वेश में भिक्षा के मिस उसे हरण करने की ताक में है।'''मैं चिकित्सक भी तो हूँ। और अपने पचास वर्षों के अनुभव से मैंने एक चिकित्सा-तत्त्व पाया है, 'विषस्य विषमौषधम्।' ''इसी तत्त्व पर मैंने नारी-समस्या को भी परखा है और मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि नारी ही नारी की समस्या को हल कर सकती है, परन्तु 'नारी' रहकर, 'नर' बनकर नहीं। 'नारी' बनने के लिए उसे 'नारी तत्त्व' को

१ उदयास्त, पृ० ६८-६६।

जीवन मे आत्मसात् करना होगा। ऐसा करने से ही वह 'अपराजिता' के रूप मे उदय होगी।'[1] और 'अपराजिता' की नायिका राज के चरित्र के माध्यम से आचार्य जी ने 'नारी बनाम परिवार' और 'नारी बनाम समाज' के इसी समाधान का व्यावहारिक प्रमाण प्रस्तुत किया है। राज परिवार और समाज की मर्यादाओ के भीतर रहकर भी 'असहाय नही है, परमुखापेक्षी नही है, क्रोध, दैन्य, आवेश, अधैर्य, सबसे पाक-साफ है। वह सयम, कर्त्तव्य और जीवन के सच्चे तत्त्वो की अधिष्ठात्री है। वह आज की नारी-मात्र की पथ-प्रदर्शिका है।'[2]

(ग) सार्वजनिक क्षेत्र मे नारी

समाज मे नारी का क्या स्थान है या होना चाहिए? इसी प्रश्न के साथ यह समस्या भी जुडी हुई है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे नारी का प्रवेश कहाँ तक समीचीन है? सार्वजनिक क्षेत्र मे नारी के प्रवेश से अभिप्राय केवल नौकरी या व्यवसाय मे उसका सक्रिय भाग लेना ही नही, राजनीति, प्रशासन, समाज-सुधार तथा जन-सेवा आदि के क्षेत्र मे पुरुषो की भाँति क्रियाशील होने के साथ क्लबो गोष्ठियो आदि मे सम्मिलित होना भी है। इस तथ्य से तो आज कोई भी असहमत नही हो सकता कि किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र से नारी का बहिष्कृत रहना उस समाज के पिछडेपन या असभ्य होने का ही प्रमाण माना जाएगा। स्वय आचार्य चतुरसेन ने अपनी 'नारी' नामक कृति मे स्त्रियो के हर सार्वजनिक कार्य मे सक्रिय भाग लेने का जोरदार समर्थन किया है[3] किन्तु सिद्धान्त और व्यवहार मे उतना ही अन्तर है जितना कान और आँख मे। 'नीलमणि' मे नीलू की माँ उसे ससुराल भेजते समय समझाती है—'बेटी, मैं नही जानती कि तूने क्या-क्या पढा है। पर हम लोग हिन्दू नारी हैं, जैसी नाजुक हमारे हाथ की काँच की चूड़ियाँ हैं, वैसी ही नाजुक हमारी इज्जत भी है बेटी। उसका बडा मोल है।'[4] इसी उपन्यास मे नीलू का बाल-मित्र विनय उसे नारी के घर से बाहर स्वच्छन्द विचरण करने के दुष्परिणामो से परिचित कराते हुए कहता है—'तुमने यूरोप घूमा, वहाँ की हवा खाई, वहाँ की आजादी देखी, पर उस आजादी की दुर्दशा भी देखी? स्त्रियो की पवित्रता तो वहाँ कोई चीज ही नही रह गई। विवाह वहाँ एक बोझ है, पति-पत्नी मे जो विश्वास की भावना होनी चाहिए,

---

१. अपराजिता, उत्तप्त जल-कण, पृ० ग-घ।
२. वही, वही, पृ० घ।
३. नारी, पृ० ४६-५०।
४. नीलमणि, पृ० २३।

उसका वहाँ नाम निशान भी नहीं है। प्रत्येक स्त्री को पुरुष से और पुरुष को स्त्री से यह भय लगा रहता है कि जाने कब विच्छेद हो जाए, और वे कभी एक नहीं हो पाते हैं।' 'अदल बदल' में वशगोपाल बाबू इसी बात को तनिक और स्पष्ट करते हैं। मायादेवी जब घर की चहारदीवारी में रहने को पुरुषों की गुलामी कहती है तो वशगोपाल बाबू तत्काल जवाब देते हैं—'दर-दर गुलामी की भीख माँगते फिरने से, एक पुरुष की गुलामी क्या बुरी है?' इस पर मायादेवी नौकरी करने को गुलामी का पर्याय मानने पर आपत्ति प्रकट करती है तो वशगोपाल का स्पष्टीकरण है—'सामाजिक जीवन का मानदण्ड रुपया पैसा ही नहीं है, स्त्री पुरुष की परस्पर जो शारीरिक आत्मिक भूख है, वही सब से बड़ी चीज़ है।'[1]

'अदल बदल' में लेखक ने नारी के सार्वजनिक क्षेत्र में अधिक रुचि लेने के एक अन्य मनोवैज्ञानिक पहलू को भी उभारा है। वह यह कि इससे उसकी नैसर्गिक आवश्यकता, विवाह द्वारा जीवन-सुख का उपभोग, अपूर्ण रह जाती है और परिणामतः अनेक विकृतियाँ उत्पन्न होने की सम्भावना बलवती हो जाती हैं। वशगोपाल बाबू के शब्दों में—'मैं तो यह देखता हूँ कि अच्छे अच्छे घरानों की लड़कियाँ ग्रेजुएट बन गईं। उनके ब्याह की उम्र ही बीत गई। अब वे आफिसों में, स्कूलों में, सिनेमा में अपने लिए काम की खोज में घूम रही हैं। इस काम में उनकी कितनी अप्रतिष्ठा हो रही है तथा कितना उनके चरित्र का नाश हो रहा है, इसे आँखों वाले देख सकते हैं।' उसका अभिमत यह है कि 'पुरुष घर के बाहर काम करते हैं स्त्रियाँ घर के भीतर। अब आप उन्हें घर से बाहर काम करने की आज़ादी देते हैं तो मेरी समझ में तो आप उन्हें, उनकी प्रतिष्ठा तथा शान्ति को खतरे में डालते हैं।'[2] वशगोपाल बाबू के इस कथन को आचार्य जी ने उदाहरण द्वारा प्रमाणित किया है। उपन्यास की नायिका जब घर की सीमाओं से मुक्ति पाने के लिए छटपटाती हुई 'आज़ाद महिला संघ' की अध्यक्षा मालती देवी से कहती है—देखिए, वे स्कूल चले जाते हैं तो मैं दिन-भर घर में पड़ी-पड़ी क्या उनका इन्तज़ार करती रहूँ या उनके बच्चे की शरारत से खीझती रहूँ। आएँगे तो भी गुमसुम, उदास मुँह बनाए।' तो महिला-संघ की अध्यक्षा उसे परामर्श देती है—हिन्दू कोड बिल तुम्हारे लिए आशीर्वाद लाया है, नई ज़िन्दगी का सन्देश लाया है। यह तुम जैसी देवियों के पैरों में पड़ी हुई बेड़ियों को काटने के लिए है। अब तुम

१. अदल-बदल, पृ० ११६।
२ वही, पृ० ११६।

मनचाहे आदमी से शादी कर सकती हो। इसके अतिरिक्त तुम पढ़ी-लिखी सोशल महिला हो, तुम्हें थोड़ी भी चेष्टा करने से कहीं न कहीं नौकरी मिल सकती है। तुम बिना पति की गुलाम हुए, बिना विवाह किए, स्वतन्त्रतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सकती हो। मेरे एक परिचित वकील हैं। मैं आशा करती हूँ कि उनसे मिलने पर तुम्हारी सभी कठिनाइयाँ दूर हो जाएगी।'''साहसिक कदम उठाओ और नई दुनिया की स्त्रियों की पथ-प्रदर्शिका बनो।" और जब माया-देवी उक्त वकील के पास जाती है तो वह उसे तलाक दिलाने की गारंटी देने के बाद कहता है—'देखिए, स्त्री-जाति की जवानी का मामला बड़ा ही नाजुक होता है। दुनिया में बड़े-बड़े दरख्त हैं, न जाने कब कैसी हवा लग जाय, कब ऊँचा नीचा पैर पड़ जाय' 'मतलब यही कि आप जैसी वण्डर्ड सुन्दर युवती को एक आड़ चाहिए।'[1] कहने की आवश्यकता नहीं कि आचार्य जी के मतानुसार घर से बाहर पैर रखते ही स्त्री को ऐसे अनेक 'हमदर्द' पुरुषों का साक्षात्कार-लाभ हो सकता है जो उसे 'सहारा' या 'आड़' देने का पुण्य लूटने के उत्साही निकल आएँ। अतः व्यावहारिक जीवन के इस पहलू से सतर्क रहना भी नारी के लिए आवश्यक है।

विभिन्न पात्रों के ऐसे विचार उपन्यासकार को नारी के प्रति अनुदार सिद्ध करते प्रतीत होंगे। इनमें उसने नारी को बाहर से घर की ओर लौटने का आग्रह किया है। फिर भी अनेक अन्य उपन्यासों में उसकी दृष्टि बड़ी उदार और कुछ सीमा तक समन्वयवादी रही है। उसने कई उपन्यासों में विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाली नारियों का चरित्रांकन पूरी श्रद्धा और सहानुभूति के साथ किया है। 'वैशाली की नगरवधू' में कुंडनी, कलिंग-सेना तथा 'सोमनाथ' में चौला, शोभना आदि नारियाँ पुरुषों की भाँति युद्ध और राजनीति में सक्रिय भाग लेती हैं। 'आत्मदाह' में सुधा पति के साथ कंधे से कंधा मिलाकर, राष्ट्रीय स्वाधीनता-आन्दोलन में भाग लेकर जेल-यात्रा करती है। 'दो किनारे' के द्वितीयांश 'दादा भाई' की सुधा निजी व्यवसाय (मिल) का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक सम्भाल कर सार्वजनिक क्षेत्र में नारी-सामर्थ्य का ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत करती है। 'आलमगीर' की जहाँआरा को आचार्य जी ने पिता और भाई से भी अधिक नीतिकुशल चरितार्थ किया है। 'उदयास्त' की पद्मा मजदूर-संगठन के क्षेत्र में अपनी कार्य-कुशलता दिखलाती है तो अनाथ सरला नौकरी द्वारा अपना और अपनी वृद्धा माँ का पोषण करने में संलग्न है। इसी उपन्यास में राजरानी प्रमिला को पति के साथ कृषि-कर्म में सहयोग करने के साथ सद्गृहिणी के धर्म-पालन में भी

१. अदल-बदल (नीलमणि संयुक्त), पृ० १४७-४८।

सक्रिय दिखलाकर लेखक ने अपने समन्वित दृष्टिकोण का परिचय दिया है। शिक्षा और प्रतिभा (सप्रास) वैज्ञानिक क्षेत्र में पुरुषों से भी कई पग आगे दिखाई गई हैं। विभिन्न साहसिक अभियानों और अनुसंधान-कार्यों में उनकी विलक्षण सक्रियता सार्वजनिक क्षेत्र में नारी के प्रवेश के विरुद्ध प्रकट की गई सभी प्रकार की आशंकाओं को निर्मूल सिद्ध कर देती है। 'सोना और खून' में अनेक शासिका समाज सेविका, योद्धा और राजनीतिज्ञ नारियों का उल्लेख है। 'ईदो' की विभिन्न जासूस नारियों को बड़े-बड़े कूटनीतिज्ञ-पुंगव पुरुषों के कान काटते दिखाया गया है। 'खून और खून' में आधुनिक युग की अनेक ख्याति-प्राप्त महिलाओं को सार्वजनिक क्षेत्र में, विशेषतः राजनीति क्षेत्र में सेवा रत दिखाया गया है। इस प्रकार 'अपराधी' में उपन्यासकार ने समाज-सुधार के क्षेत्र में रमाबाई की असाधारण सक्रियता तथा सफलता का अंकन किया है।

आचार्य चतुरसेन की दृष्टि में, सार्वजनिक क्षेत्र में, नारी का प्रवेश अथवा योगदान न केवल आर्थिक, सामाजिक और अन्य युगीन गतिविधियों की दृष्टि से अपेक्षित है, अपितु स्त्री-पुरुष के जीवन का भीतरी और बाहरी सन्तुलन बनाए रखने के लिए इसकी विशेष महत्ता है। वे सदा ध्यान रखते हैं कि नर और नारी के दो रूप क्यों हैं? उनका मत है—'नर नर है, नारी नारी।'''दोनों समान ही मिल कर एक इकाई है। न पुरुष अकेला एक है, न स्त्री अकेली एक है। दोनों आधे हैं, दोनों मिलकर एक हैं।'''दोनों एक-दूसरे को आत्म-दान देकर जब एक होते हैं, तब पूर्ण इकाई बनते हैं।'[1] तथा 'स्त्रियों की हमारे घरों में एक मर्यादा है, उन्हें हम अपने से कमजोर, नीच या दलित नहीं समझते। हम उन्हें अपनी अपेक्षा अधिक पवित्र, पूज्य और सम्माननीय समझते हैं। युग-युग से पुरुषों ने स्त्रियों की मान मर्यादा के लिए अपने खून की नदियाँ बहाई हैं, वह इसलिए कि समाज में पुरुष स्त्री का संरक्षक है। अब यदि वे समाज में बराबर का दर्जा पा जाएँगी तो पुरुषों की सारी सहानुभूति और संरक्षण खो बैठेंगी।'''आधुनिक काल का प्रत्येक शिक्षित पुरुष जब स्त्रियों के विषय में सोचता है तो वह उनकी उन्नति, आज़ादी तथा भलाई की बात सोचता है। परन्तु आधुनिक काल की प्रत्येक शिक्षित नारी पुरुषों के विषय में केवल एक ही बात सोचती है कि कैसे उन पुरुषों को कुचल दिया जाए, उन्हें पराजित कर दिया जाए। वास्तव में यह बड़ी खतरनाक बात है।'[2]

मुख्य रूप से, नारी के कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में दो दृष्टियाँ हैं। एक दृष्टि है

---

१. अदल-बदल (नीलमणि सपुत्र), पृ० ११२।
२. वही, वही, पृ० ११६-१७।

कि नारी सार्वजनिक क्षेत्र मे अवतरित हो। दूसरा मत है कि घर के दायरे मे सीमित रहने मे ही उसकी कुशल है। चतुरसेन परम्परा से परिचित हैं और आधुनिक दृष्टिकोण से भी अवगत हैं। उन्होने इन दोनों दृष्टियो का समन्वय किया है। वे चाहते हैं कि नारी घर की रानी रहकर भी सार्वजनिक क्षेत्र मे भाग लेने से वंचित न हो। यह सन्तुलित समन्वित दृष्टि उनके उपन्यासों मे द्रष्टव्य है। कुडनी (वैशाली की नगरवधू) का नारीत्व कूटनीतिक क्रिया-कलाप मे उतनी तृप्ति अनुभव नही करता, जितना पुडरीक के एक चुम्बन की उपलब्धि उसके लिये अक्षय पूँजी सिद्ध होती है। चौला (सोमनाथ) के सारे प्रयास भीमदेव के लिये और शोभना (सोमनाथ) के क्रमश देवा और अमीर के लिए हैं। सुधा (आत्मदाह) के बलिदान की सार्थकता पति के प्रति समर्पण भाव मे है। सुधा (दो किनारे-दादाभाई) की सफलता नरेन्द्र के व्यक्तित्व पर टिकी है। जहाँआरा (आलमगीर) अन्त तक किसी न किसी पुरुष को अपना बनाने के लिये तड़पती रही। पद्मा (उदयास्त) को सार्वजनिक क्षेत्र मे सक्रियता का सूत्रधार ही उसका प्रेमी कैलाश है। प्रमिला (उदयास्त) की कार्यकारी प्रेरणा का स्रोत उसका कर्मठ पति सुरेश है। लिजा की वैज्ञानिक सफलताओं का केन्द्र बिन्दु उसका प्रेमी जोरोवोस्की है। प्रतिभा की वैज्ञानिक प्रतिभा उसके पिता का ही पुरस्कार है। 'सोना और खून' की सभी सक्रिय नारियों की मानसिक विकृतियो अथवा उनके दाम्पत्य-जीवन को विवशताओं का उल्लेख उनके चरित्राकन के प्रसग मे अन्यत्र किया जा चुका है। 'ईदो' की सभी जासूस नारियाँ पकडे जाते समय या मृत्यु का आलिंगन करते समय किसी न किसी पुरुष प्रेमी के आलिंगन-पाश की कामना मे छटपटाती दिखाई गई हैं। 'खून और खून' की कर्मठ कार्यकर्त्री रतन का अतृप्त प्रेम किस प्रकार उसके जीवन को विषमय बनाकर सालता रहा। 'अपराधी' मे रमाबाई का समाज-सुधार-कार्य मे प्रवृत्त होना एक विजातीय युवक से प्रेम का परिणाम है।

इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र मे किसी नारी के प्रवेश का यह अभिप्राय नहीं कि इसमे उसका पारिवारिक जीवन क्षतिग्रस्त हो। वस्तुत घर मे रहकर भी बाहर की ओर सजग दृष्टि रखना तथा बाहर कार्य करते हुये भी घर स सर्वथा विमुख न होना नारी-जीवन का अभीष्ट होना चाहिए। यही उपन्यासकार का अभिमत है।

४. नारी-सम्बन्धी अन्य समस्याएँ

आचार्य चतुरसेन के नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण का सदर्भ सामान्यत भारतीय और विशेषत हिन्दू-समाज है। किन्तु उनमे निहित समस्याएँ प्राय विश्वजनीन

है। उदाहरणत अनमेल विवाह की विभीषिका का शिकार विश्व के किसी भी देश की नारी हो सकती है। इसी प्रकार पुरुष के साथ सम्बन्ध, आर्थिक स्वाधीनता, पुरुषों की भाँति सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यशील होना तथा असमय में पति की मृत्यु से उत्पन्न स्थिति आदि का प्रश्न हर युग की और हर देश की नारी के लिए विचारणीय है। कुछ समस्याएँ ऐसी भी हैं जो केवल भारत में अथवा उसमें भी किसी क्षेत्र या प्रदेश-विशेष में, कुछ रूढ़ियों या परम्परागत अन्धविश्वासों के कारण प्रचलित रही हैं। उनके कारण नारी ने अमानुषिक जीवन का नग्न-रूप देखा है। उपन्यासकार ने इन समस्याओं के सन्दर्भ में नारी की सामाजिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। ऐसी समस्याओं में सती-प्रथा, दासी-प्रथा और गोली-प्रथा प्रमुख हैं। इन पर क्रमशः विचार किया जा रहा है।

(क) सती-प्रथा—'उदयास्त' में एक स्थान पर भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी 'मृत पति के साथ पत्नी की आत्म हत्या का प्रचार होने का उल्लेख मिलता है।'[1] किन्तु सती प्रथा को विशेष रूप से 'हिन्दू-समाज का सबसे बड़ा कलंक' बतलाया गया है। 'आत्मदाह' में सरला जब पूर्व-काल की स्त्रियों द्वारा पति के साथ सती होने को, उनके उत्कृष्ट त्याग की संज्ञा देती है, तब आचार्य जी का प्रगतिशील दृष्टिकोण सुधीन्द्र के इन शब्दों में व्यक्त होता है—'यदि कोई स्त्री प्रेमावेश में ऐसा करती थी तो उसका यह प्रेमोन्माद करुणा और क्षमा की वस्तु है, प्रशंसा की नहीं। प्रथम बात तो यह है कि मरने पर भी उसके पति को मनुष्य-योनि मिलेगी, वह किसी खास स्थान पर परलोक में किसी पेड़ के नीचे बैठा अपनी विधवा स्त्री के मरने की बाट जोहता रहेगा, तथा पत्नी मरेगी तो वहाँ परलोक में उसे ढूंढ लेगी। ये सब महामूर्खता पूर्ण अन्धविश्वास की बातें हैं। मरने पर शरीर तो यहीं रह जाता है। आत्मा न स्त्रीलिंग है, न पुल्लिंग है। वह हिन्दू-धर्म शास्त्रों के मतानुसार, कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है। इससे यह मानना पड़ेगा कि जीते-जी जगत् का नाता है। प्रत्येक स्त्री और पुरुष को जीवन-पर्यन्त एक-दूसरे के प्रति विश्वासी और मन-वचन से एक रहना चाहिए। मुर्दे के साथ जीवित स्त्री को जला देना अति भयानक, अति बीभत्स काम है। शोक की बात है, जिस काल में पुरुष के अनेक विवाह हो सकते थे, उस काल में स्त्रियों के सती होने का विधान था।'[2]

लेखक ने 'शुभदा' में समाजसुधारक राजा राममोहनराय के समय की घटनाओं के आधार पर सती-प्रथा जैसी अमानुषिक प्रवृत्ति का बीभत्स रूप

---

१. उदयास्त, पृ० ५६।

२ आत्म-दाह, पृ० १२३।

दिखला कर, उसके कानून समाप्त हो जाने पर सन्तोष व्यक्त किया है। इस उपन्यास के आरम्भ में तेरह वर्षीय विधवा शुभदा को उसके अभिभावक और पुरोहित ब्राह्मण उसे बलात् चिता में धकेलते हैं। कुछ अंग्रेज सैनिक शुभदा को सती होने से बचा लेते हैं और बड़ी होने पर वह अपने रक्षक विजातीय युवक मैकडानल्ड से विवाह करके भी भारतीय नारी का मूर्त आदर्श प्रस्तुत करती है। शुभदा के वृत्तान्त द्वारा स्पष्ट किया गया है कि जिन सहस्रों स्त्रियों को रूढ़िवादियों ने अन्धविश्वास के कारण सती के नाम पर बलात् मौत के मुँह में धकेल दिया, उनमें से अधिकांश जीवित रहने पर शुभदा की भाँति सद्गृहिणियाँ और आदर्श स्त्रियाँ बनकर समाज की शोभा बढ़ा सकती थी।

'शुभदा' में एक उद्भट जातिवादी विद्वान् युवक ब्राह्मण गोपालपांडे सती प्रथा के समर्थन में जोरदार तर्क देते हुए कहता है—'इससे भी अधिक क्रूर कर्म हैं, जिनका हमें समर्थन करना पड़ता है। युद्धक्षेत्र में मरने मारने की परिपाटी कितनी प्राचीन है? पर ये सब क्रूर कर्म अनन्तकाल से होते रहे हैं समाज की भलाई के लिए। इसलिए स्त्री हो या पुरुष, उसे कभी-कभी इस प्रकार अस्वाभाविक रूप में मरना ही पड़ता है। और वह असाधारण मृत्यु साधारण मृत्यु से बढ़कर यशस्विनी मानी जाती है। युद्ध में मरने वाले वीरों को सूर्यलोक मिलता है। देवता उनके लिए विमान लाते हैं और पति के साथ चितारोहण करने वाली स्त्री भी स्वर्ग पाती है, पति-लोक जाती है। इस प्रकार की असाधारण मृत्यु, जो कर्त्तव्य और मर्यादा के आधार पर स्त्री पुरुषों को वरण करनी होती है बलिदान कहलाती है। इन बलिदानों से समाज का कल्याण होता है।'[1] किन्तु इन तर्कों के प्रत्युत्तर में लेखक ने शुभदा से केवल यही कहलवाकर सन्तोष कर लिया है—'आपकी बातें विचित्र हैं, दकियानूसी हैं। पर प्रभावशाली हैं।'[2] जबकि वह मानवीय दृष्टिकोण से अनेक तर्कों द्वारा उक्त बातों का खण्डन करा सकता था। सम्भवतः अपने समय तक इस समस्या के सर्वथा निर्मूल हो चुकने के कारण उसने इस सम्बन्ध में अधिक विचार विमर्श करने की आवश्यकता नहीं समझी।

(ख) दासी, देवदासी प्रथा

प्राचीन और मध्यकालीन भारतीय समाज में नारी को अपनी अधिकार प्रवृत्ति और काम वासना की तृप्ति का माध्यम बनाने के उद्देश्य से पुरुष वर्ग

---

१ शुभदा, पृ० १२१-२२।
२. वही, पृ० १२३।

द्वारा अनेक प्रथाओं का सम्पोषण होता रहा है। इनमें 'दासी' और 'देवदासी' प्रथा की गणना की जा सकती है। यों दास-दासियाँ रखने का रिवाज आज भी समृद्ध परिवारों में है। इस प्रकार की वैतनिक सेवा-वृत्ति आज के सभ्य समाज का एक अनिवार्य अंग बन चुकी है। किन्तु यहाँ समस्या-रूप में जिस दासी-प्रथा का उल्लेख अभिप्रेत है, उसके अन्तर्गत क्रुद्ध स्त्रियाँ या तो क्रीता दासी के रूप में अथवा किसी सामाजिक दृष्टि के परिणाम-स्वरूप किसी बड़े घर में आजीवन दासी कर्म का निर्वाह करने को बाध्य होती थीं। इनके तन, मन यहाँ तक कि वंश और परिवार भी उत्तराधिकार-रूप में पीढ़ी दर-पीढ़ी इसी वृत्ति के लिए समर्पित रहते थे। इन्हें सर्वाधिक शारीरिक परिश्रम करते हुए भी जातीय दृष्टि से नीचे समझ कर अस्पृश्य रखा जाता था और डांट-फटकार इनकी नियति बन चुकी थी। सबसे बड़ी विडम्बना यह थी कि इनके सम्भ्रान्त स्वामी इनके साथ अनैतिक यौन-सम्बन्ध स्थापित करने का कोई अवसर नहीं जाने देते थे।

दासी प्रथा द्वारा नारी-स्वत्व के अपहरण का उदाहरण 'सोमनाथ' में है। सोमनाथ महालय के अधिकारी, सात्त्विक और प्रसिद्ध मन्त्रशास्त्री कृष्णस्वामी की अपनी दासी के प्रति रूपासक्ति का वर्णन है—"कृष्णस्वामी ने एक शूद्रा दासी को मोल खरीदा था। दासी युवती और सुन्दरी थी। सस्ती मिल गई थी। रमाबाई (कृष्ण स्वामी की पत्नी) के लिए ही दासी खरीदी गई थी, पर रमाबाई उसपर कड़ी दृष्टि रखती थी।"'कृष्णस्वामी कभी-कभी इस दासी से सेवा कराते और रमाबाई उसे देख पाती तो उसका झोंटा पकड़कर सारे घर में घुमाती, परन्तु बहुत यत्न करने, सम्भाल करने, कड़ी दृष्टि रखने पर भी न जाने कब और कैसे उस शूद्रा दासी को गर्भ ठहर गया।"'दासी ने एक सुन्दर पुत्र-रत्न को जन्म दिया।"[1] इस उद्धरण से दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम, उन दिनों छोटी समझी जाने वाली जातियों की स्त्रियाँ बेची और खरीदी जाती थीं। द्वितीय, उन स्त्रियों के साथ समाज के सम्भ्रान्त जन मनचाहा व्यवहार करते थे।

इस प्रसंग में उल्लिखित दासी-पुत्र देवा को, अपने जन्म दाता के घर कैसी स्थिति का सामना करना पड़ता था, यह पठनीय है—"'शूद्रा दासी के जारज पुत्र के साथ अपनी लड़की (शोभना) का खेलना-खाना रमाबाई को रुचता न था।"'बालक बहुत ही सुन्दर और शुभ लक्षणों से युक्त था। कृष्णस्वामी मन ही मन उसे प्यार करते थे। पर वे पूरे निष्ठावान् ब्राह्मण थे। शूद्र के हाथ

---

१. सोमनाथ, पृ० ३३-३४।

का छुआ हुआ जल पीनातो दूर 'शूद्र को दूरसे देख पानेपर भी वे स्नान करते थे। इसलिए उस बालक को गोद मे बैठाकर प्यार नही कर सकते थे। वे उसे पढा भी नही सकते थे।'''वह कक्षा से बाहर दूर बैठ कर पढता।'[1] यह सब इसलिए था कि उसे जन्म देने वाली स्त्री दासी थी। आचार्य जी ने इस सामाजिक विडम्बना को अनावृत किया है।

'वैशाली की नगरवधू' मे दासी प्रथा के अनेक प्रसग हैं। कौशल-नरेश प्रसेनजित् के यहाँ क्रीता दासियो की भरमार है—'महाराज प्रसनजित् हिमश्वेत कोमल गद्दे पर बैठे थे। दो यवनी दासियाँ पीछे खडी चवर डुला रही थी। अनेक पत्नियो का स्वामी प्रसेनजित् किसी दासी को अपनी अकशायिनी चाहे जब बना लेता है। उसका दासी-पुत्र विडूडभ अन्य कोई औरस राज पुत्र न होने के कारण, राज्य का उत्तराधिकारी है। फिर भी दासी-पुत्र होने के कारण उसे घोर अवमानना सहन करनी पडती है। उसकी पीडा पिता के प्रति इस कथन मे व्यक्त है—' "आप के पापो का अन्त नही है। एक ही कहता हूँ कि आपने मुझे दासी से क्यो उत्पन्न किया ? क्या मुझे जीवन नही प्राप्त हुआ ? क्या मैं समाज मे पद प्रतिष्ठा के योग्य नही ?'''दासी मे इन्द्रिय वासना के वशीभूत हो आपने मुझे पैदा किया, आपको साहस नही कि मुझे आप अपना पुत्र और युवराज घोषित करें। आप मे आर्यों की यह पुरानी नीचता है। सभी धूर्त कामुक आर्य अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए इतर जातियो की स्त्रियो के रेवडो को घर मे भर रखते हैं। लालच लोभ देकर कुमारियो को खरीद लेना, छल-बल से उन्हे वश मे कर लेना, रोती-कलपती कन्याओं का बलात् हरण करना, मूच्छिता, मद बेहोशो का कौमार्य भग करना,'''यह सब इन धूर्त आर्यों ने विवाहो मे सम्मिलित कर लिया। फिर बिना विवाह दासी रखने म भी बाधा नही। आप क्षत्रिय लोग लडकर, जीत कर, खरीद कर, गिराज के रूप मे देश भर की सुन्दरी कुमारियो को एकत्रित करते हैं। और ये कायर, पाजी, ब्राह्मण पुरोहित आपके लिए यज्ञ का पाखण्ड करके दान और दक्षिणा मे इन स्त्रियो से उत्पन्न राजकुमारियो और दासियों को बटोरते हैं।'''उस दिन विदेहराज ने परिषद् बुलाई थी। एक बूढे ब्राह्मण को हजारो गायो के सीगो मे मुहरें बाँध कर और सौ दासियाँ स्वर्ण आभरण पहना कर दान कर दी। वह नीच ब्राह्मण गायो को बेच कर स्वर्ण घर ले गया। पर दासियो को सग ले गया। वे सब तरुणी और सुन्दरी थी। फिर क्या उन स्त्रियो के सन्तान न होगी ? उन्हे आप

१. सोमनाथ, पृ० ३४।
२ वैशाली की नगरवधू, पृ० १४०।

आर्यों ने मद्रे में वर्ण-संकर घोषित कर दिया। उनकी जात और श्रेणी अलग कर दी। ऐसा ही वर्ण-संकर मैं भी हूँ, दासी-पुत्र हूँ। मेरे पैर रखने से शाक्यों का संथागार अपवित्र होता है और मेरे जन्म लेने से कोसल राजवंश कलंकित होता है। महाराज, मैं यह सह नहीं सकता।...'"[1] विदूडभ का यह आक्रोश शोषकों को चुनौती है।

दासियों का नारीत्व भीतर ही भीतर घुटता रहता था। इस तथ्य की झलक 'वैशाली की नगरवधू' में है। अम्बपाली के प्रासाद में अनेक दासियाँ हैं। उन्हें देखकर ज्ञातिपुत्रसिंह की पत्नी रोहिणी कहती है—'कैसे आप मनुष्यों को भेड़-बकरियों की भाँति खरीदते-बेचते हैं? और कैसे उनपर अबाध शासन करते हैं?' अम्बपाली के विहार-गृह में प्रतिदिन होने वाले तरुण-तरुणियों के अभिसार की प्रत्यक्षदर्शिनी ये दासियाँ अपने रागात्मक आवेगों को कैसे नियन्त्रित रख पाती होंगी, इस संबंध में रोहिणी का कथन है—'कैसे इतना सहती हो बहिन! जब हम सब बातें करते हैं, हँसते हैं, विनोद करते हैं, तुम मूक-बधिर-सी चुपचाप खड़ी कैसे रह सकती हो, निर्मम, पाषाण-प्रतिमा सी! तुम हमारे हास्य में हँसती नहीं और हमारे विलास में प्रभावित नहीं होती?'[2] ऐसी ही एक दासी 'गोली' में चम्पा के अंग संग रहने वाली केसर है। वह अपने हाथों से चम्पा को राजा की रति शय्या के लिए सजाती है। उसे राजा के अंक तक पहुँचा कर, रतिक्रीड़ा के पश्चात् उसे वापिस ले आने का दायित्व भी उसी का है। यह सब कुछ करती-देखती हुई भी वह 'नारी' अपने आप में जैसे आवेग-शून्य और अनुभूति रहित-सी सारा जीवन बिता देती है।

दासीप्रथा से भी अधिक शोचनीय स्थिति नारी की देवदासी-प्रथा के कारण रही है। इस प्रथा को लेखक ने प्राचीन काल में समाज द्वारा स्वयं को विकार-मुक्त रखने के लिए प्रचारित करते दिखाया है। अपनी 'नारी' नामक कृति में उसने लिखा है—'कैसे अचरज की बात है कि यह व्यभिचार भी कहीं सामाजिक रूप पा गया और कहीं धार्मिक (?) रूप। भैरवी-चक्रों और वैदोत्सवों की उत्पत्ति का यही कारण है, जिसका कि भारत के मध्यकाल में बड़ा ज़ोर रहा है। न केवल भारत ही में, वरन् सब देशों में ऐसे रीति रस्म पाये जाते हैं, मानो यह सभ्यता का एक आवश्यक अंग बन गया हो। नाच, मेले, होली, जल-क्रीड़ा, रास, वनविहार ये सब भैरवी-चक्रों के रूप हैं जो यूनान, रोम, रूस, इंग्लैंड, जापान सभी देशों में पाये जाते हैं। ईसा के पूर्व पाँचवीं शताब्दी में बाबल

---

१ वैशाली की नगरवधू पृ०, १४१-४२।

२ वैशाली की नगरवधू पृ०, १२१-२२।

के लोगों की देवी के मन्दिर में प्रत्येक स्त्री को अपने जीवन में एक बार आकर अपने आप को उस परदेशी पुरुष को देना पड़ता था, जो देवी की भेंट स्वरूप सब से प्रथम उसकी गोद में पैसा फेंकता था। इस धार्मिक व्यभिचार का आधार यूरोप में इस विश्वास पर था कि मानवों की उत्पादक शक्ति प्रकृति की उर्वरता को बढ़ाने में एक रहस्यमय और पवित्र प्रभाव रखती है। ईश्वर द्वारा अनुमोदित संयोग की पवित्रता में किसी को आपत्ति न थी। भारतवर्ष में मन्दिरों में देव-दासियों की पुरानी परिपाटी है। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक नीत्से का कथन है कि प्राचीन यूनानी लोग सभी स्वाभाविक आवेगों को स्वीकार करते थे और समाज-संगठन में कुछ ऐसी नालियाँ बना रखी थी कि कोई स्वाभाविक आवेग समाज का बिना अनिष्ट किए शमन किया जा सके और खास दिनों और खास विधियों से बलात् पाशविक शक्ति निरुद्रव निकाल कर फेंक दी जाय।'[1] उन 'खास' विधियों में देवदासी प्रथा भी एक है।

आचार्य चतुरसेन के दो उपन्यासों 'सोमनाथ' और 'देवांगना' में देवदासी प्रथा के कारण नारी की असहाय दशा का चित्रण है। 'सोमनाथ' की चौला और 'देवांगना' की मंजुघोषा तथा सुनयना इसके प्रमाण हैं। सोमनाथ महालय के विध्वंस का दुखद वृत्तान्त भारतीय इतिहास का एक अविस्मरणीय पृष्ठ है। इसमें महमूद गजनवी द्वारा सोमनाथ पर आक्रमण का कारण, अधिकांशत स्वर्णाभूषणों की लूट को बताया गया है, परन्तु आचार्य जी ने सोमनाथ-विध्वंस के मूल में देवदासी चौला के अप्रतिम रूप-लावण्य और महमूद की उसके प्रति आसक्ति को प्रमुख कारण दिखलाया है। 'देवांगना' की मंजुघोषा वज्रतारा देवी के मन्दिर की देवदासी है। उसके देवदासी होने के कारण ही, उसे और उसकी माँ सुनयना (महारानी सुकीर्तिदेवी) को कितनी शारीरिक और मानसिक यातनाएँ सहन करनी पड़ती है, सारा उपन्यास इसी वृत्तान्त से भरा हुआ है। मंजुघोषा के अपने शब्दों में— विधाता ने जब देवदासी होना मेरे ललाट में लिख दिया, तो समझ लो कि दुःख मेरे लिए ही सिरजे गए हैं। जिस स्त्री का अपने शरीर और प्राणों पर अधिकार नहीं, जिसकी आत्मा बिक चुकी है, जिसके हृदय पर दासता की मुहर है, इज्जत, सतीत्व, पवित्रता जिसके जीवन को छू नहीं सकते जिसका रूप-यौवन सबके लिए खुला हुआ है, जो दिखाने को देवता के लिए शृंगार करती है, परन्तु जिसका शृंगार वास्तव में देवी-दर्शन के लिए नहीं, शृंगार को देखने आए हुए लम्पट-कुत्तों को रिझाने के लिए है'''।'[2]

---

१ नारी, पृ० ७३-७४।

२ देवांगना (नरमेध संयुक्त), पृ० ३३।

'सोमनाथ' तथा 'देवांगना' की दोनों देवदासियों का उदात्त-चरित्र नायकों द्वारा उद्धार करवाकर तथा उन्हें सद्गृहिणियों के रूप में जीवन व्यतीत करने का सुअवसर उपलब्ध करा कर लेखक ने इस समस्या का व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत किया है।

(ग) गोली-प्रथा

गोली विशिष्ट दासी होती थी। इसका अस्तित्व राजाओं एवं राजकुमारों की वासना-पूर्ति तक ही सीमित होता था। आयु ढल जाने पर भूमिगत ड्योढ़ियों में अपने जैसी हजारों अभागिनों के साथ, बदबूदार कीचड़ में बिलबिलाते कीड़ों-सी जिन्दगी इनकी नियति होती थी। चतुरसेन ने सर्वप्रथम भारत की रियासतों, विशेषत राजस्थान में, प्रचलित गोली प्रथा के कारण नारकीय कुत्सा से भरा जीवन व्यतीत करने वाली सहस्रों असहाय और विवश नारियों की वेदना को वाणी दी है। उनके 'गोली' उपन्यास के प्रकाशन से पूर्व भारतीय ही क्या, साधारण राजस्थानवासी भी गोली-प्रथा की भयानकता से प्रायः अपरिचित थे। 'गोली' की नायिका चम्पा की आपबीती से स्पष्ट होता है कि इस प्रथा से गोलियों का जीवन तो नष्ट होता ही था, साथ ही उनकी रानियों महारानियों का जीवन भी विश्रृंखलित और विषमय बन जाता था, दोनों वर्गों की स्त्रियों की दुर्दशा आगे के उद्धरणों में स्पष्ट है—रंगमहल का एक खास भाग ड्योढ़ी कहलाता था।···रंग महल के इस भाग को ऊँची दीवार बनाकर पृथक् कर दिया जाता था। वह ड्योढ़ी एक रहस्यपूर्ण स्थली थी।···ड्योढ़ियों में इन स्त्रियों की दशा कैदियों के समान होती थी। उन्हें रूखा-सूखा खाना मिलता, साल में केवल दो जोड़ा वस्त्र मिलता। महाराज के पास जाने के समय जो पोशाक और गहने दिए जाते, वे सब उधार होते थे। वापस आने पर वे तुरन्त उतार लिए जाते थे, जो दूसरे दिन दूसरी औरतों के काम आते थे। ऐसा ही नारकीय जीवन ड्योढ़ियों का था। बहुधा औरतें अफीम या अन्य विष खा कर मरती रहती थी। ऐसी अपमृत्यु की घटनाएँ तो यहाँ साधारण समझी जाती थी।[1]

यह थी गोलियों की दशा, महारानियों की स्थिति भी देखिए—'माँ जी साहब कहने को ही माँ जी थीं। उम्र उनकी महारानी से बहुत कम थी।···स्वर्गीय बड़े महाराज ने, बहत्तर वर्ष की आयु में उनसे विवाह किया था।···उनकी रूप-माधुरी पर मोहित होकर बड़े महाराज ने उनके पिता से नारियल भेजने

१. गोली, पृ० १३७-३६।

का अनुरोध किया। ब्याह के बाद दूसरे साल ही उनका स्वर्गवास हो गया। माँ जी साहब की उम्र उस समय केवल तेरह बरस की थी। वह दूध के समान निष्पाप थी, केवल फेरो की गुनहगार'' वह चांदी के समान शुभ्र मस्तक, वह भ्रू-भंग, वह मदभरी चितवन, वे प्रेमामत्रण-सा आमत्रण देते हुए उत्फुल्ल ओष्ठ, वक्ष का वह उभार, वह गरिमा भरी हथिनी की-सी चाल' परन्तु विधि-विडम्बना कहिए या राज-जीवन की विशेषता कहिए, वह विधवा है, माँ साहिबा है।'' राजस्थान मे तो ऐसी दुधमुँही विधवाओ की उन दिनो घर-घर भरमार थी।"[1]

यह विवरण गोली-प्रथा से आक्रात नारियो की दु स्थिति का परिचयाभास मात्र है, पूरा उपन्यास ऐसे ही करुण प्रसगो से ओत-प्रोत है।

नारी विषयक अन्य स्फुट विचार

आचार्य चतुरसेन के प्राय सभी उपन्यासो का केन्द्र बिन्दु नारी है। प्रत्येक उपन्यास मे किसी न किसी नारी समस्या का विवेचन घटनाओ अथवा पात्रो के माध्यम से हुआ है। यह विवेचन प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो प्रकार का है। प्रत्यक्ष वहाँ है, जहाँ किसी उपन्यास का कोई एक अथवा एकाधिक नारी-पात्र किसी ऐसी समस्या से सीधे सबधित हैं, जिसका विवेचन करना उपन्यासकार का लक्ष्य है। उदाहरणत 'बहते आँसू' म विधवा समस्या का, 'देवागना' म देवदासी-प्रथा और 'शुभदा' मे सती प्रथा का विश्लेषण ही उपन्यासकार का अभीष्ट है। इनमे से पहले एक उपन्यास को छोडकर, शेष दोनो के नाम ही स्पीवाची हैं। इसी प्रकार 'नीलमणि' 'वैशाली की नगरवधू', 'अपराजिता', 'गोली', 'आभा', आदि उपन्यासो के न केवल नामकरण इनके नारीप्रधान होने के द्योतक हैं अपितु इनमे सचमुच नारी जीवन के किसी महत्त्वपूर्ण पक्ष का उद्घाटन और परिशीलन हुआ है। अन्य उपन्यासो के कथा-सूत्र और कार्योन्मुखी विकास-प्रक्रिया की सूत्रधारिणी कोई न कोई नारी अथवा नारी-सबधी समस्या, विचार प्रवृत्ति अथवा दृष्टि विशेष है। इसका विशद विवेचन लेखक के नारी विषयक दृष्टिकोण के सदर्भ मे पीछे किया जा चुका है।

आचार्य जी का नारी सबधी चिन्तन व्यापक है। उनके उपन्यासो मे उसकी अभिव्यक्ति अनायास किसी न किसी प्रसग म हो गई है। ऐसे नारी विषयक स्फुट विचार-सूत्र उनके उपन्यासो मे बिखरे हैं। ये अपने विशिष्ट सन्दर्भों मे महत्त्वपूर्ण हैं। उन्हे स्वतन्त्र सूक्तियो के रूप मे भी ग्रहण किया जा सकता है।

---

१. गोली, पृ० १४२-४३।

यहाँ ऐसे प्रमुख विचारसूत्र उद्धृत किए जा रहे हैं—

(क) नारी बनाम पुरुष

(१) 'स्त्री-पुरुष दोनों ही भिन्न-वस्तु नहीं, एक जीवन-सत्ता के दो अधूरे भाग हैं।'''जैसे घन और ऋण, दो प्रकार के धारावाही तारों से बिजली की धारा प्रवाहित होती है। उसी प्रकार स्त्री पुरुष के संयोग से प्रजनन प्रवाह चलता है। यदि स्त्री पुरुष अत्यन्त पवित्रता तथा सामाजिक मर्यादा का पालन करते हुए संयुक्त न हों तो परमेश्वर की सृष्टि के सब काम ही समाप्त हो जाएँ।'[1]

(२) 'प्राणि जगत् में स्त्री हृदय है और पुरुष मस्तिष्क। दोनों, दोनों पर निर्भर हैं। मस्तिष्क में चेतना और हृदय में जीवन निहित है। प्रकृति ने जो मानसिक और शारीरिक आवरण स्त्री और पुरुष को दिया है, उससे वे नियमित रूप से परस्पर की शक्ति का एक साथ मिलकर उपयोग कर सकते हैं, जैसे बिजली के घन और ऋण तार रबर के आवरण में बद्ध सर्वथा पृथक् पृथक् किंतु साथ-साथ रहते हैं, केवल लक्ष्य बिन्दु पर नग्न होकर मिलते हैं, तभी विद्युद्धारा प्रवाहित होने लगती है।'[2]

(३) 'स्त्री अपने शरीर में अपूर्ण है और इसी प्रकार पुरुष भी। दोनों मिलकर एक होते हैं। उनका यह मिलन स्वेच्छित नहीं है प्रत्युत वे परस्पर मिलने को विवश हैं।—स्त्री क्या है, यदि पुरुष न हो? इसी प्रकार पुरुष भी, यदि स्त्री न हो? स्त्री का स्त्रीत्व जैसे पुरुष के होने ही से सार्थक है, उसी प्रकार पुरुष का पुरुषत्व भी स्त्री के होने से सार्थक है।'[3]

(४) 'नारी तो नर के मन में प्यार और मद भर देती है। वह जिसे प्यार करती है, उसमें अपनी रक्षा करने और उसे अपना बनाए रखने की क्षमता और शक्ति चाहती है। पुरुषों के दया-भाव और सद्व्यवहार का उसके मन में रत्ती भर भी मोल नहीं, उसे सिद्ध पुरुष चाहिए, पर्वत के समान सुदृढ़ और अचल, आँधी और तूफान की तो औकात ही क्या, जिसे भूचाल भी अपने स्थान से विचलित न कर सके।'[4]

(५) 'औरत मर्द की सबसे बड़ी खुशी का माध्यम है। एक तन्दुरुस्त जवान

---

१. आत्म-दाह, पृ० १२३।
२. बगुला के पंख, पृ० १३८।
३. नीलमणि, पृ० ७२।
४. आभा, पृ० १११।

मर्द के लिए औरत एक पुष्टिकर आहार है—शारीरिक भी, मानसिक भी। मर्द यदि औरत को ठीक ठीक अपने में हजम कर लेता है तो फिर उसका जीवन आनन्द और सौन्दर्य से भर जाता है। उसका जीवन हरा-भरा रहता है।"

(ख) दाम्पत्य-समीक्षा

(१) 'अब तुम न अपनी माँ की बेटी हो, न पढ़ी लिखी।' 'न मेरा बेटा, मेरा बेटा है। न वह प्रोफेसर या विलायत-पास है। ये सब बाहरी बातें हैं। भीतरी बात यह है कि वह पति और तुम पत्नी हो। आज से तुम परस्पर अति परिचित, अति निकट, अति एकान्त हुए। "तुम दोनों एक हो जाओ। जैसे दो बर्तनों का पानी एक हो जाता है—उसी तरह एक-दूसरे को आत्मार्पण करो, एक-दूसरे में खो जाओ, तुम्हें सब कुछ मिलेगा।"[1]

(२) 'संसार-भर में सबसे गम्भीर दाम्पत्य भारतवर्ष में ही है, जहाँ इस जन्म के विच्छेद की बात तो दूर रही, जन्म-जन्मान्तरों के अविभक्त संबंधों पर विश्वास है।'[2]

(३) 'हिन्दू-विवाह की तीन मर्यादाएँ हैं—(१) पति-पत्नी का व्यक्तिगत शारीरिक और मानसिक जीवन-सम्बन्ध और उसका सामाजिक दायित्व। (२) पति-पत्नी का एक-दूसरे के परिवार और संबंधियों से सम्बन्ध और उनकी मर्यादा। (३) पति और पत्नी का आध्यात्मिक अविच्छिन्न जन्मजन्मान्तरों का संबंध।'[3]

(४) 'पति-पत्नी का सम्बन्ध उसी प्रकार अटूट है जैसे माता और पुत्र का, पिता और पुत्र का तथा अन्य सम्बन्धियों का। वह जो अपने पितृकुल को त्याग कर पति-कुल में आई है तो इधर-उधर भटकने के लिए नहीं, न ही अपनी जीवन-मर्यादा समाप्त करने के लिए।'[4]

(५) 'यदि स्त्री पुरुष के लिए मिठाई है तो पुरुष स्त्री के लिए जीवन मूल है। हजारों-करोड़ों बालिकाओं को हम हठात् पिता, माता, भाई का घर त्याग कर पतिगृह में आते देखते हैं पर किस जादू के बल पर वे अपना सब कुछ भूलकर पति में रम जाती हैं। विवाह के बाद स्त्रियों के पास पति-चर्चा की

---

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० २४।
२. नीलमणि, पृ० ४३।
३. वही, पृ० ८८।
४. अदल-बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १६३।
५. वही, पृ० १६६।

छोडकर दूसरा विषय ही नही रहता। काली-कलूटी, दुर्बल, सुस्त लडकी चार दिन पति का स्पर्श प्राप्त कर कुछ की कुछ हो जाती है। उसका रग निखर आता है। आनन्द और उल्लास के मारे वह धरती पर पैर नही रखती ।"[१]

(६) विवाह एक ऐसा शब्द है—जिसके नाम से ही युवक युवतियों के हृदय मे नवजीवन और आनन्द की लहरें उठने लगती है।"[२]

(७) 'विवाह तो सामाजिक सम्बन्ध है, व्यक्तिगत नही। इसलिए इस मामले मे सामाजिक और धार्मिक नियम पालन किए जाने चाहिएँ, व्यक्तिगत नही।"[३]

(८) 'भारत की हवा में साँस लेने मे हिन्दू-ललना पत्नीत्व के गुरु उत्तर-दायित्व को समझ ही नही जाती, वरन् उसी अल्प वय मे—उसी अबोध, मूर्ख और तिरस्कृत स्थिति मे—उसे पालन करने योग्य अपूर्व दृढता, अदम्य आत्म-बल और लोकोत्तर सहन शक्ति भी दिखा सकती है।"[४]

(९) 'जिस ने तुम्हारी स्त्री का धर्म नष्ट किया है, तुम उसकी स्त्री का प्राण नाश करो। मैं उसकी स्त्री हूँ—स्त्री पति का आधा अग है। पति के पाप पुण्य सब म उसका आधा हिस्सा है। आधा दड मुझे दो। मेरा प्राण नाश करो। फिर जहाँ वह मिले, तुरन्त मार डालना। मैं नही चाहती कि दुनिया मेरे पति को लम्पट के रूप मे देखे।"[५]

(१०) मेरे तुम्हारे बीच इतना अन्तर है, इतना द्वि भाव है कि तुम अप-राधी बना और मैं क्षमा करूँ? न, न, इस नाटक की जरूरत नही है। तुम अपराध करोगे तो भी पाप करोगे तो भी, पुण्य करोगे तो भी, सब मे मेरा हिस्सा है। हम तुम दो थोडे ही हैं।'[६]

(११) 'हे माताओ! तुमने अब वीर-पुत्रों को उत्पन्न करना छोड दिया, तुम शृगार करके सज धज कर बैठ गई, लोहे के पिजरे मे तुम गहने-कपडो के ऊलजलूल झगडो मे उलझ कर बैठ गई। और पुरुषो को इसी उद्योग मे फँसा रखा कि वे तुम्हारी आवश्यकताओ को जुटाने मे मर मिटें। फलत जीवन के सारे ध्येय पीछे रह गए।"[७]

---

१ खून और खून, पृ० १२५।
२ अदल बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १७५।
३ सुभद्रा, पृ० १२०।
४ हृदय की प्यास, पृ० १६।
५ हृदय की प्यास, पृ० १८१।
६ धर्मपुत्र, पृ० २८।
७ अदल बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १४४।

(ग) नारी-सूक्त

(१) 'स्त्रियों की प्रकृति जल के समान है, जो शान्त रहने पर तो अत्यन्त शीतल रहता है, परन्तु जब जल में तूफान आता है तो वह ऐसा भयकर हो जाता है कि बड़े-बड़े भारी जहाज भी टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।'[1]

(२) 'वे बच्चो की माताएँ हैं। उन्हे ढालने के साँचे हैं, वे बच्चो की गुरु हैं। यदि वे योग्य न होगी तो बच्चे योग्य हो ही नही सकते। बच्चे यदि अयोग्य हुए तो कुल मर्यादा नष्ट हुई समझिये।'[2]

(३) 'पुरुष के जीवन का आधार स्त्री है। उसकी ज्यो ज्यो आयु बढती जाएगी उसे उसके सहारे की अधिक से अधिक आवश्यकता होती जाएगी। जवानी मे स्त्री खेलने दिल बहलाने की वस्तु है पर बडी उम्र मे वह काम की चीज़ बन जाती है।'[3]

(४) 'स्त्री होना अभिशाप हो सकता है, अपराध नही। सेवा करना, प्रेम बिखेरना, आनन्द की वर्षा करना जीवन का सौन्दर्य है इसे नही त्यागा जा सकता। विषाद के आँसुओ से जीवन पथ को दलदल नही बनाया जा सकता। सघर्ष यदि जीवन-तत्त्व की रक्षा करता है तो फिर सघर्ष ही सही।'[4]

(५) 'हर औरत का इसानी फर्ज़ उसके दामन मे है।'[5]

(६) 'औरत की जिन्दगी उसकी अस्मत है, वह गई तो जिन्दगी भी गई।'[6]

(७) 'औरतें तो सभी मूल्यो की एक ही साँचे को बनी होती हैं।'[7]

निष्कर्ष

आचार्य चतुरसेन ने अपने उपन्यासो मे मानव जीवन के सभी क्षेत्रो से नारी सम्बन्धी समस्याओ को सकलित करके उनके समाधान प्रस्तुत किये हैं। ऐसी समस्याएँ हैं। (१) विवाह-सम्बन्धी, (२) प्रेम और काम-सम्बन्धी, (३) आर्थिक

---

१. अदल बदल (नीलमणि सयुक्त), पृ० १४३।
२ वही, पृ० १४३।
३ दो किनारे (दो सौ की बीबी), पृ० ४७।
४ वही, पृ० ६३।
५ मोती, पृ० ८८।
६. आलमगीर, पृ० १०२।
७ सुमदा, पृ० ६७।

स्वाधीनता तथा अन्य अधिकार-सम्बन्धी, (४) स्फुट।

विवाह-सम्बन्धी समस्याओं में अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, विधवा विवाह बहु-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह तथा विवाह-विच्छेद आते हैं।

अनमेल विवाह के दो रूप हैं। प्रथम, स्त्री और पुरुष की आयु में असमानता तथा द्वितीय उनकी रुचि भिन्नता। वसन्ती (बहते आँसू) तथा हुस्नबानू (धर्मपुत्र) असमान आयु के कारण विधवाएँ होकर यातनाएँ सहती हैं। नीलमणि (नीलमणि) रुचि भिन्नता के उदाहरण स्वरूप लेखक ने प्रस्तुत की है।

बाल विवाह की समस्या अनमेल विवाह तथा विधवा-समस्या के साथ जुड़ी हुई है। नारायणी, भगवती, सुशीला, वसन्ती, मालती (बहते आँसू), नरला (आत्म दाह) शोभना (सोमनाथ) तथा शुभदा (शुभदा) के वैधव्य का कारण यही समस्या है। देश में अज्ञान, स्वार्थाधिक्य, स्त्रियों का अधिकार-वंचित होना, घरों में बालिकाओं के गुड्डे-गुड़िया के खेल को प्रोत्साहन, माता-पिता द्वारा शैशव में बालिकाओं के सम्मुख विवाह आदि की बातें बालविवाह के मुख्य कारण हैं।

विधवा-समस्या का प्रमुख कारण बाल विवाह है। अन्य परिस्थितियाँ भी इसका कारण बनती हैं। कुमुद (बहते आँसू) पति के प्लेग-प्रकोप में परलोक सिधार जाने के कारण विधवा होती है। नायिकादेवी (रक्त की प्यास), मन्दोदरी, सुलोचना (वयं रक्षामः) अपने पतियों के युद्ध में वीरगति प्राप्त करने के कारण विधवाएँ होती हैं। लक्ष्मीबाई (सोना और खून-४) पति के रोगवश काल का ग्रास बन जाने से विधवा होती है। आचार्य चतुरसेन ने दम्पती में से किसी एक की मृत्यु, दूसरे के लिए भिन्न परिस्थितियाँ पैदा करने वाली सिद्ध की है। सुधीन्द्र, पत्नी माया (आत्मदाह) की मृत्यु से आजीवन असन्तुलित रहता है। प्रायः स्त्री की मृत्यु पुरुष के लिए क्षणिक अवसादमय होती है, किन्तु पुरुष की मृत्यु के पश्चात् स्त्री के लिए जीवन, परिवार, समाज सभी कुछ निष्ठुर हो जाता है। उन्होंने इसका एकमात्र समाधान विधवा का पुनर्विवाह बतलाया है।

बहु विवाह-प्रथा भी नारी-दुर्दशा का कारण है। लीलावती (रक्त की प्यास) की मानसिक पीडा तथा नवाब की स्त्रियों की दीन दशा (धर्मपुत्र) में इसकी झलक है।

अन्तर्जातीय विवाह को आचार्य चतुरसेन ने समस्या के रूप में चित्रित न करके समन्वय भावना और भावात्मक एकता के लिए उपयोगी माना है। उन्होंने 'धर्मपुत्र', 'शुभदा' तथा 'खून और खून' में अन्तर्जातीय विवाह को विभिन्न परिवेशों में उठाकर सिद्ध किया है कि सामान्य समाज अभी तक इसे 'अधर्म', 'जाति विरोधी' तथा हीन-प्रवृत्ति' समझता है। किन्तु 'खून और खून' में भारत

के प्रमुख नेता जवाहरलाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा के विवाह का प्रसंग रूढ़िवाद के विरुद्ध एक शिष्ट विद्रोह का स्वरूप है।

विवाह-विच्छेद को, आचार्य चतुरसेन ने, भारतीय परम्परा विरोधी समझते हुए उसका कहीं समर्थन नहीं किया है। 'अदल-बदल' तथा 'पत्थर युग के दो बुत' में इसके पक्ष-विपक्ष में जोरदार दलीलें प्रस्तुत कराने के बाद नारी-पात्रों के माध्यम से दिया गया निर्णय तलाक-पद्धति के प्रतिकूल है। आचार्य चतुरसेन का दृष्टिकोण सर्वत्र अत्याधुनिक तथा प्रगतिवादी है। किन्तु पाश्चात्य समाज की अभिनव प्रवृत्तियों का अन्धानुकरण उन्हें स्वीकार नहीं है।

प्रेम और काम-सम्बन्धी समस्याओं में वेश्या-समस्या सर्वोपरि है। लेखक ने इसका कारण समाज के अन्तराल में जड-रूप में व्याप्त यौनाचार-विकृति को बताया है। आर्थिक विषमताएँ तथा सामाजिक कुरीतियाँ भी इसका कारण हो सकती हैं। चतुरसेन वेश्यावृत्ति को यौन-समस्या से सम्बद्ध मानते हैं। अम्बपाली और भद्रनन्दिनी (वैशाली की नगरवधू) के रूप में उन्होंने उस युग के सम्भ्रान्त समाज में वेश्याओं की अप्रतिम प्रतिष्ठा दिखाई है। उस युग में वेश्याओं की कार्य सीमा नृत्य और गायन द्वारा सामाजिक-मनोरंजन थी। देह-विक्रय तथा यौन-तृप्ति मध्यकालीन सामन्ती युग की विलासिता की देन हैं। प्रवीण (हृदय की प्यास) मित्रों के साथ वेश्या का गायन-वादन सुनने जाते हुए डरता है। बाल-विधवा वसन्ती और चमेली (बहते आँसू) की नैसर्गिक देह लालसा उन्हें वेश्या-मार्ग अपनाने को बाध्य करती है। आचार्य चतुरसेन ने प्रायः अपने उपन्यासों में वेश्याओं को बड़ी सहृदय, सेवामयी और मानवता के श्रेष्ठ गुणों से युक्त नारियों के रूप में अंकित किया है। उन्होंने वेश्या के रूप में समाज का सम्पूर्ण विष पान करने वाली नारी का अभिवादन किया है।

दाम्पत्य जीवन की सफलता काम, प्रेम और विवाह के समन्वय में निहित है। इसकी आधारशिला विवाह है। उसकी दृढ़ता का आधार प्रेम है। अपूर्ण नारी और अपूर्ण नर के मिलकर पूर्ण हो जाने की शाश्वत प्रक्रिया तभी सार्थक हो सकती है, जब काम, प्रेम और विवाह की रेखाएँ समानान्तर तथा सन्तुलित रहें। इसकी किसी एक भी रेखा के वक्र या विकृत हो जाने से नर या नारी के जीवन की विषमता प्रकट होने लगती है। उपन्यासों में इस समस्या का विश्लेषण स्वाभाविक है। आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों में भी इसका पर्याप्त विवेचन हुआ है। 'हृदय की प्यास' में सुखदा और प्रवीण इसी असन्तुलन के शिकार हैं। 'आत्म-दाह' में इसके विपरीत विवाह को दो आत्माओं का मिलन कहा है, मात्र काम-तृप्ति का माध्यम नहीं। 'नीलमणि' में विनय के माध्यम से इस समस्या का वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक पक्ष प्रस्तुत करते हुए पुरुष और

स्त्री का भिन्नलिंगी होना इसका मूल कारण बताया गया है। 'वैशाली की नगरवधू' में प्रेम और काम-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचना व्यावहारिक रूप में दिखाई गई है। अम्बपाली की क्रमशः हर्षदेव, सोमप्रभ, बिम्बसार और उदयन के प्रति आसक्ति कामासक्ति है, प्रेम नहीं। अन्यत्र कई उपन्यासों में यह प्रसंग उठाकर चतुरसेन ने सिद्ध किया है कि प्रेम विशुद्ध आध्यात्मिक वस्तु है। उसका सम्बन्ध मन से है। काम-तत्त्व से उसका कोई अनुबन्ध नहीं। किन्तु जैसे जीवन में आत्मा और शरीर के समन्वय की आवश्यकता है, वैसे दाम्पत्य परिधि में प्रेम और काम की सन्तुलित स्थिति वरेण्य है। उसकी कसौटी स्वस्थ वैवाहिक जीवन है।

नारी की आर्थिक स्वाधीनता तथा अधिकार की समस्या के तीन पहलू हैं। प्रथम आर्थिक मामलों में नारी अधिकार की सीमा द्वितीय, परिवार और समाज में नारी की स्थिति, तृतीय, सार्वजनिक क्षेत्र में नारी की स्थिति। चतुरसेन ने 'वैशाली की नगरवधू' में श्रावस्ती-नरेश की दो पत्नियों, नन्दिनी और कलिंग-सेना, के विवाद द्वारा स्थिति स्पष्ट की है। कलिंगसेना कहती है कि पुरुष स्त्री का पति नहीं, जीवन-संगी है। पति तो उसे सम्पत्ति ने बनाया है। राज (अपराजिता) अपने विवाह में पिता से मिले धन को पुत्री धन तथा ससुराल में मिले धन को स्त्री धन कहती है। इस पर स्त्री का अधिकार होना सिद्ध किया गया है। आचार्य जी का इस विषय में दृष्टिकोण प्रगतिवादी है। किन्तु 'अदल बदल' में स्त्री की आर्थिक स्वाधीनता की लालसा उसे प्रकृत कर्तव्य-पथ से विमुख करने वाली भी कही है। 'उदयास्त' में लेखक का दृष्टिकोण अधिक प्रगतिशील है। इसमें प्रबुद्ध पात्रों के माध्यम से स्पष्ट होता है कि शोषण, उत्पीड़न और वर्गभेद का सबसे पहला शिकार नारी है। उसकी अधिकार क्षमता के प्रति लेखक ने अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। किन्तु वह समस्या के स्वरूप और कारणों की व्याख्या करके ही रह गया है। समाधान की ओर उसे अन्त तक रही है।

परिवार और समाज में नारी की स्थिति के सम्बन्ध में कलिंगसेना (वैशाली की नगरवधू), नीलमणि (नीलमणि) तथा मायादेवी (अदल बदल) के माध्यम से इस समस्या के पक्ष-विपक्ष में विचार व्यक्त करा के आचार्य चतुरसेन ने मायादेवी के पति हरप्रसाद द्वारा समन्वयवादी धारणा के रूप में अपना मत व्यक्त किया है। उन्हें नारी की स्वाधीनता की लहर में शताब्दियों से स्थापित परिवार-प्रथा और सामाजिक व्यवस्था का सहसा बह जाना स्वीकार नहीं है। वे समाज में नारी का स्थान बहुत ऊँचा मानते हैं। उसकी सम्मानपूर्ण स्थिति बनाए रखने के लिए उन्होंने नारी के मातृत्व तथा मर्यादित नागरिक पद पूरा

बल दिया है। उनके मत में राज (अपराजिता) आज की नारी मात्र की पथ-प्रदर्शिका है।

सार्वजनिक क्षेत्र में नारी की स्थिति वाली समस्या समाज में नारी के स्थान सम्बन्धी समस्या से जुड़ी हुई है। किसी सार्वजनिक क्षेत्र से नारी का बहिष्कृत रहना उस समाज के पिछड़ेपन का प्रमाण होगा। अतएव आचार्य चतुरसेन ने इस समस्या का प्रबल समर्थन किया है। वे चाहते हैं कि नारी घर की रानी रहकर भी सार्वजनिक क्षेत्र म भाग ले। यह समन्वित दृष्टि उनके 'आत्मदाह', 'वैशाली की नगरवधू' तथा सोमनाथ' के क्रमश सुधा, कुण्डनी एव चौला नामक नारीपात्रों के माध्यम से व्यक्त हुई है।

नारी-सम्बन्धी अन्य समस्याओं मे सती-प्रथा, दासी देवदासी प्रथा तथा गोली प्रथाएँ हैं। इन्हे आचार्य चतुरसेन ने समाज के अभिशाप रूप म चित्रित किया है।

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासो मे उनकी नारी विषयक मान्यताओं की दो बातें हैं। प्रथम, वे एक प्रगतिशील विचारक थे और द्वितीय, उन्हे उपयोगी, व्यावहारिक एव वैज्ञानिक तथ्यो पर आधारित प्राचीन परम्पराओं का सरक्षण प्रत्येक स्थिति मे अभीष्ट था। तात्पर्य यह है कि उन्होने अपने उपन्यासो मे ऐसी किसी भी प्रवृत्ति का प्रबल विरोध किया है, जिसके परिणामस्वरूप नारी की प्रतिष्ठा को आँच आने की आशका है। उन्होंने पाश्चात्य देशो से प्रेरित नारी-जागरण के सभी तत्त्वो को भारतीय नारी के लिए शुभ मानते हुए भी उनके अन्धानुकरण के फलस्वरूप यहाँ की मर्यादाओं तथा जीवन मूल्यो को विघटित करने वाली हर प्रवृत्ति का तथ्यसगत विरोध किया है। इस प्रकार उनकी नारी विषयक मान्यताएँ समन्वित उपयोगितावाद की परिचायक हैं। इनमे सिद्धान्त और व्यवहार, भावना तथा अनुभव का यथोचित सामजस्य है।

उपसंहार

आचार्य चतुरसेन उदारचेता और संवेदनशील चिकित्सक होने के साथ विचारक और कलाकार भी थे। उन्हें लोक-जीवन का गहन अनुभव प्राप्त था। व केवल 'नर की नाडी' के ही पारखी न थे बल्कि जाति और समाज की विभिन्न समस्याओं में भी उनकी गहरी पैठ थी। देश के विभिन्न भागों का उन्होंने अनेकधा पर्यटन करके वहाँ के जन-जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किया था। बीसवीं शताब्दी भारत एवं विश्व के लिए जो नवचेतना का सन्देश लाई थी, उसके वे प्रत्यक्ष द्रष्टा रहे थे। इस अवधि में संसार के साथ भारत ने परिस्थितियों का जो ताण्डव देखा, वह असाधारण था। 'परिवर्तन' के तूफान ने मानव के अन्तस्तल को सागर की तरह मथ डाला। परिणामस्वरूप उसके मनोजगत् की मर्यादाएँ विशृंखलित होकर अभिव्यक्ति के नये आयाम खोजने लगी। उन नई दिशाओं में से एक महत्त्वपूर्ण दिशा थी नारी-जीवन की, नारी के युग-युग से प्रताडित व्यक्तित्व के विद्रोह की, और समाज में उसके अस्तित्व और स्वत्व के पुनःस्थापन की।

सहस्रों वर्षों से नारी संस्कारों, मर्यादाओं और सामाजिक औपचारिकताओं के ऐसे व्यूह में जकडी जा चुकी थी, जिसे काट पाना उसके सामर्थ्य से बाहर की बात थी। बन्धन की इन लौह-शृंखलाओं से मुक्ति पाने के लिए आवश्यकता थी स्वतन्त्र चेतना की। चेतना की ऊर्जा का उत्स बना साहित्य। बीसवीं सदी के जागरूक साहित्यकारों ने अपनी क्रान्तिकारिणी रचनाओं के द्वारा 'अबला' कही जाने वाली नारी को 'सबला' बनाकर जीवन और समाज के हर क्षेत्र में उसे प्रतिष्ठित करने का उद्योग किया। ऐसे समाजचेता साहित्यकारों में आचार्य चतुरसेन अग्रणी थे।

आचार्य चतुरसेन ने अतीत और वर्तमान दोनों को अपनी गहन दृष्टि से देखा-परखा था। सहस्राब्द ईसापूर्व से लेकर उत्तर-मध्यकाल के इतिहास-ग्रन्थों,

धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शास्त्रों एवं संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश के अतिरिक्त विभिन्न आधुनिक भारतीय भाषाओं की साहित्यिक कृतियों का उन्होंने पारायण किया था। इस विशद अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने आधुनिक युग की निरन्तर बदलती परिस्थितियों पर विचार किया। एक अनुभवी चिकित्सक के नाते उन्होंने भारतीय समाज के अन्तरंग और बहिरंग के परीक्षण के उपरान्त जो तत्सम्बन्धी धारणा बनाई, वही उनके उपन्यासों में कथाओं और पात्रों का रूप धारण कर अवतरित हुई है।

× × ×

आचार्य चतुरसेन ने समाज की दुर्दशा को अनुभव किया। यहाँ एक तो परतन्त्रता थी, दूसरे, समाज में शिक्षा का समुचित प्रबन्ध न था। इन कारणों से नारी की दुर्दशा भयानक रूप धारण कर चुकी थी। पुरुषों को जीवन निर्वाह-हेतु नौकरी करने के लिए पढ़ना पड़ता था। किन्तु घर की चारदीवारी में बन्द रहने के कारण नारी-शिक्षा अनावश्यक समझ ली गई थी। मुस्लिम काल में पर्दा प्रथा के कारण नारी और भी सामाजिक बन्धनों में जकड़ी जा चुकी थी। शासन सूत्र हाथ से निकल जाने के कारण भारतीय, विशेषकर हिन्दू लोग अपने आपको विवश अनुभव करने लग गए थे। उनकी सम्पत्ति ही नहीं, बहू बेटियों की अस्मत भी असुरक्षित हो गई थी। बाल-विवाह, अनमेल विवाह एवं वेश्या-वृत्ति को तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों से बढ़ावा मिला। चतुरसेन ने इन परिस्थितियों की भयानकता को भाँप कर चिकित्सावृत्ति की अपेक्षा साहित्य-रचना द्वारा समाज का पथ-प्रदर्शन करने का संकल्प कर लिया।

प्राचीन भारतीय साहित्य एवं आदि-मध्यकालीन हिन्दी काव्य के अन्तर्गत नारी चित्रों के नाना रूपों के विवेचन के आधार पर लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि सामाजिक मान्यताओं के अनुसार नारी की स्थिति परिवर्तित होती रही है। उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है। प्राचीन साहित्य में प्राप्त नारी चित्रण सभी रूपों में उदात्त है। ऋग्वेद में नारी के सर्वोदात्त रूप का चित्रण है। अन्य ग्रन्थों में भी उसे अधिकार च्युत नहीं किया गया। अथर्ववेद ऐतरेय-ब्राह्मण तथा मैत्रायणी संहिता आदि में नारी के महत्त्व में कुछ न्यूनता अवश्य दिखाई पड़ती है, किन्तु उपनिषदों में पुनः वह उच्च पद पर प्रतिष्ठित दृष्टि-गोचर होती है। तात्पर्य यह है कि प्राचीन काल के साहित्य स्रष्टा नारी के प्रति सहृदय और आदर-भाव से सम्पन्न हैं।

आदि-मध्यकालीन हिन्दी-काव्य में नारी के विविध रूप उसके जीवन के उत्कृष्ट एवं निकृष्ट दोनों छोरों की ओर निर्देश करते हैं। किन्तु नारी हर युग में समाज का अभिन्न अंग रही है। नारी प्रत्येक युग में धर्म और संस्कृति की

बाहिका भी रही है। इसका कारण है कि भारत में आदिकाल से ही धर्म-भावना की प्रधानता रही है। 'मातृदेवो भव' की छाप परवर्ती साहित्य पर भी लक्षित होती है। फिर भी मध्ययुग की नारी के चारों ओर तत्कालीन सामाजिक धारणाओं ने जीवन का ऐसा भोग-विलासात्मक सकीर्ण बन्धन बाँध दिया था, जिससे उसे अपना जीवन अपने आप में हेय लगने लगा था।

अंग्रेजी शासन ने भारत में दासता की जड़ें दृढ़ कर दी। जनता ने स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष छेड़ना आवश्यक समझा। आधुनिक काल की भूमिका में राष्ट्रीयता तथा देश प्रेम के भाव उभरने लगे। इस काल में नारी की दुर्दशा को अनुभव किया गया और उसमें सुधार के बिना अच्छे समाज का निर्माण असम्भव समझा गया गुरु नानकदेव जैसे भक्त कवियों द्वारा नारी महिमा एवं दयानन्द सरस्वती जैसे समाज-सुधारकों के उपदेशों से जनता में पुन नारी-गौरव के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। साहित्यिक क्षेत्र में भी भारतेन्दु से लेकर परवर्ती अनेक लेखकों ने इस पक्ष का समर्थन जोरों से किया। फलत समाज में विधवा प्रथा जैसी कुरीतियों के उन्मूलन के लिए प्रयत्न होने लगे। इसी काल में शिक्षा का प्रसार भी होने लगा। उसमें नारी को भी समान रूप से शिक्षित करना अनिवार्य समझा जाने लगा। पर्दा प्रथा का विरोध होने लगा। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई जैसी उदात्त-चरित्र नारियों से प्रेरणा प्राप्त हुई। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू जैसे राष्ट्र-कर्णधारों ने राजनीतिक क्षेत्र में नारी-सहयोग आवश्यक समझा। फलस्वरूप नारी जीवन के बन्धन कटने लगे। सन् १६४७ में भारत के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् तो भारतीय नारी जीवन के सभी क्षेत्रों में सर्वतोमुखी प्रगति करती जा रही है।

उपन्यासकार चतुरसेन ने भारतीय इतिहास के पुरातन युग से लेकर वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक कार्य करने वाली नारियों का चरित्र चित्रण किया है। उनके प्राय सभी उपन्यास (सह्याद्रि की चट्टानें और लाल पानी आदि एक दो अपवादों को छोड़कर) नारी केन्द्रित हैं। उनके अधिकतर ऐतिहासिक उपन्यास किसी महती ऐतिहासिक घटना पर आधारित हैं। फिर भी उनमें वर्णित महान् घटनाओं के गति चक्र में किसी न किसी नारी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण रहा है। उदाहरण के लिए हृदय की परख, हृदय की प्यास, बहते आँसू, आत्मदाह, नीलमणि, दो किनारे, अपराजिता, अदल-बदल, आभा और पत्थर युग के दो बुत आदि सामाजिक उपन्यास तो नारी जीवन की हल्की-गहरी रेखाओं पर निर्मित हैं ही, पूर्णाहुति, सोमनाथ तथा आलमगीर आदि ऐतिहासिक उथल-पुथल से सम्बन्धित उपन्यासों में भी नारी का अस्तित्व बहुत निर्णायक रहा है। इनके अतिरिक्त वैशाली की नगरवधू, देवांगना और गोली जैसे इतिहास-रस-सम्बन्धी

उपन्यासों के तो शीर्षक ही उनकी विशिष्ट नारी दृष्टि के परिचायक हैं।

आचार्य चतुरसेन के नारी-चित्रण में उनके समकालीन उपन्यासकार मुंशी प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र तथा जैनेन्द्र के दृष्टिकोण की झलक मिलती है। यह साम्य युगीन परिस्थितियों एवं उनके अध्ययन तथा अनुभव का परिणाम है। प्रेमचन्द आदर्श दृष्टिकोण के कारण महान् हुए हैं तो चतुरसेन अन्तर्राष्ट्रीय मानव संवेदना के कारण माना है। वृन्दावनलाल वर्मा ऐतिहासिक उपन्यासों को नवीन रूप देने तथा स्फूर्तिमय जीवन-दृष्टि के कारण इस क्षेत्र के प्रकाश-स्तम्भ हैं तो उग्र की सी याथातथ्यवादिता के दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। जैनेन्द्र का दार्शनिक चिन्तन और मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण उनकी अपनी विशेषता है। फिर भी यह बात निर्विवाद है कि पुरुषाधीनता, सामाजिक रूढ़ियों और परम्परागत नैतिक मर्यादाओं के अनुचित बन्धनों से नारी की मुक्ति, स्वतन्त्रता और उसकी आत्मनिर्भरता की कामना इन सभी उपन्यासकारों ने व्यक्त की है। इनकी आस्था नारी के गरिमामय उदात्त रूप की ओर समान है।

× × ×

आचार्य चतुरसेन के उपन्यासों के माध्यम से उनकी नारी-चेतना के क्रमिक विकास का अध्ययन भली भाँति किया जा सकता है। अपने प्रारम्भिक उपन्यासों (हृदय की परख, हृदय की प्यास, बहते आँसू, आत्मदाह आदि) में उन्होंने बीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में भारतीय समाज की टूटती-ढहती परम्पराओं की चरमराहट का चित्रण करते हुए बताया है कि संक्रमणकाल के उस संकट में नारी ही सबसे अधिक पीड़ित है। भोली, निरीह, दीन स्नेही और समर्पित नारी पुरुष की वासनाओं की शिकार बन कर भी न रो पाती है, न कराह सकती है। नारी की यह असहाय मूर्ति चतुरसेन के कथा-मानस में आसन जमा-कर उन की करुणा-भावना का निरन्तर उद्दीपन करने लगी। उनके हृदय में बैठी अबला अन्यायी और लोलुप 'पुरुष' से प्रतिशोध लेने के लिए उन्हें गुहारने लगी। युग प्रताड़ित नारी की यह गुहार निष्फल न गई। चतुरसेन के हृदय-ताप ने उस नारी मूर्ति को गलाकर उसके स्थान पर ओजमयी, शक्तिमती और पुरुष को अपने भृकुटि संकेत पर नचाने वाली 'सबला' नारी की सृष्टि की। इसे उनकी लौह लेखनी ने वैशाली की नगरवधू (अम्बपाली) के रूप में सजीव कर दिया। उनकी इस 'प्रथम सर्वश्रेष्ठ रचना' में इस बात का स्पष्ट प्रतिपादन हुआ है कि बड़े से बड़ा साम्राज्य और सुव्यवस्थित गणराज्य भी नारी की शक्ति से टकराकर चकनाचूर हो सकता है। इसके उपरान्त रचे गए नरमेध, रक्त की प्यास और देवांगना आदि उपन्यासों में भी नारी की यही प्रतिपाद-

प्रक्रिया गतिशील दिखाई देती है।

नारी के इस प्रतिहिंसक रूप को दिखाने के पश्चात् चतुरसेन पुनः वर्तमान युग के संदर्भ में नारी की स्थिति उसके अधिकारों और कर्त्तव्यों का लेखा-जोखा करने में प्रवृत्त हुए। दो किनारे, अपराजिता तथा अदल बदल नामक उपन्यास नारी और पुरुष के सौम्य पारिवारिक सम्बन्धों की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासों में नारी से असन्तुष्ट पुरुष तथा पुरुष से असन्तुष्ट नारी का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने स्पष्ट किया है कि नारी पुरुष के मध्य दरार पड़ने के कई कारण हो सकते हैं। उनमें से उल्लेखनीय हैं—शारीरिक आकर्षण विकर्षण, मानसिक कुण्ठाएँ तथा यौन तृप्ति अतृप्ति आदि। किन्तु एक नारी से असन्तुष्ट पुरुष पुनः अन्य किसी नारी के अंचल में आकर ही तृप्ति अनुभव करता है। इसी प्रकार एक पुरुष से असन्तुष्ट नारी भी अन्य पुरुष के साहचर्य का समस्या का समाधान मान लेती है तो पूर्व असन्तोष का कोई ठोस आधार नहीं रह जाता। नारी का क पुरुष में अपने को दु खी और स' पुरुष से अपने को सुखी अनुभव करना मात्र विडम्बना है। इसीलिए चतुरसेन ने इन उपन्यासों में बड़ी कुशलता से दिखाया है कि पूर्वपुरुष को त्याग अन्य पुरुष के सम्पर्क में जाने के उपरान्त नारी पुनः शीघ्र ही विचलित हो उठती है। वह नई स्थिति की अपेक्षा पूर्व स्थिति को अधिक अनुकूल समझ कर वहीं लौट जाती है। यही बात उन्होंने पुरुष की तृप्ति-अतृप्ति के सन्दर्भ में प्रस्तुत की है। इस तथ्य में आचार्य जी को यह प्रतिपादित करना अभीष्ट है कि नारी-पुरुष के पारस्परिक समझौते और अवसरानुकूल सहनशीलता एवं उदारतापूर्वक जीवन-निर्वाह में ही दोनों का कल्याण निहित है।

नारी और पुरुष के इस मुकदमे में चतुरसेन सर्वत्र नारी के अधिवक्ता रहे हैं। 'अदल-बदल' में नारी की ओर से पुरुष समाज को अपने अधिकारों की रक्षा हेतु भीषण रक्तक्रान्ति की चेतावनी देने वाले समाज नेता के रूप में भी वे हमारे सामने आते हैं। वे कहते हैं—'आज की स्त्री पुरुष की सम्पत्ति-परिग्रह बनकर नहीं रह सकती। वह पुरुष की सच्चे अर्थों में संगिनी सहभागिनी बनकर रहेगी। पुरुष यदि स्त्री के इस प्राप्तव्य को देने में आना-कानी करता है तो निस्सन्देह उसे स्त्रियों से ऐसी खूनी लड़ाई लड़नी पड़ेगी जैसी आज तक मनुष्य इतिहास में मनुष्य ने इस स्त्री-सम्पत्ति को अपहरण करने के लिए भी युग युग में कभी नहीं लड़ी होगी।"

चतुरसेन की नारी चेतना उपन्यासों में विकास के विभिन्न सोपानों का

अदल बदल भूमिका पृ० १।

पार करती हुई, बीसवीं शताब्दी के मध्य तक पहुँच कर नारी के पूर्ण उद्धार का संकल्प ले लेती है। समाज के सम्भ्रान्त वर्ग से लेकर मध्य और निम्न वर्ग के परिवारों तक नारी एक-सी उपेक्षित प्रताडित एवं पुरुष की काम-बुभुक्षा की तीव्राग्नि में जलने वाली समिधा बनी दिखाई देती है। समाज के भीतरी तहखानों में भी नारी की नारकीय दशा है। इस स्थिति से समाज अब तक अनभिज्ञ-सा था। 'गोली' उपन्यास मानो उनकी ललकार है। इसमें उन्होंने सामन्ती विलास की दहकती भट्टी में सुलगती नारी के करुण-क्रन्दन को वाणी प्रदान की है। इस उपन्यास के अन्त में उन्होंने राजशाही की समाप्ति एवं जनतन्त्र के शुभ उदय की वेला में उसकी मुक्ति का सुखद संकेत दिया है।

परवर्ती उपन्यासों में चतुरसेन की यह उदात्त चेतना पुनः आहत हो उठती है जब वे देखते हैं कि देश से नौकरशाही तथा राजशाही का अन्त तथा पूर्ण स्वराज्य की स्थापना हो जाने पर भी नारी की परवशता ज्यों की त्यों बनी हुई है। उन्होंने अनुभव किया कि पुरुष को सत्ता और अधिकार जिस रूप में भी मिले वह उनकी आड में नारी को अपनी उद्दाम वासना की आहुति बनाने से नहीं चूकता। जनतंत्र में जनमत के आधार पर शासक बनने वाले कुछ लम्पट व्यक्ति शासन की कुर्सी के साथ नारी को भी अपनी अधिकृत उपभोग्या समझकर कुत्सित आचरण करने लगे हैं। 'बगुला के पंख' उपन्यास में उन्होंने यही दिखाया है।

यहाँ आकर चतुरसेन को अपनी अर्धशताब्दी की साहित्य-साधना व्यर्थ प्रतीत होने लगती है। नारी और पुरुष के मुकदमे में उनके द्वारा प्रस्तुत सभी तर्क समाज के 'अन्ध-न्याय' के सम्मुख निरर्थक हो जाते हैं। उनकी चेतना अकस्मात् युगों पीछे उसी आदिम काल में जाकर खो जाती है, जहाँ से नारी और पुरुष इन दो भिन्न प्राणियों ने जीवन का सूत्रपात किया था। 'पत्थर युग के दो बुत' में आचार्य जी की यह मनःस्थिति उनके शब्दों में इस प्रकार व्यक्त हुई है— 'पत्थर युग के दो बुत मुझे मिले हैं—एक औरत दूसरा मर्द। जमाने ने इन्हें सभ्यता के बड़े-बड़े लिबास पहनाए, इन्हें सजाया सँवारा, सिखाया पढ़ाया, जमाना आगे बढ़ता गया और सभ्यता के शिखर पर जा बैठा, पर ये दोनों बुत अपने लिबास के भीतर आज भी वैसे ही पत्थर युग के दो बुत हैं। इनमें बाल बराबर भी अन्तर नहीं पड़ा है। एक है औरत और दूसरा है मर्द।'[1]

इस उपन्यास के पश्चात् चतुरसेन ने तीन और उल्लेखनीय उपन्यास लिखे हैं—सोना और खून, मोती और ईदो। इन तीनों में उनकी दृष्टि समाज-पक्ष से

---

१. पत्थर युग के दो बुत, पृ० ३।

किंचित् हट कर राजनीति-पथ पर अधिक केन्द्रित रही है। अत उनकी नारी-चेतना के विकास-क्रम का अन्तिम सोपान 'पत्थर युग के दो बुत' के उपर्युक्त अश मे ही समाहित समझना चाहिए।

× × ×

चतुरसेन के उपन्यासो मे सहस्राधिक नारी-पात्र चित्रित हैं। उनमें से चारित्रिक दृष्टि से एक सौ दस नारी पात्र विशेष महत्त्वपूर्ण है। इनके विश्लेषण से स्पष्ट है कि आचार्य जी ने समाज के प्राय समस्त नारी रूपो को अपने उपन्यासो मे प्रस्तुत किया है। इन मे जहाँ एक ओर माँ, पुत्री, पत्नी, बहिन, ननद, भाभी सौत, जेठानी, देवरानी, सास और बहू आदि पारिवारिक रूप दृष्टिगोचर होते हैं, वहाँ दूसरी ओर परिवार की परिधि से बाहर के प्रेमिका, वेश्या, कुट्टनी तथा दासी आदि रूप भी विद्यमान हैं। हाँ, समाज के कुछ कुत्सित, कठोर, कुरूप तथा कर्कश नारियो के रूप चाहे अपेक्षाकृत कम हैं फिर भी वैदिक युग से आज तक के सभी युगो की नारियो का साक्षात्कार इन उपन्यासो मे हो जाता है। चरित्रगत वैयक्तिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से भी सभी कोटियो के नारी-पात्र उनके उपन्यासों म समाविष्ट हैं। इनम कुछ नारियाँ यदि शक्ति, त्याग उत्सर्ग तथा मर्यादा की महिमामयी मूर्तियाँ हैं, तो कुछ उनके विपरीत भोग-विलास और देह-सुख को ही सब कुछ समझने वाली हीन नारियाँ हैं। नारी सुलभ शक्तियो तथा सीमाओ से युक्त विविध-रूपा नारियाँ इन उपन्यासो के कथासूत्रो की विधायिनी बनी हैं। प्रबुद्ध, प्रगतिशील, जागरूक एव विद्रोहिणी नारियो के साथ निरीह, असहाय और मूक पशुवत् आजीवन निस्पन्द रहने वाली नारियाँ भी इनमे देखी जा सकती हैं। इनके अतिरिक्त अनेक ऐसे असामान्य नारी-पात्र भी हैं, जिनके चरित्र म कई अन्तर्विरोधिनी प्रवृत्तियाँ एक साथ समाहित हैं।

प्रस्तुत प्रबन्ध मे चतुरसेन के उपन्यासो के महत्त्वपूर्ण एक सौ दस नारी पात्रो का चरित्र विश्लेषण दो अध्यायो मे किया गया है। कालक्रमानुसार पहले पौराणिक-ऐतिहासिक उपन्यासों के उनचास नारी पात्र हैं। उनके नौ वर्ग हैं—असाधारण नारियाँ, स्वच्छन्द-रति-विलासिनी नारियाँ, कूटनीतिज्ञ नारियाँ, पीडित नारियाँ, स्वाभिमानिनी नारियाँ, सती नारियाँ, योद्धा नारियाँ, मानवतावादिनी नारियाँ तथा भक्ति, त्यागमयी नारियाँ। तदनन्तर सामाजिक उपन्यासो के इक्सठ नारी पात्रो का चरित्र-विश्लेषण है। इनके दस वर्ग हैं—प्रवंचिता नारियाँ, विधवा-नारियाँ, वेश्याएं, परम्परावादिनी नारियाँ कर्मठ नारियाँ, स्वाभिमानिनी नारियाँ, समाज-सुधारक—प्रगतिशील नारियाँ, विवेकमयी नारियाँ, आधुनिकाएँ तथा स्वच्छन्द नारियाँ।

इस वर्गीकरण मे कहीं-कहीं विरोधाभास की सम्भावना हो सकती है।

वर्गीकरण, पात्रों के प्रमुख गुण के आधार पर है, अन्य गुण भी उनमें साथ रहते हैं। जैसे अम्बपाली प्रारम्भ में पुरुषमात्र के प्रति प्रतिशोध भावना की ज्वाला से तप्त, प्रबुद्ध, विद्रोहिणी और उदात्त चरित्र युवती के रूप में है। बाद में वह बिम्बसार तथा उदयन को शरीर-समर्पण कर नारी-सुलभ विवशता का प्रमाण प्रस्तुत करती है। अन्त में सिद्ध होता है कि उसे अपने विगत पर ग्लानि है और वह उसका प्रायश्चित्त करती है। इन अनेक पक्षों के मूल में, वस्तुतः वह विलक्षण नारी है। इसी प्रकार की सम्भावना अन्यत्र भी सम्भव है। कुड्नी, मातंगी, शोभना आदि के चरित्र यहाँ दृष्टान्त रूप में लिए जा सकते हैं। समग्र अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि चतुरसेन के नारी पात्र प्रायः प्रताड़ित, कर्त्तव्ययुक्त और बलिदानी हैं। वे लावण्य, साहस, आत्मोत्सर्ग तथा असाधारणता जैसे विशेष गुणों से सम्पन्न हैं। उनकी प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही महिमामय नारी पात्रों के चित्रण द्वारा नारी महिमा को व्यक्त करने की ओर रही है। आदि काल से आधुनिक काल तक अतीत के गर्भ में छिपे असाधारण नारीपात्रों को वे ढूँढ ढूँढ कर पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं।

चतुरसेन ने नारी-चित्रण में चरित्र-चित्रण की प्रचलित सभी प्रमुख शैलियों (वर्णनात्मक, नाटकीय एवं आत्मकथात्मक) का यथावसर प्रयोग किया है। उनकी नारी चित्रण-कला में सर्वाधिक निखार आत्मकथात्मक शैली के माध्यम से आया है। 'गोली' तथा 'पत्थर युग के दो बुत' इसका प्रमाण हैं। वैसे उनके अधिकांश उपन्यासों में नारीपात्र वर्णनात्मक शैली के माध्यम से चित्रित हुए हैं। कई नारी पात्र नाटकीय शैली द्वारा भी चित्रित हैं। जैसे सुधा (आत्मदाह), नीलमणि (नीलमणि), अम्बपाली (वैशाली की नगरवधू), मंजुघोषा (देवांगना), राज (अपराजिता) और चौला (सोमनाथ) आदि।

चतुरसेन ने पात्रों के रूपचित्रण के लिए उनके बाह्य, रूप व्यक्तित्व को खूब उभारा है। अतएव उनके सभी प्रमुख नारीपात्र अपने विशिष्ट व्यक्तित्व, विलक्षण रूप-गठन और वेश विन्यास के कारण अन्य पात्रों से पृथक् रूप में पहचाने जा सकते हैं। उनके अधिकांश उपन्यासों की नायिकाएँ युवा हैं तथा वे अन्य सामान्य स्त्रियों की अपेक्षा विशिष्ट रूपवती हैं। लगता है उनके चित्रण में लेखक ने सौन्दर्य-शास्त्र और कामशास्त्र-विषयक अपने गहन ज्ञान के साथ कुशल चिकित्सक के व्यापक अनुभव का उपयोग किया है। कहीं कहीं परिस्थितियों की ठोकरों से नारी के विकृत रूप का चित्रण भी है। उन्होंने नारियों के वेशविन्यास का चित्रण यथावत् किया है। इसके कारण, पौराणिक, बौद्ध-कालीन, मध्ययुगीन आधुनिकाएं, वेश्याएँ एवं विदेशी नारियाँ सहज ही पहचानी जा सकती हैं।

चतुरसेन ने अपने उपन्यासों में नारीपात्रों के अन्तरंग स्वरूप का भी सूक्ष्म एवं सजीव चित्रण किया है। अधिकांश मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों ने तर्क सिद्ध मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का साँचा खड़ा कर, उसी के भीतर अपने नारी-पात्रों को कसने का प्रयास किया है, जबकि चतुरसेन के नारी-पात्र सहज रहकर मनोवैज्ञानिक समस्याओं को प्रस्तुत करते हैं। वे असामान्य तो हैं, किन्तु सर्वथा लोकोत्तर नहीं। उनके भाव, विचार और आचरण मानव-स्वभाव के प्रकृत परिणाम हैं। फ्रायड निरूपित 'काम-मूलक शक्ति' के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त की, उनके नारी-चरित्रों में अधिकांश अवतारणा होने पर भी, उनमें प्रधानता चरित्र-पक्ष की है, मनोविज्ञान की नहीं।

× × ×

चतुरसेन के उपन्यासों में मानव जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी-सम्बन्धी समस्याओं को सकलित करके उनके समाधान प्रस्तुत किये गये हैं। ये समस्याएँ हैं विवाह-सम्बन्धी, प्रेम तथा काम-सम्बन्धी, आर्थिक स्वाधीनता तथा अन्य अधिकार-सम्बन्धी एवं स्फुट। विवाह-सम्बन्धी समस्याओं में अनमेल-विवाह, बाल-विवाह विधवा विवाह, बहु-विवाह, अन्तर्जातीय विवाह तथा विवाह विच्छेद सम्मिलित हैं। अनमेल विवाह के दो रूप हैं—स्त्री पुरुष की आयु में असमानता तथा उनकी रुचिभिन्नता। वसन्ती (बहते आँसू) तथा हुस्नबानू (धर्मपुत्र) असमान आयु के कारण विधवाएँ हो कर यातनाएँ सहती हैं। नीलमणि (नीलमणि) रुचिभिन्नता का उदाहरण है। ये सब समस्याएँ नारी दुर्दशा के कारण हैं। इनके समाधान भी उपन्यासकार ने प्रस्तुत किये हैं। किन्तु अन्तर्जातीय विवाह लेखक ने समस्या-रूप में चित्रित न कर भावात्मक एकता के लिए उपयोगी माना है। धर्मपुत्र', सुभदा' तथा 'खून और खून' में इसे विभिन्न परिवेशों में उठाकर चतुरसेन ने सिद्ध किया है कि सामान्य समाज अभी तक इसे अधर्म, जातिविरोधी तथा हीन प्रवृत्ति समझता है। 'खून और खून' में भारत के प्रमुख नेता जवाहर लाल नेहरू की पुत्री इन्दिरा के विवाह का प्रसंग रूढ़िवाद के विरुद्ध निष्ट विद्रोह का स्वरूप है।

चतुरसेन ने विवाह-विच्छेद को भारत की परम्परा के विरुद्ध मानते हुए कहीं उसका समर्थन नहीं किया है। 'अदल-बदल' तथा 'पत्थर युग के दो बुत' में इसके पक्ष विपक्ष में जोरदार दलीलें प्रस्तुत कराने के बाद नारी-पात्रों के माध्यम से प्रदत्त निर्णय तलाक पद्धति के प्रतिकूल है।

प्रेम और काम-सम्बन्धी समस्याओं की जड़ चतुरसेन ने समाज में व्याप्त यौनाचार-विकृति को बताया है। आर्थिक विषमताएँ तथा सामाजिक कुरीतियाँ इसके अन्य कारणों में से हैं। वेश्या वृत्ति यौन समस्या से सम्बद्ध है। विधवाएँ,

काम-बुभुक्षिताएँ एवं अनमेल-विवाह की शिकार नारियाँ समाज में वेश्या-वृत्ति अपनाने को विवश हैं। कामुक तथा लम्पटों का प्रलोभन भी इसमें सहायक होता है। अम्बपाली तथा भद्रनन्दिनी (वैशाली की नगरवधू) के रूप में उस युग में वेश्याओं की अप्रतिम प्रतिष्ठा दिखाई गई है। उस युग में वेश्याओं की कार्य-सीमा नृत्य-गायन द्वारा सामाजिक मनोरंजन-भर थी। उनका देह-विक्रय तथा यौन-तृप्ति मध्यकालीन सामंतीयुग की विलासिता की देन है। चतुरसेन ने अपने उपन्यासों में वेश्याओं को बड़ी सहृदय, सेवामयी एवं मानवता के श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न दर्शाया है। उन्होंने वेश्यारूप में समाज का सम्पूर्ण विष पीने वाली इस नारी का अभिवादन किया है।

चतुरसेन के मत में काम, प्रेम और विवाह के समन्वय में दाम्पत्य जीवन की सफलता निहित है। अपूर्ण नारी और अपूर्ण नर के मिलकर पूर्ण हो जाने की शाश्वत प्रक्रिया तभी सार्थक हो सकती है, जब काम, प्रेम और विवाह की रेखाएँ संतुलित रहें। 'हृदय की प्यास' में सुखदा और प्रवीण इनमें असन्तुलन के शिकार हैं। 'आत्मदाह' में विवाह को दो आत्माओं का मिलन कहा गया है। 'नीलमणि' में पुरुष और स्त्री का भिन्नलिंगी होना पारस्परिक प्रेम और आकर्षण का मूल कारण बताया गया है। 'वैशाली की नगरवधू' में प्रेम और काम-सम्बन्धी सैद्धान्तिक विवेचना व्यावहारिक रूप से दिखाई गई है। अम्बपाली की क्रमश: हर्षदेव, सोमप्रभ, बिम्बसार और उदयन के प्रति कामासक्ति है, प्रेम नहीं। अन्यत्र कई उपन्यासों में यह प्रसंग उठाकर उपन्यासकार ने सिद्ध किया है कि प्रेम विशुद्ध आध्यात्मिक वस्तु है। किन्तु जैसे जीवन में आत्मा और शरीर के समन्वय की आवश्यकता है, वैसे दाम्पत्य में प्रेम तथा काम का सन्तुलन वरेण्य है। स्वस्थ वैवाहिक जीवन उसकी कसौटी है।

नारी की आर्थिक स्वाधीनता तथा अधिकार की समस्या के तीन पक्ष हैं। पहला पक्ष है—आर्थिक मामलों में नारी का अधिकार। दूसरा है परिवार तथा समाज में नारी की स्थिति। तीसरा है सार्वजनिक क्षेत्र में नारी की स्थिति। आचार्य जी का दृष्टिकोण प्रगतिवादी है, अतएव वे सर्वत्र नारी स्वाधीनता का पक्ष लेते हैं। किन्तु 'अदल बदल' में चतुरसेन ने नारी की आर्थिक स्वाधीनता की लालसा उसे कर्त्तव्य पथ से विमुख करने वाली भी कही है। लगता है लेखक को इस समस्या के समाधान की खोज अन्त तक रही है।

परिवार और समाज में नारी की स्थिति के पक्ष-विपक्ष में विचार व्यक्त कराकर चतुरसेन ने समन्वयवादी धारणा के रूप में अपना मत व्यक्त किया है। वे नारी की स्वाधीनता की लहर में स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था का एकदम बह जाना अनुचित मानते हैं। उन्होंने नारी की सम्मानपूर्ण स्थिति बनाये रखने के

लिए उसके मातृत्व तथा मर्यादित नारीत्व पर पूरा बल दिया है। सार्वजनिक क्षेत्र मे नारी का प्रबल समर्थन चतुरसेन ने किया है। वे चाहते हैं कि नारी घर की रानी रहकर भी सार्वजनिक क्षेत्र मे भाग ले। सुधा (आत्मदाह), कुण्डनी (वैशाली की नगरवधू) तथा चौला (सोमनाथ) इसके आदर्श उदाहरण हैं।

चतुरसेन ने प्रगतिशील दृष्टिकोण होने के कारण, हर उस सामाजिक प्रवृत्ति का प्रबल विरोध किया है, जिसम नारी-जाति के स्वत्व पर तनिक भी आँच आने की आशका है। किन्तु नारी जागरण, आधुनिकता तथा प्रगतिशीलता के कट्टर समर्थक होते हुए भी वे मूलभूत भारतीय जीवन मूल्यो के यथेष्ट सरक्षण के पक्षपाती हैं। वे सर्वत्र नारी को सदाचारिणी, सद्गृहिणी, पतिव्रता तथा कार्यकुशल देखना चाहते हैं ताकि वह पुरुष की सहधर्मिणी एव सही अर्थों मे सहचरी बन सके। उपन्यासकार एव नारी के चतुर चितेरे के रूप मे उनकी नारी का रूप है—वह प्रहर्षकारिणी मानवी, जिसमे लज्जा, रागात्मक चेतना, कमनीयता एव आत्माह्लाद व्यवहार-दक्षता है, पूर्ण नारी कहलाने की अधिकारिणी है। सच तो यह है कि चतुरसेन नारी को नारी (नरसहयोगिनी) बनाए रखना चाहते हैं, विदेशी फैशनों के अधानुकरण मे दक्ष तितली नही। उनके स्वप्नों की नारी है पूर्णनारी, स्वय सिद्ध नारी, प्रबुद्ध एव जागृत नारी, विवेकशील तथा मर्यादामयी नारी, कँटीले गुलाब-सी कोमल और शक्ति की पुज नारी।

परिशिष्ट-१

आधार-ग्रन्थ-सूची

आचार्य चतुरसेन के उपन्यास

१. अदल-बदल — हिन्द पाकेट बुक्स लि०, दिल्ली — प्रथम संस्करण

२ अपराजिता — आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली — द्वितीय सं०, १९६५ ई०

३ अपराधी — सुमन पाकेट बुक्स, दिल्ली — प्रथम संस्करण

४ आत्मदाह — जय प्रकाशन, कबीर चौरा, वाराणसी — चतुर्थ सं०, १९६३ ई०

५ आभा — हिन्द पाकेट बुक्स लि० दिल्ली — प्रथम संस्करण

६. आलमगीर — हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी — सन् १९६५ ई०

७. ईदो — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली — द्वितीय सं०, १९६७ ई०

८ उदयास्त — हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली — प्रथम सं०, १९६६ ई०

९ खग्रास — प्रभात प्रकाशन, दिल्ली — द्वितीय सं०, १९६१ ई०

१० खून और खून — नवयुग प्रकाशन, दिल्ली — प्रथम सं०, १९७० ई०

११ गोली — राजहंस प्रकाशन, दिल्ली — प्रथम सं०, १९५६ ई०

१२ देवागना — सुबोध पाकेट बुक्स, दिल्ली — द्वितीय सं०, १९५९ ई०

१३ दो किनारे — चौधरी एण्ड सन्स, वाराणसी — चतुर्थ सं०, सन् १९६५ ई०

१४ धर्मपुत्र — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली — छठा संस्करण

१५ नरमेध — सुबोध पाकेट बुक्स, दिल्ली — द्वितीय सं०, १९६९ ई०

१६ नीलमणि — हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली — प्रथम संस्करण

१७ पत्थर युग के दो बुत — राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली — पंचम सं०, १९६९ ई०

१८ पूर्णाहुति जय प्रकाशन, वाराणसी चतुर्थ सं०, १९६३ ई०
१९ बगुला के पंख राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्रथम सं०, १९६७ ई०
२० बहते आंसू (अमर अभिलाषा)
चौधरी एण्ड सन्स, वाराणसी चतुर्थ सं० १९६५ ई०
२१. बिना चिराग का शहर
अजन्ता पाकेट बुक्स, दिल्ली १९६१ ई०
२२ मोती हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली १९६७ ई०
२३ रक्त की प्यास चौधरी एण्ड सन्स, वाराणसी तृतीय सं०, १९६५ई०
२४ लाल किला प्रभात प्रकाशन, दिल्ली १९७२ ई०
२५ लाल पानी जय प्रकाशन, वाराणसी द्वितीय सं०, १९६५ ई०
२६ वय रक्षाम राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली चतुर्थ सं०, १९६८ ई०
२७ वैशाली की नगरवधू (दो भाग)
चतुरसेन साहित्य समिति, दिल्ली पंचम सं०, १९६३ ई०
२८ शुभदा हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी
प्रथम सं०, १९६२ ई०
२९ सह्याद्रि की चट्टानें
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली द्वितीयसं०, १९६७ ई०
३० सोना और खून (भाग १)
राजहंस प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण
सोना और खून (भाग २, ३, ४)
राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ सं०, १९६७ ई०
३१. सोमनाथ हिन्द पाकेट बुक्स लि०, दिल्ली
३२. हृदय की परख गंगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
ग्यारहवां सं०, १९६७ई०
३३ हृदय की प्यास राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली नवां सं०, १९५८ ई०

परिशिष्ट-२

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत-ग्रन्थ

१. अथर्ववेद — गायत्री तपोभूमि, मथुरा — १९६० ई०

२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस — १९३२ ई०

३ ऋग्वेद — स्वाध्याय मंडल, पारडी — १९५७ ई०

४. ऐतरेय ब्राह्मण — अनन्तशयन सुन्दर विलासमुद्रणालय — १९५२ ई०

५. काव्य प्रकाश —मम्मट, चौखम्बा विद्याभवन, बनारस — १९५५ ई०

६. केनोपनिषद् —स्वामी सत्यानन्द — १९५७ ई०

७. छान्दोग्य उपनिषद् —स्वामी सत्यानन्द — १९५७ ई०

८. तैत्तिरीय ब्राह्मण — आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, पूना

९. दुर्गा सप्तशती — गीताप्रेस, गोरखपुर

१०. निरुक्त — बाम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज, बम्बई

११. बृहदारण्यकोपनिषद् — स्वामी सत्यानन्द — १९५७ ई०

१२. मनुस्मृति — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई — १९४६ ई०

१३. महाभारत — गीताप्रेस, गोरखपुर — १९५० ई०

१४. यजुर्वेद — स्वाध्याय मंडल, पारडी — १९५८ ई०

१५. रसमंजरी — भानुदत्त, श्री हरिकृष्ण निबंध भवनम्, वाराणसी

१६. रामायण-वाल्मीकि — गीताप्रेस, गोरखपुर

१७. वासिष्ठ धर्मसूत्र — चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस

१८. शतपथ ब्राह्मण — अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी — १९४० ई०

१९. श्रीमद्भगवद्गीता — गीताप्रेस, गोरखपुर

२०. संस्कृत-हिन्दी कोश — वामन शिवराम आप्टे, मोतीलाल बनारसीदास — १९६५ ई०

२१. साहित्य दर्पण — विश्वनाथ—मोतीलाल बनारसीदास — १९२६ ई०

२२. सिद्धान्त कौमुदी — गीताप्रेस, गोरखपुर — १९४६ ई०

सहायक हिन्दी ग्रन्थ

१ अचल मेरा कोई—वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, १९५४ वि०।

२ आचार्य चतुरसेन का कथा-साहित्य—डॉ० शुभकार कपूर, विवेक प्रकाशन, लखनऊ, १९६५ ई०।

३ आदर्श हिन्दू—मेहता लज्जाराम शर्मा, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, १९१५ ई०।

४ आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डॉ० श्रीकृष्णलाल, प्रयाग वि० वि० प्रयाग, १९५२ ई०।

५ आधुनिक हिन्दी साहित्य—डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, १९५४ ई०।

६ उग्र और उनका साहित्य—रत्नाकर पाडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, २०२६ वि०।

७ उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा—डॉ० शशिभूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९६० ई०।

८. कचनार—वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, १९५४ ई०।

९. कढ़ी में कोयला—पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', बनारस।

१०. कबीर ग्रन्थावली—डॉ० गोविंद त्रिगुणायत अशोक प्रकाशन, दिल्ली, द्वितीय सं०।

११ कल्याणी—जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

१२ कवितावली—तुलसी, गीताप्रेस, गोरखपुर।

१३ कामायनी—जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, १९९२ वि०।

१४ कड़ती चक्र—वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, २०११ वि०।

१५. कुछ विचार—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस।
१६. गबन—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, नवाँ सस्करण।
१७. गबन : एक आलोचनात्मक अध्ययन—डॉ० रामप्रकाश, अलकार प्रकाशन, दिल्ली, १९७१ ई०।
१८ गोदान—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, छठा सस्करण।
१९. चन्द्रकान्ता सन्तति—देवकीनन्दन खत्री, बनारस, १८९१ ई०।
२०. चन्द हसीनो के खतूत—पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', बनारस, सातवा सस्करण।
२१. जी जी जी—पाडेय बेचन शर्मा 'उग्र', बनारस, १९४३ ई०।
२२. तुलसी—(स०) डॉ० उदयभानुसिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६५ ई०।
२३. दिल्ली का दलाल—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', प्रथम सस्करण, १९२७ ई०।
२४. द्वापर—मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)।
२५. नया साहित्य : नए प्रश्न—नन्ददुलारे वाजपेयी, विद्या मन्दिर, बनारस, १९५५ ई०।
२६. नारी—आचार्य चतुरसेन, रीता पाकेट बुक्स, मेरठ।
२७. नारी : अभिव्यक्ति और विवेक—पुष्पावती खेतान, शक्ति माँ प्रकाशन, गाजियाबाद।
२८. निर्मला—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, छठा सस्करण।
२९. पद्मावत (जायसी)—डॉ० माताप्रसाद गुप्त, भारती भडार, इलाहाबाद, १९६३ ई०।
३०. पद्मावत (जायसी)—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगाँव (झाँसी)।
३१. पुष्पकुमारी—टीकाराम सदाशिव तिवारी, कलकत्ता, १९१७ ई०।
३२. प्रबन्ध-पद्म—निराला, गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, १९६६ ई०।
३३. प्राचीन भारतीय साहित्य मे नारी—डॉ० गजानन शर्मा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१ ई०।
३४. प्रेम की भेंट—वृन्दावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, झाँसी, १९५४ ई०।
३५ प्रेमचन्द : एक विवेचन—डॉ० इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी भवन, जालन्धर, प्रथम स०।

३६ प्रेमचन्द के पात्र—(स०) कोमल कोठारी, विजयदान, अक्षर प्रकाशन, प्रा० लि० दिल्ली, १९७० ई०।

३७ मनुष्यानन्द—पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', बनारस, द्वितीय संस्करण, १९५५ वि०।

३८ माधवी माधव—किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दावन, १९१६ ई०।

३९ मेरी आत्मकहानी—आचार्य चतुरसेन शास्त्री, चतुरसेन साहित्य समिति, १९६३ ई०।

४०. मैं इनसे मिला—डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५० ई०।

४१ रंगभूमि—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस, १९५६ ई०।

४२ रामचन्द्रिका—केशवदास, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, २०१३ वि०।

४३ रामचरितमानस—तुलसी गीताप्रेस, गोरखपुर, २०१६ वि०।

४४ लखनऊ की कब्र—किशोरीलाल गोस्वामी, वृन्दावन, प्रथम संस्करण, १९०६ ई०।

४५ वामा शिक्षक—ईश्वरीप्रसाद शर्मा, मेरठ, १८८३ ई०।

४६ विचार और अनुभूति—डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, १९९१ वि०।

४७ विराटा की पद्मिनी—वृन्दावनलाल वर्मा, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, २००८ वि०।

४८. वैदिक साहित्य में नारी—प्रशान्तकुमार, वासुदेव प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ ई०।

४९ श्यामास्वप्न—ठाकुर जगमोहनसिंह, बंगीय हिन्दी परिषद्, कलकत्ता, १८८८ ई०।

५०. संतवाणी संग्रह, वेल्वेडियर प्रेस, इलाहाबाद।

५१. संस्कृत साहित्य का इतिहास—वरदाचार्य, रामनारायणलाल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण।

५२ समीक्षा सिद्धान्त—डॉ० रामप्रकाश, आर्य बुक डिपो, दिल्ली, १९७० ई०।

५३ साहित्यानुशीलन—शिवदानसिंह चौहान, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, १९५५ ई०।

५४ सुखदा—जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

५५ सुनीता—जैनेन्द्र कुमार पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली।

५६ सूरसागर—सूरदास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।

५७. सेवासदन—प्रेमचन्द, सरस्वती प्रेस, बनारस।
५८. हिन्दी उपन्यास—डॉ० रामदरश मिश्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६८ ई०।
५९. हिन्दी उपन्यास—शिवनारायण श्रीवास्तव, सरस्वती मन्दिर, बनारस।
६०. हिन्दी उपन्यास और यथार्थ—डॉ० त्रिभुवनसिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, २०१४ वि०।
६१. हिन्दी उपन्यास : उद्भव और विकास—डॉ० सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन दिल्ली, १९६५ ई०।
६२. हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियाँ—डॉ० शशिभूषण सिंहल, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, १९७० ई०।
६३. हिन्दी उपन्यासों में नायिका की परिकल्पना—डॉ० सुरेश सिन्हा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, १९६४ ई०।
६४. हिन्दी उपन्यास में नारी-चित्रण—डॉ० बिन्दु अग्रवाल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, १९६८ ई०।
६५. हिन्दी साहित्य : प्रमुख वाद एवं प्रवृत्तियाँ—डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९७१ ई०।
६६ हिन्दी उपन्यास-साहित्य का अध्ययन—डॉ० गणेशन, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९६० ई०।

ENGLISH BOOKS

1. Aspects of the Novel—E.M. Farster, Edward Arnold & Co. London, 1953.
2. A Dictionary of Psychology—Drever, James, Penguen Books Ltd Hamandsworth, 1956.
3. Two Essays on Analytical Psychology—Jung, Routledge & Kegan paul Ltd. London, 1953.
4. The Feminine Character—Viala Clean, George Allen & Unwin Ltd. London, 1938.
5. The Study of the Literature—W. M. Hudson, Harrap & Co. London, 1935.
6. Modern Educational *Psychology*—G. Murphy, Routledge and Kegan Paul Ltd. London, 1949

7. Fryed and His Dream Theories—Jestro, Pocket Books Inc, Newyork, 1915.
8. Psycho-dynamics of Abnormal Behaviour—Brown, Mc. Gra. Hill, Publishing Co. Newyork, 1940.
9. Women in the Vedic Age—Shakuntla Rao Shastri.
10. Vedic Index—Zimmer & Delbrues, George Allen & Unwin Ltd. London, 1951.
11. Whither Women—Y. M. Reag, Routledge & Kegan Paul, Ltd. London.

पत्र-पत्रिकाएँ

१. चतुरसेन (त्रैमासिक), दिल्ली।
२. वातायन, दिल्ली।
३. साप्ताहिक हिन्दुस्तान, दिल्ली, ६ मार्च, १९६० तथा १७ अप्रैल, १९६०
४. साहित्य सन्देश, आगरा, अक्तूबर, १९४० ई०।